प्रकाशक

प्रसाद-परिषद्
की ओर से
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, बनारस-१

प्रबोधनी : २००९
मूल्य १[illegible])
प्रतियाँ : १५००

मुद्रक
श्रीमद्भागवत प्रेस,
सुड़िया, काशी ।

गोपियों के प्रेम में विकल दिखलाकर समता की सुरक्षा बहुत कुछ कर ली गई। पर आगे के कवियों ने श्रीकृष्ण का मानस-पक्ष उतना दिखलाया ही नहीं। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबने लगा। रीतिबद्ध रचना में साफ दिखाई देता है कि संयोग-पक्ष में नायिका के रूप-वर्णन की योजना नायक की उक्ति के रूप होती है, पर विरह-वर्णन में नायिका की विरह-दशा का ही साधारण वर्णन किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग-पक्ष में वहिर्वृत्ति की प्रधानता होती है और वियोग-पक्ष में अंतर्वृत्ति की। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में जहाँ तक हृदय का संबंध है शृंगारकाल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीतिबद्ध रचना में विषमता का बढ़ा-चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छंद धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है। फारसी-साहित्य में प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है और उर्दू में उस परंपरा का निर्वाह आज तक हो रहा है। पिछले काँटे के कृष्णभक्त कवि और स्वच्छंद धारा के रीतिमुक्त कवि सूफी संतों और फारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है। कृष्ण-भक्त कवियों में जो प्रेम का वैषम्य दिखाई देता है उस पर भी विचार कर लेना चाहिए। महाभारत में कृष्ण-प्रेम में वैषम्य की विवृति नहीं है, पर श्रीमद्भागवत में इसकी विषमता स्पष्ट लक्षित होती है। उपासक की भक्ति में लीनता और उपास्य के विरह में आरूढ़ होने के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त ही प्रेम-लक्षणा भक्ति के अनुकूल यह विस्तार हुआ है। ब्रह्म की ओर आत्मा के आकृष्ट होने के आदर्श के कारण यह विषमता सामने लाई गई है अर्थात् उद्धव-ऐसे ज्ञान के अहंकार में चूर व्यक्ति को प्रेमयोग या भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त यह योजना की गई है। क्योंकि भक्ति का प्रथम सोपान है अहम् का लोप, आत्म-विस्मृति। अतः कृष्णभक्ति में प्रेम वैषम्य का प्रसार श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि के प्रसार के साथ ही हुआ। प्रेम का वैषम्य और भक्ति की विषमता में अंतर है। प्रेम में प्रिय पक्ष में निष्ठुरता, कठोरता, क्रूरता आदि का आरोप होता है, पर भक्ति में नहीं। भक्ति के आलंबन भगवान् के जिस रूप की कल्पना इस क्षेत्र में हुई वह भगवान् में हृदयपक्ष या करुणा के अत्यधिक आरोप को ही लेकर हुई। अतः भक्ति के क्षेत्र में क्रूरता का अधिक आरोप प्रेम-लक्षणा भक्ति में शृंगार का अवयव

प्रस्तुत ग्रंथावली



प्रस्तुत ग्रंथावली के संपादन मे प्रत्येक पुस्तक के विभिन्न हस्तलेखो का आलोडन करके पहले यह निर्णय किया गया है कि किसमे शुद्धता एवम् प्रामाणिकता अधिक है और फिर उसे प्रधान रखकर प्रायः अन्यो से पाठातर दिए गए हैं। पर सर्वत्र उसी का पाठ मूल मे न होकर यथास्थान अन्यो के उपयुक्त पाठ लिए गए हैं। 'घनआनंद-कवित्त' और 'सुजान-हित' घनआनंद के कवित्तों के दो विभिन्न संग्रह है। इनमे से 'घनआनद-कवित्त' मेरे विचार और अनुसंधान से प्राचीन है। फिर भी 'सुजान-हित' मे कवित्तो के पाठ उसी (सुजान-हित) के हस्तलेखो के आधार पर रखे गए है। इस ग्रंथावली मे 'घनआनंद-कवित्त' नही रखा गया है, 'सुजान-हित' ही संमिलित है। वह पृथक् प्रकाशित किया जा चुका है।

विभिन्न हस्तलेखों के सकेत '१, २, ३' या 'क, ख, ग' आदि न रखकर उनके प्राप्तिस्थानो के संक्षेप से व्यक्त किए गए है। जैसे 'वृंदावन' के लिए 'वृदा०', 'रामनगर' के लिए 'राम' आदि। ऐसा करने मे लाघव तो नहीं है, पर भ्रम की संभावना कम है। पाठातरो के लिए मूल मे अंको की योजना भी इसी से नही की गई। अंक आदि के टूट-फूट जाने से भी गडबड हो सकता है। हाँ, लाघव के लिए मूल के लंबे पाठों का पूरा उद्धरण न देकर कुछ शब्द ही दिए गए है, फिर शून्य लगाकर आगे पूरा पाठातर दिया गया है। ऐसा करने मे कुछ पृष्ठ बढ गए हैं, पर स्पष्टता अधिक है।

मूल के नीचे पहले छोटे भिन्न अक्षरो मे पाठातर है, जिनके लिए पद्यों की संख्या बिना कोष्ठक के दी गई है। फिर छोटे पर भिन्न अक्षरों मे कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए है। पद्य की सख्या बड़े कोष्ठक से घिरी है। विस्तार-भय से बहुत कठिन शब्दों के ही अर्थो की योजना की गई है। घनआनद ब्रजभाषा-प्रवीण थे, इसका पता इस ग्रथावली से विशेष रूप से लगता है। कुछ शब्दों के दिए गए अर्थ संदिग्ध हैं। ब्रजभाषा-ज्ञान के

प्रवृत्ति-बोधिनी कृति कवित्त-सवैयों में ही है—बीच-बीच में दोहे, सोरठे और छप्पय भी आ गए हैं, यह दूसरी बात है। इनके स्वच्छंद प्रेममय कवि-पक्ष के अनुकूल इस तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'रसखानि' ने भी भक्तों की 'गीति-रीति' का त्याग कर दिया है।

कृष्णभक्त कवियों में प्रबंध रचना का स्फुरण नहीं हुआ। रीतिबद्ध शृंगार की रचना करनेवाले भी प्रबंध की ओर उन्मुख नहीं हुए। भक्तिकाल के भीतर सूफी प्रेममार्गी कवि अलबत प्रेमकथा के द्वारा अपनी साम्प्रदायिक प्रेम-पीर व्यक्त करते थे। इन स्वच्छंद कवियों ने भक्ति और रीति दोनों की सांप्रदायिकता से पृथक् रहने का प्रयास किया, अतः इनका प्रेम-प्रबंधों की ओर मुड़ना स्वाभाविक था। 'आलम' ने माधवानल-कामकंदला, सुदामाचरित्र और श्यामसनेही नामक तीन प्रबंध-काव्य प्रस्तुत किए। पहले में कामकंदला नाम्नी वेश्या के प्रति माधवानल नामक प्रेमोन्मत्त व्यक्ति की प्रीति काव्यबद्ध की गई है। दूसरे में सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण के निःस्वार्थ प्रेम का बखान है। तीसरे में रुक्मिणी के प्रेम और परिणय की कथा है। इस प्रकार प्रेम के विविध रूपों को काव्यबद्ध करके 'आलम' ने अपने स्वच्छंद प्रेमपथ का प्रमाण दे दिया है। न तो 'सुदामाचरित्र' की चर्चा चलानेवाले नरोत्तमदास भक्त कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं और न 'रामचंद्रचंद्रिका' का 'प्रकाश' करनेवाले केशवदासजी भक्तशिरोमणि ही मान जाते हैं—यद्यपि दास' दोनों ही हैं। अतः श्रीकृष्णविषयक रचना से ही किसी को भक्तों की मंडली में बिठा देना बहुत स्थूल लक्षण लेकर काव्येतिहास का विवेचन करने बैठना है। 'माधवानलकामकंदला' प्राकृत-काल की कदाचित् कल्पित कथा है, जिसमें थोड़ी-सी विक्रमादित्य की ऐतिहासिक कथा भी जुड़ी है। यह कथा मूल में प्राकृत ही रही होगी, सम्कृत में इसका प्राकृत से अनुवाद हुआ होगा—वैसे ही जैसे गुणाढ्य की 'वड्डकहा' का संस्कृत में संक्षेप हुआ। इसके प्राकृत-रूप का प्रमाण यह है कि संस्कृत में इसके जो अनुवाद हुए उनमें भी प्राकृत की गाथाएँ ज्यों की त्यों रखी हुई हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में संस्कृत में जो प्रेमकथाएँ कल्पित वृत्त लेकर गद्य में लिखी जाती थीं उन्हीं की परंपरा मे प्राकृत काल की ये रचनाएँ भी हैं। जैसे प्राकृत और अपभ्रंश की और बहुत-सी सामग्री लुप्त हो गई वैसे ही यह कथा भी अपने मूल रूप में। यही 'माधवानलकामकंदला' शुद्ध भारतीय प्रेम-काव्यों की

लिए भिखारीदास ने ब्रजवास को प्रधान नहीं माना, कवियों के काव्य को साधन कहा है। पर घनआनंद के बहुत से शब्द और प्रयोग अन्य कवियों मे हैं ही नहीं।

सुजान-हित, कृपाकद, प्रेमपत्रिका, वृंदावनमुद्रा में कुछ कवित्त-सवैये ओत-प्रोत हैं। उन्हे प्रत्येक ग्रंथ मे ज्यो का त्यों रहने दिया गया है। 'प्रेमसरोवर' पूरा का पूरा 'ब्रज-व्यवहार' मे २२५ से २३२ तक आ गया है। 'मनोरथमंजरी' पूरी 'पदावली' मे भी आई है। फिर भी पुनरुक्ति बनी रहने दी गई है। 'पदावली' में कुछ दोहे भी आए है वे भी यथास्थान है। यह सब इसलिए किया गया जिससे ग्रंथावली अनुसंधान के उपयोग की भी बनी रहे।

शब्दरूपो मे वहीं तक एकरूपता लाई गई है जहाँ तक ग्रथ के 'वैज्ञानिक' सपादन का महत्त्व बना रहे और साहित्यिकता भी खंडित न हो। अत. शब्दो के विभिन्न रूप भी यथास्थान मिलेगे। प्राचीन ग्रंथो में 'समान', 'सुजान' आदि शब्दों के रूप 'समान', 'सुजान' या 'समाॅन', 'सुजाॅन' भी मिलते हैं। ये रूप भाषा-विज्ञान की दृष्टि से काम के है—सानुनासिक 'न' से 'न्' या 'ज्' का 'आ' प्रभावित है। पर ऐसे रूप गृहीत नहीं किए गए, सार्वत्रिक प्रवृत्ति न होने से। 'माॅ' की सानुनासिकता इसलिए नही छोड़ दी गई है कि 'म्' स्वयम् सानुनासिक है अतः उसमे अनुस्वार या अर्धानुस्वार व्यर्थ है, जैसा आधुनिक हिंदी में 'मे' के संबंध मे कुछ पंडितंमन्य समझने-परने लगे हैं। परमार्थतः 'अनुस्वार' या 'अर्धानुस्वार' 'म्' को नही उसके आगे के 'स्वर' को रंजित करता है। विस्तार-भीति से एकदेश का ही निरूपण करके विरत होना है, अन्यत्र भी ऐसी ही गति है।

ग्रंथ के अत मे केवल कवित्तों (मनहरण, सवैया, छप्पय) और पदो की सूची सधान-अनुसंधान के प्रेमियो के लिए जोड़ दी गई है। अन्य छंदो की सूची निष्प्रयोजन समझी गई। अतः पदावली या कवित्तो के बीच आए दोहे-सोरठे सूची मे न मिलेंगे।

प्रस्तुत संस्करण मे घनआनंदजी का चित्र भी दिया जा रहा है। यह चित्र [illegible] से प्राप्त हुआ है और मुझे निंबार्क-सप्रदाय के वृंदावननिवासी ब्रह्मचारी



घनआनन्द

श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदाताचार्य से मिला है। इस चित्र पर यह छप्पय भी अंकित है—

"सकल-गुन-सुजान स्वामीजी श्रीआनदघनजी।
वृंदावन मे अटल ह्वै वास कियौ आनंदघन।
रचैं कटीली काव्य, स्तुति कछु परत न गाई।
अनुपम अक्षर जटित चोज चेटक सरसाई।
श्रवन परत हिय द्रवै छकनि झूलै सब झूलै।
मानौ मोहन मंत्र महा सुधि की सुधि भूलै।
गान-कला मे अति कुसल सुनत बढ़ै आह्लाद मन।
वृंदावन मे अटल ह्वै वास कियौ आनदघन॥"

जिन महानुभावों ने अपने हस्तलेख या उनकी प्रतिलिपियाँ दीं, जिन संस्थाओं ने हस्तलेखों को देखने की सुविधा दी उन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता विनम्र भाव से व्यक्त करता हूँ। वृंदावनवाले हस्तलेख के लिए 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीविहारीशरणजी का, सरस्वती-भंडार (रामनगर) के हस्तलेखों के लिए हिज हाइनेस महाराज विभूतिनारायण सिहजी का, अजयगढ़ के काव्यसंग्रहवाले हस्तलेख के लिए हिज हाइनेस सवाई महाराजा पुण्यप्रताप सिंहजू देव का, घनआनंद के चित्र तथा निंबार्क-सप्रदाय की बहुत सी सामग्री देने के लिए बड़ी कुंज (वृंदावन) के श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदाताचार्य का, लादन के हस्तलेख का माइक्रोफिल्म ला देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० केसरीनारायणजी शुक्ल का, उस माइक्रोफिल्म के पठनार्थ अत्यंत शक्तिशाली मैग्नीफाइग ग्लास देने के लिए के० कृष्ण एंड संस (चौक, बनारस) के संचालक श्रीविधानकुमार चक्रवर्ती का, समय-समय पर शब्दार्थ-संबंधी परामर्श के लिए श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी (रामनगर) का, घनआनंद-संबंधी भड़ौओ की प्रतिलिपि भेजने के लिए धर्मसमाज कालिज (अलीगढ़) के हिंदी-संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्रीमनोहरलालजी गौड़ का और अजयगढ़वाला हस्तलेख ले आने के लिए भारती महाविद्यालय (काशी विश्वविद्यालय) के प्राध्यापक श्रीविश्वंभरशरण पाठक का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस कार्य में मेरे कई शिष्यों ने छोटी-मोटी सहायता करके हाथ बँटाया। उनमें से पाठांतरों के मिलान के लिए गया कालिज के प्राध्यापक श्रीबटेकृष्ण और माइक्रोफिल्म से प्रतिलिपि करने मे सहायता देने और प्रतीकानुक्रमणी प्रस्तुत करने के लिए काशी विश्वविद्यालय (हिंदी-विभाग–एम्० ए० कक्षा) के छात्र श्रीगोपालदास कार्य-गौरव के निमित्त उल्लेख्य और आशीर्वाद के विशिष्ट भाजन हैं।

इस ग्रंथावली के मुद्रित हो जाने से घनआनंद की कृतियो के संपादन का अनुष्ठान पूर्ण हो गया। अब रह गई उनके सौदर्यविधान और भावनाभेद की सरणियों का परिचय करानेवाली समीक्षा, जिसके लिए मैं प्रतिश्रुत हूँ। उसकी सभावना भी शीघ्र ही करनी चाहिए, क्योंकि व्याधि-मंदिर मे इस कार्य की परिपूर्ति में सतत श्रम के अनिवार्य परिणाम-स्वरूप कई व्याधियो के स्थापित हो जाने पर भी मैं स्फूर्ति का अनुभव करने लगा हूँ—

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते'

प्रबोधनी, २००९
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित—(१) राजपुस्तकालय, रामनगर, बनारस राज्य ।
(२) म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग ।
(३) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली ।

कृपाकंद—सरस्वती-भंडार, रामनगर, बनारस राज्य ।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचद्र वैद्य, भरतपुर ।
(२) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।

इश्कलता—श्रीरामचंद्र सेनी, बेलनगंज, आगरा ।

यमुना-यश—म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग ।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।

पदावली—मानस-संघ, रामवन, सतना ।

आनंदघन-ग्रंथावली—श्रीब्रह्मचारी बिहारीशरण, वृंदावन ।

व्रजस्वरूप (आनंदघन-ग्रंथावली)—(माइक्रोफिल्म, ब्रिटिश म्यूजियम, हस्तलेख-विभाग, १६४)—श्रीकेसरीनारायण शुक्ल, लखनऊ ।

प्रकीर्णक—(१) आनदघन-कवित्त, रत्नाकर-सग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
(२) घनआनंद-कवित्त, वही ।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
(४) संग्रह, राजपुस्तकालय, अजयगढ़ राज्य, विंध्यप्रदेश ।
(५) भड़ौआ, (याज्ञिक-संग्रह), श्रीमनोहरलाल गौड़, अलीगढ़ ।

मुद्रित

घनआनंद-कबित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।

शृंगार-संग्रह—सरदार कवि ।

सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चद्र ।

मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु महोदय ।

'खोज' के विवरण—(अप्रकाशित भी)

सुजान-सागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।
विरह-लीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रसखान और घनानंद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रागकल्पद्रुम (तीनो भाग)—श्रीकृष्णानंद व्यास।
रागरत्नाकर—श्रीभक्तराम।
व्रजनिधि-ग्रंथावली—('सभा' द्वारा प्रकाशित)
घन-आनंद—श्रीशभुप्रसाद बहुगुना (आधार—याज्ञिक-संग्रह)
व्रज-भारती (पत्रिका)—संपादक, श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

संकेत

राम—रामनगर (बनारस राज्य) के हस्तलेख।
प्रयाग—प्रयाग (म्यूनिसिपल म्यूजियम) के हस्तलेख।
कवित्त—घनआनद-कवित्त ('सभा') के हस्तलेख।
कॉक०—कॉकरौली, विद्या-विभाग के हस्तलेख।
भदा०—भदावर राज्य (नवगॉव, आगरा) के हस्तलेख।
संग्रह—विभिन्न सग्रहो के हस्तलेख या मुद्रित ग्रंथ।
सभा—'सभा' द्वारा मुद्रित ग्रंथ।
खोज—खोज-विभाग के मुद्रित और अप्रकाशित विवरण।
वृंदा०—वृंदावन, श्रीबिहारीशरणजी वाला हस्तलेख।
लंदन—लंदन (ब्रिटिश म्यूजियम) का हस्तलेख (माइक्रोफिल्म)
भरत—भरतपुर, श्रीराधाचंद्र वैद्य का हस्तलेख।
बेल०—बेलनगंज (आगरा), श्रीरामचंद्र सेनी का हस्तलेख।
याज्ञिक—याज्ञिक-संग्रह के हस्तलेख (बहुगुना के घन-आनंद के आधार पर)।
सतना—सतना (मानस-सघ) की पदावली का हस्तलेख।
वही—पूर्वगामी सकेत के लिए।

सूचना—जहॉ पाठातर मे कोई सकेत नहीं वहॉ उत्तरगामी संकेत समझिए।

सूची

———

वाङ्मुख

शृंगारकाल

आधुनिक इतिहासों में हिंदी-साहित्य की लगभग एक सहस्र वर्षों की दीर्घ-कालीन परंपरा तीन भागों में विभाजित की गई है—आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल[1]। मध्यकाल को ऐतिहासकों ने कई प्रकार से बाँटा। मिश्रबंधुओं ने उसके तीन उपविभाग किए—पूर्व, प्रौढ़ और अलंकृत[2]। पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने उसके दो खंड माने—पूर्व-मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल[3]। पहले का नाम भक्तिकाल और दूसरे का रीतिकाल रखा। 'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार दूसरा 'अलंकृत काल' है और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' के अनुसार 'रीतिकाल'[4]। मिश्रबंधुओं ने 'अलंकृत' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। संस्कृत में 'अलंकार' शब्द का व्यवहार साहित्य के समस्त शास्त्रपक्ष के लिए भी होता है[5]। 'अलंकारशास्त्र' कहने से रस, अलंकार, रीति, पिंगल आदि समस्त काव्यांगों का भी बोध होता है। हिंदी में संस्कृत के ही अनुगमन पर केशवदासजी ने 'अलकार' शब्द 'कविप्रिया' में व्यापक अर्थ में स्वीकृत किया[6]। वहाँ काव्य की सारी सामग्री—वर्ण्य विषय और वर्णन-प्रणाली—'भूषण' अर्थात् अलकार मानी गई है। संस्कृत में 'रीति' शब्द का व्यवहार ऐसे व्यापक अर्थ में नहीं होता, पर 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस,

---

१ मिश्रबधु-विनोद—मिश्रबधु-कृत, चतुर्थ सस्करण (स० १९९४); हिंदी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचद्र शुक्ल कृत, संशोधित और प्रवर्धित सस्करण (स० १९९९); हिंदी भाषा और साहित्य—बाबू श्यामसुदरदास-कृत प्र० सस्करण।

२ मिश्रबधु-विनोद, चतुर्थ सस्करण।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित सस्करण।

४ उत्तरवर्ती अन्य इतिहासों में भी शुक्लजी का ही विभाजन और नाम स्वीकृत हुआ है, अतः वे भी इसी में गतार्थ हैं।

५ आप्टे का संस्कृत-कोश पृ० १५६।

६ कविप्रिया, तृतीय प्रकाश।

अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है, जिसे हिंदी-काव्य-परंपरा का मान्य अर्थ समझना चाहिए। 'रीति' वस्तुतः 'काव्य-रीति' का संक्षिप्त रूप है[१]।

साहित्य के विविध कालों का विभाजन और नामकरण किस आधार पर हो, यह विचारणीय है। मुख्यतया कृति, कर्ता, विषय और पद्धति को दृष्टिपथ में रखकर विभाजन तथा नामकरण होता है। साहित्य के किसी विशिष्ट काल या युग की एकरूप कृतियों के विचार से विभाजन और नामकरण का दृष्टांत है हिंदी का आदिकाल, जिसमें उपलब्ध अधिकांश रचनाओं का नाम 'रासो' है। अतः कुछ लोग उसे 'रासो-काल' कहना ठीक समझते हैं। कर्ताओं की एकरूपता को लक्ष्य करके उसे 'चारण-काल' भी कहा गया है[२]। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उसका नाम 'वीरगाथा-काल' भी रखा गया है[३]। पर कभी-कभी विशिष्ट पद्धति की बहुलता भी नामकरण का हेतु होती है। हिंदी का आधुनिक काल 'गद्यकाल' कहा जाता है[४]। जब विभाजन और नामकरण का कोई मार्ग नहीं मिलता तब किसी विवेच्य काल का कोई विशिष्ट कवि या लेखक सामने किया जाता है; अथवा राजनीतिक या सामाजिक इतिहास की शरण ली जाती है। अँगरेजी-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-शेक्सपियर-युग उत्तर शेक्सपियर-युग आदि नाम[५] और उन्हीं की अनुकृति पर संस्कृति-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-कालिदास-युग, पर-कालिदास युग आदि नाम[६] पहले प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी में 'मिश्रबंधु-विनोद' के उपविभाग सौरकाल, तुलसी-काल, विहारी-काल इसी के बोधक हैं और आधुनिक काल के भारतेंदु-

---

१ भिखारीदास ने लिखा है—काव्य की रीति सिखी सुकबीन सों देखीं सुनीं, बहु लोक की बातें—काव्य-निर्णय, प्रथम उल्लास।

२ सेलेक्शन्स फ्राम हिंदी-पोयट्री—लाला सीताराम संगृहीत, प्रथम भाग।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास—प० रामचंद्र शुक्ल-कृत।

४ मिश्रबंधु-विनोद तथा हिंदी-साहित्य का इतिहास।

५ ए हिस्ट्री आव् इंगलिश लिटरेचर—श्री आर्थर काम्टन रिकेट-कृत (सन् १९३१) पृ० १५४।

६ संस्कृत-लिटरेचर—श्री कीथ-कृत।

युग, द्विवेदी-युग[1] खंड भी यही सूचित करते हैं। अँगरेजी साहित्य के इतिहासों में एलिजाबेथन या विक्टोरियन पीरियड नाम दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी में अकबर-काल, दयानंद-काल नाम भी वैसे ही हैं।

विभाजन और नामकरण में एक ओर तो किसी विशेष काल या युग की व्यापक प्रवृत्तियों का बोध लक्ष्य होता है और दूसरी ओर अंतर्विभाग का सुभीता। जहाँ तक प्रवृत्तियों के बोध का पक्ष है इतर क्षेत्रों से नाम का ग्रहण आलस्य का सूचक है। साहित्य का इतिहास जनता की मानस-परंपरा का इतिहास होता है, उसे किसी शासक के नाम से प्रकट करना साहित्य की भाव-धारा के अज्ञान की घोषणा करना है। किसी विशिष्ट कवि या लेखक का नाम तब तक युग के साथ न जुड़ना चाहिए जब तक उसकी प्रवृत्तियाँ सर्वमान्य न हो गई हों। 'भारतेंदु युग' और 'द्विवेदी-युग' नाम को इसी दृष्टि से उचित कहा जा सकता है। अंतर्विभाग के लिए ध्यान में रखना होगा—विभाग के नाम की व्याप्ति को। अंतर्विभाग व्यापक प्रवृत्तियों के स्कंधों का बोधक होता ही है, साथ ही किसी विभाग की दीर्घ सीमा के विवेचन की कठिनाई भी सुगम करता है। प्रत्येक काल के पृथक् पृथक् युग या सामान्य प्रवृत्तियों के पृथक्-पृथक् स्कंध बतलाने और समझने की दृष्टि से अनिवार्य होते हैं। अतः विद्वान् ऐतिहासिक सदा विभाजन करके ही विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। शुक्लजी ने हिंदी-साहित्य का पूर्व-मध्यकाल विवेचन-सौकर्य के ही लिए चार अंतर्विभागों में विभक्त किया है। निर्गुण तथा सगुण धारा की दो-दो शाखाएँ मानकर ये नाम रखे हैं—ज्ञानमार्गी-प्रेममार्गी तथा रामभक्ति—कृष्णभक्ति।

इस प्रकार किसी साहित्य-काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। एक तो नाम सर्वसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अंत-र्विभाग का मार्ग अनवरुद्ध रखे। सर्वसामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का संबंध किसी विशेष काल में प्रस्तुत ग्रंथराशि के बाहुल्य से है, समस्तता से नहीं। किसी काल में बहुत सी प्रवृत्तियाँ पूर्व काल की भी चलती रहती हैं और कुछ नए काल का आभास देती हुई भी सामने आती हैं। इसलिए बाहुल्य की दृष्टि ही सर्व-व्यापृत प्रवृत्तियों का प्रकृत रूप निर्दिष्ट कर सकती है।

---

१ आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास—श्री कृष्णशंकर शुक्ल-कृत।

इस विचार से साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचकों और राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शासकों का शासन सामने लानेवाले ऐतिहासिकों में बड़ा भेद है। परंपरा के अनुसार किसी देश के इतिहास का कर्ता किसी काल के नामकरण या विभाजन में बहुधा शासक-वर्ग के नाम या जाति का ही सहारा लेता है। यद्यपि जनता की मनोवृत्तियों की झलक भी उसे देनी पड़ती है तथापि वह शासकों की व्यवस्था और कार्य-कलाप पर ही अधिक दृष्टि रखता है. अतः उसे नामकरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। हिंदू-काल, मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल या अफगान-काल, मुगल-काल आदि नाम किसी गहरी छान-बीन के परिणाम नहीं। पर साहित्य में ये व्यक्तिवाचक या जातिबोधक नाम यदि कहीं रख भी दिए जायँ तो भी सर्वत्र यही ऋजु पथ न मिलेगा। साहित्य जनता के मन की छाया है और जनता का संघटन सब प्रकार की जातियों, वर्गों आदि से होता है। इसी से साहित्य में एक ही प्रकार की रचना प्रस्तुत करनेवाले विविध जातियों, वर्गों, संप्रदायों आदि के लोग हो सकते हैं क्या, होते ही हैं। हिंदी-साहित्य के किसी काल या युग की रचना उठा लीजिए, प्रमाण मिल जायगा। हिंदी के आधुनीक काल में एक ही प्रकार की रचना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी जाति तथा मत के भारतवासी मिलते हैं। वस्तुतः साहित्य भेद में अभेद की स्थापना करनेवाला होता है। इसी से किसी देश की सार्वजनिक एकता का प्राण होता है एक साहित्य और एक भाषा। इसलिए विभागोपविभाग के नामकरण में कवियों और लेखकों की सर्वनिष्ठ प्रवृत्तियाँ ही प्रयोजनीय होती हैं। अतः कर्ताओं की एकरूपता के अनुसार नामकरण, यदि कहीं ऐसी एकरूपता मिले भी तो, विशेष उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इसलिए अंत में कृति, विषय और पद्धति की एकरूपता ही बच रहती है।

अब देखना चाहिए कि साहित्य में प्रवृत्ति की एकरूपता का कौन सा लक्ष्य चुना जाय—कृति, पद्धति या विषय। 'रासो' की भाँति सदा कृति की नामावली एकरूप नहीं हुआ करती, अतः यह ढंग भी बहुत स्थूल लक्ष्य का परिचायक है। पद्धतियाँ एक ही समय में कई होती हैं। आधुनिक काल 'गद्य-काल' तो कहा जाता है पर पद्य की रचना भी प्रचुर परिमाण में हो रही है।

इसी गद्य-काल में 'छायावाद' का डंका पिट चुका है, पर उसकी समाई गद्यकाल में कहाँ है ? इस प्रकार व्याप्ति निर्दुष्ट नहीं रह जाती। वस्तुतः इस प्रकार के नामकरण तभी ठीक माने जा सकते हैं जब साहित्य के वर्ण्य विषय की एकरूपता किसी प्रकार घटित न होती हो।

इससे निश्चित है कि साहित्य के इतिहासों में विभाजन और नामकरण का सर्वोत्कृष्ट ढंग वर्ण्य विषय की व्याप्ति के अनुसंधान से संबद्ध है। पर वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी वस्तुतः दो पक्ष हो जाते हैं—एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर। हिंदी के आदिकाल को ही लीजिए। इस काल में वीर पुरुषों की गाथाओं का वर्णन करनेवाले ग्रंथ अधिक मिलते हैं। अतः वीरगाथा उनका वर्ण्य हुआ अर्थात् इन ग्रंथों में बाह्यार्थ वीरकथा है। पर कवियों ने जिस भाव या रस की अभिव्यक्ति लक्ष्य करके ये गाथाएँ काव्यबद्ध की वह भी तो वर्ण्य ही है। वह बाह्यार्थ नहीं पर काव्यार्थ तो है ही, अर्थात् प्रवृत्ति का मानस या आभ्यंतर पक्ष है। अतः इस दृष्टि से यदि 'आदिकाल' को 'वीरगाथा-काल' न कहकर 'वीररस-काल' या संक्षेप में 'वीरकाल' कहा जाय तो कोई हानि नहीं। भारतीय दृष्टि से साहित्य या काव्य का प्रतिपाद्य भाव या रस ही होता है। इसी से उसमें कर्ताओं के मानस-पक्ष का प्रसार दूर तक दिखाई पड़ता है अर्थात् उसकी व्याप्ति प्रकृत्या अधिक होती है। 'भक्तिकाल' नाम में 'भक्ति' शब्द की व्याप्ति उसके भाव होने से अधिक है। यदि 'रीतिकाल' नाम की ओर देखते हैं तो उसमें रीति अर्थात् रस, अलंकार, शब्दशक्ति, नायक नायिका-भेद, पिंगल आदि काव्यरीति अवश्य वर्ण्य विषय ही है, पर 'रीति' शब्द बाह्यार्थ का ही बोधक है, आभ्यंतरार्थ का नहीं। उस काल का आभ्यंतर वर्ण्य 'शृंगार' था। 'रीति' की सीमा में जितनी कृतियाँ समाविष्ट हैं वे अधिकतर 'शृंगार' की हैं। थोड़ी सी वीररस या शुद्ध भक्ति की रचनाएँ शृंगार की सीमा में आबद्ध नहीं होतीं। जिन्होंने 'नवरस' का प्रतिपादन लक्ष्य बनाया उन्होंने भी शृंगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विस्तार से 'शृंगार' का ही वर्णन किया। हाँ, गिनने के लिए एक एक उदाहरण अन्य रसों का भी रख दिया, और प्रतिज्ञा पूरी की। केशव, देव, पद्माकर, दास आदि की भी, जो अच्छे प्रतिपादक आचार्य हैं, यही दशा है, औरों का कहना ही क्या ? वीररस की रचना करनेवाले शृंगार रस से

कोरे हों-ऐसा भी नहीं है। 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवभूषण' में की सारी रचना वीररस में की, पर उनके बहुत से फुटकल छंद शृंगार के भी मिलते हैं, ये 'रीति' के पूरे कायदे-कानून के अनुसार निर्मित हैं। बहुत संभव है, उन्होंने रस या नायिका-भेद का कोई ग्रंथ ही लिखा हो, पर अब न मिलता हो। 'भूषण उल्लास', 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण-हजारा' नाम से जो इनके ग्रंथ जनश्रुति में सुने जाते हैं वे वीररस के होंगे ऐसी संभावना नहीं प्रतीत होती। उनके फुटकल शृंगार के छंद इन्हीं ग्रंथों के होंगे, अतः भूषण की यदि सारी रचना मिल जाय तो कदाचित् वे बाहुल्य के विचार से शृंगार के ही कवि ठहरेंगे। शिवाजी के दरबार में पहुँचने से पूर्व वे कई दरबारों में गए थे। उन्होंने वहाँ शृंगार की ही रचना से श्रीगणेश किया होगा। उनके भाई चिंतामणि, मतिराम, जटाशंकर भी तो शृंगार रस का ही चषक भरते रहे!

यदि रीतिकाल के समस्त ग्रंथों की छान-बीन की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के ग्रंथों में शृंगार तो किसी-न-किसी रूप या परिमाण में अवश्य मिल जाता है अर्थात् दूसरे रस का वर्णन करनेवाले भी शृंगार का वर्णन अवश्य करते थे, पर शृंगार की अभिव्यक्ति करनेवाले बहुत से ऐसे मिलेंगे जिन्होंने दूसरे रसों का नाम भी नहीं लिया। नायक-नायिका-भेद के ग्रंथों की तो कोई बात ही नहीं, वे शृंगार के ही ग्रंथ हैं, शृंगार का आलंबन-पक्ष ही सामने रखते हैं। नख-शिख के ग्रंथ भी ऐसे ही हैं। षड्ऋतु के ग्रंथों में शृंगार का ही उद्दीपन विभाव लिया गया है। अलंकार, शब्दशक्ति और पिंगल के ग्रंथों में सर्वत्र अधिकतर उदाहरण शृंगार के हैं। कुछ पिंगल या अलंकार के ग्रंथ ऐसे अवश्य हैं जिनमें आश्रयदाताओं के शौर्य की गाथा है। पर 'भूषण' के 'शिवभूषण' या उसी प्रकार के दो-एक ग्रंथों को छोड़कर ये ग्रंथ शृंगार रस से शून्य हों, ऐसा नहीं है। भक्ति के ग्रंथ हैं तो भक्ति के ही, पर वे शृंगार-रहित हैं, यह नहीं कह सकते। काव्य-दृष्टि से उनमें राधा-कृष्ण के शृंगार की कथा ही तो है। 'सूरदास' के 'सूरसागर' में गोपीकृष्ण का शृंगार है, इसे तो मानना ही पड़ेगा। वह लौकिक शृंगार न सही, अलौकिक सही, पर है तो शृंगार ही। इस प्रकार रीति के अधिकांश ग्रंथ तो शृंगार-प्रधान हैं ही, और ग्रंथ भी शृंगार-संवलित हैं।

रीतिकाल में कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने रीतिशास्त्र पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। पर वे रीति के ही प्रतिनिधि कवि माने गए हैं, क्योंकि उनपर रीतिशास्त्र की भरपूर छाप है। इनमें मुख्य बिहारी हैं। बिहारी ने अपनी सतसई रीति-ग्रंथ के रूप में नहीं प्रस्तुत की, पर उनकी सारी रचना टीकाकारों ने शृंगार के आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव आदि के भेदोपभेदों में खतिया कर रख दी है। अतः लक्षण-ग्रंथ लिखनेवालों से ऐसी रचनाएँ पृथक् अवश्य हैं। हाँ, इन्हें हम रीतिबद्ध रचना ही मानेंगे। जैसे रीति-ग्रंथ के प्रणेताओं ने शृंगार के भेद का क्रमबद्ध वर्णन किया है वैसे इन्होंने क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया और समग्र भेदों के उदाहरण जुटाने पर दृष्टि नहीं रखी। साधारणतः दोनों प्रकार की रचनाओं में कोई भेद नहीं लक्षित होता। पर ध्यान देने से भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रीति-ग्रंथ लिखनेवाले शास्त्र में गिनाई सामग्री की योजना करने में सावधान रहते थे। उन्हें लक्ष्य और लक्षण का समन्वय भी करना पड़ता था, पर 'सतसई', 'नौसई' या 'हजारा' लिखनेवाले रीति की सामग्री का उपयोग अपने ढंग से करते थे। यही कारण है कि इन्हें कहने के लिए कुछ स्वच्छंदता मिल गई थी। इसी से सतसई आदि प्रस्तुत करनेवालों की रचना रीति-ग्रंथ लिखनेवालों से प्रायः उत्कृष्ट दिखाई देती है। बंधन ढीला करके ये कविता में रमणीयता लाने में अवश्य सफल हुए। ऐसे कवियों को रीति का प्रतिनिधि कहने में इसी से विशेष तर्क से काम लेना पड़ा है। यह कहना पड़ा है कि "बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है, पर 'नखशिख', 'नायिकाभेद', 'षट्ऋतु' के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारों ने दोहों को इस प्रकार के साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों की रचना करते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसी लिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर उक्त काल के प्रतिनिधि-कवियों में ही रखा है।"[1] टीकाकारों या संग्रह-कर्ताओं के अनुसार चलें तो बहुतों को रीतिकाल का प्रतिनिधि मानना पड़ेगा। क्योंकि उन्होंने तो आलम, ठाकुर, घनआनंद आदि की भी रचनाएँ नायक-नायिका-भेद के अंतर्गत ही खींचकर बैठाई हैं, फिर

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, १९९६, पृ० २७९।

भी बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि माननेवाले शुक्लजी ने इन्हें उस काल के फुटकल कवियों की श्रेणी में आसन दिया है। ठाकुर आदि की कुछ रचनाएँ लक्षणों से समन्वित होने का आभास मात्र देती हैं। पर ये 'रीति' के प्रतिनिधि कवि नहीं हैं। यहाँ यह प्रतिपाद्य नहीं है कि बिहारी रीति के प्रतिनिधि नहीं थे। कहना इतना ही है कि 'रीतिकाल' की सीमा बढ़ाने के लिए 'रीति' के नाम पर उन रचनाओं को भी समेटना पड़ा है जो रीतिशास्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नहीं निर्मित हुई थीं। दूसरे शब्दों में इन कवियों का साध्य शृंगार था, रीति से ये कभी-कभी साधन का काम अवश्य लेते थे। यदि शृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तर्क देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फेंके हुए और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में आपसे आप आ जाते।

'रीतिकाल' वस्तुतः उन ग्रंथों के समुदाय का बोधक है जिनकी राशि 'रीति' के नाम पर एकत्र हुई। विचार करने पर रीति-ग्रंथ-प्रणेता अधिकतर आचार्य नहीं सिद्ध होते। इन्होंने रीति का पल्ला सहारे के लिए पकड़ा, कहना ये चाहते थे शृंगार ही। किसी ने अलंकारों की माला बनाई, किसी ने पिंगल का प्रस्तार किया, किसी ने रसभाव की धारा बहाई और किसी ने सीधे नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षड्ऋतु बारहमासा आदि के बने बनाए साँचे ले लिए। सच पूछिए तो इन्हें रीतिशास्त्र का विवेचन करने के लिए बुद्धि दौड़ाने की आवश्यकता ही कहाँ थी, संस्कृत में शास्त्र-पक्ष की सारी सामग्री जुटी-जुटाई रखी थी, उसे उठाकर हिंदी-पद्यों में ढाल भर देना था। यदि 'रीति' का विवेचन इनका साध्य होता तो ये संस्कृत के आचार्यों की भाँति प्रत्येक विषय के विमर्श में लगते, दोहों में लक्षण देकर काम चलता न करते। शास्त्र के पुराने विवेचक पहले से प्रस्तुत ग्रंथों या विवेचित पक्षों को हृदयंगम करते थे, तब उनपर अपना स्वच्छंद मत प्रकट करते थे। हिंदी के ये आचार्य तो काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यादर्श, रसतरंगिणी, रसमंजरी, चंद्रालोक, कुवलयानंद, वृत्तरत्नाकर में से एक या दो ग्रंथ सामने रख लेते और लक्षणों का टेढ़ा-सीधा पद्यबद्ध उल्था करके हिंदी में संस्कृत-उदाहरण से मिलता जुलता दूसरा उदाहरण गढ़ देते थे। कहीं-कहीं लक्ष्य का भी उल्था ही दिया जाता था। फल यह हुआ कि जहाँ रीतिकाल के

विवेचन का अल्प प्रयास दिखाई भी पड़ा वहाँ भी सारा ग्रंथ भ्रांति शून्य न बन सका। विषय पूर्णतया हृदयंगम करके यदि ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते तो ऐसा प्रायः न होता। केशव, देव, दास, पद्माकर ऐसे आचार्यों से भी संस्कृत की विवेचित सामग्री का संग्रह करने में भ्राति हो गई है, फिर औरों की बात ही क्या! जैसा इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है ये सबके सब वस्तुतः कवि थे। इनका प्रधान वर्ण्य विषय शृंगार ही था। इसी से नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षड्ऋतु, बारहमासा, रस आदि के रीतिग्रंथ ही प्रचुर परिमाण में प्रणीत हुए, शब्दशक्ति ऐसे दुरूह विषय के ग्रंथ दो तीन ही मिलते हैं। अलंकार के ग्रंथों की संख्या अधिक अवश्य है पर शृंगार से ही वे भी भरे हैं।

यदि तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते हैं तो भी इनका प्रतिपाद्य शृंगार ही ठहरता है। इस काल के अधिकाश कर्ता दरबारी कवि थे। कोई देशी नरेशों की दरबारदारी करता था तो कोई विदेशी या मुसलमान बादशाहों, शाहों या दीवानों की। देशी दरबारों या सभाओं में हिंदी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से जोड़-तोड़ भिड़ाना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृतवाले शृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे, जिसमें नायक-नायिका, ऋतु-वर्णन, नख-शिख आदि की छटा दिखाते थे, हिंदीवालों को भी वही करना पड़ता था। नरेश ही नहीं, छोटे-छोटे ताल्लुकेदार और जमींदार तक ऐसी रचना के शौकीन हो गए थे। कवि-कर्म करनेवालों के ये ही तो आश्रय-दाता थे। मुसलमानी दरबारों में फारसी या उर्दू की रचना प्रेम का ही बँधा-बँधाया विषय (थीम) लेकर चलती थी। उसके जोड़ में भी हिंदी-कवियों ने शृंगार या नायक-नायिका-भेद की रचना सामने की। उधर से वे शेर पढ़ते या गजल गाते थे, इधर से ये कवित्त, सवैया या दोहा भनते थे। मुक्तक-रचना के आधिक्य का कारण यह दरबारदारी ही है, क्योंकि मुक्तक द्वारा ही थोड़े में रस के छींटे उछाले जा सकते थे। दरबारी कवियों ने प्रबंध छूआ तक नहीं, उनका काम मुक्तकों से ही चल जाता था।

'रीतिकाल' नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि उस काल के अच्छे-अच्छे शृंगारी कवियों को छाँटकर पृथक् करना पड़ा। आलम, ठाकुर,

घनआनंद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमंग-भरे कवि किसी रीति-ग्रंथकार से, काव्योत्कर्ष में कम नहीं हैं, पर 'रीति' की सीमा में ये न समा सके। रीतिकाल की शृंगारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालों ने भी लक्षित की है, और 'अलंकृत काल' नाम रखनेवालों ने भी। पर रीति या अलंकारशास्त्र की ग्रंथ-राशि ने एकत्र होकर इन्हीं नामों की ओर उन्हें आकृष्ट किया। फलतः शृंगार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के संबंध में पीछे छूट गई। बात यहीं तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बड़ी कठिनाई काल के विभाजन की आ गई, पर गृहीत नामों ने यह मार्ग छेंक रखा। 'अलंकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमें भेद का स्पष्ट संकेत कोई नहीं है। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने समस्त काव्यांगों का वर्णन करनेवाले और किसी एक अंग का वर्णन करनेवालों को पृथक् किया है। पर सभी काव्यांगों के विवेचकों ने भी एक-एक काव्यांग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे दास, चिंतामणि आदि ने। अतः रीति में उपविभाग का मार्ग संकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखें, अलंकृत काल और रीतिकाल नाम व्याप्ति के बोधक नहीं प्रतीत होते। उन्हें हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की स्पष्ट अपेक्षा जान पड़ती है।

शृंगारकाल नाम स्वीकृत करने से वर्ण्य विषय की व्याप्ति के बोध के साथ ही फुटकल खाते से निकलकर कई उत्कृष्ट कवि असल खाते में आ जाते हैं। विभाजन का मार्ग सुस्पष्ट और सरल हो जाता है। रीति की सारी सामग्री रीति-ग्रंथकारों का साधन थी, वह उनकी काव्य-सामग्री थी; शास्त्र-सामग्री नहीं। शृंगारिक रचना रीतिबद्ध थी। रीतिबद्ध कृति उन्हीं की नहीं थी जो लक्षण लिखकर और लक्ष्य बनाकर उसमें उसका विनियोग करते थे, प्रत्युत उनकी कृति भी रीतिबद्ध ही थी जो लक्षण-ग्रंथ न रचकर रीति का संभार लेकर केवल लक्ष्य प्रस्तुत करते थे, जैसे बिहारी, रसनिधि आदि। इन्होंने लक्षण क्यों न लिखे, लक्ष्य ही क्यों प्रस्तुत किया? ये वस्तुतः लक्षण के बखेड़े में फँसना नहीं चाहते थे। कुछ चुने हुए प्रसंगों पर ही कविता रचना चाहते थे। ये रीति का बंधन

ढीला करके चलते थे, यद्यपि ये उससे मुक्त नहीं हुए थे। इसी से लक्षणबद्ध रचना से इनकी कविता अपेक्षाकृत उत्कृष्ट है। लक्षण और लक्ष्य का समन्वय करने में काव्योत्कर्ष को क्षति पहुँचती थी। इसका पक्का प्रमाण 'भूषण' की रचना में मिलता है, जिनकी फुटकल रचना उनके लक्षण-ग्रंथ 'शिवभूषण' की कविता से उत्तम है। लक्षणकार लक्षण से तिलभर हट नहीं सकता। वह रत्तीभर भी हटा नहीं कि लक्ष्य बेमेल हुआ नहीं। लक्षण-ग्रंथों में ऐसी बेमेल रचनाएँ भी कभी कभी मिल जाती हैं। इसका कारण यही होता है कि कवि की वह लक्षणानुगामिनी निर्मिति न होकर पहले से स्वीकृति उक्ति होती है जिसे वह बरबस वहाँ खोंसना चाहता है। रीति की केवल प्रेरणा ग्रहण करनेवाले की कविता में ऐसा न होगा। रीति उसके ध्यान में रहे, रहा करे, पर उक्ति बाँधने में उसे एकदम बँध ही न जाना पड़ेगा। बिहारी की रचना में रीति का आधार अवश्य है पर उक्ति का वैशिष्ट्य उन्हें लक्षणबद्ध कर्ताओं से पृथक् कर देता है। बिहारी आदि को रीतिबद्ध मानने का हेतु था बंधन बाँधे रहना ही; भले ही वह ढीला हो। उन्हें रीति की अपेक्षा अवश्य थी, कम से कम उन्होंने उसकी उपेक्षा नहीं की। बिहारी की सतसई में खंडिता के उदाहरण बीसों है। अधिक ऐसे मिलेंगे जिनमें केवल आँखों की ललाई का वर्णन है। लक्षणानुधावन करनेवालों को संभोग-चिह्नों का लंबा-चौड़ा वर्णन करना पड़ता है। बिहारी उक्तिवैचित्र्य पर विशेष ध्यान देनेवाले थे, अतः उन्होंने खंडिता के लक्ष्य में प्रमुख चिह्नों का तिरस्कार करके केवल ललाई पकड़ी और ऐसी उक्तियाँ बाँध दी—

रह्यौ चकित चहुँघा चितै, चित मेरो मति भूलि।
सूर उदै आए रही, दृगनि साँझ सी फूलि॥

इन कवियों से वे सरलतापूर्वक पृथक् किए जा सकते हैं जो रीतिबद्ध रचना को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। ये रीति में बँधना नहीं चाहते थे। इसी से इन्हें रीतिमुक्त या 'स्वच्छंद' कवि कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। वे रीतिबद्ध कवि जो बँधी बँधाई उक्तियाँ सुनाते या शास्त्र-कथित सामग्री के भरोसे पांडित्य प्रदर्शित करते थे, इन्हें नहीं रुचते थे। सीखी-सिखाई काव्य-सामग्री के बल पर छंद जोड़नेवालों को 'ठाकुर' ने कविता के साथ खेल करने या कविता को खेल समझनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पबृच्छ कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीँ भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।

कुछ रटी-रटाई उपमाएँ जोड़ने या प्रशस्ति करनेवाले काव्य-मर्मज्ञों की सभा में ढेला सा फेंका करते थे। स्वच्छंद कवियों को इन कृतियों से चोट लगती थी। और वे इन्हें मिट्टी ही समझते भी थे। घनआनंद के कबित्तों के संग्रहकर्ता व्रजनाथ ने ऐसी रीतिबद्ध रचना को 'जग की कविता' अर्थात् साधारण रचना कहा है—(जग की कबिताई के धोखे रहै ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी) और उससे घनआनंद की कविता को गूढ़ और पृथक् घोषित किया है। स्वच्छंद कवियों की रचना का वैशिष्ट्य उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से बतलाया है। घन-आनंद के काव्यमीमांसक के गुण निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने घनआनंद ऐसे रीतिमुक्त कवि के काव्योत्कर्ष का रूप इस प्रकार उद्घाटित किया है। इसे स्वच्छंद कवियों का स्वरूप-लक्षण समझना चाहिए—

नेही महा व्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कोँ जानै।
जोग-बियोग की रीति मैँ कोबिद भावना-भेद-स्वरूप कोँ ठानै।
चाह के रंग मैँ भीज्यौ हियौ, बिछुरेँ मिलेँ प्रीतम साँति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कबित्त बखानै॥

पद्य में प्रयुक्त 'सुछंद' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'सुछंद' शब्द का तात्पर्य है—रीति से स्वछंद, रीतिमुक्त। रीतिबद्ध या शास्त्रबद्ध (क्लासिकल) के बंधन से छूट कर ही ये रीतिमुक्त या स्वच्छंद (रोमांटिक) होनेवाले कवि थे। उनके अनुसार ये प्रेम की अनेक अंतर्वृत्तियों के उद्घाटक काव्यगत रमणीयता के नाना भेदों के विधायक, संयोग और वियोग की अनेक प्रेमदशाओं के मार्मिक द्रष्टा, भावनाभेदों के सहृदय चितेरे, प्रेमरस से सिक्त भावुक, मिलन और विरह की

हृद्गत अशांति के अनुभावक और भाषा-प्रयोग की सीमा के सच्चे ज्ञाता थे। ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करनेवाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकनेवाले और काव्य-विभूति द्वारा काव्य-मर्मज्ञों को प्रभावित करनेवाले थे। ये प्रेम के पंथ पर अग्रसर होनेवाले, रचना में मोतियों की सी निर्मल वाग्धारा प्रवाहित करनेवाले और उससे काव्य-माला गूँथनेवाले थे—मनमोहिनी और प्रभावुक। काव्य-कोविदों की बृहत्सभा में ये काव्य-सौष्ठव के प्रदर्शन के अभिलाषी थे। 'ठाकुर' कहते हैं—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरि-नाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।
ठाकुर सो कबि भावत मोहिँ जो राजसभा मैं बड़प्पन पावै।
पडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त कहावै॥

ये अनूठी उक्तियाँ बाँधनेवाले थे पर हृदय से संपृक्त। जूठी उक्ति का पुनर्विधान या पिष्ट-पेषण इन्हें अरुचिकर था। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध रचना में हृदय-पक्ष दब गया था, कला-पक्ष उभर आया था। मस्तिष्क के पूरे व्यायाम के साथ उनका रीतिबद्ध काव्य अखाड़े में उतरता था। 'जग के कवि' काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गए, उसके अतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से 'स्वच्छंद कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की सँकरी गली में धक्कमधक्का करना नहीं। ये कविता की नपी-तुली नाली खोदनेवाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करनेवाले या मानस-रस का उन्मुक्त दान देनेवाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (कान्सस स्टेट) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अंतःसंज्ञा (सबकान्सस स्टेट या अनकान्सस स्टेट) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्भूत होती थी, घनआनंद ने स्पष्ट कहा है—

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानिनि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चटावत।
है घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तेँ आवत।
लोग हैँ लागि कबित्त बनावत मोहि तौ मेरे कबित्त बनावत॥

'लोग'-अर्थात् रीतिबद्ध कवि रच-रचकर कविता बनाने, शब्द-रत्न की पच्चीकारी करने में, मरते पचते रहते थे, पर रीतिमुक्त कवि का काव्यस्रोत स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, पर रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवि अपनी भावधारा में स्वतः वह जाता था। इस प्रकार दोनों का अंतर स्पष्ट है। रीतिमुक्त कवियों में भी अतर्भेद हो सकते हैं। इसके लिए शृंगारकाल के पूर्व तरंगित होनेवाली काव्यधाराओं की ओर दृष्टि करनी होगी। भक्तिकाल में एक ओर तो सगुण-काव्यधारा वह रही थी और दूसरी ओर निर्गुण-काव्यधारा। पहली का प्रसार भारतीय काव्य-परंपरा के प्रकृत राजपथ पर हुआ था और दूसरी का विदेशी सूफी रहस्य-मार्ग पर। स्वयं हिंदी के कवि सूफी 'प्रेम की पीर' का उद्घाटन प्रेममार्गी शाखा में कर ही रहे थे। कबीर आदि संतों की ज्ञानमार्गी शाखा भी सूफियों की 'प्रेम की पीर' से प्रभावित थी। सूफियों की इस 'प्रेम की पीर' का हिंदी-काव्य पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। आगे चलकर सगुण धारा की कृष्ण-भक्ति-शाखा तक इससे विशेष प्रभावित हुई। नागरीदास (सावंतसिंह), कुंदनशाह आदि में तो यह 'प्रेम की पीर' इतनी व्याप्त हुई कि उसका विदेशी रूप तक छिप न सका। सूफी प्रेम की पीर ही नहीं, फारसी काव्य के प्रेम-वैषम्य ने भी कवियों को छोप रखा। व्यापक प्रभाव का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि शुद्ध भारती काव्य-परंपरा में जब इसकी समाई न हो सकी तो यह जनता की संगीत-परंपरा में भरपूर प्रसरित हुआ। लावनी और ख्याल में लोकभाषा रेखता या खड़ी बोली के सहारे इसकी दौड़ दूर तक हो गई। इसका स्पष्ट रूप है लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में लय। इश्क-मजाजी की इश्क-हकीकी में परिणति। आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारती प्रेम-पद्धति के प्रतिनिधि हैं, पर रसखानि, घनआनंद और बोधा में वह अपनी झलक मारती है। रसखानि और घनआनंद ने बड़े ढंग से इसे ग्रहण किया है। पर बोधा इसे अपने रंग में रँग न सके। उन्होंने तो बार बार उसकी डुग्गी पीटी है—

इस्कमजाजी मैं जहाँ इस्कहकीकी खूब।—(विरह-वारीश)

रसखानि ने भी यही कहा है, इससे भी स्पष्ट, पर ढंग से—

आनँद-अनुभव होत नहिँ बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥

घनआनंद ने भी लौकिक प्रेमलीला को अलौकिक प्रेमलीला का कण कहा है, किंतु रसखानि और घनआनंद दोनों ने कृष्णप्रेम में इसे छिपा रखा। बोधा ने उधर उतना ध्यान नहीं दिया। वे कृष्णभक्ति में लीन नहीं हुए। यदि कृष्ण-भक्ति का अवलंब वे लेते भी तो उनकी प्रवृत्ति और रंग-ढंग से यह जान पड़ता है कि बहुत कुछ नहीं तो कुछ कुछ कुंदनशाह की सी वृत्ति होती। बोधा प्रेम की प्रकृत गंभीरता को प्रायः सँभाल नहीं पाते। कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति का विकास आचार्यों ने लौकिक क्रीड़ा से संबद्ध रखकर किया। इसलिए सूफियों की 'प्रेम की पीर' को उसी में लय हो जाने का अवसर मिल गया। घनआनंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम (इश्कमजाजी) को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला (इश्कहकीकी) का क्षुद्र अंश कहा है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
बिचार बापुरो हहरि बार ही तेँ फिरि आयौ है।
ताही एकरस है बिबस अवगाहैँ दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैँ देखेँ सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसेँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥

संसार में फैला प्रेम व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जलकेलि किया करते हैं। वही कण घनआनंद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियों की भाँति घनआनंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रह्म-प्रेम का आभास भी दिया है—

उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक लौँ तकियै अब तौ।[1]

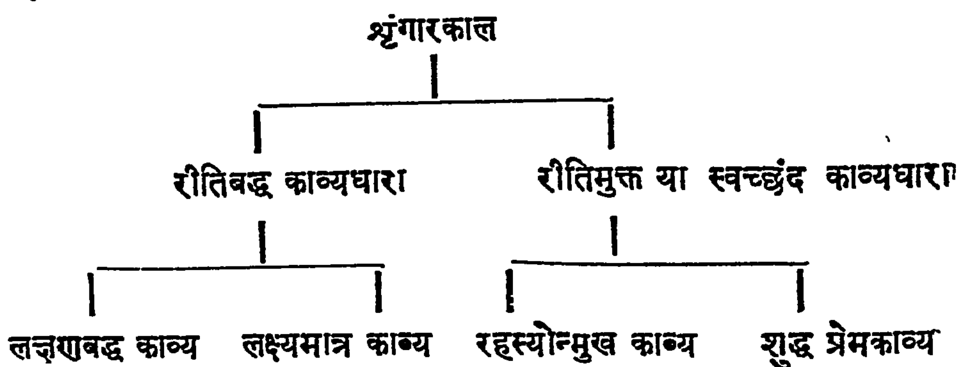
सूफियों का ब्रह्म-विरह इस सवैये में स्पष्ट है—

---

१ घनआनद-कवित्त—८०।

अंतर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं॥
जौ घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥

इसलिए इन्हें रहस्योन्मुख प्रेमी कवि तथा दूसरों को उदात्त प्रेम-लीन शुद्ध प्रेमी कवि कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगारकाल का विभाजित रूप यों हुआ—



साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन ऐसा सटीक नहीं हो सकता कि किसी निश्चित संवत् से नए युग या काल का प्रवर्तन मान लिया जाय। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक संवत् से पूर्ववर्ती काल की प्रधान प्रवृत्ति समाप्त हो गई और परवर्ती काल की नई विशिष्ट प्रवृत्ति का उद्भव हो गया। वस्तुतः साहित्य में कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं; उन्हीं में से किसी काल में कोई प्रवृत्ति प्रधान होकर और अनेक रूप-रंग पकड़कर व्याप्त हो जाती है। जिस साहित्य की परंपरा प्राचीन होती है उसमें परवर्ती काल में पहले से जगी हुई प्रवृत्तियों में से कोई एक किसी समय प्रबल होकर छा जाती है और अन्य क्षीण होकर धीरे-धीरे दब जाती हैं। ऐतिहासिकों ने साहित्य-धारा को पहाड़ी सरिता का रूपक इसी से दिया है। पर्वत से उद्गत सरिता आरंभ में लघु लघु कुल्याओं के रूप में बहती है और फिर परस्पर मिलकर वे ही वन्याएँ सरिता बन प्रसरित होती हैं। पटपर (समतल) पर पहुँचकर सरिता का पाट बढ़ जाता है, कभी-कभी ढाल के कारण कई धाराएँ भी हो जाती हैं, समय-समय पर सहायक नदियाँ भी मिलती रहती हैं। वस्तुतः साहित्य में भी जो प्रवृत्ति एक बार जागरित और विकसित हो जाती

---

१ वही, १६५।

है वह सदा के लिए सुप्त या म्लान नहीं हो पाती। हिंदी-साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। उसमें जो प्रवृत्ति एक बार जागरित हुई वह किसी न किसी रूप में निरंतर बनी रही। किसी काल में जब कोई प्रवृत्ति प्रधान होने लगती है तब कुछ समय तक तो पूर्ववर्ती प्रमुख प्रवृत्ति के साथ साथ बढती है पर आगे बढ़कर नूतन प्रवृत्ति प्रधान और पूर्ववर्ती प्रवृत्ति गौण हो जाती है। शृंगारकाल के पूर्व भक्ति की प्रवृत्ति प्रधान थी। पर भक्ति का प्राधान्य होने के साथ ही शृंगार भी अपना सिर उठाने लगा और आगे चलकर वह सर्वांग से उत्थित दिखाई पडा। भक्ति की रचना उसके साथ ठिगनी दिखाई देने लगी, पर भक्ति का लोप नहीं हुआ।

शृंगार की प्रवृत्ति का लोप साहित्य में कभी नहीं होता। हिंदी की ही दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राकृत और अपभ्रंश-काल में शृगार और वीररस की धाराएँ प्रवाहित थीं। हिंदी के *वीरगाथा-काल* या *वीरकाल* में शृंगार या प्रेम शौर्य या उत्साह से संपृक्त था। वीरता का जो प्रदर्शन 'रासो'-ग्रंथों में हुआ वह प्रीति और वीरता की गंगा-जमुनी धारा के रूप में। जैसे यूरोप के पुराने काव्यों ('इलियड' और 'ओडेसी') में प्रेम और युद्ध ('लव' एंड 'वार') का मेल था वैसे ही इन काव्यों में भी। प्रेम हेतु के रूप में अंकित है और शौर्य कार्य-रूप में। लोकदृष्टि से विचार करें तो अवगत होगा कि प्रेम और साथ ही उत्साह दोनों के आलंबन लौकिक ही थे। प्रेम और उत्साह के आलंबनों का लौकिकता से अलौकिकता की ओर धीरे धीरे बढ़ाव होने लगा। जयदेव ने संस्कृत में राधा-कृष्ण के प्रेमगीत गाए तो उसकी प्रतिध्वनि विद्यापति के गीतों में हुई। सूरदास तथा कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियों में प्रेम का लौकिक आलंबन भक्ति का मधुर या अलौकिक आलंबन हो गया और प्रेमलक्षणा भक्ति का वाङ्मय पुंजीभूत हुआ। भागवत के *लीलापुरुषोत्तम* वृंदावन में अपनी *प्रेमलीला* का अभिनय करते दिखाई पड़े। भारतीय वीरों के लौकिक वीरोल्लास की गाथा पराजित देश किस मन से गाता और किस कान से सुनता, इसलिए वाल्मीकि के मर्यादापुरुषोत्तम तुलसी के लोकरक्षक भगवान् रामचंद्र का रूप धरकर सामने आए। प्रेम की पुकार न कबीर आदि संतों में मंद पड़ी और न 'प्रेम की पीर' जायसी आदि सूफी कवियों में ठंढी। लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम या भक्ति में परिवर्तित हो गया। काव्य की शुद्ध प्रेमधारा अपना मार्ग खोज रही थी। भक्तिकाल में ही भक्ति से पृथक् होकर शृगार ने अपना

अलग पथ पकड़ना आरंभ कर दिया, भक्ति के बीच से आने के ही कारण 'शृंगार' के प्रधान आलंबन राधा और कृष्ण ही रहे। नहीं तो प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोकगीतों तक में प्रेम की अभिव्यक्ति ऐसा आवरण लेकर नहीं हुई है। आदिकाल या वीरकाल में लौकिक जीवन के वीरोल्लास का ही चित्रण था। उस समय तक हिंदी-साहित्य ने अपनी 'प्राकृत'-परंपरा ही रक्षित रखी। पर भक्तिकाल में साहित्य संस्कृत की ओर गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण की कृष्णलीला दृष्टिगत रही। अलौकिकता में प्रविष्ट हो जाने से फिर जब कवि लोग जीवन की ओर मुड़े तब 'भाषा' की परंपरा पीछे छूट गई। भक्ति अपनी छाप शृंगार पर छोड़ती गई। कृष्णभक्ति से ही शृंगारिक रचना का संबंध रहा। यह भी एक हेतु है कि शृंगार में परकीया-प्रेम की उक्तियाँ अधिक कही गईं। भक्ति में श्रीकृष्ण की वृंदावन-व्यापिनी लीला ही ली गई थी। अपभ्रंश या लोक-वाङ्मय की सी स्वकीया-प्रीति-परक मार्मिकता शृंगारकाल के कवि भूल ही बैठे।

'शृंगारकाल', जिसे इतिहासकारों ने 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' कहा है, साधारणतया संवत् १७०० के आसपास से आरब्ध माना जाता है। विचार करने पर अवगत होता है कि साहित्य की शृंखला में इस काल की कड़ी भक्तिकाल की कड़ी के गर्भ से घूमती हुई आगे बढ़ी है। शुद्ध या पृथक् रूप में शृंगार की प्रस्तावना इससे कम-से-कम सौ वर्ष पूर्व, अर्थात् संवत् १६०० के आसपास, अवश्य हो गई थी। सं० १५९८ में कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' लिखी थी, जिसमें शृंगार रस का दोहों में विवेचन किया गया है अर्थात् लक्षण-लक्ष्य जुटाए गए हैं। उन्होंने सूचित किया है कि और कर्ता बड़े छंदों में रसग्रंथ प्रस्तुत करते हैं, मैंने छोटे छंद अर्थात् दोहा, सोरठा, बरवै में इसका प्रणयन किया। इससे एक ओर तो यह स्पष्ट पता चलता है कि रीतिग्रंथ प्रस्तुत करने का स्फुरण कुछ और पहले का है और दूसरी ओर यह सूचना मिलती है कि वीरता और भक्ति की लपेट से बहुत-कुछ बचकर भी शृंगार अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा था। 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' नाम मानने से यह निश्चय करना अनिवार्य हो जाता है कि अलंकृत या रीतिबद्ध ग्रंथों की अखंड परंपरा कब से और किस आदर्श पर प्रवर्तित हुई। रीति के सिलसिले में 'कृपाराम' का नाम सबसे पहले लिया जाता है; पर भक्ति की प्रभूति ग्रंथराशि सामने पाकर काल की सीमा कुछ छोटी करनी पड़ती है। यदि

आदर्श की बात देखी जाय तो पता चलता है कि अकबर के दरबारी 'करनेस' कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' उसी आदर्श पर निर्मित किए जिस आदर्श पर आगे चलकर अन्य अनेक अलंकार-ग्रंथों का निरूपण हुआ। जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' ही इनके भी आधार थे। अलंकार-निरूपण में जैसे संस्कृत के इन ग्रंथों का सहारा लिया गया वैसे ही रस-निरूपण में भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' का आधार रहा और नायिकाभेद में उन्ही की 'रसमंजरी' का। चंद्रालोक, रसतरंगिणी और रसमंजरी संस्कृत के पिछले कैंडे की रचनाएँ हैं जिनमें विवेच्य विषय का निरूपण बड़ी ही बोधगम्य शैली से किया गया है। केशवदासजी की 'कविप्रिया' को सामने रखकर यह कहना कि वह वामन, दंडी आदि अलंकारवादी आचार्यों के अनुगमन पर निर्मित हुई है, और हिंदी के आदर्श ग्रंथ कुवलयानंद या चंद्रालोक भिन्न आदर्श पर खड़े हुए हैं, सोलह आने ठीक नहीं है। वामन और दंडी रीतिवादी या अलंकारवादी थे, जयदेव (चंद्रालोक के कर्ता) तो कट्टर अलंकारवादी थे, उनसे भी बढ़कर। वे तो यहाँ तक कह डालते हैं कि काव्य को निरलंकार कहना वैसा ही है जैसे अग्नि को अनुष्ण कहना अर्थात् उनकी दृष्टि में अलंकार काव्य का नित्य धर्म है। ऐसा उन्होंने मम्मटाचार्य का खंडन करने के लिए लिखा है; क्योंकि मम्मटाचार्य ने काव्यलक्षण का विचार करते हुए कहा है कि वह कहीं-कहीं अनलंकृत भी हो सकता है (अनलंकृती पुनः क्वापि)। उसी का यह अलंकारवादियों की ओर से उत्तर था। वामन ने भी ऐसी ही बात कही थी। उन्होंने कहा कि काव्य, सौंदर्य की विशेषता के ही कारण, ग्राह्य होता है (काव्यं ग्राह्यमलंकरात्) और सौंदर्य ही अलंकार है (सौन्दर्य-मलंकारः)। इनकी दृष्टि काव्य के 'सौंदर्य' पर ही थी, उसकी 'रमणीयता' पर नहीं, अर्थात् ये काव्य का बाह्य ही देखते थे, उसका अभ्यंतर नहीं। इसी से रसों और भावों को भी इन्होंने अलंकार मान लिया। ये वस्तुतः आधुनिक शब्दों में 'कलावादी' थे। यह (आलंकारिकों का) संप्रदाय पुराना है। आगे चलकर रस-संप्रदाय खड़ा हुआ। अलंकार्य (वर्ण्य विषय) और अलंकार (वर्णन-प्रणाली) का जो भेद रसवादी आचार्यों ने प्रतिपन्न किया उसका प्रभाव काव्यक्षेत्र के समस्त संप्रदायों पर पूरा-पूरा नहीं पड़ा, अलंकारवादियों पर तो बहुत कम।

केशवदासजी ने 'कविप्रिया' में शुद्ध अलंकारवादी दृष्टि से काम नहीं लिया है। उन्होंने काव्य की सारी सामग्री को 'अलंकार' कहकर वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली का अभेद अवश्य दिखलाया है, पर रसदृष्टि उन्होंने त्याग दी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। दंडी के 'काव्यादर्श' पर ही वह अवलंबित भी नहीं है। बात यह है कि वह केवल 'अलंकार' की दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं की गई है, वह वस्तुतः 'कवि-शिक्षा' की पुस्तक है। उसमें कवि होने का हौसला रखनेवालों को 'कवि-समय' से परिचित कराने का प्रयास ही अधिक है। इसके लिए उसमें अधिक सामग्री 'कविकल्पलतावृत्ति' से उठाकर रखी गई है। वह वस्तुतः काव्य की सीमा, उसका स्वरूप, उसकी धारणा आदि का पता देनेवाली है, इसीसे उसका नाम 'कविप्रिया' है। अलंकारों का प्रतिपादन उसमें वर्णन-प्रणाली की रूपरेखा मात्र खींचने के लिए हुआ है, अर्थात् वह गौण है। यह मानने में कोई आनाकानी नहीं कि केशवदासजी चमत्कारवादी थे। पर वे अलंकार्य और अलंकार का भेद माननेवाले नहीं थे, ऐसा नहीं है। अलंकारों के संबंध में उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ कहा जाय वह सब अलंकार ही है। यदि ऐसा होता तो 'नग्नत्व' दोष उन्होंने स्वीकार ही न किया होता, जहाँ निरलंकार कविता रखी गई है। यही क्यों उन्होंने 'हीनरस' दोष भी माना है; कविता में रस होना उन्हें मान्य है। वही उनकी दृष्टि में काव्यार्थ है। पर वे यह अवश्य मानते थे कि 'भूषन बिन न बिराजई कबिता बनिता मित्त'। पर वह कविता कैसी हो—'जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त'। यहाँ 'सरस' शब्द क्या कह रहा है? यही कि केशव को रस अमान्य नहीं था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' भी तो लिखी है—रसवादी 'साहित्यदर्पण' और 'शृंगार-प्रकाश' के आधार पर। वहाँ रस रसवत् अलंकार मात्र नहीं कहे गए हैं; इसलिए केशवदासजी को पुराना या अलंकारवादी कहकर छाँटने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अब, 'कृपाराम' को शृंगारकाल की सूचना देनेवाला आचार्य या कवि मानने में क्या बाधा है। 'हिततरंगिणी' 'रस-तरंगिणी' का ही आधार लेकर चली जिसके आधार पर हिंदी के परवर्ती सैकड़ों ग्रंथ बने, ऐसा उसका वर्ण्य विषय और नाम तक बतलाता है। इस प्रकार समय के सीमा-निर्धारण में 'आदर्श' का पक्ष मानने पर भी कृपाराम सीमा के बाहर नहीं किए जा सकते।

रही अखंड परंपरा की बात। विचार करने पर परंपरा कृपाराम से भी पहले जाती है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि लोग बड़े छंदों में रसनिरूपण करते हैं ये लोग उनके पूर्ववर्ती ही होंगे—पर वे कौन हैं, इतिहास इस संबंध में मौन है, उसके पास पर्याप्त सामग्री का दारिद्र्य है। पर कृपाराम से लेकर संवत् १७०० तक रीतिग्रंथों की अखंड परंपरा रही है, इस संबंध में इतिहास मुखर है। देखिए—

संवत् (रचनाकाल)	कवि	रचना
१५९८	कृपाराम	हिततरंगिणी
१६१६	गंग	फुटकल
१६१६	मोहनलाल	शृंगारसागर
१६२०	मनोहर	फुटकल
१६२०	गंगाप्रसाद	कोई रीतिग्रंथ बनाया जिसका नाम अज्ञात है।
१६३७	करनेस	कर्णाभरण, श्रुतिभूषण, भूपभूषण
१६४०	बलभद्र मिश्र	नखशिख
१६४०	रहीम	बरवै-नायिकाभेद
१६५०	केशवदास	रसिकप्रिया, कविप्रिया
१६५०	मोहनदास	बारहमासा
१६५१	हरिराम	छंदरत्नावली
१६५७	बालकृष्ण	रसचंद्रिका (पिंगल)
१६६०	मुबारक	अलकशतक, तिलशतक
१६७६	लीलाधर	नखशिख
१६८८	सुंदर	सुंदरशृंगार
१७००	सेनापति	षट्ऋतुवर्णन

इस प्रकार अखंडता का बोध सरलता से हो जाता है। ये सब कवि रीतिबद्ध लिखनेवाले थे, किसी ने लक्षणबद्ध लिखा, किसी ने शास्त्र का अंगोपांग लेकर लक्ष्य मात्र-जैसे नखशिख, ऋतुवर्णन, बारहमासा आदि। परंपरा बराबर जुड़ती चली आ रही है। इनके अतिरिक्त इस शैली में ऐसे कोड़ियों कवि और हैं जिन्होंने बिहारी

आदि की भाँति काव्यांगबद्ध रचना न करके रीतिसिद्ध मुक्तक रचना की है। वस्तुतः सत्रहवीं शती विक्रमीय के आरंभ में एक ओर भक्ति की सरिता कई धाराओं में बह रही थी तो दूसरी ओर शृंगार की पृथक् धारा भी भक्ति की कृष्णपरक भक्तिधारा के ठीक समानांतर। भक्ति में भी शृंगार की रीतिबद्ध रचना होती थी। उसमें नखशिख, षड्ऋतु, बारहमासा आदि के वर्णन भरे पड़े हैं। यदि इतिहासकारों के ही अनुसार 'साहित्यलहरी' को सूरदास की रचना मानें तो उसमें नायिकाभेद और अलंकार के लक्षण-लक्ष्य दृष्टकूट के चमत्कार के साथ उलझे पड़े हैं; फिर कैसे कहा जाय कि रीति का प्रवर्तन बाद में हुआ। हिंदीवालों को स्वतंत्र निरूपण करना ही कहाँ था! संस्कृत की पकी पकाई सरस सामग्री पहले से ही थी, उठाकर हिंदी-पद्यों के साँचे में ढाल भर देना था। रीति का जो कोई विकास नहीं दिखाई देता उसका कारण संस्कृत से विवेच्य विषय ज्यों का त्यों ले लेना है। संस्कृत में विचार हो भी बहुत चुका है। हिंदी में सच पूछिए तो भिन्न भिन्न संप्रदायों का चलन हुआ ही नहीं। कहीं कहीं जो अलंकारवादी कवि दिखाई पड़ते हैं वे वैसे हैं नहीं। अनुकार्य ग्रंथों के अनुवाद का ही परिणाम है कि वे अलंकारवादी प्रतीत होते हैं, इसीसे रीतिकाल या शृंगार-काल की सीमा कुछ पीछे हटानी पड़ती है। संवत् १६०० के आगे-पीछे ही शृंगारकाल की सारी प्रवृत्तियाँ प्रवर्तित हो जाती हैं। रीतिमुक्त रचना करनेवाले 'रसखानि' और 'आलम' भी १६४० के आसपास अपनी वाग्धारा बहा रहे थे।

इस संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि भक्ति और शृंगार की रचनाओं के क्षेत्र भिन्न थे। शृंगारी कवि अधिकतर दरबारी थे। भक्त कवियों का संबंध दरबारों से बिलकुल नहीं था। उनकी रचना वस्तुतः जनता की हृत्तंत्री की प्रतिध्वनि थी। पूर्वोक्त तथा अन्य बहुत-से कवि दरबारों में भी अपनी 'कविताई' का चमत्कार दिखा रहे थे। अकबर के दरबार में कई कवि थे जो अधिकतर शृंगार की ही रचना किया करते थे। इनके नामों की उद्धरणी इस सवैये में इस प्रकार है—

> पाय प्रसिद्ध पुरंदर ब्रह्म सुधारस अंमृत अंमृतबानी।
> गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी, गुनसागर गंग सुज्ञानी।
> जोध जगन्न जगे जगदीस जगामग जैत जगत्त है जानी।
> कोरे अकब्बर सों न कथी, इतने मिलि कै कबिता जु बखानी॥

श्रृंगारकाल की अधिकांश रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध रचना दरबारों में बनी—दरबार चाहे बादशाहों, शाहों या शाहजादों के रहे हों, चाहे राजा-महाराजाओं, दीवानों, ताल्लुकेदारों या जमींदारों के। इस रचना को 'दरबारी' कहना सोलह आने ठीक है। रीतिमुक्त कवियों (रसखानि, घनआनंद, बोधा आदि) में से कई का संबंध दरबारों से है अवश्य ; पर वे अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण दरबारों के आसन पर बहुत दिनों तक टिकनेवाले नही थे। इसी से उन्होंने दरबारों का त्याग किया। वहाँ से छूटकर जनता के सांनिध्य मे आते ही वे जो भक्ति की रचना में प्रवृत्त हुए उसका हेतु भी स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार इस 'काल' का आरंभ संवत् १६०० के आसपास से ही मानना चाहिए। पर १६०० से १७०० तक वस्तुतः इस काल की प्रस्तावना ही है। श्रृंगार के अभिनय का आरंभ इसके अनंतर ही हुआ। धारा का वेग तभी प्रखर हुआ। भक्ति की रचनाएँ संवत् १७०० तक छाई हुई थी। इधर भक्ति का वेग कम पड़ा उधर श्रृंगार की धारा वेगवती हुई। भक्ति अपना प्रभाव इन कवियों पर भी डाल गई। इन्होंने नायक और नायिका के रूप में श्रीकृष्ण और राधिका या गोपियों को स्वीकार किया। रचना की लोक-स्वीकृति के संबंध में ये अपने मन को भक्ति की आड़ में यों फुसला लेते थे—

आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई

नतु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

श्रृंगारकाल की उत्तर-सीमा बहुत कुछ स्पष्ट है। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने हिंदी में आधुनिक या नूतन विचारधारा प्रवाहित की, यद्यपि उन्होंने पुरानी वाग्धारा भी अक्षुण्ण रखी। कवित्त-सवैयों में प्रेम की—निश्चय ही स्वच्छंद प्रेम की—रीतिमुक्त श्रृंगारिक रचना की और पदों में भक्ति की। पुराने ढंग की श्रृंगारी रचनाएँ तो द्विवेदीजी के समय तक होती आई हैं और अधिक परिमाण में। कविसंमेलनों में समस्यापूर्ति की और पढ़ंत गोष्ठियों में अनुप्रास-यमक आदि की बहार देखने-सुनने योग्य होती थी। भारतेंदु बाबू के समय में श्रृंगारिक कविता करनेवाले सभी थे ; एक कपोल से पुरानी श्रृंगारी कविता निकलती थी और दूसरे से नए ढंग की देशप्रेम आदि की कविता। उसी युग में काशी, कानपुर, आजमगढ़ आदि कई स्थानों पर कविमंडल, कविसमाज, कविसभा आदि की स्थापना हो चुकी थी,

जिनमें अधिकतर समस्यापूर्ति के रूप में प्रायः शृंगारिक कविता ही होती थी। संवत् १९५० के उपरांत शृंगार की पुरानी धारा मंद पड़ने लगी और लगभग १९७५ तक आते-आते वह विलीन हो गई। जैसे संवत् १६०० से १७०० तक शृंगार का प्रस्तावना-काल या उपक्रमकाल है वैसे ही १९०० से १९७५ तक अवसानकाल या उपसंहारकाल। नई धारा १९०० के आसपास प्रकट हो गई थी, जिसके साथ पुरानी धारा भी चलती रही। इसलिए शृंगारकाल की कड़ी के गर्भ से आधुनिक काल की कड़ी १९०० के लगभग घूमी और १९५० तक आते-आते वह घूमकर आगे चली आई, १९७५ तक उसने अपने को एकदम पृथक् कर लिया।

शृंगारकाल की प्रस्तावनायों भक्तिकाल के भीतर ही हो गई थी। राधा-कृष्ण की जैसी प्रेमक्रीड़ा का वर्णन कृष्णभक्त-कवि कर चले वह शृंगार का बहुत बड़ा अवलंब सिद्ध हुई। राधा-कृष्ण की भक्ति में रसदृष्टि से भक्त कवियों ने तीन ही रस ग्रहण किए थे—वत्सल, भक्ति और शृंगार। 'वत्सल' तो हिंदी में भक्तिकाव्य में ही व्यक्त हुआ और उसके साथ ही लुप्त भी हो गया। श्रीवल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय में कृष्ण के बालभाव की उपासना चलाई। इसी से उनके वल्लभसंप्रदाय के कवियों ने उसकी धारा वेग से बहाई। पर धीरे धीरे कृष्णभक्ति ने जो अनेक रूप धारण किए उनमें 'मधुर रस' या 'माधुर्य भाव' ने प्रधानता पाई। श्रीचैतन्य के गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव ऐसा पड़ा कि 'वत्सल रस' उसमें लीन हो गया। माध्व, निंबार्क (टट्टी, अनन्य, राधावल्लभी) जितने कृष्णभक्ति के अन्य संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं उन सबकी उपासना शृंगार-प्रमुख हो गई, उनमें 'राधा' की योजना प्रधान हुई। राधातत्त्व के जुड़ जाने से प्रणय-लीला के गीत गाए जाने लगे। फल यह हुआ कि वल्लभ-कुल के भक्त भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला के विस्तार में ही लग गए। इसलिए आगे चलकर वत्सल रस का प्रवाह रुक गया। भक्ति और शृंगार ने मिलकर 'मधुर रस' का रूप धारण किया, जिस रस के भीतर शृंगार रस ने सचमुच अलौकिक रस का रूप पाया। भक्ति की पिछले काँटे की रचना काव्य-दृष्टि से शृंगार की ही रचना हो गई, भले ही उसे हम लौकिक शृंगार की सीमा में न घेर सकें पर वह शृंगार का ही परिष्कृत, संस्कृत या ईश्वर-संबद्ध—चाहे जो नाम रखें—रूप हो गई। विनय आदि के रूप में जो थोड़ी सी रचना रह गई उसे ही शुद्ध भक्तिरस की रचना कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगार रस की धारा

को फैलने के हेतु बहुत चौड़ा मैदान मिल गया। पर भारतीय काव्य-परंपरा में आचारनिष्ठता का ध्यान बराबर रखा गया है। शृंगारकाल में कवियों ने नायक-नायिकाओं की प्रेमलीला का निरूपण आरंभ किया तो उसमें स्वकीया के प्रणय के विस्तार का अवकाश न मिला। अपभ्रंश की पुरानी रचनाओं और देश-गीतों मे स्वकीया-प्रेम के बड़े ही मधुर एवं मर्मस्पर्शी खंडवृत्त दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्तिधारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका संबंध नही रहा, अतः स्वकीया की प्रीति के रससिक्त स्थलों का संनिवेश उसमें न रह सका। अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दापत्य-प्रेम रखा गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आकर्षक और आकृष्ट के रूप की लंबी-चौड़ी भूमि परकीया-प्रेम के परिष्कार में दिखाई पड़ी, जिसमे अलौकिक संबंध का आरोप होने लगा। इस प्रकार प्रेम की विवृति के साहचर्य में परकीया प्रेम के विस्तार को विशेष उत्तेजना प्राप्त हुई। हिंदी-साहित्य को उस समय जिस साहित्य से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ी उसमें परकीया-प्रेम का बाहुल्य था। प्रतिद्वंद्विया से पीछे हटने पर कवियों की हेठी होती थी। अतः नायिका-भेद में परकीया-प्रेम ले लिया गया, पर आचारनिष्ठता को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन श्रीकृष्ण और राधिका माने गए। प्रेम की घोर वासनापूर्ण रचना करनेवालों ने भक्ति की शृंगारिकता की ओट लेने का पूरा प्रयत्न किया। अपनी रचना के लिए वे धार्मिक बुद्धि जगाते हुए कह गए कि 'आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई, नतु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।' लक्षण-ग्रंथों में यह भी कहा गया कि नायक होने योग्य और कोई नहीं, कृष्ण ही हैं; ठीक इसी प्रकार नायिका होने योग्य राधा या गोपी।

यह उद्भावना शृंगारकाल की न थी, बहुत पहले की थी। विद्यापति आदि-काल में ही राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन साहित्यिक दृष्टि से (भक्त की दृष्टि से नहीं) कर गए थे। भक्त जयदेव की पद्धति उन्होंने साहित्य में प्रतिष्ठित कर दी थी ध्यान देने की बात है कि विद्यापति ने भक्त कवियों की भाँति श्रीकृष्ण या राधा को प्रभु या स्वामिनी के रूप में नही रखा, यद्यपि उनके शृंगार के पदों या गीतों की सारी रचना कृष्ण और राधा के ही स्नेह की अभिव्यक्ति है, अतः उन्हें भक्त कवि कहना भ्रांतिशून्य नही है। उनके राधा-कृष्ण भक्ति के नही, शृंगार के देवता हैं।

इस प्रकार रीतिकाल में जितनी रचना हुई उसमें प्रायः हरि और गोपी या राधा का कीर्तन तो मिलता है पर उसे भक्ति की रचना नहीं कह सकते। इन कवियों ने भक्ति की शृंगारमयी रचना का भक्तिवाला अंश त्याग दिया। आवरण के रूप में भक्ति अवश्य रह गई, पर सारी रचना लौकिक प्रेम-प्रसगों की ही प्रस्तुत होने लगी। शृंगारकाल की सीमा के भीतर शृंगार के अतिरिक्त वीररस और भक्ति-रस की रचना बराबर होती रही। पर वीररस की रचना थोड़ी है और जिन्होंने वीररस की रचना की वे शृंगार की रचना से विरत नहीं थे। भक्ति की जो रचना बाद में हुई उसमें सूरदास आदि भक्त कवियों से भी बढ़-चढ़कर शृंगार की छाप पड़ी। इस प्रकार उस युग में शृंगार ही शृंगार दिखाई देता है। इसी से इसे रीति-काल माननेवाले विद्वान् भी रसदृष्टि से 'शृंगारकाल' कहना उचित समझते हैं।[1]

भक्ति के ही क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण शृंगारकाल में जो व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ी वह मुक्तक रचना की थी। कृष्णभक्तों ने श्रीकृष्ण-चरित का उतना ही अंश काव्यबद्ध किया जो वृंदावन और मथुरा से संबद्ध था। वे केवल कोमल भावों के ही कवि रहे। प्रबध के क्षेत्र मे जिस बहुवस्तु-व्यापार और घटनाचक्र के प्रवर्तन की अपेक्षा होती है उससे इन्होंने पीछा छुड़ा लिया। कृष्ण की सारी लीला मुक्तक गीतों में गाई गई। अतः भक्ति के जिस क्षेत्र से शृंगारी कवियों ने संबंध जोड़ा वहाँ प्रबंध की भूमि ही नहीं मिली। कृष्णभक्ति-संप्रदायों में कीर्तन का माहात्म्य स्वीकृत था, इसके लिए गीत तो उपयुक्त थे ही, फुटकल लीला ही काम की हो भी सकती थी। गीत-पद्धति का प्रबंध से सदा विरोध रहा है, आज भी है। गीत चाहे बाह्यार्थ-निरूपक हो चाहे स्वानुभूति-प्रदर्शक, वह किसी भाव में कुछ देर तक लीन रखना चाहता है, और लीनता में गहराई चाहता है। प्रबध में कथातत्त्व भी कुछ कुछ कुतूहल जगाए रहता है, इसी से लीनता की मात्रा सर्वत्र अधिक हो नहीं पाती। जहाँ लीनता पर विशेष दृष्टि रहेगी वहाँ मुक्तक की प्रवृत्ति अवश्य प्रधान होगी, गहरी लीनता को ही लक्ष्य करके प्रबंध-काव्यों मे भी गीत रखे जाने लगे हैं, जिनके कारण प्रबंध की स्वाभाविक धारा अवरुद्ध हो जाती है। गीतों की ही गूँज के मेल में शृंगारकाल में कवित्त सवैयों का--विशेष रूप से

---

१ "प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।"—हिंदी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल-कृत, पृष्ठ २६८।

सवैयों—का अधिक चलन हुआ। कहीं कहीं प्रबंध के क्षेत्र में भी कवित्त-सवैयों की योजना कर दी गई है, जैसे नरोत्तमदास के 'सुदामा-चरित' में। पर उसमें भी संवादों और वर्णन के लिए ही इनका उपयोग हुआ, जहाँ किसी भाव की लीनता ही कवि का लक्ष्य है। कथा कहने के लिए उन्होंने दोहों का विधान किया है। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के उद्धव-शतक में कवित्तों में संवाद या उक्तियाँ बाँधी गई हैं, जिसमें 'गोपी-विरह' की क्रमबद्ध कथा के सहारे उक्तिविधान देखकर भ्रमवश लोग उसे प्रबंध-काव्य या अर्धखंड काव्य कहने लगते हैं। छंद तो छंद उसका नाम भी मुक्तक-शैली की रचनाओं का है, इस पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

शृंगारकाल में रीतिबद्ध रचयिताओं ने लक्षण-ग्रंथ के निर्माण में हाथ लगाया। यहाँ प्रत्येक विषय का लक्ष्य फुटकल रूप में ही प्रस्तुत हो सकता था। यह कहा जा चुका है कि ये कवि लक्षण-शास्त्र का निर्माण करनेवाले आचार्य नहीं थे। लक्षण के निरूपकों ने स्वतः अपनी कृति से ही लक्षण-ग्रंथ भरे हैं, ऐसी प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में कम थी। लक्ष्य पहले, लक्षण पीछे होता है। संस्कृत में इसी से लक्षणों के उदाहरण प्रायः विभिन्न कवियों या काव्यों से चुने गए हैं। ग्रंथकार का उदाहरण क्वचित् ही होता है, वह प्रायः 'यथा ममापि' ही होता है, दूसरे की रचना उद्धृत कर देने के उपरात अपनी भी रख दी जाती है। सच विचारिए तो लक्षण-निरूपक आचार्य प्रायः कवि-कर्म से विरत रहता है। भरत मुनि, भामह, वामन, रुद्रट, आनंदवर्धन, धनजय, अभिनवगुप्त, कुंतक, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्य ही थे; प्रायः कवि-कर्म से विरत। दंडी, राजशेखर, पंडितराज जगन्नाथ आदि अवश्य कवि-कर्म में भी निरत हुए। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' के दोष-प्रकरण में बड़े बड़े कवियों के उदाहरण दिए हैं। इससे चिढ़कर कुछ लोगों द्वारा कसौटी पर कसने के लिए उनकी रचना खोजी जाने लगी तो ग्रंथ के मंगलाचरण के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। सारा रोष उसी पर प्रकट किया गया। अतः स्पष्ट है कि कवि-कर्म और आचार्य-कर्म में भेद करके संस्कृत के शास्त्रकर्ता चले हैं। हिंदी में उलटी गंगा बही। लक्ष्य के पीछे लक्षण न चलकर लक्षण के पीछे लक्ष्य चलने लगा। उदाहरण में अपनी ही कृति गढ़-गढ़कर दी जाने लगी। जहाँ कवि किसी चमत्कार में रम जाता वहाँ उदाहरणों का ताँता लग जाता—एक दो, तीन की गिनती चलने लगती। श्रीपति के 'काव्य-सरोज' में ही दूसरों के कुछ

उदाहरण देने का प्रयास है, उन्होंने दोष-प्रकरण में अपनी रचना न देकर केशव-दासजी की रचनाएँ उद्धृत की हैं। ये लोग लक्षण-ग्रंथ के ही अनुगमन पर न लिखते होते तो कवि-कर्म कुछ उच्च आदर्श ग्रहण करता, कदाचित् मुक्तक से प्रबंध की रुचि कुछ जगती। रीति से पीछा छुड़ानेवालों ने अवश्य प्रबंध का ओर भी रुचि दिखलाई। पर श्रीकृष्णलीला का वृंदावनवाला वृत्त इसके लिए नही लिया गया। वह मुक्तक के आगे यदि बहुत बढ़ सकता था तो निबंध तक, भक्ति की रचना मे दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि के वर्णनात्मक प्रसग पद्य-निबंध भर कहे जा सकते हैं। प्रबध के लिए घटनाचक्र चाहिए, वह कृष्ण-जीवन के इस अंश में है ही नहीं। जहाँ इतने ही वृत्त को लेकर प्रबंध-काव्य लिखने की वृत्ति स्फुरित हुई है वहाँ प्रबधधारा अनवच्छिन्न नही रह सकी है, विस्तार करने के लिए अनेक वर्णनों की योजना करनी पड़ी है। इसी से प्रबंध के लिए श्रीकृष्ण का उत्तर-जीवन ही उपयुक्त दिखाई पड़ा। उदाहरणार्थ आलम ने नरोत्तमदास की अनुकृति पर 'सुदामा-चरित्र' लिखा और रुक्मिणी-परिणय का वृत्त लेकर 'श्याम-सनेही' खडकाव्य प्रस्तुत किया। पर प्रबंध की विस्तृत अर्थभूमि यहाँ भी नही थी, इसी से प्राकृतकाल की प्रसिद्ध कथा 'माधवानल-कामकदला' पर छोटे बड़े कई प्रबंध-काव्य निर्मित हुए। इसी कथा का अत्यधिक विस्तार करके बोधा ने 'विरह-वारीश' की रचना की। फिर भी इन रीतिमुक्त कवियों की भी अधिकाश रचना मुक्तक ही है। इन मुक्तक रचनाओं से हिंदी का एक लाभ भी हुआ। शृगार के किसी भी अव-यव के अत्यंत मधुर और सरस उदाहरण उपलब्ध हो गए। यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में भी शृगार के अंगोपाग की इतनी अधिक और इतनी सरस रचनाएँ न मिलेंगी।

पर इन उक्तियों में अधिकतर भिन्नता न होकर एकरूपता पाई जाती है। कारण भी स्पष्ट है। अधिकतर कवीश्वर लक्षण-ग्रथ-प्रणेता थे। प्रत्येक विषय पर बँधी-बँधाई उक्तियाँ सब कहते थे, इसी से एकरूप उक्तियों का ढेर लग गया। व्यक्ति-वैशिष्ट्य का जैसा विकास अपेक्षित था वह न हो सका, वह विशेषता कविराज न ला सके जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पृथक् की जा सकती। रीतिबद्ध कवियों की रचना में से यदि 'छाप' निकाल दी जाय तो स्मृति-शक्ति के आधार पर भले

ही कुछ पार्थक्य किया जा सके अन्यथा व्यक्ति-वैशिष्ट्य के आधार पर भेद करना कठिन ही नहीं, असंभव है। प्राचीन संग्रहों में जो किसी एक कवि का छंद किसी दूसरे कवि के नाम पर चढ़ गया है उसका कारण यही है। पुराने संग्रहों का बहुलाश स्मृति के भरोसे संकलित होता था। स्मृति भला कहाँ तक साथ देती। 'शिवसिंहसरोज', 'सुधासर', 'शृगार-सग्रह' आदि में इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। मै प्रमाणित कर चुका हूँ कि हिंदी में 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' नाम की पोथियाँ किस प्रकार अधिकतर दूसरे कवियों की कृति से सज-धज-कर 'भूषण' के नाम पर आधुनिक सग्रहकर्ताओं की कृपा से चल पड़ी हैं और शिवाजी के दरबार में 'भूषण' की उपस्थिति संदिग्ध बतानेवालों के लिए सहायक का काम कर गई हैं। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, पद्माकर, मतिराम आदि कुछ गिने चुने कवियों को ही भाषा-भेद से छाँटा जा सकता है। बिहारी के दोहों की बनावट उन्हें साधारण रचनाओं से पृथक् करती है, पर रसलीन, मतिराम आदि के कितने ही अच्छे-अच्छे दोहे बिहारी-सतसई मे घुस गए हैं, जिन्हें 'रत्नाकर' जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' में चुन-चुनकर पृथक् किया। रीतिबद्ध रचयिताओं की अपेक्षा रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवियों की कृति में व्यक्ति-वैशिष्ट्य का कुछ विकास अवश्य स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से इन्हें दूसरों से पृथक् करने में कुछ सरलता होती है। 'घनआनंद' की विरोध की प्रवृत्ति उन्हें औरों से पृथक् करती है। लोकोक्ति-विधान की विशेषता रीतिमुक्त स्वच्छंद 'ठाकुर' को इसी नाम के अन्य दो कवियों से पृथक् करती है, प्रेम के वैषम्य का चटक-मटक के साथ उल्लेख करनेवाले 'बोधा' फूलपत्ती, पत्ती आदि की सूची पेश करनेवाले 'बोधा' से भिन्न हैं। शृगार-काल की स्वच्छंद काव्यधारा का कुछ महत्त्व इसी से सूचित होता है। पर इन कवियों का भी काव्यार्थ (वर्ण्य) एकरूप ही है, इसे स्मरण रखना चाहिए। इसी से जहाँ स्वकीय रंग कुछ फीका पड़ गया है वहाँ इनकी रचनाएँ भी एकरूप हो गई हैं।

स्वच्छंद धारा

स्वच्छंद का अर्थ है बाह्य बंधन अर्थात् रीति के बधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में

प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनों के त्याग का भी संकेत देनेवाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक-नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे उसमें कहीं कही कथनशैली की विशेषता के भी दर्शन अवश्य होते थे, पर उसमें न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छंद रूप के दर्शन कही होते हैं और न काव्य-पद्धति की साहित्यिक स्वच्छंदता के ही। प्रेम का बाह्य पक्ष ही रीतिबद्ध रचना में दिखाई देता है। यह बाह्य पक्ष भी बँधा हुआ है अर्थात् साहित्य की परंपरा मे प्रेम-व्यापार के जो लक्षण निश्चित कर दिए गए उनसे आगे इनकी दृष्टि मार्ग न पा सकी। बाह्य पक्ष की रमणीयता के दर्शन के हेतु भी अतर्दृष्टि की व्याप्ति और सूक्ष्मता अपेक्षित होती है। यह अंतर्दृष्टि रीतिबद्ध रचनाओं में मंद पड़ गई थी। कुछ चुने हुए दृश्यों को ही देखने दिखाने में जैसे स्थूल दृष्टि पथरा जाती है वैसे इन व्यापारों में अंतर्दृष्टि भी सतत संलग्न रहकर मंद पड़ जाती है। नायिका-भेद में नायिकाओं के सहेटस्थलों, सपत्नियों के ईर्ष्या-कलह, लघु-मध्यम-गुरु मान आदि के कवि-समय-सिद्ध व्यापार ही आते रहे। प्रेम का मन इतने से ही संतुष्ट हो जाता था कि 'जौं लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हू की न'। ये प्रिय के सग का, शरीर-संबंध का, ही सुख चाहते थे, मानस-संसर्ग की रमणीयता इनमें नही थी। ये प्रिय के मन की रमणीयता देखने के या अपने मन की रमणीयता दिखाने के मनोरथी नही थे, प्रिय के तन की शोभा देखने और अपनी शारीरिक उछलकूद की मुद्राएँ दिखाने के ही अभिलाषी अधिक थे। बिहारी आदि में मानस-लोक की रमणीयता के दर्शन यत्र तत्र ही होते हैं। बिहारी ऐसे कवियों मे जो इस प्रकार के स्थल दिखाई पड़ते हैं वह भी रीति के लक्षणों का अनुधावन सर्वत्र न करने के कारण। अनुधावकों की रचना में यह विशेषता और भी क्षीण है। बिहारी ने प्रेम की जिस चरमावस्था का निरूपण इस दोहे मे किया है वह लक्षणकारों में नही मिलता—

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम की यह वह चरम अवस्था है जिसमें पहुँचकर प्रेमी या प्रेमिका स्वयम् प्रिय हो जाती है। ज्ञान के क्षेत्र में जो स्थिति ज्ञाता और ज्ञेय की होती है और भक्ति के क्षेत्र में जो स्थिति उपासक और उपास्य की होती है, ठीक वही स्थिति प्रेम के क्षेत्र में प्रेमी और प्रिय की चरमावस्था में होती है। रामकृष्ण परमहंस के

संबंध में प्रसिद्ध है कि वे उस माला-फूल को, जिसे पूजक काली की पूजा के लिए ले आते, अपने ऊपर चढ़ा लिया करते थे। तात्पर्य यह कि ज्ञान, भक्ति और प्रेम की चरमावस्था एक ही निर्दिष्ट होती है। बिहारी की सतसई में प्रेम की उच्चभूमि के दर्शन वहाँ होते हैं जहाँ नायिका कभी प्रिय के द्वारा उड़ाई पतंग की छाया के पीछे-पीछे दौड़ती दिखाई पड़ती है, मरगजी माला भी गले में डाले फूली घूमती है, प्रिय के नखक्षत को सूखने पर आया जान खोंटकर फिर हरा कर लेती है। पर ऐसे उदाहरण रीतिबद्ध कवियों में ढूँढ़ने से ही मिलते हैं। अधिकतर तो सौतों की असूया, मान के त्रिविध रूप, हावों की भावभगी, खंडिता की व्यग्यभरी उक्तियाँ ही हैं। विपरीत रति, सुरतात आदि के बँधे, बँधाए और असस्कृत वर्णनों से इनकी रचनाएँ यदि भरी नहीं हैं तो शून्य भी नहीं हैं। वस्तुतः रीतिबद्ध कवि प्रेम-मार्ग की वक्रता, उसकी चातुरी, उसके बुद्धि-विशिष्ट रूप का ही संभार करते रहे। पर रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग सरल है, इसमें वक्रता का नाम नहीं। चतुराई का लेश भी इसमें घातक होगा—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ सूधे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

रीतिबद्ध कवियों ने दूती, सखी आदि को बीच में डालकर प्रेम का लंबा-चौड़ा संग्राम खड़ा किया है। गुरुजनों के बीच प्रेम के संकेतों का विस्तार से उल्लेख किया है। लोकभय या लोकलाज को मध्य में रखकर प्रेम मे बहुत से बँधे-बँधाए खेल दिखलाए हैं। सहेट की लुकाछिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियाँ, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल-कपट से भरे खिलवाड़ में ही मनोरंजन की सामग्री विशेष खोजी है। ऐसी बधन-मय प्रेमलीला रीतिमुक्त कवियों को नहीं रुच सकती थी। वे लोकभय या लोकलाज का तिरस्कार करके साहस-पूर्वक प्रेम की एकनिष्ठता में लीन होनेवाले थे। इसी से इन खेल-तमाशों से उन्होंने अपने को अलग रखा है। श्रीकृष्ण और राधा या गोपियों का जैसा उन्मुक्त जीवन था वैसा ही बाधा-बंधन-रहित सरल-सीधा प्रेममार्ग इन स्वच्छद कवियों का भी था। सौ बात की एक बात यह कि ये प्रेम में बुद्धि की कतरब्योंत एकदम नहीं चाहते थे। प्रेम शुद्ध हृदय की भावधारा है, ये हृदय को ही सामने करनेवाले

और हृदय को ही प्रभावित करनेवाले भी थे। हृदय की रीझ ही इनके यहाँ रानी है, बुद्धि तो दासी मात्र—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के स्वच्छंद रूप के ग्रहण से ही अंतरंग और वहिरंग सखियों का विधान यहाँ नहीं। प्रेमी अपनी पुकार स्वतः करता है। विरहनिवेदन के लिए दूती और उपालभ के लिए सखी की योजना अनपेक्षित समझी गई। इसमें वंधन तो था ही, मध्यस्थ के कारण प्रिय के प्रेम की प्राप्ति निर्बाध नहीं हो सकती थी। दूती या सखी यदि इनके यहाँ कभी आ भी गई तो उसे अपनी बुद्धि का व्यवसाय दिखाने की आवश्यकता नहीं, वह केवल प्रेमी की शब्दावली दुहरा सकती है, अपनी पदावली का उपयोग करने की अपेक्षा नहीं। वह प्रेमी के ही मुख से बोले तो बोले, अपना मुँह न खोले। अतः यहाँ ऐसे तर्कों की आवश्यकता नहीं—

ताके तन ताप की कहूँ मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए तें तुम्हैं ताप चढ़ि आवैगी।—पद्माकर

सच पूछिए तो यहाँ दूती की आवश्यकता ही नहीं—

जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
आबाँ सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागें,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

कोई इन विरहाग्नि के तप्त सदेशों को सुन नहीं सकता, जीभ पर भी ये विरह की तप्त वातें नहीं लाई जा सकतीं। हृदय की आँच से ये बातें (वार्ता बत्ती) स्नेहयुक्त होने के कारण प्रज्वलित हो जाती हैं। इन उक्तियों का रीतिवद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पार्थक्य समझ लेना चाहिए। रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियाँ स्वानुभूति-निरूपिणी हैं। वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिवद्ध वर्णनों की भाँति अनुमान के सहारे नाप-जोख करने नहीं जाते। ये विरही अपनी आग से स्वयम् ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते। हाँ, कभी कभी दूती और सखी के संवंध में इतना अवश्य कह देते हैं कि विरह की अग्नि से भरी बातें दूसरे सुन न सकेंगे, पर यह कभी कहने या कहलाने नहीं जाते कि—

'शंकर' नदी-नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
झारैंगे अँगारे वे तरनि तारे तारापति
या बिधि खमंडल में आग मढ़ जायगी।
दोनों ओर छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूमघूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी।
काहू बिधि बिधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै या वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

इनके यहाँ माघ मास में सारी सृष्टि को क्या, गाँव को भी झुलसानेवाली लुएँ नहीं चलतीं, जाड़े में सखियाँ गीले वस्त्र पहनकर इन विरहियों को देखने नहीं आतीं छाती पर गुलाब जल गिरकर उत्तप्त तवे पर गिरे पानी की भाँति छुन्न-छुन्न करके भाप नहीं बनता, मान के उच्छ्वास से सर और सरिताएँ नहीं सूखतीं। अपनी आह या वेदना की ज्वाला से ये स्वयम् जलते-भुनते रहते हैं, सारी सृष्टि को भस्म करने के लिए रुद्र का तीसरा नेत्र कभी नहीं खोलते या खुलवाते। इनके विरह-ताप की सीमा इन्हीं तक है। ये उड़ान भरनेवाले पक्षी नहीं, बैठकर वेदना की पुकार मचानेवाले पपीहे हैं। इनके ताप से सृष्टि भस्म नहीं होती, कभी-कभी द्रवीभूत अवश्य हो जाती है। पपीहा इनकी पुकार की समानुभूति में पी-पी रटता है, बादल इनके ताप से पिघलकर आँसू गिराते हैं, पवन इनके रोदन के स्वर में स्वर मिलाता है—

बिकल बिषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जर्‌यौ करै।
जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‌यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्‌यौ सो बनबीथिन रर्‌यौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जानप्यारी! तेरे,
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्‌यौ करै।

इसका वास्तविक हेतु यह है कि इन मनस्वियों ने प्रेम की स्वच्छंदता के साथ उसका अनुदात्त नहीं, उदात्त स्वरूप ग्रहण किया। ये चातुर्य के चक्कर में पिसनेवाले प्राणी नहीं थे, प्रेम-प्यास की ऊँची तान लेनेवाले, घनआनंद की ऊचाई तक उड़नेवाले चातक थे। इसी से इनका प्रेम एकनिष्ठ था। इस एकनिष्ठता ने इन्हें प्रेम की उस भूमिका में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर प्रेम केवल प्रिय को चाहनेवाला ही रह जाता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है या नहीं इसकी छानबीन नहीं होती। यहाँ तो प्रिय की ओर से तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी उसे चाहता ही रहता है। तुलसीदासजी ने चातक के जिस एकांगी प्रेम की उच्चता और तीव्रता का विधान अपनी दोहावली के अंतर्गत 'चातक-चौंतीसी' में किया है, प्रेम का वही उदात्त रूप इनमें भी दिखाई देता है। चातक वज्र गिराने पर भी बादल को प्यार करना नहीं छोड़ता—

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप तक पहुँचने के लिए कुछ सोपानों की योजना होती है। पहले किसी का रूप नेत्रों में बसा, किसी के क्रिया-कलाप अपनी ओर खींचने लगे, बस हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो गई। जब तक प्रेमी आकर्षण के इस प्रथम सोपान पर रहता है तब तक वह आकर्षक के दर्शन, सान्निध्य, संलाप तक ही रहता है। तब तक प्रिय के दर्शनादि की उपलब्धि की ही आकांक्षा रहती है। पर इसके अनंतर वह उसके हृदय की खोज में व्यस्त होता है। वस्तु-विशिष्ट प्रेम पहली सीढ़ी तक होता है, पर प्राणी-विशिष्ट प्रेम दूसरी सीढ़ी पर भी चाव के साथ, जिज्ञासा के सहारे अपने पैर रखता है। वह दूसरी सीढ़ी पर चढ़ जाता है, जहाँ वह अपने को प्रिय के लिए अर्पित कर देता है। यदि प्रिय का हृदय उसे नहीं मिलता, प्रिय उससे विमुख भी हो जाता है तो भी वह प्रेम की इस सीढ़ी से उतर नहीं आता, आगे ही बढ़ता है। सानंद न बढ़े, पर वेदना सहने का पूरा साहस बटोरकर वह बढ़ता है, हार मानकर वहीं बैठ नहीं जाता। प्रेम की एकनिष्ठता न उसे बैठने देती है, न लौटने। वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो जायगा उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़नेवाला प्रेमी प्रिय के

निर्दय हो जाने पर जिस कष्ट का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। रीतिबद्ध रचना में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो, यही इनका मूलमंत्र है। विरह सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नहीं बटोर सकती। मन का बल उनके पास उतना नहीं होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने को चेतनता का नहीं, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है—

> हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
> नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
> प्रीति की रीति सु क्यौँ समुझै जड़ मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।
> या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।

प्राणों को जिलानेवाला प्रिय मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है; मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करनेवाला नहीं है। मछली तुरंत प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिए इन दोनों में समता कैसी। यह बात और साफ करके यों कही गई है—

> मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
> वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।
> घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
> बिछुरेँ मिलेँ मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कोँ परसै।

प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीतिमुक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उद्गार सुनाते हैं प्रेम की यह विषमता उनमें कहाँ से आई। भारतीय काव्य-परंपरा में दृश्य और श्रव्य काव्य के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में प्रेम के सम रूप का ही विधान है। प्रेम का उद्भव दोनों पक्षों में एक सा दिखाया गया है। वाल्मीकि ने राम और सीता में, कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला में, बाण ने कपिंजल और कादंबरी में सम प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है। हिंदी में विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा, पर सूरदासजी तक आते-आते प्रेम में वैषम्य का आरंभ हो गया। सूरदास आदि कृष्णभक्ति-शाखा के आदिम कवियों में इस विषमता की विवृति अधिक नहीं हुई। श्रीकृष्ण को भी

अधिकाधिक आने पर ही हुआ। गोपियों की भक्ति के साथ-साथ शृंगार का दृष्टांत प्रबल पड़ने पर ही उसमें श्रीकृष्ण की निष्ठुरता आदि का उल्लेख हो चला। भागवत में यह प्रसंग भ्रमर-वृत्तात के रूप में जुड़ा हुआ है। कृष्णभक्तों में भ्रमरगीत के भीतर इसी का अधिक विस्तार हुआ। भ्रमर के व्याज से श्रीकृष्ण कितव, छली, कपटी आदि कहे गए, यह भक्ति में माधुर्य भाव के ही कारण। भागवत में वर्णित यह प्रेमयोग कृष्ण-शाखा में सखी संप्रदाय की उद्भावना का आदर्श ही बन गया। उद्धव तो गोप-वेश ही धारण करके लौटे थे, पर इधर पुरुषों ने भी सखी या गोपी-वेश धारण करना आरंभ किया। मीरा की उपासना तो गोपीरूप में स्वाभाविक जान पड़ती है, पर पुरुषों का गोपी-वेश बहुतों को प्राकृतिक नहीं प्रतीत होता। गोपियों में इस भाव का उदय अत्यंत सान्निध्य के ही कारण प्रदर्शित किया गया है। ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञेय ही था, प्रेम के द्वारा वह प्रेय बनाया गया। चित्त की विश्रांति प्रेमतत्व की योजना के द्वारा भक्ति में ही हुई। ज्ञान के क्षेत्र में तो बुद्धि की ही विश्रांति हो सकती थी। ज्ञान ने ब्रह्म को जाना, पर उसकी कोई कल्पना वह न कर सका। इसी से वह उसे निर्विकल्प, निराकार, निर्गुण आदि कहता आया पर भक्ति की संतुष्टि इससे न हो सकी, उसने उसे साकार और सगुण कर दिया। ज्ञान 'नेति नेति' कहता रहा, पर भक्ति ने 'सर्वं खल्विदम्' का सहारा लिया। वेदांत (अद्वैतवाद) भी तो विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवा, प्रतिबिंबवाद आदि से थककर अजातवाद और प्रौढ़िवाद की शरण गया। उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि जो जैसा है वह वैसा ही है।

तुलसीदासजी ने रामभक्ति का जो आदर्श चातक की साधना द्वारा प्रतिष्ठित किया उसमें भी चातक के पन का निरूपण विस्तार से है। वहाँ बादल को उदार, करुणालु आदि रूप में ही अधिकतर प्रदर्शित किया गया है। केवल कहीं कहीं उसकी कठोरता का निदर्शन प्रेमी-हृदय की उच्चता और दृढ़ता का प्रतिपादन करने के अर्थ जोड़ दिया गया है। कृष्णभक्ति और रामभक्ति के स्वरूप में बड़ा भेद था। रामभक्ति का रूप उपास्य और उपासक से सेव्य और सेवक-भावना को दृढ़ करनेवाला था। स्वयम् तुलसीदासजी ने स्पष्ट शब्दों में काकभुशुंडि के मुँह से कहलाया है—

सेवक-सेव्य-भाव बिन, भव न तरिय उरगारि।

पर कृष्णभक्तों में प्रेमलक्षणा भक्ति की उपासना बढ़ी, 'परानुरक्तिरीश्वरे' का प्राधान्य हुआ। शांत और दास्य भाव से बढ़कर सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव का आनंदातिरेक उपासना का प्रधान अंग हुआ। दास्य भाव उसीमें अंतर्भुक्त हो गया, साधना की चरम सीमा पर पहुँचकर उपास्य-पक्ष मे कठोरता का आरोप भी हुआ। यह प्रेम के लौकिक पक्ष के द्वारा अलौकिक पक्ष तक पहुँचने के कारण ही हुआ है। भक्तों द्वारा कथित कृष्णलीला के उपालंभ-परक पद उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति की सूचना देते हों चाहे न देते हों, पर गोपियों की उपालंभ-भावना का विस्तार से वर्णन करने की रुचि प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रेरणा से अवश्य हुई है। भक्ति के इस स्वरूप ने प्रेमभाव के क्षेत्र का कोना कोना छान डालने की रुचि अवश्य उत्पन्न की। प्रेम का अधिक आरोप होने के कारण, मधुररस शृंगाररस के अतिरिक्त और कुछ न रह गया। बहुतों ने उसपर लौकिक स्वरूप इतना अधिक आरोपित कर दिया कि उनकी रचना घोर शृंगारी कवियों से मिल गई।

यह सब होते हुए भी स्वच्छंद कवियों की कृति में यह वैषम्य कृष्णभक्तों की रचना से ही सीधे उतर आया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भक्ति की साधना में प्रेमगत वैषम्य भक्ति की ऊँची और गहरी अनुभूति उद्भावित करने के लिए नियोजित है, प्रिय की वास्तविक कठोरता उसका प्रतिपाद्य नहीं। पर स्वच्छंद कविता में प्रिय की वास्तविक कठोरता का वर्णन विस्तार के साथ और प्रतिपाद्य रूप में स्वीकृत है। यह निश्चय ही फारसी की कविता का प्रभाव है, जहाँ प्रिय की योजना इसी रूप में की जाती है। एक पक्ष तटस्थ रहता है और दूसरा अनुराग-रस से संपृक्त। संस्कृत-कवियों के विरह में इस प्रकार का क्रूर प्रिय-पक्ष नहीं है। इसलिए इस कठोरता या उदासीनता का मूल स्रोत फारसी की काव्यधारा ही है जहाँ प्रधान काव्य-वस्तु (थीम) यही है और जो उर्दू की रचना पर अपना दीर्घकालीन प्रभाव डाल चुकी है। हिंदी के बहुत से मध्यकालीन कवि इस विषमता के वर्णन में लगे। बिहारी पर भी इसका प्रभाव पड़ा था, रसनिधि की रचनाओं में तो शब्दावली तक ज्यों की त्यों उठाकर रख दी गई है। शृंगार के साथ फारसी या उर्दू की रचना में कुछ बीभत्स व्यापार भी लगे रहते हैं। भारतीय परंपरा में जुगुप्साव्यंजक व्यापारों का ग्रहण केवल वियोग-पक्ष में ही विरह की दस दशाओं के अंतर्गत व्याधि, मरण आदि में हो सकता है (आलस्यौग्र्यजुगुप्साः संयोगे वर्ज्याः—रसतरंगिणी)। पर

वहाँ भी छालों का फूटना, पीब-मवाद का बहना कहीं नही दिखाई देता। यहाँ शिष्ट रुचि के अनुकूल ही जुगुप्साव्यंजक व्यापार भी रखे गए हैं। रसनिधि ने ऐसे वीभत्स व्यापार भी ग्रहण कर लिए हैं। उर्दू-रचना की इस विकृति का आकर्षण पुराने ही नहीं, अच्छे अच्छे नए कवियों में भी कही कही दिखाई देता है। प्रसाद जी के 'छिल छिलकर छाले फूटे, मल-मलकर मृदुल चरण से' (आँसू) मे इसी का प्रभाव है। कुछ पंडितंमन्य देशी काव्य की मीमांसा में विदेशी प्रभाव की चर्चा से ही रुष्ट हो जाते हैं, उन्हें भारतीय और विदेशी काव्यपरपरा के यथार्थ स्वरूप का अनुशीलन करना चाहिए।

प्रेम के उदात्त स्वरूप का निरूपण करने के लिए प्रीति-विषमता की स्वीकृति हुई, इसमें वियोग की प्रधानता आवश्यक थी। रीतिबद्ध काव्य-रचना में वियोग के वर्णन शास्त्रस्थिति-संपादन के लिए तो आते ही थे, वस्तुव्यंजना और दूर की उड़ान के लिए भी गृहीत होते थे। संभोग और विप्रलंभ शृंगार में प्रेमी के पक्ष से यह सदा ध्यान में रखने योग्य है कि संयोग में प्रेमी की वृत्ति बहिर्मुख रहती है और वियोग में अंतर्मुख। इसका हेतु भी स्पष्ट है। संयोग में प्रिय सामने रहता है—उसके रूप का निरीक्षण, उसकी मुद्राओं का अवलोकन, उसके संलाप का सुख प्राप्त करने के लिए प्रेमी प्रिय की ओर तो देखता ही है, उसके चतुर्दिक् छाई सृष्टि की ओर भी रागभरी दृष्टि डालता है। सारा संसार उसे प्रेममय, आनंदमय दिखाई देता है। शृंगार में शास्त्राभ्यासियों द्वारा सृष्टि की प्राकृतिक सामग्री जो उद्दीपन के खाते में डाल दी गई है उसका रहस्य यही है। पर वियोग में प्रिय के समुख न रहने पर वियोगी अपनी सारी वृत्तियों को समेटकर अंतर्मुख हो जाता है। संयोग में सृष्टि से वह सुख का संचय करता था, पर वियोग में उसी से विषाद संचित होने लगता है। सुख, हर्ष, उल्लास आदि आनदमयी वृत्तियाँ विकासमयी होती हैं, इसी से हृदय में न समाकर बाहर उमड़ पड़ती हैं; पर विषाद, करुणा आदि दुःख-मयी वृत्तियाँ संकोचकारिणी होती हैं, इसी से उनमें सिमटाव होता है, बाहर से अपने को खीचकर विरही सिमटकर भीतर बैठ जाता है। यही कारण है कि अंत-र्वृत्ति के निरूपण पर ही इन कवियों की दृष्टि जमी दिखाई देती है। पर इन कवियों की वियोग-विषयक धारणा रीतिबद्ध कवियों से विलक्षण भी है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नही छोड़ता—'यह कैसो सँजोग न जानि परै जु वियोग न क्यों हूँ

बिछोहत है' (घनआनंद)। संयोग में वियोग की खटक लगी रहती है। प्रेमी यह समझकर उद्विग्न रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय—'अनोखी हिलग दैया! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै, मिलेहू मैं मारै जारै खरक बिछोह की' (घनआनंद)। इसी हेतु इन विरहियों को न संयोग में शांति मिलती है न वियोग में। ये वस्तुतः प्रेम की तृषा बढानेवाले हैं—'प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटे घटैगी कानि' (दोहावली)। रीतिबद्ध कवियों में न तो वियोग की यह चरमावस्था कहीं मिलेगी और न उसके स्वरूप का आभास ही। इसलिए ये स्वच्छंद कवि अपनी इस विशिष्ट वियोग-भावना के कारण उनसे पृथक् हो जाते हैं। इनकी प्रेम की पीर विलक्षण है। उसे 'ताकने' के लिए 'हिय-आँखिन' की आवश्यकता पड़ती है।[1]

प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। अतः स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी-काव्यधारा की वेदना की विवृति के साथ सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। सूफियों का विरह-वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी ने 'पदमावत' में भी प्रेम की पीर का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सूफी अपनी सांप्रदायिक भावना के अनुसार सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, 'रनवन' को विरह के बाणों से विद्ध मानता है, पशु-पक्षी के रोएँ और पंख उसे विरह की बाणावली दिखाई देते हैं, सारी सृष्टि उसे परमपुरुष के वियोग में कलपती जान पड़ती है। सूफियों के विरह और भारतीय भक्ति-मार्ग के विरह में भेद है। सूफियों का विरह यदि शाश्वत नहीं है तो जीवन में अपरिहार्य अवश्य है, कभी कभी बेहोशी में ही संयोग-सुख क्षण भर के लिए मिल सकता है। पर भारतीय भक्त का विरह ऐसा नहीं है। इसका कारण सूफियों के ब्रह्म की निर्गुण निराकार-भावना है। भक्तिमार्ग ने तो निर्गुण को ज्ञान-क्षेत्र के लिए छोड़कर उपासना में उसका सगुण-रूप ही ग्रहण किया है। इसी से भारतीय भक्त को विरह ज्वाला में निरंतर तपते रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन स्वच्छंद कवियों नें फारसी-काव्य-गत वेदना की विवृति के साथ इस 'प्रेम-पीर' का स्वागत किया। इनकी रचना में वियोग के आधिक्य का कारण यही है। लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी-काव्य की वेदना की विवृति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों

---

१ समुझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन प्रेम की पीर तकी।

— घनआनंद कवित्त।

की प्रेम-पीर से। कृष्णभक्ति के अंतर्गत विरह की पुकार का अवकाश पाकर ये कवि कृष्ण और गोपियों की विरह-दशा की ओर स्वभावतः उन्मुख हुए। इसी से सूफियों की भाँति रहस्यदर्शिता के व्याख्यान की व्यापक वृत्ति इनमें नहीं रह गई। निर्गुण को त्याग कर सगुण की ओर प्रवृत्ति हो जाने से इनमें रहस्य की वृत्ति विस्तार न पा सकी। भारतीय भक्तिमार्ग अपने प्रकृत रूप में रहस्यदर्शी नही रहा---उसे रहस्य, गुह्य, गोप्य आदि की आवश्यकता नही थी। ब्रह्म का सगुण रूप सामने रहने के कारण ही ऐसा हो सका है, भले ही सगुण की कामना के मूल में रहस्य हो, पर भक्तिसाधना में वह नही रहा। पर बाद में सखीभाव की उपासना का प्रसार होने पर रहस्य भी थोडा बहुत इन भक्तों में अवश्य छा गया है। 'यह रहस्यभावना सूफी भावना से प्रभावित है या स्वगत विकास है'---इस विवाद में पड़ना अप्रासगिक होगा। स्वच्छंद कवियों में सूफियों के संपर्क और प्रभाव के कारण कहीं-कही रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना से मेल खाती हुई इन कवियों की वृत्ति कृष्णभक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियों में से कई अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम की एकनिष्ठता के उपासक हुए। प्रिय की ओर से प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण में न पाकर, या उसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा खड़ी हो जाने के कारण, ये ससार से विरक्त हो गए। ऐसी दशा में इनके लिए दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण संप्रदाय का अनुगमन करते या सगुण-सप्रदाय में दीक्षित होते। निर्गुण में रूप की योजना न होने के कारण उसकी उपासना इनके चित्त के लिए अभिमत नहीं हो सकती थी, अतः इन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छँद वृत्ति लीन की। रसखानि और घनआनद दोनों ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है—

आनँद-अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानद कै ब्रह्मानद बखान ॥—(रसखानि)

ज्ञानमार्ग से उत्कृष्ट बताते हुए घनआनंद ने भक्तिमार्ग या प्रेमाभक्ति की यही विशेषता बताई है कि भोगियों का भोग या विषयानंद उसमें पर्यवसित या तिरोहित हो जाता है—

ज्ञान हूँ तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।

जान 'घनआनँद' अनोखो यह प्रेमपंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

कृष्ण-भक्ति की ओर इनके आकृष्ट होने और उसमें लीन हो जाने का वास्तविक कारण यही था। इन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमग के कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिवद्ध 'विहारी' निंबार्क (राधातत्त्व-प्रधान) संप्रदाय में दीक्षित थे। अपनी 'सतसई' के आरंभ में राधा से बाधा-हरण करने की प्रार्थना करके उन्होंने अपना संप्रदाय व्यक्त भी कर दिया है। पर वे भक्तों की श्रेणी में नहीं वैठाए गए। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नही है। घनआनंद ने अंत में भक्ति-संप्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का 'सुजान' नाम वे भूल न सके। श्रीकृष्ण का 'सुजान, जान, जानराय' आदि विशेषण रखकर वे उनकी प्रेममयी गाथा निरंतर गाते रहे। इन स्वच्छंद कवियों की आत्माभिव्यक्ति के लिए कृष्णलीला सामग्री का काम कर गई। रीतिवद्ध कवियों ने कृष्णलीला के प्रसंग बराबर लिए हैं, पर वे भक्त नहीं माने जाते, न माने जा सकते हैं। 'आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई नतु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को बहानो है' लिख देने से कोई भक्त नहीं माना जा सकता। इन स्वच्छंद कवियों ने हृदय के योग के साथ भक्ति की रचनाएँ की हैं। ये साधन के रूप में ही कृष्णलीला का उपयोग करते थे। कृष्ण-भक्तों की भक्ति-भावना परिमित, साम्प्रदायिक या आनन्य दिखाई देती है। श्रीकृष्ण से आगे वे प्रायः नहीं बढ़ते। इन प्रेमोन्मत्त गायकों ने उदारतापूर्वक अन्य देवी-देवताओं को भी ग्रहण किया। यदि कहा जाय कि यह उदारता भक्ति का लक्षण है तो पूछना पड़ेगा कि 'रहीम' ने अपनी भक्ति-भावना उदार रखी है, पर वे भक्त कवि नहीं माने जाते। 'सेनापति' रामोपासक थे, राम की कथा के साथ उन्होंने कृष्ण-कथा भी 'कवित्त-रत्नाकर' में संनिविष्ट की है; पर वे भक्त नहीं, शृंगारी कवि ही स्वीकृत हैं। इसलिए रसखानि, आलम, शेख, घनआनंद आदि को शुद्ध भक्त कहने में हिचक होती है। सूरदास या अन्य भक्त कवि जैसे पद के अंत में 'सूर के प्रभु', 'सूर के स्वामी'. 'परमानंद के प्रभु', 'छीत के स्वामी' आदि पदावली का उपयोग करते हैं, वह प्रवृत्ति भी इन कवियों में नहीं दिखाई देती। पद्माकर, मतिराम, देव आदि की जैसी उक्तियाँ हैं वैसी ही इनकी भी हैं। यदि बिना भक्त कहे संतोष न

होता हो तो विधि मिलाने के लिए यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इनकी रचना के प्रायः तीन खंड हैं। प्रथम खंड में इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है, जिसमें इनकी ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें इन्होंने काव्यक्षेत्र में अपनी वाणी की परख या जाँच की है। दूसरे खंड में इन्होंने रीतिबद्ध रचना का त्याग कर दिया है और स्वच्छंद रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया है। तीसरे खंड में इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई हैं। इन कवियों का लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हों, सो भी नहीं है। सबसे अधिक विरोध 'रसखानि' के संबंध में संभावित है। पर 'रसखानि' ने स्वयम् प्रेम को साध्य कहा है—

जेहि पाएँ बैकुंठ अरु हरिहूँ की नहिँ चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

श्रीवल्लभाचार्यजी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य अवश्य कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह कभी न भूलना चाहिए। पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं—

इक अंगी बिनु कारनहिँ, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्बस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

श्रीवल्लभाचार्यजी के अनुसार भगवद्भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है—उसे ही एकांगी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए। पर 'रसखानि' लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्तिमार्गी कृष्णभक्तों प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कविंदों—सबसे पृथक् स्वच्छंदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहता हो तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है। स्वच्छंदता इनका नित्य लक्षण है। यही कारण है कि इन्होंने काव्यशैली की दृष्टि से भी भक्तों से प्रस्थान-भेद सूचित किया। कृष्ण-भक्तों की अधिकतर रचनाएँ गीत में ही मिलती हैं। काव्य की प्राचीन कबित्त-सवैया-वाली शैली में उन्होंने पूरी आस्था नहीं दिखाई। भगवदुपासना के रागरंग के लिए राग रागिनियों के अनुकूल पदन्यास करनेवाले गीत ही उन्हें अधिक रुचे हैं। इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ पद की भी अवश्य हैं; पर इनकी एक प्रकार से

परंपरा में दिखाई पड़ती है। सूफी प्रेमकाव्यों में कल्पित कथाओं पर, या कहीं-कहीं कुछ ऐतिहासिक आधार से भी युक्त होकर, जैसी रहस्यमयी कृतियाँ लिखी गईं उनसे यह सर्वथा भिन्न है। 'बोधा' ने भी माधवानलकामकंदला-चरित्र या 'विरह-वारीश' प्रस्तुत किया, पर उसमें भी सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति रहस्यदर्शी पक्ष का समावेश नहीं है। अर्थात् कोई समासोक्ति, अन्योक्ति वा अन्योपदेश (अलेगरी) नहीं है—भले ही उसमें सूफी 'इश्क-मजाजी' और 'इश्क-हकीकी' की चर्चा हो पर काव्य-वस्तु में अध्यवसान का विधान नहीं हुआ है। इस प्रकार स्वच्छंद प्रेम के वृत्तों के ग्रहण द्वारा इस काव्य-धारा में प्रबंध की प्रवृत्ति के स्फुरण का भी संकेत मिलता है, जो रीतिबद्ध कवियों के बाँटे किसी प्रकार भी नहीं आ सकता था। 'आलम' के अन्य ग्रंथ पौराणिक या ख्यात वृत्त लेकर चले हैं। उनमें भी प्रेम के स्वच्छद और व्यापक रूप के ग्रहण का आभास स्पष्ट है।

रीति की शृंखला में बँध जाने से कवियों ने प्रकृति की ओर से भी अपनी दृष्टि खींच ली थी। भक्तों ने भी प्रकृति का कोई अच्छा उपयोग नहीं किया। प्रकृति को अपनी दृष्टि से देखने और उद्दीपन के बंधन को तोड़कर चलने का प्रयास नहीं दिखाई देता। सेनापति की रचना में प्रकृति कहीं कहीं उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिश्र का 'कृष्णचंद्रिका' नामक प्रबध-काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है, पर उधर किसी समीक्षक की दृष्टि अभी नहीं गई है। कालिदास, भवभूति आदि पुराने संस्कृत-कवियों की भाँति उस प्रबंध-काव्य में गुमान मिश्र ने प्रकृति के खुले दर्शन कराए हैं। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित 'कृष्णायन' भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। प्रकृति के खुले मैदान (महोबा, बुंदेलखंड) में रहनेवाले इन कवियों की सहृदयता प्रशसनीय है। पूर्वोक्त स्वच्छंद कवियों में प्रकृति-दर्शन की स्वच्छद रुचि भी जगी है। इनके यहाँ प्रकृति उद्दीपन के पाश से मुक्त दिखाई पड़ती है। रीति का व्यवहार अधिक होने का दुष्परिणाम जो होना चाहिए था वही हुआ—कवियों ने अपनी काव्यदृष्टि खो दी; प्रकृति को अपनी दृष्टि से निरीक्षण करना वे छोड़ बैठे। कुछ कवियों ने परंपरा का तिरस्कार करके वसंत में मयूर का नृत्य अवश्य दिखाया और वर्षा में कोकिल-कंठ अवश्य खोला, पर इससे आगे वे भी कुछ न कर सके। वसंत का वर्णन करते हुए स्वच्छंद-वृत्ति-विशिष्ट 'द्विजदेव' ही ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति-दर्शन के लिए अपनी

दृष्टि स्वच्छंद करके बाहर निकले हैं। शास्त्र-दृष्टि से काम न लेकर उन्होंने आत्म-दृष्टि का पूरा उपयोग किया। 'विरह-वारीश' में बोधा ने भी प्रकृति का वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छंद-वृत्तिबद्ध रखा है। अतः इन कवियों की स्वच्छंदता ने यथार्थ काव्यदृष्टि सामने करने का पूर्ण उद्योग किया है, इसमें संदेह नहीं रह जाता। प्रकृति इन्हें कैसी दिखाई पड़ी, इसका विचार यहाँ अपेक्षित नहीं।

स्वच्छंद दृष्टि ने देश के आनंदोल्लास में भी इन कवियों को संलग्न किया। वसंत-वर्णन के अंतर्गत होली के त्योहार का उल्लेख करने के आगे रीतिबद्ध कर्ता नहीं बढ़े। गुलाल की गरद और केसर की कीच तक ही वे रह गए। इन त्योहारों का चित्र उपस्थित करने की ओर इनकी दृष्टि स्वाधीनता के साथ प्रसरित न हुई। 'ठाकुर' ने अपनी रचना में बुंदेलखंड के आनंदोल्लासमय जीवन के कुछ चित्र रखकर देश के इस सांस्कृतिक वैभव की ओर भी लोगों की दृष्टि खींची। हम तो अपने नागरिक जीवन के अभिमान में अपना प्राचीन संस्कार भी खोते जा रहे हैं! नगरों में त्योहारों का वह उल्लासमय रूप सामने नहीं आता जो भारत के जीवन का प्राण रहा है। गाँवों में इस दृष्टि से अपने जीवन का रूप अच्छा और रमणीक दिखाई देता है। जो प्रांत या प्रदेश नागरिक जीवन की पंकिलता से दूर या विच्छिन्न हैं उनमें अब भी देश की इस विभूति के बड़े भव्य दर्शन होते हैं। बुंदेलखंड में हमारा जीवन-खंड अपने प्राचीन रूप में अब भी बहुत-कुछ सुरक्षित है। 'ठाकुर' कवि ने उस उल्लासमय जीवन में से अखती, गनगौर, वटसावित्री बरगदाई), होली आदि के बड़े ही प्रभावुक चित्र सामने किए हैं। रीतिबद्ध कवियों में से किसी-किसी ने बुंदेलखंड से संबद्ध होने के कारण 'गनगौर' का उल्लेख भर कर दिया है, जैसे पद्माकर ने; पर उसका चित्र उपस्थित करने की अभिरुचि नहीं दिखाई है। काव्यशास्त्र में इन त्योहारों का उल्लेख तो है नहीं, फिर रीतिबद्ध कवि इनका अभिनंदन करने क्यों दौड़ते।

स्वच्छंद कवियों ने इसी से रीति की रचना आरंभ में स्वीकृत करके भी त्याग दी। उसका जितना अंश उन्होंने लिया वह भी परिमित है; कुछ चुने हुए प्रसंग ही अधिक हैं। नेत्रव्यापार की कुछ उक्तियाँ सभी कवियों में पाई जाती हैं। भक्त, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त—सभी कवियों ने नेत्रों पर उक्तियाँ बाँधी हैं। 'सूरसागर' में तो इस प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि कोई चाहे तो नेत्रों

की उक्तियों का हिंदी के पुराने कवियों के काव्य से बहुत बड़ा संग्रह कर सकता है। एक छोटा-सा संग्रह निकला भी है, पर उसमें भी चमत्कारातिशय-युक्त रचनाएँ ही संकलित की गई हैं। नेत्रों की इन उक्तियों को हम रीतिबद्ध रचना के अंतर्गत नहीं ले जा सकते। खंडिता की उक्तियाँ भी इन कवियों में पाई जाती हैं। 'बिहारी' की भी कोई एक-तिहाई रचना खंडिता की उक्तियों से निर्मित हुई है। रसखानि, आलम, ठाकुर, घनआनंद—सबमें खंडिता की उक्तियाँ मिलती हैं। इसके हेतु का विचार करना भी आवश्यक है। बात यह है कि जो कवि दरबारी थे, उन्होंने तो उर्दू या फारसी की काव्यरचना के रकीबों और माशूकों के जोड़तोड़ में खंडिता को दरबार में पेश किया। भारतीय परंपरा में उन्हें खंडिता की उक्ति ही उससे मेल खानेवाली दिखाई पड़ी। सौतों की क्रीड़ा में विशेष संलग्न होने का कारण दरबारी कवियों में तो दरबारी दंगल ही प्रतीत होता है। स्वच्छंद कवियों ने इनका ग्रहण इसी से किया कि प्रेमवैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्यपद्धति में यही बात अनुकूल दिखाई पड़ी। फारसी-ढंग का प्रेम वे देशी प्रणाली के अभिमानी होकर दिखा नहीं सकते थे, प्रेम की गंभीरता पर भी तो उनकी दृष्टि आरंभ से ही थी, अतः रीतिबद्ध कवियों का यही काव्यार्थ उन्हें सुभीते का जान पड़ा। पर खंडिता की इनकी उक्तियों में भेद हैं। स्वयम् नायिका-भेद के भीतर धीराधीरादि और खंडिता के रूप में अंतर दिखाई देता है। खंडिता में अधिकतर सपत्नी के संसर्ग से उपलब्ध नायक के शरीर पर के चिह्नों पर ही विशेष दृष्टि रहती है और वह भी बेढंगे चिह्नों पर। जैसे—भाल पर महावर का चिह्न, आँखों में पान की पीक, अधरों में अंजन, छाती पर 'बेगुन की माला' आदि। रीतिबद्ध कवियों ने इन विशेष चिह्नों की उद्धरणी पर ही विशेष ध्यान दिया है; खंडिता के हृद्गत भावों पर उनकी वृत्ति प्रायः नहीं जमी है।

धीराधीरादि में भी वचनावली की कठोरता या कोमलता को ही उन्होंने लक्ष्य किया, उक्ति के साथ लिपटकर हृदय सामने न आ सका; पर स्वच्छंद कवियों ने खंडिता के चिह्नों की उद्धरणी पर ध्यान न देकर उसका हृदय दिखलाने का प्रयत्न किया है। उक्ति खंडिता की ही है, इसके लिए किसी एक चिह्न का संकेत करके वे भाव के विधान में लग गए। पर इस प्रकार की उक्तियों में भी उनका मन नहीं रम सकता था, अतः उन्होंने इनका भी त्याग कर दिया। सुरतांत या

विपरीत रति आदि की कुरुचिपूर्ण रचनाएँ स्वच्छंद कवियों की रचना में प्रायः नहीं मिलती। जहाँ मिलती हैं वहाँ उनकी आरंभिक रचना के रूप में, जब उन्होंने हाथ आजमाने के लिए रीतिवद्ध रचना की सरणि स्वीकृत की थी। वाद में ऐसी रचना की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की। 'बोधा' में ही कुछ बाजारू रंगढंग कही कहीं मिलता है। यह उनपर फारसी की रचना का आरंभिक प्रभाव है। रीतिवद्ध लक्ष्य-कारों में जो स्थिति 'रसनिधि' की है, भक्तों में जो रूप 'कुंदनशाह' का है, वैसा ही स्वच्छंद कवियों में 'बोधा' को समझना चाहिए। जो आत्मविस्मृत होकर बाहरी रंग में रंग गए हैं। कुशल हुई कि 'बोधा' ने अपनी सारी रचना इसी प्रकार की नहीं रखी। घनआनंद, ठाकुर आदि ने तो विदेशी रंग ढंग ग्रहण करने की पद्धति बताई। विदेशीपन इनकी काव्यधारा में घुल गया। 'बिहारी' ने भी रसनिधि की अपेक्षा विदेशीपन को वड़े कटकीने से ओढ़ा है, बीभत्स व्यापार कहीं ग्रहण नहीं किया।

स्वच्छंद कवियों ने अपना वैभव केवल हृदय की उदारता और प्रेम के निर्मल रूप में ही नही दिखलाया, भाषा और अभिव्यजन शैली में भी दिखलाया। रीतिवद्ध रचना प्रचुर परिमाण में हुई, हिंदी का भांडार सुंदर उक्तियों और रमणीक प्रसंगों से भर गया। किसी काव्यांग के उदाहरण की कमी नहीं रह गई, एक से एक रचना छाँटकर निकाली जा सकती है—भले ही वे रचनाएँ प्रायः एक ही प्रकार की हों; पर उनमें कवि की क्षमता के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष भी अवश्य दिखाई देता है। यह सब होने पर भी भाषा का परिष्कार उनके द्वारा वैसा न हुआ जैसा होना चाहिए था। बिहारी, मतिराम, पद्माकर-ऐसे दो-चार कवियों को छोड़ दें तो रीतिवद्ध रचना करनेवालों में भाषा की सफाई के दर्शन न हो सकेंगे। भूषण. देव आदि वड़े उत्कृष्ट कवि थे; पर शब्दों का अंगभंग इन्होंने पर्याप्त किया है। कवियो ने न तो प्राकृत, अपभ्रंश आदि के पुराने शब्दों को ही जो व्रजभाषा की वोलचाल से उठ गए थे—छाँटकर पृथक् किया और न रूप की एकता का ही विचार किया। पश्चिमी व्रजभाषा और पूर्वी अवधी की पदावली का ऐसा घालमेल हुआ कि व्रजभाषा का व्याकरण प्रस्तुत करनेवाले अब उनके पृथक् पृथक् रूपों का भेद ही नहीं कर पाते—एक ही लाठी से सबको हाँकने लगते हैं। पूर्वी और पश्चिमी प्रयोगों में भेद है। 'सुघर' शब्द व्रज में 'चतुर' अर्थ में आता

है, अवधी में 'सुंदर' अर्थ में। पछाहँ में 'सुठि' चलता है 'सुंदर' के अर्थ में, पर पूरब में 'अति' के अर्थ में। हेरना' पछाहँ में 'देखने' को कहते हैं, पूरब में 'खोजने' को। पर इन सब प्रयोगों का ऐसा एकीकरण हो गया कि भेद करना सचमुच बहुतों के लिए कठिन है। देशी ही नहीं, विदेशी शब्दों की भी आकृति बदल गई। पर स्वच्छंद कवियों में यह बात नहीं दिखाई देती, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इन्होंने न शब्दों का अंगभंग ही किया है और न प्रयोगों को बिगाड़ा ही। रसखानि और घनआनद ने तो व्रजभाषा का ऐसा स्पष्ट और ठीक रूप प्रस्तुत किया कि उसके आधार पर व्रज का पुष्ट व्याकरण बन सकता है। 'दास' जी ने व्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिन कवियों की तालिका उपस्थित की है उन सबकी भाषा का अध्ययन करने पर उसी भाषा का ज्ञान होगा जिसमें व्रज और अवधी दोनों का मेल है। सब प्रकार के मेल से बनी भाषा ही व्रजभाषा रह गई। 'व्रज' काव्य की भाषा थी, इसलिए उसमें सब प्रकार के प्रयोग मिला दिए गए। काव्य-भाषा के लिए कुछ विस्तार अपेक्षित भी है, पर भाषागत भेद बना रहना भी आवश्यक है; व्रज की मूल प्रवृत्ति का तिरस्कार ठीक नहीं जान पड़ता। रसखानि और घनआनंद ने व्रजभाषा का गठा हुआ ही रूप रखा, बिहारी ने भी उसका मूल साहित्यिक रूप सुरक्षित रहने दिया। दो-चार प्रयोग अलंकार-छद आदि की विवशता के कारण उसमें भले ही पूरब के भी आ गए हों, पर वे सरलता से पहचाने जा सकते हैं।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लड़ी बाँधनेवालों की अपेक्षा इनकी व्यंजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनआनद ने तो ऐसे ऐसे पथों से भावना को ले जाने का साहस किया है जिनपर पुराने कवि तो गए ही नहीं, नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

(१) मो से अनपहचान को पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी 'पुकार मौन में' है तो उधर नेत्रों में 'कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रबाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।

रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं बिचित्रताई सो चित-चितेरे की।

'रंग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रंग ही धुले बिना बच सकता है, पर यहाँ नेत्रों के प्रवाह में ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नहीं जा सकता। बाह्यार्थ-वैशिष्ट्य (आब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा स्वात्मवैशिष्ट्य (सब्जेक्टिविटी), कौन जाने!

इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं; हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुदरता के भेदों— रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कविताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनआनंद ने 'विरोधाभास' का बहुत सहारा लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नही पड़ने पाया है—

देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लघन करति हैं।

आँखें स्वभाव से ही निपेटिनी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भस्मी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमे जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है; जब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा में खा लेने पर भी पेट नही भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड रहा है। श्लिष्ट 'भसमी बिथा' में घनआनंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ नहीं है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनआनंद की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कही भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे वेखटके घनआनद की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अन्वय व्यतिरेक' से इनकी कृतियों के छाँटने में पूरी सहायता मिल सकती है। 'विरोध' वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कही-कहीं

दिखाई देता है, पर केशवदास जी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी हारी हम आप ही निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के साहचर्य में 'निर+दई' भी है। पर 'निर + दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ में कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनआनंद और ठाकुर ने व्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवालों में कहाँ। लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनआनंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि, पदध्वनि तो दूर रहे,'इन्होंने पदांशध्वनि से भी जगह जगह काम लिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू बहियै अरु है मो मनोरथ पूरनकारी।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण, जिस प्रकार आपने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढ़े हैं— जैसे, 'दिनदानी' के ढर्रे पर 'दिनदीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनआनंदजी व्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'व्रजभाषा-प्रवीण' और 'भाषा-प्रवीण' दोनों ही थे।

आनंदघन

आनद, आनंदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी में संगीत के सबसे बड़े संग्रह-ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनद' और 'आनदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ९२, सख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनद और आनंदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी

सभा (काशी) की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन है, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कबि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संव्रत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

—(खोज, १६२३–१० वी)।

अथवा

रितु बसंत संबत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥

—(खोज, १६२६–१० एफ्)।

इस प्रकार 'आनद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण में वर्तमान थे। उधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहादेवप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनंदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनंदघन (या घनआनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत म ये वृंदावन चले गए थे और नादिरशाह ने जब मथुरा पर अधिकार किया तो ये मारे गए (दि मार्डन वर्नाक्यलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ६२, सख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल स० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण स० १७६६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनों के समयों में सौ-सवा सौ वर्षों का अंतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंद-घन कवि दिल्लीवाले' का समय सं० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का काव्य-काल ही है, जन्म काल नहीं,

जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अंक २; अप्रैल, १९४३ में मेरा 'शिवसिंहसरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनों के समय में ४० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त 'दिल्लीवाले आनंदघन' के अतिरिक्त १४४।१ संख्या पर एक दूसरे 'आनदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है—"आनदघन, ग्रंथ-आनंदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचनाकाल—१७०५, विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितिमोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनदघन' और 'जैनमर्मी आनदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है। 'सरोज' में भी एक कवि 'आनदघन' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय स० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११)। इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनदघन' के अभेद की भी सभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में दिल्लीवाले 'आनदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही ते' प्रतीकवाला सवैया (देखिए आगे) और दूसरा यह है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहै ।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहै ।
साँची हौं भाषति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरि हू ह्वैहै ।
मो सों कहा अठिलात अजासुत कैहौं ककाजी सों तोहूँ सिखैहैं ।

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनद' के नाम से अब तक और कही मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ गुरुजनों से 'केशव-पुत्रवधू' के संबध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैयै में वर्णित है। कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके आत्मज विषय वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' ('प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) की रचना करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो

गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख मे दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली-बानी' में कठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे मैं काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्मविद्या की शिक्षा दिलाऊंगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय, तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में सलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३३५ संख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सारसग्रह' का विवरण भूमिका मे यों दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा सग्रहीत सारसग्रह, पडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। पर काशी नागरीप्रचारिणी,सभा के आर्य-भाषा-पुस्तकालय के हस्तलेख-सग्रह (संख्या ८५६) के १२५ वें पन्ने पर यही एक सवैया केशव-पुत्रवधू के नाम पर दिया गया है। केवल एक ही उदाहरण है। अतः यह 'आनदघन' या 'घनआनद' की रचना नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) में 'घनआनद' के नाम पर उदाहृत रचना दखिए—

गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं।
पाइहौं पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहीँ हरि को चित लाइहौं।
लाइहौं आछे द्विजातिन को अरु गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं।

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनद' नाम है अवश्य, पर 'आनदघन' और 'घनआनद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनदघन' या 'घनआनद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। व्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का

अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नही जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का सयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वंदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नही है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनवाले किसी कबिंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते वेढगा हो गया है। 'चाइ' के बदले 'चाइहौं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नही ठहरती। कही 'घनआनद' विशेषण न हो। जो कुछ भी हो इस सबंध में सवैया है सदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनदघन' (महात्मा लाभानदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समयसुदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद्र (स० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन-स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव-संग्रह' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख)। इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६७८ के अनतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने स० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है--

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत-सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कौं वार्‌यौ।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी

एक साथ विराजते हैं।" (राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२)। इससे भी पता चलता है कि घनआनंदजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसी से उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्रीआनंदघनजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेवशरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदासजी' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावनवासी आनंदघनजी का समय अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में भी सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

घनआनंद मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस बखेड़े को छोड़िए कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे या दरबार के 'मीर मुंशी'। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था बादशाह ने इनका गाना सुनने की हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में उन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय जिस पर ये आसक्त हैं तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया।

फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अंत में ये वृंदावन चले गए और वहाँ निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। अंत मे कहा जाता है कि मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले में ये मारे गए।

इतिहास में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह सकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। मेरे शिष्य स्वर्गीय विद्याधर पाठक ने बड़े परिश्रम से इस भ्राति का निराकरण करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उसके अनंतर श्रीज्ञानवती त्रिवेदी ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है। सं० १८४९ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पद-संग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामवन के मंदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार में आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनंद की कथा से यह 'वार्ता' कुछ मिलती है। श्रीवृंदावनदासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कंठा-बेली' में इस प्रकार किया है—

> जमन कछू संका दई ब्रजजन भए उदास।
> ता समये चलि तहाँ तें कियौ कृस्नगढ़ बास॥

(खोज, १९१७–३४ एफ्)।

अब इधर जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई है उससे इसी की पुष्टि होती जाती है कि घनआनंदजी का निधन मथुरा में ही हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमदशाह के आक्रमण में ही मारे गए। अब्दाली ने एक बार सन् १७५७ (सं० १८१३) और दूसरी बार सन् १७६१ (सं० १८१७) में मथुरा पर आक्रमण किया था। घनआनंदजी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण के अनंतर तो ये जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनदघनजी के ग्रंथों के जो बृहत् सग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका मोद' भी है। इसके अत में ये स्वयम् लिखते हैं—

गोपमास श्रीकुस्न-पच्छ सुचि।
संबत्सर छठानवे अति रुचि।

यह 'संवत्सर अठानवे' १७९८ है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण सं० १७९६ में हुआ और दिल्ली तक ही परिमित रहा। सवत् १७९८ में आनदघनजी ग्रंथ की रचना कर रहे हैं अर्थात् उसके दो वर्षों के अनतर भी जीवित हैं। इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये स० १७९६ में नहीं मारे गए। इनकी मृत्यु या हत्या नादिरशाही में कदापि नहीं हुई। पर ये अब्दाली के दोनों आक्रमणों में से पहले मे मारे गए या दूसरे मे इसका निश्चय कर लेना चाहिए। स० १८१२ में आनदघनजी कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह नागरीदास के साथ दिखाई देते हैं "जब बृंदावन से महाराज नागरीदासजी और घनानद कृष्णगढ़ आए थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंद के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविददेव के सान्निध्य में आनंदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर के महाराज जी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराज ने उनके कवित्तों की बड़ी प्रशसा की। तब आनंदघन जी ने कहा कि तुम प्रशसा करनेवाले कौन? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करै तो श्री गोवर्धनजी करैं। यह कहकर वहाँ से विदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नहीं चलेंगे पीछे ही जायँगे सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना जाता है कि मथुरा मे कत्लेआम करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े-थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों-त्यों यह ब्रजरज मे लोटते रहे, ऐसे देह त्याग किया।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७३)।

ब्रज से नागरीदास और घनआनंद के प्रस्थान का सवत् 'नागरसमुच्चय' में कवीश्वर जयलाल ने यह दिया है—

अठारह सै ऊपरै संबत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तें कियो पयान॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या को संवत् १८१३ समाप्त हो जाता है और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् १८१४ का आरंभ होता है। अब्दाली का सन् १७५७ में कत्ले-आम १ मार्च से ६ मार्च तक हुआ था। 'इंडियन एफिमरीज' के अनुसार यह समय फाल्गुन शुक्ल दशमी से चैत्र कृष्ण प्रतिपदा तक पड़ता है। इसलिए घन-आनंदजी इस आक्रमण में नहीं मारे गए। अब्दाली का हमला स० १८१३ में हुआ था, स० १८१४ में नहीं इसका प्रमाण 'खोज' के एक विवरण में मिलता है।

चाचा हितवृंदावनदासजी की 'हरिकलावेलि' के विवरण में लिखा है—"कावुल वा कंधार का रहनेवाला एक कलंदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ में और दूसरी बार सं० १८१७ में ब्रज पर चढ़ आया था।"—(त्रैवार्षिक खोज-विवरण, १९१२-१४—१९१६ के)

इस 'हरिकलाबेलि' के आरंभ मे ही लिखा है—

ठारह सै तेरहैँ बरष हरि यह करी।
जमन बिगोयो देस बिपति गाढ़ी परी।
तब मन चिंता बाढ़ी साधु पतन करे।
हरिही मनहुँ सिष्टि-संघार काल आयुध धरे॥ १॥

दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
अहो नाथ तुम जन हते, भए कौन बिधि पोच॥ २॥
बार बार सोचत यही गए प्रान बौराइ।
संत करे बध जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ॥ ३॥
सहर फरुखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास।
चैत्रसुदी एकादसी तहाँ भयौ इक रास॥ ४॥
तीन पहर रजनी गई वे कबि कीयो गान।
तहाँ एक कौतुक भयौ जाकौ करौं बखान॥ ५॥
आनँदघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा बिह्वल भयौ मन नहिं पायौ चैन॥ ६॥
ऐसेहू हरि-संत-जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दबाइ॥ ७॥

आनंदघनजी का ख्याल किसी 'इक' ने गाया। सुनकर वृंदावनदासजी विह्वल हो गए, उनके चित्त में स्थिरता नहीं रही। ऐसे ख्याल के निर्माता आनंदघनजी के समान हरि-संत-जनों को यवनों ने मार डाला। पर कब? क्या संवत् १८१३ में? न संवत् १८१७ में। यह तो लेखक आरंभ में ही कहता है कि इस या इन आक्रमणों में ऐसे-ऐसे संत मार डाले गए। लेखक ने आगे चलकर सं० १८१७ में दूसरे आक्रमण का उल्लेख किया है। सं० १८१३ में तो वह फरूखाबाद में गंगा के किनारे था। सं० १८१७ में तो उसने आनंदघनजी के शव को प्रत्यक्ष अपनी आँखों देखा था। महात्मा आनंदघनजी की 'ब्रजरज' में मिलने की इच्छा थी। उनकी यह साध पूरी हुई। उनके शव पर आँसू बहाता हुआ कवि संवत् १८१७ में आषाढ़ वदी रविवार को कहता है—

विरह सौं तायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
अहो ब्रजराज कुँअर धन्य धन्य तुमहूँ कौं,
कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तरी है।
गाढ़ौ वृज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
वृंदावन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ऐसे साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है॥ १७७॥

हरि तो 'धूल ही उड़ाते रहे', पर भक्त की निष्ठा ही सत्य निकली कि शरीर ब्रजरज में ही मिला, खंड-खंड कण-कण होकर।

मुहम्मदशाह रँगीले और उसके अमीर-उमरावों ने पतन की किस सीमा तक मुगलवंश को पहुँचा दिया था इसका भी स्पष्ट उल्लेख है—

नीत पातसाहै ऊक्यौ सूबनि मनसूब चूक्यौ
बहुत दिन निजाम कूक्यौ काबिल दरेरो कियै।
वेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते
रज-तम की धार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियै।
दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी
भूल्यो मुहमदसाह पहिले अब काह ढोकियै।

बाबर हिमायुँ को चलाऊ अब बंस भयौ
ताको यह फैल्यौ सोक परजा करम ठोकियै।

आनंदघनजी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है उसे अब सत्य मानकर हिंदीवालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माणकाल यह है—

ठारह सै सत्रहों वर्ष गत जानियै।
साढ़ बदी हरिबासर बेल बखानियै॥

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। आनंदघन-ग्रंथावली में 'आनदघन' के नाम पर जो रचनाएँ दी गई हैं उनमें 'व्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरवी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पजाबी का ही है। 'आनदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे व्रजभाषा मे भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पजाबी में हैं और रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम क सग्रह मे घनआनंद' का यह सवैया—

आपुहां तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाव मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसा करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसो न चाहिय प्रीति के भाउ मैं।
मोहन मूरति देखिबे कों तरसावत हौ बसि एक ही गाउँ मैं।

किसी 'सुजान' क नाम पर चढ़ा हुआ ह। शृगार-सग्रह में इसे घनआनद के नाम पर ही दिया गया है। सुजान की अन्य दो रचनाएँ भी वहा से नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कवित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित्त चाय चाय।
अब क्यौं कहत गुर लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासों कहौं जाय जाय।

ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सोँ
तेरे बिन देखेँ आखै रहैँ झर लाय लाय।
दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय।

सवैया

वेद हू चारि की बात कोँ बाँचि पुरान अठारह अंग मैँ धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति मैँ ।वार तेँ पारै।
राग कोँ आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रबीनता लै कहा कूप मैँ डारै।

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार में गाना गाते सकुचा रहे थे? सुजान ही जाने'।

इधर मुझे अजयगढ़ राज्य से प्राचीन कवियों का एक संग्रह मिला है जिसमें घनआनंद के कवित्तों के संग्रह के अनतर 'अथ सुजान के कबित्त' शीर्षक से 'सुजान' के ग्यारह कबित्त दिए हुए हैं, जिनमें एक तो 'पहिले तौ नैनन' प्रतीक वाला है और शेष ये हैं—

मन मेरो तुमै यह लागि चुक्यौ अब कोऊ कछू किन कैबौ करौ।
वह सूरत मोहनी रंगभरी सु दया धरि चित्त दिखैबौ करौ।
यह बीनती मेरी सुजान कहै चित दै इतनी सुनि लैबौ करौ।
कबहूँ जिय आवै तबै सुनि प्यारे मया करिकै इत ऐबौ करौ॥
हेतपगी रसभीँनी चितौनि चितै हम त्यौँ अँखियान मैँ आवत।
रूप सलूँनो दिखाय महा हिय मैँ अति आनँद को घन छावत।
सुजान ए प्रान लगे तुम ही सोँ सु क्यौँ निरमोही कहा तन तावत।
मोहनी डारि कै सोहन जू वह मोहनी मूरत क्यौँ न दिखावत॥

तेरी छवि मोहनी ने मेरो मन मोहि लीनौ,
चित दै इतीक यह बात न बिसरि जा।
तोहि बिन देखेँ मोहि कल न परति हाय,
दै करि दिखाई पीर बिरह की हरि जा।

कहत सुजान कान्ह रूप के निधान वह
मूरत किसोर मेरी आँखिन मैं धरि जा।
का जी यह लाल तेरो जो पै यह बात साजी,
मन नाहि राजी तौ नजरबाजी करि जा॥

तुम्हरे विरह तें विकल दिनरात गोपी,
रही मुरझाय कबहूँ न देखी हसती।
कोलाहल केलि जहाँ जहाँ कीन्ही तहाँ रची,
चीन्ही वा कालिंदी-कूल कुंज-डार डसती।
रावरे रहत ते लहत सब ठौर दिल,
अब उन्हें द्वारिका है सोनमई लसती।
मेरे लेखें यह ब्रज ऊजर सुजानराइ,
जिहीं ओर बसै कान्ह तिहीं ओर बसती॥

ऐसी जो रुखाई पहिले ही बनि आई ही तौ,
वैसे हिलमिल काहे रीझ भीजियतु है।
आपनो जौ मन फेरि लीनौ मेरे लालन तौ,
आगले को मन क्यौं न फेरि दीजियतु है।
तुम तौ सुजान कान आन को न चिंता तुम्हैं,
नाहक परायो तन ऐसे छीजियतु है।
बिना प्रीत प्यारे कोऊ काहे को परेखो करै,
प्रीत ही कों प्रीतम परेखो कीजियतु है॥

सीख सुनै नहि मो मन नैकु सु तौ तन देखिकै ऐसो लुभानौ।
लाज तजी कुलकान तजी सब लोक चवाई मैं नावँ धरानौ।
सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानौ।
नेह लगाय कै पीठ न दीजियै हाय इती बिनती उर आनौ॥

तुम्हरो लखि रूप किसोर सुनौ उरभयौ मन क्यौं सुरझाइयै जू।
बिन देखें तुम्हैं यौं सुजान कहै बिरहानल मैं तन ताइयै जू।
कबहूँ इन आँखिन कों वह मोहनी मूरत लाल दिखाइयै जू।
मन आवै तबै रुचि सों सुनि प्यारे मया करिकै इत आइयै जू॥

कौन कही करियौ हित आपते॑ जौ करयौ तौ अब का बिसरावत।
नंदकिसोर तिहारो सरूप लखे बिन नैन खरे अकुलावत।
प्रान परे उरझैं मुरझैं निसबासर मैन महा तन तावत।
मोहनी मूरत कों दरसाय सुजान कहौ इत क्यौं नहीं आवत॥

सुकाय सरीर अधीन करै हगनीर की बूँद की माला फिरावै।
नेह की सेली वियोग जटा लियें आह की सींगी सु पूरि बजावै।
प्रेम की आग मैं ठाढ़े जरै सुधि आरा लै आपनी देह चिरावै।
सुजान कहै कला कोटि करौ पै बियोगा के भेद कों जोगी न पावै॥

एकन सों लागी घात एकन सों करौ बात
एक आवै रात एक प्रात उठि जाती हैं।
एकन सों बदौ हो अवधि एक झाँकि जात
एक देखै बैठी बाट बीरी हू न खाती हैं।
जोई मन भावै सोई करौ जू सुजान कहै
तिहारे निहारे हम नाहि अनखाती हैं।
हमको दिखावौ पिय कौन सी है नीकी तिय
अँखियाँ तिहारी लाल जाके रंग राती हैं॥

इन छंदों से कई तथ्यों की उपलब्धि हो सकती है। एक तो यह कि 'सुजान' नाम से रचना करनेवाले का नाम 'सुजानराइ' है। 'राइ' शब्द से यह कल्पना की जा सकती है कि यह कहीं 'प्रवीनराइ' की भाँति ही न हो। यह सत्य हो तो 'प्रवीनराइ' की भाँति 'सुजानराइ' किसी 'पातुर' का नाम है। इसमें जितनी अभिव्यक्ति है नायिका, प्रेमिका या गोपी की ओर से है यह भी ध्यान देने योग्य है। दूसरे सवैये मे 'आनँद को घन' अश 'आनंदघन' से इस 'सुजान' को जोड़ता है। 'सुजान' का प्रेम जिसके प्रति है वह किसोर' है इसपर भी ध्यान जाता है क्योंकि प्रिय के 'वय' के लिए सर्वत्र 'किसोर' पद ही व्यवहृत है। ये सब घनआनंद के रूपवान होने का भी संकेत करते हैं यदि इन सबका संबंध उन्हीं से जुड़े।

उक्त सग्रह में 'घनआनद' के कवित्तों में 'सुजानराइ' का 'ऐसी जो रुखाई' प्रतीकवाला कवित्त भी धरा हुआ है। घनआनंद की ही रचना सुजान के नाम नहीं चढ़ गई, सुजान की रचना भी उनके नाम चढ़ती रही है।

'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २५०, २६४; द्वितीय, २२४) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

सिपतमणि अल्ला नबीयमणि महम्मद, दोउ जगमणि,
चत्र दिश मासूम पंरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल, यह सब जगत में लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी अवनिमणि नाभ,
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि एरावत, राजनमणि
इंद्र, गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
किताबमणि कुरान, दीनमणि कलमा, अवदनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
व्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।

—राग-कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पढ़ या गा रही है। तो क्या 'सुजान' यवनी नवनीतकोमलांगी' थी? होली में कन्हैया बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारँगीले ने 'यवनी वेश्याओं' के नाम भी तो देशी रखे थे।

'सुजान' कोई तिया' थी इसका पता सुजान-हित का छंद २०३ देगा। अब देखिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कही है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नोछावर करहूँ परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १७६।

'राग-कल्पद्रुम' में यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कवि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना !

इधर मुझे जो दूसरी नवीन उपलब्धि हुई वह 'घनआनंद' पर किसी अज्ञात रचयिता के भड़ौए हैं। कहा जाता है कि ये संवत् १८१२ विक्रमीय में संगृहीत 'जस कवित्त' नामक संग्रह में के हैं। इनसे और कई बातों के अतिरिक्त 'सुजान' का 'हुरकिनी' और 'तुरकिनी' होना सिद्ध हो जाता है—

"कायथ आनंदघन महा ००००० हो। सु ब्रज की कटा मैं आयौ। परंतु अपजस वाकौ थिर है। ताकौ बर्नन—

कबहूँक खुजावत मैं छुवती तिहि आनँद कों तब हौं सरतौ।
तब रेंगतौ केहुक अंगन पै निज देह तिहीं रस सों भरतौ।
कहुँ चौंकि कै भागनि मो गहती तब हौं उन हाथन सों मरतौ।
वह ईस कहूँ घनाअनँद कों जौ सुजान-इजार की जूँ करतौ॥

करै गुरनिंदा वह हुरकिनी कौ बंदा महा
निरघिनी गंदा खात पानीर औ नान है।
बैन कों चुरावै ताकौ मजमून लावै कूर
कबिता बनावै गावै रिजौली सी तान है।
सुरा-घट-सोखी देह माँस ही सों पोखी, बिप्र
गैयन को दोषी रूप धरे अभिमान है।
पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसौ
मुड़िया अनंदघन जानत जहान है॥

डफरी बजावै डौम ढाढ़ी सम गावै काहू
तुरकैं रिझावै तब पावै झूठौ नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
तजि राम नाम वाकौं पूजै काम धाम है।
... .
लोहा ज्यौं लगाम जैसे चलनी को चाम है।

पीवै भंगकुंडा संग राखै ०० गुंडा ००
भसुडा अनदघन मुडा सरनाम है ॥
मुदित आनंदघन कहत बिधाता सों यौं
खाल को आसन दीजौ गारी मोहि गावैगी।
मो मुख को पीकदान करियौ, सुजान प्यारी
हुरकिनी तुरकिनी थुकै सुख पावैगी।
धोती को इजार दुपटी को पेसवाज और
देहुगे रुमाल ताकौ पूछना बनावैगी।
पगिया-पायंदाज कीजियौ गरीबनिवाज
भरि गएँ मो मन पलिंग पर आवैगी ॥"

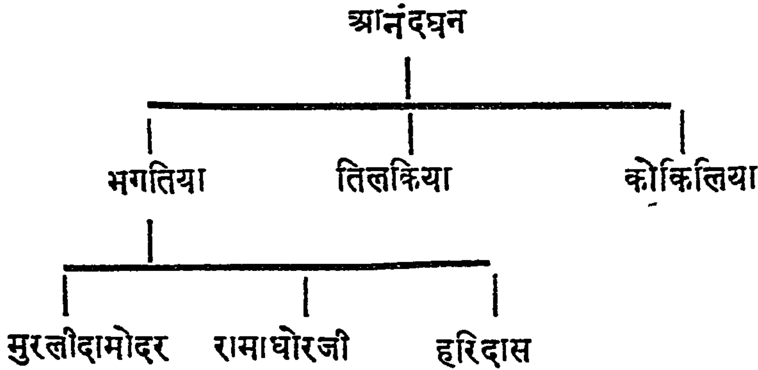
भड़ौए के कर्ता महोदय घनआनद से वहुत ही चिढ़े हैं। 'जूँ' 'पीकदान' आदि बनने के अभिलाष की कल्पना में भड़ौआपन भरपूर है, पर अन्यत्र तो गाली-गलौज है। फिर भी इसमें घनआनंद के वृत्त सबंधी तथ्यों के कुछ कण तो मिल ही सकते हैं।

जैन और वृंदावनवासी आनदघन के अतिरिक्त एक तीसरे आनंदघन भी हैं। ये तीसरे आनंदघन नंदगाँव के थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवनवृत्तों से प्रकट है कि वे सं० १५६३ में नंदगाँव गए थे। उस समय उन्होंने नंदगाँव के मंदिर मे भगवद्दर्शन किए थे। उस मदिर में श्रीनंदबावा, श्रीयशोदा, श्रीवलराम और श्रीकृष्ण के विग्रह थे। इन विग्रहों की स्थापना श्रीआनंदघनजी ने की थी। ये विग्रह श्रीनदीश्वर पर्वत से प्रकट हुए कहे जाते हैं और प्रकट करनेवाले श्रीआनंदघनजी ही थे। आनदघनजी श्रीचैतन्यदेवजी से मिले थे अर्थात् उस समय वर्तमान थे। इस प्रकार नंदगाँववासी आनंदघनजी का स्थिति-काल विक्रम की सोलहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। ये ब्राह्मणकुलोद्भव शुद्ध भक्त थे। इनके रचे दो-चार पद हैं जो नदगाँव के मदिरों में समय समय पर गाए जाते हैं।

इस प्रकार तीनों आनंदघनों का उपस्थिति-काल निम्नलिखित हुआ—

नदगाँववासी आनंदघन	सोलहवीं शती का उत्तरार्ध
जैन आनंदघन	सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध
वृंदावनवासी आनंदघन	अठारहवीं शती का उत्तरार्ध

नंदगाँव के आनंदघन 'खरोट' गाँव के थे। यह गाँव 'जोसीकलाँ' (मथुरा) के निकट है और आनदघनजी के कुलवाले अब भी वहाँ रहते हैं। नंदगाँव के मंदिर के अधिकारी इन्हीं के वंशज हैं। आनंदघनजी के वंशजों का वृत्त यों है—



नंदबाबा की सेवा का भार भगतिया के उक्त तीनों वंशजों पर है। तिलकिया के वंशज मनसादेवी के मदिर के अधिकारी हैं। कोकिलिया के वंशज श्रीयशोदा-नंदन की सेवा में रहते हैं। उल्लिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो कवित्त-सवैये और पद आदि रचनाएँ प्राप्त हैं वे वृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनंदघन और घनआनंद दोनों रखते थे। कदाचित् इनका नाम घनानंद था। इससे यह सिद्ध है कि जैन आनंदघन की रचनाओं को छोड़कर हिंदी में इस नाम से प्रचलित रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। अतः उनका विचार इसी दृष्टि से होना चाहिए।

कृतियाँ

अब घनआनद की कृतियों का विचार कीजिए। 'घनआनंद आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' मे संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनंद-कवित्त—(००–७६)।
२ आनदघन के कवित्त—(६–१२५, २६–१२ ए)
३ कवित्त—(२६–११६ डी)
४ स्फुट कवित्त—(३२–७ सी)
५ आनंदघनजू के कवित्त—(४१–१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ बी)

७ सुजानहित-प्रबंध—(२१–११६ बी)

८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)

९ वियोग बेलि—(१७–८ बी. २९–११६ बी)

१० इश्कलता—(१२–४६, ३२–७ ए)

११ जमुनाजस—(४१-१० क)

१२ आनदघनजू की पदावली—(२६–११ बी, दि० ३१–६)

१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए; २९–११६ ए)

१४ सुजानविनोद—(२३–१४)

१५ कबित्त-संग्रह —(३२–७ बी)

१६ रसकेलिवल्ली—(००–७९)

१७ वृंदावन-सत—(३२–७ डी) ।

इनमें से 'वृंदावन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य परंपरा में माधवमुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसस हंस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौं निज अस रहसि-रस तिन तें पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवत', पर 'आनदघन' पद ने जैसे औरों को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे में उसने 'आनंदघन' को पकड़ा, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी विनती पर भी ध्यान न दिया—

यह बिनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक दै चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
बृंदाबन आनदघन, अति रस सों रसवंत।
···जिय डरत हौं, यह बिनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग पचास वर्ष पहले की है—

'संबत दस सै सात अरु सात बरष है जानि।'

'रसकेलिवल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है। 'कवित्त संग्रह' और 'सुजान-विनोद' भी परकालीन नूतन संग्रह हैं। इनमें कुछ छंद नए भी मिलते हैं जो

'घनआनंद-कवित्त' अथवा 'सुजानहित' में नहीं हैं। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनआनंद-कवित्त' ही हैं, जिनका संग्रह 'ब्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने संग्रह के आदि और अंत में 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के ही संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता ब्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप का बोध दोहों मे कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं, इनका कविताकाल सं० १७८० (जन्मकाल नहीं जैसा 'मिश्र बंधु-विनोद' में माना गया है) है। यदि ये वे ही ब्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनंद-कवित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है। इस संग्रह में कुल ५०५ छंद हैं। बीच में दो सोरठे और तीन दोहे भी हैं जिनकी संख्या हस्तलेख में पृथक् नहीं गिनी गई है। प्राचीन काल में मनहरण, घनाक्षरी, सवैया-झूलना सबकी संज्ञा कवित्त थी। तुलसीदासजी की कवित्तावली में भी कवित्त शब्द का ऐसा ही अर्थ किया गया है। इस संग्रह में कवित्त शब्द इसी अर्थ का बोधक है। आरंभ में २ तथा अंत में ६ कुल ८ छंद ब्रजनाथ के हैं और घनआनंद की प्रशंसा में लिखे गए हैं।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्युनिसिपिल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन क्रम से संग्रह है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहों-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०५ छंद हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कबित्त' और 'सुजानहित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनंद-कवित्त' में 'कृपाकंद-निबंध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे 'दानलीला' का बड़ा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है। दोनों का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कबित्त की कोई अस्त व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया

हुआ संग्रह जान पडता है। इसके संग्रहकर्ता कौन थे ? पता नहीं। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधा-वल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हित-शृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि।

'कृपाकद-निबध' की पहले केवल एक ही प्रति मिली थी। छतरपुरवाले बृहत् ग्रंथ में भी इसका सकलन है। 'व्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकाड' यही है। रोमी अक्षरों की कृपा से 'कृपाकाड' का काड उपस्थित हुआ। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकद के', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका संग्रह भी छतपुरवाले ग्रंथ में था। पर कुछ लोगों का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी व्रज ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैं। दोनों एक ही हैं। यह भी सकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीं रखे गए हैं, अंत में कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदों को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीं छोटे कही बड़े हैं। कही कहीं पद अधूरे ही हैं। 'व्रजमाधुरीसार' में जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैं और 'खोज' के विवरणपत्रों का मिलान करने से एक सख्या का अतर पड़ता है। दूसरी प्रति नही मिली, अतः उसका पता नहीं चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकी-नंदनाचार्य पुस्तकालय (कामवन) में भी पहले थी, पर सप्रति उसका पता नहीं चला। दोनों प्रतियों में कोई अंतर नहीं है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहों और पद-संग्रहों में भी 'घनआनंद' छाप के छंद और 'आनदघन' छाप के पद मिलते हैं। 'खोज' के अतिरिक्त मिश्रबंधु-विनोद में छतरपुर राजपुस्तकालय के बृहत् ग्रथ का विवरण यों दिया गया है—"५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर

के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं---प्रियाप्रसाद व्रजव्योहार, वियोगवेलि, कृपा-कंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, व्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, व्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभव-चंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद।" (—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)

'घनआनंद और आनंदघन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन होने के अनंतर 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीविहारीशरणजी ने मुझे घनआनंद या आनंदघन के एक हस्त-लेख का पता दिया और मैं वृंदावन पहुँचा। हस्तलेख की प्रतिलिपि करने पर निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला—

१ प्रेमसरोवर
२ व्रजविलास
३ सरसवसंत †
४ अनुभवचंद्रिका †
५ रंगबधाई †
६ प्रेमपद्धति
७ कृपाकंदनिबंध * †
८ वृषभानुपुर-सुषमा
९ गोकुलगीत
१० नाममाधुरी †
११ गिरिपूजन
१२ यमुना-यश *
१३ विचारसार
१४ प्रीतिपावस *
१५ दानघटा *
१६ इश्कलता *
१७ भावनाप्रकाश †
१८ कृष्णकौमुदी †
१९ धामचमत्कार †
२० प्रियाप्रसाद †
२१ वृंदावनमुद्रा †
२२ व्रजस्वरूप
२३ गोकुलचरित्र
२४ प्रेमपहेली
२५ रसना-यश
२६ छंदाष्टक
२७ त्रिभंगी छंद
२८ गोकुलविनोद †
२९ व्रजप्रसाद †
३० मुरलिकामोद
३१ वियोगबेलि * †
३२ प्रेमपत्रिका * †
३३ मनोरथमंजरी
३४ पद * †

उक्त सूची में जिन पर 'तारा' (*) चिह्न लगा है वे ग्रंथ 'घनआनंद और आनंदघन' नामक संग्रह में मैंने प्रकाशित कराए थे। जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे ग्रंथ छतरपुरवाले संग्रह में भी संकलित हैं। शेष पंद्रह ग्रंथ इसमे अधिक हैं। इस संग्रह के प्राप्त हो जाने के अनंतर मेरे मित्र श्री० केसरीनारायणजी शुक्ल को लंदनसंग्रहालय के हस्तलेख-विभाग में दूसरी ही प्रति मिली जिसमे निम्नलिखित ग्रंथों का संग्रह है—

१ प्रियाप्रसाद-प्रबंध * †
२ व्रजव्यौहार *
३ वियोगबेलि * †
४ कृपाकंदनिबंध * †
५ गिरिगाथा *
६ भावनाप्रकाश * †
७ गोकुलविनोद
८ व्रजप्रसाद * †
९ धामचमत्कार * †
१० कृष्णकौमुदी * †
११ नाममाधुरी * †
१२ वृंदावनमुद्रा * †
१३ पदावली * †
१४ कवित्त-संग्रह
१५ प्रेम-पत्रिका * †
१६ रसवसंत * †
१७ अनुभवचंद्रिका * †
१८ रंगबधाई * †
१९ परमहंस-वंशावली * †
२० मुरलिकामोद †
२१ गोकुलगीत †
२२ व्रजविलास-प्रबंध †
२३ व्रजस्वरूप †

जिनपर तारा (*) लगा है वे छतरपुरवाले संग्रह में संकलित हैं और जिन पर कटार (†) का चिह्न है वे वृंदावनवाले संग्रह में हैं। सब मिलाकर घनआनंदजी की निम्नलिखित कृतियाँ अद्यावधि हिंदी में ज्ञात हो सकी हैं—

१ सुजानहित
२ कृपाकंदनिबंध
३ वियोगबेलि
४ इश्कलता
५ यमुना-यश
६ प्रीतिपावस
७ प्रेमपत्रिका
८ प्रेमसरोवर
९ व्रजविलास
१० सरसवसंत
११ अनुभवचंद्रिका
१२ रंगबधाई
१३ प्रेमपद्धति
१४ वृषभानुपुर-सुषमा

१५ गोकुलगीत
१६ नाममाधुरी
१७ गिरिपूजन
१८ विचारसार
१६ दानघटा
२० भावनाप्रकाश
२१ कृष्णकौमुदी
२२ धामचमत्कार
२३ प्रियाप्रसाद
२४ वृंदावनमुद्रा
२५ व्रजस्वरूप
२६ गोकुलचरित्र
२७ प्रेमपहेली
२८ रसनायश
२६ गोकुलविनोद
३० व्रजप्रसाद
३१ मुरलिकामोद
३२ मनोरथमंजरी
३३ व्रजव्यवहार
३४ गिरिगाथा
३५ व्रजवर्णन
३६ छंदाष्टक
३७ त्रिभंगी छंद
३८ कवित्त-सग्रह
३६ स्फुट
४० पदावली
४१ परमहंस-वंशावली

'व्रजवर्णन' का पता केवल छतरपुरवाले हस्तलेख से चलता है। अभी तक वह प्राप्त नहीं है। यदि वह 'व्रजस्वरूप' ही हो तो घनआनद के सभी ग्रंथ प्राप्त हो गए। छदाष्टक, त्रिभगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं। 'दानघटा' वही है जो 'घनआनद-कवित्त' में संख्या ४०२ से ४१४ तक संगृहीत है। परमहंस-वंशावाली में 'घनआनद' ने अपनी गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अतिरिक्त 'विहार उड़ीसा रिसर्च जरनल' के आधार पर घन-आनद की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

संप्रदाय

परमहंस-वंशावली प्राप्त हो जाने से 'घनआनंद' के संप्रदाय के संबंध में कोई सदेह नहीं रह जाता। कहा जाता है कि 'नामूला तु जनश्रुतिः'—जनता में प्रच-लित अनुश्रुति निराधार नहीं होती। पहले से ही प्रसिद्ध है कि घनआनंद ने निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। इस परमहंस-वंशावली से यही प्रमाणित हो जाता है।

इसमें गुरु-परंपरा का उल्लेख इस क्रम से है—नारायण→सनकादि→निंबादित्य→श्रीनिवासाचार्य→विश्वाचार्य→पुरुषोत्तमाचार्य→विलासाचार्य→स्वरूपाचार्य→माधवाचार्य→बलभद्राचार्य→पद्माचार्य→श्यामाचार्य→गोपालाचार्य→कृपाचार्य→श्रीदेवाचार्य→सुंदरभट्ट→पद्मनाभभट्ट→उपेंद्रभट्ट→रामचंद्रभट्ट→वामनभट्ट→कृष्णभट्ट→पद्माकरभट्ट→श्रवणभट्ट→भूरिभट्ट→माधवभट्ट→श्यामभट्ट→गोपालभट्ट→बलभद्रभट्ट→गोपीनाथभट्ट→केशवभट्ट→गंगलभट्ट→श्री केशव (काश्मीरी)→श्रीभट्ट→हरिव्यास→परमानिधि (परशुराम)→हरिवंश→नारायणदेव→वृंदावन (देव)।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इनका जन्म कब हुआ या ये वृंदावन कब पहुँचे इसका संकेत कुछ भी नहीं मिलता। इतिहास-ग्रंथों में इनका जन्म-संवत् अनुमान के सहारे १७४६ माना गया है। परमहंस-वंश के निंबार्क-संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव का समय सं० १७५९ से १८०० तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक १७५९ ही तक संभव हो सकता है। यदि उक्त अनुमित जन्मकाल ठीक माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि इनकी वय दीक्षा के समय १३ वर्ष की थी, जो इनके जीवन-वृत्त को देखते असंभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी वय २५-३० की अवश्य माननी पड़ेगी। अतः इनका जन्म-संवत् १७३० के आसपास संभाव्य है।

परमहंस-वंशावली से पता चलता है कि किन्हीं शेष से इन्हें परंपरा की रीति का ज्ञान हुआ। जिज्ञासा होती है कि ये शेष कौन थे। मंडन कवि कृत 'जयशाह-सुजस-प्रकाश' की भूमिका में उसके संपादक विद्याभूषण श्रीव्रजवल्लभशरणजी लिखते हैं—''उस समय जयपुर के श्रीनिंबार्कीय मठ-मंदिरों का प्रबंध श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य प्रकांड विद्वान् जयरामजी शेष के निरीक्षण में रहा।'' 'उस समय' का तात्पर्य है श्री वृंदावनदेवाचार्य के अनंतर अर्थात् सं० १८०० के पश्चात् से १८६० तक। वहीं वे लिखते हैं—''उनके पश्चात् १८६० सावन सुदी १३ तक महाराजा प्रतापसिंहजी ने राज्य किया। उस ६० वर्ष के समय में श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी के पश्चात् १८१४ तक श्रीगोविंददेवाचार्यजी और १८४१ तक श्रीगोविंदशरणदेवाचार्यजी महाराज आचार्य-पीठासीन हुए।'' श्रीगोविंददेवाचार्यज

के समय सं० १८०० से १८१४ तक श्रीजयरामजी शेष और श्रीव्रजानंदजी भी मठ-मंदिरों का प्रबंध देखते थे। घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इस लिए श्रीगोविंददेवजी के समय में वे वर्तमान थे। 'भोजनादि धुन' का इनके नाम से एक पद मिलता है जिसमें श्रीगोविंददेवजी का नाम भी इन्होंने लिया है—

भजि भजि भजि भजि श्रीहरिव्यास।
जौ चाहौ हरिपद की आस॥

हंसरूप नारायन स्वामी। सनकादिक नारद निहकामी।
निंबादित्य निवासाचारज। अखिल बिस्व के कारज सारज।
पुरुषोत्तम बिलास निजरूप। आचारजबर परम अनूप।
श्रीमाधव बलभद्र भजौ मन। पद्म स्याम गोपाल प्रेमघन।
कृपाचार्य श्रीदेवाचारज। चरन-सरन सुंदरभट आरज।
पद्मनाभ उपइंद्र रामचँद। बामन कृस्नभट्ट आनँदकँद।
पद्माकर - श्रवनेस भूरिभट। तिनको सुयस सकल जग परगट।
माधव स्याम भट्ट गोपाल। श्रीबलभद्र जु दीनदयाल।
गोपिनाथ केसव भट गंगल। सुमिरत भागै सकल अमंगल।
कासमीरि केसव दिगजित गुर। तिनकी कथा सकल जग परचुर।
जय जय जय श्रीभट सुखसागर। श्रीहरिव्यास त्रिलोक उजागर।
परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिबंस हंस ईस्वर बिभु।
श्रीनारायनदेव आप हरि। उचरत नाम पाप भाजै जरि।
श्रीवृंदावनदेव सनातन। चातक-रसिकन को आनँदघन।
जो यह भोजनादि धुनि गावै। श्रीगोविंददेव-पद पावै॥

श्रीवृंदावनदेवजी को 'चातक-रसिकों का आनंदघन' गुरु-पद के कारण कहते हैं। साथ ही अपने समय के पीठाधीश श्रीगोविंददेव का नाम भी लेते हैं। श्रीगोविंदशरणदेवजी के समय में यह पद नहीं लिखा गया। अन्यथा उनका नाम भी इसमें संनिविष्ट होता। ऊपर श्रीजयराम शेष के साथ व्रजानंदजी का नाम भी आया है। घनआनदजी के कवित्तों के संग्रह-कर्ता 'व्रजनाथ' यही व्रजानदजी तो नहीं हैं? एक व्रजनाथ भट्ट और हैं जो उस समय उदयपुर के प्रसिद्ध राजकार्यकर्ता

थे। ये भी घनआनंद के समसामयिक थे और निंबार्क-संप्रदाय की गद्दी के संबंध में हुए मतभेद में दौत्य कर रहे थे।

इन्होंने निंबार्क-संप्रदाय के अनुकूल 'बधाई' का पद भी लिखा है—

चिरजीवौ हंस गोपाल रसिकबर।
जुग जुग भक्ति प्रचार करैं प्रभु धरि अनेक अवतार बिमल बर।
अटल राज भुवमंडल पोषैं सनकादिक गुरु नंद-कुँवरबर।
भवसागर-तारन दृढ़ नौका आनँदघन पावै चरन-कमल बर।

निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक श्रीहंस भगवान् माने जाते हैं। इसी से इस संप्रदाय के आचार्य 'परमहंस-वंश' के कहे जाते हैं।

निंबार्क-संप्रदाय में उपासना का भाव 'सख्य' माना जाता है। यह 'सनकादि-संप्रदाय' कहलाता है और इसका दार्शनिक मत 'द्वैताद्वैत' है। इस संप्रदाय में 'सखी-भाव' की उपासना चलती है। 'सख्यभाव' की उपासना करनेवाले महात्माओं के, जो साधना के अनेक सोपान पार कर इस भाव में लीन हो जाते हैं, सांप्रदायिक नाम भी उनके सिद्ध गुरुओं द्वारा रख दिए जाते हैं। निंबार्क-संप्रदाय की गद्दी पर आसीन होनेवाले सभी आचार्यों के सांप्रदायिक नाम थे और वे अपने अंतरंग परिसर में उसी नाम से अभिहित होते रहे हैं। ऐसे नाम साधना की ऊँची भूमिका में पहुँचने पर ही प्राप्त होते हैं। 'नगर-समुच्चय' में जो वृत्त 'आनंदघन' के संबंध में राजकवि जयलाल ने दिया है उससे 'आनंदघन' जी महात्मा कोटि में माने जाते थे। प्रेमसाधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े बड़े साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़ 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गए थे। अतः संप्रदाय में उनका सखीभाव का नामकरण हो गया था। यों तो निंबार्क-संप्रदाय के जितने आचार्य हुए हैं साधनागत उन सभी के सखीनाम थे, पर यहाँ निंबार्क-संप्रदाय के अत्यंत प्रसिद्ध आचार्य हरिव्यासदेवजी से घनआनंद के गुरु श्री वृंदावन जी तक प्रत्येक आचार्य के सखीनाम दिए जाते हैं। अपनी परमहंस-वंशावली में घनआनंदजी ने अन्य आचार्यों का तो प्रसिद्ध नाम ही दिया है किंतु परशुरामाचार्य का उन्होंने सखी नाम दिया है। वे लिखते हैं—

तिनके पाट बिराजि कै परमानिधि श्रीमान।
पदवी कों पदवी दई मुनिबर कृपानिधान॥

यहाँ 'परमा' परशुरामाचार्य जी का सखीनाम है । इनका लोक-व्यवहार का नाम उन्होंने अपनी 'भोजनादि धुन' में स्पष्ट दिया है—

परसुराम सुखधाम महाप्रभु । श्रीहरिवंस-हंस ईस्वर बिभु ॥

जिन्हें इस बात का पता न होगा वे 'परमानिधि' को अपाठ या अपपाठ मानेंगे और यह अनुमान करेंगे कि हो न हो 'परमानिधि' के स्थान पर मूल में 'परसुराम' ही रहा होगा । 'परमानिधि' के बदले 'परसुराम' दोहे में ठीक ठीक बैठ जाता है । प्रश्न हो सकता है कि ऐसा उन्होंने क्यों किया । इसका उत्तर सरल नहीं है । पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'परमहंस-वंशावली' का प्रयोग संप्रदाय के ही लोगों के लिए है । उन्होंने कहा भी है कि यह 'गुरुमुखी' लोगों के लिए है,—

परमहंस-बसावली रची सर्चा इहिँ भाय ।
कठ धारिहैँ गुरुमुखी सुखदाई समुदाय ॥

इसीसे एक स्थान पर यह 'रहस्यमय' नाम भी दे दिया जिससे अतरंग-मंडल के लोगों को यह संकेत मिल जाय कि लेखक का उसमें भी प्रवेश है ।

अब आचार्यों के सखीनाम देखिए—

श्रीहरिव्यासदेव	...	हरिप्रिया सखी ।
श्रीपरसुरामदेव	...	परम सहेली ।
श्रीहरिवशदेव	...	हित अलबेली ।
श्रीनारायणदेव	...	नित्य नवेली ।
श्रीवृंदावनदेव	...	मनमंजरी ।

संप्रति घनआनदजी के सखीनाम का पता न संप्रदायवालों को है, न साहित्यवालों को, पर इनकी नवीन प्राप्त दो पुस्तकों से इनके सखीनाम का संकेत मिलता है 'वृषभानपुरसुषमावर्णन' में स्पष्ट कहा गया है :—

नीको नावँ बहुगुनी मेरो । बरसाने ही सुंदर खेरो ।

यह नाम स्वयम् श्रीराधा ने रखा है—

राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ । सोई अरथ हियेँ अभिलाख्यौ ।

'बहुगुनी' की कला कब प्रदीप्त होती है इसे भी जान लीजिए—

रीझनि बिबस होत जब जानौ। तब बहुगुनी कला उर आनौ।
ताही सुरहि साध कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गासनि खोलौं।
दुरी बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ न परत कछू तब।

'प्रियाप्रसाद' में भी यह नाम श्रीराधा का रखा हुआ कहा गया है—

राधा धरयौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ।

'बहुगुनी' सदा श्रीराधा के साथ रहती है अथवा श्रीराधा बहुगुनी का साथ नहीं छोड़तीं। 'बहुगुनी' तान-गान में प्रवीण है, श्रीराधा के मित्र को वह अपने इस गुण से रिझाया भी तो करती है—

राधा सब ठाँ सब समै रहति बहुगुनी-संग।
तान रमन-गुन-गान को लै बरसावति रग।
राधा अचल सुहाग के ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी रिझवति राधा-मीत।

घनआनंद जी संगीत के बहुत अच्छे जानकार थे, जनश्रुति में यह प्रसिद्ध है। किशनगढ़ से प्राप्त चित्र में उनकी प्रशस्ति में 'गानकला में अति कुसल' लिखा है। चित्र में वे सितार लिए वीरासन से बैठे हैं। राग-रागिनियों में उनके सहस्राधिक पद मिलते हैं और कविता में कहीं कहीं मृदंग ठनकता जान पड़ता है ऐसे ढंग से पदावली रखी गई है।

संपादक की कुछ प्रमुख कृतियाँ

वाङ्मय-विमर्श
बिहारी
हिंदी में नाट्य-साहित्य का विकास
काव्यांग-कौमुदी
हिंदी का सामयिक साहित्य
हिंदी-साहित्य का अतीत
तुलसी-मंजरी
प्रसाद
भूषण-ग्रंथावली
पद्माकर-पंचामृत
घनआनंद-कबित्त
कवितावली
रसखानि
केशव-ग्रंथावली
दास-ग्रंथावली (अप्रकाशित)
ग्वाल-ग्रंथावली ,,
बोधा ,,
आलम ,,
ठाकुर ,,
सूरसागर (सटिप्पण) ,,

घनआनंद

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै ।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै ।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै ॥ १ ॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी ।
जग की कबिताई के धोखैं रहैं, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी ।
समझै कबिता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥ २ ॥

कबित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरबिंद-बृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं ।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं ।
कैधौं अद्भुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं ।
चोर चित्त-बित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कबित्त घन जी के हैं ॥ ३ ॥

प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बंद-रीति सुकति-अधार हैं ।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज-नेह-भरे झलकैं अपार हैं ।

कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।
ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कबित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै ।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत षंड बढ़ै, हिय सोच उपावै ।
चित्र-बिचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै ।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥

कोटि बिषै करि ओट महा नहिं नेह की चोटहि जो पहचानै ।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै ।
चाह-प्रबाह अथाह परे नहिं आप ही आप बिचच्छन मानै ।
पूँछ-बिषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥ ६ ॥

बिनती कर जोरि कै बात कहौं जो सुनौ मन-कान दै हेत सौं जू ।
कबिता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं इहि खेत सौं जू ।
जु पढ़े बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौं जू ।
[रस-स्वादहि पाय बिषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौं जू] ॥ ७ ॥

—ब्रजनाथ ।

सुजानहित

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु निहारे ।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे ।
एक अचभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे ।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ।। १ ।।

आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी ।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी ।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी ।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ।। २ ।।

रूपनिधान सुजान लखैं बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है ।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है ।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदें महा अकुलानिमई है ।
बूड़त ज्यौ घनआनँद सोचि, दई बिधि व्याधि असाधि नई है ।। ३ ।।

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै ।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड़, मीत के पानि परे कौं प्रमानै ।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ।। ४ ।।

पाठांतर—१–नेकु–नीके । २–दीठिहि–दीठि की (राम) । ४–नीर०–नीर सनेह । रीति–नीति (प्रयाग) । पानि–पानैं (कवित्त) ।

शब्दार्थ—[१] तारे=पुतलियाँ । तारे=ताले । [२] अनेरी=विलक्षण । नेरी=थोड़ा भी । [३] ऊखिल=पराया, अपरिचित । सलाक=शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली) । ज्यौ=जी । [४] समानै=सम, तुल्य । पानि=

मेरोई जीव जौ मारत मोहिँ तौ प्यारे कहा तुम सौँ कहनो है।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसोई भागनि को लहनो है।
आस तिहारियै हो घनआनँद कैसेँ उदास भएँ रहनो है।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है॥५॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैँ उपहास-कहानी।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी।
यौँ उघरे घनआनँद छाय कै हाय परी पहचानी पुरानी॥६॥

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही।
दीठि कौँ और कहूँ नहिँ ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही॥७॥

पहिलेँ घनआनँद सीँचि सुजान कहीँ बतियाँ अति प्यार-पगी।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैँ कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी॥८॥

हित भूलि न आवति है सुधि क्यौँ हूँ सु यौँ हूँ हमैँ सुधि कीजत है।
चित भूल तौ भूलत नाहिँ सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है।
दृढ़ आस की पासनि कंठ तेँ फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है।
अब देखियै कौ लौँ घिरै घनआनँद आव को दाव सो दीजित है॥९॥

५—जौ तौ—तौ जौ। ८—बियोग०—बियोग बलाय की लाय (कॉक०)। ९—भूलि—भूलि (राम)।

हाथ। प्रमानै=प्रमाणित करता है। जान=सुजान। [५] जान=सुजान; चतुर। [६] उघरे=हट गए। [७] दोही=दुहाई। [८] बियोग०=वियोगाग्नि। विसास=विश्वासघात। घरी०=घड़ी लग गई, कैसा समय आया। [९] ज्यौ=जी। धीजत है=स्थिर होता है। पास=पाश, फंदा।

रसमूरति स्याम सुजान लखैं जिय जो गति होति सु कासौं कहौं ।
चित चुंबक-लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिं जेतो गहौं ।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१०॥
मन-पारद कूप लौं रूप चहैं उमहै सु रहै नहिं जेतो गहौं ।
गुन-गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं ।
घनआनँद चेटक-धूम मैं प्रान घुटैं न छुटैं गति कासौं कहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥११॥
मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं ।
जिहिं बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासौं कहौं ।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक-आँच दहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१२॥
रससागर नागर स्याम लखैं अभिलाषनि-धार-मँझार बहौं ।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं ।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासौं कहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१३॥
सजनी रजनी-दिन देखैं बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं ।
अँसुवा हिय पै घिय-धार परै उठि स्वास भरै सुठि आस गहौं ।
घनआनँद नीर समीर बिना बुझिवे को न और उपाय लहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१४॥
दुख-धूम की धूँधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिरयौ घुटिहै ।
मनभावन मीत सुजान सौं नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै ।

१२–हेरि न–हेरनि (भदा०)। लहौं–लहैं (प्रयाग) १४–उठि–सुठि। सुठि–सुचि (कॉक०)। नीर–तीर। १५–न ताऊ–तनऊ (प्रयाग)। जीवन–

आव=जीवन। दाव=दावाग्नि। [१०] चुहटै=चिपटा है। उहटै०=हटता नहीं। [११] पारद=पारा। कूप=कुप्पी। गाड़=गड्ढा। चेटक=जादू। [१२] छीवति न=छूती नहीं। [१३] गुण ; डोर, रस्सी। [१४] सुठि=सुंदर। [१५] तनकौ=थोड़ा भी। धन=धन्या, प्रेमिका। घुटि=कसकर।

धन जीवन प्रान को ध्यान रह्यौ, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै ।
घुरि आस की पास उसास-गरैँ जु परी सु मरैँ हू कहा छुटिहै ॥१५॥

अँगुरीन लौँ जाय भुलाय तहीँ फिरि आय लुभाय रहै तरवा ।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छबि छाय छवा ।
घनआनँद यौँ रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा ।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन मेरो झवा ॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैँ पीक-पगी पलकैँ ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि फबीँ सुथरी अलकैँ ।
अँगराति जम्हाति लजाति लखैँ अंग अग अनंग दिपैँ झलकैँ ।
अधरानि मैँ आधियै बात धरैँ लड़कानि की आनि परैँ छलकैँ ॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैँ पंडित ।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियौ हरि लेत हैँ आरस-मंडित ।
वेधि कै प्रान करैँ फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित ।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥१८॥

देखि धौँ आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैँ कैसी ललाई ।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भैँटन आई ।
फूलत कंज कुमोद लखेँ घनआनँद रूप अनूप निकाई ।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥१९॥

जीवति (राम),जीवनि (प्रयाग)। १६–तरवा–'तरवों' आदि तुकांत (प्रयाग)। १७–फबीँ–भवीँ । लखैँ–लसैँ (राम) १८–रँगीले–रसीले (काँक०)। हियौ–हियैँ (राम)। १९–भेँटन–भेषन (कवित्त)। लखैँ–बिषैँ (काँक०)।

पास=फंदा। [१६] धपि=शीघ्रता से। छवा=पैरों का टखना। पायनि०=पैरों के हाथ मेँ पड़ा हुआ (वश मेँ होकर)। झवा=पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईँट का टुकड़ा, झाँवा। [१७] रस-आरस=आनंद मेँ लीन होने से उत्पन्न आलस्य। सुथरी=सुंदर, मनोहर। लड़कानि=मस्ती, ललक। [१८] आनँद०=आनंद की मदिरा पीकर मत्त। चोज=मस्ती। [१९] लाल=

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ ।
लोयन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ ।
है किधौं नाहिँ लगी अलगी सी लखी न परै कबि क्यौं हूँ प्रमानौ ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ ॥२०॥

क्यौं हँसि हेरि हर्यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई ।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई ।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई ।
मीत सुजान अनीत की पाटी इते पै न जानियै कौनें पढ़ाई ॥२१॥

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै ।
गसि गौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै ।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै ।
अब याही परेखँ उदेग-भर्यौ दुख-ज्वाल-पर्यौ जुरझै मुरझै ॥२२॥

रूप के भारनि होति है सौंहीँ लजौंहियै दीठि सुजान यौं झूली ।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहीँ पलकौ गति भूली ।
बैठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली ।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन साँझ तौ साँझ सी फूली ॥२३॥

कबित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसैं रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ ।

प्रिय । [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है । बूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रों से । तानौ = उसकी तान ; फैलाओ । भेद = रहस्य । हौं जानौ = मेरी समझ में ऐसा ही आता है । [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियों पर । [२२] छंदनि = छल-कपट से । दुरी० = छिपी गाँठ को । परेखँ = पछतावे में । जुरझै = जलता है । [२३] झूली = झुकी हुई है । समतूली = योग्य, तुल्य । साँझ० = अर्थात आँखें

चातक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
　　सुजान-रूप-बावरो बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये मैं बसाय आय,
　　हाय कब आनँद को घन बरसायहौ ॥ २४ ॥

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
　　बावरो भयौ है मन मेरो न सिखौ सुनै।
मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
　　रीझ की उझिल घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
　　दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैँ गुनै।
नेह लाय रूखे अब कैसैँ हूजियत हाय,
　　चंद ही के चाय ह्वै चकोर चिनगी चुनै ॥ २५ ॥

तरसि तरसि प्रान जानमनि-दरस कौं,
　　उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।
बिषम बिरह के बिसिष हियैँ घायल ह्वै,
　　गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
　　मुरझि अनोखी उरझनि मैँ गसत है।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
　　कटनि सौँ आसा-पट कटि लै कसत है ॥ २६ ॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैँ,
　　फूले रस-भूले घनआनँद अनत ही।

२५—सिखौ—सिखैँ (राम)। २६—लोभी—लोनी।

लाल हैं; [२४] अनोखे० = आप के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] सिखौ = सीख भी। उझिल = उड़ेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ। गुनै = गुण; रस्सी। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = ग्रस्त

कैसैं सुधि आवै बिसरैं हूं हो हमारी उन्हैं,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तही ।
कहा करैं जी तैं निकसति न निगोड़ी आस,
कौनें समभी ही ऐसी बनिहै बनत ही ।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥ २७ ॥

एड़ी तैं सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैं रही री सनि ।
सहज सुछबि देखें दबि जाहिं सबै बाम,
बिन ही सिँगार औरै बानिक बिराजै बनि ।
गति लै चलनि लखैं मतिगति पंगु होति,
बरसति अंगरंग-माधुरी बसन छनि ।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाय,
लागै चौंध चेटक अमेट-ओपी भौंहैं तनि ॥ २८ ॥

रतिरंग-रागे प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
लागेई आवत घूमि घूमि छबि के छके ।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि मैं,
कबहूँ उमगि रहैं कबहूँ जके थके ।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके ।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरें हू लाज सौं ढके ॥ २९ ॥

गसत—फसत (प्रयाग)। २८—री—है (राम) ।

होता है। कटनि = ढब से। [२७] तमी = तमिस्रा, रात । तारनि० = आँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अँगेट = अंगदीप्ति। चेटक = जादू। अमेट० = घुमाव से चमकती । [२९] बलकनि = उफान, प्रवाह ।

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तें ।
कौंवरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौं,
लाड़नि सु लसि हुलसति मति चोरतें ।
बड़े मैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप-जोर तें ।
सहज बनो है घनआनँद नवेली नाक,
अनबनी नथ सौं सुहाग की मरोर तें ॥ ३० ॥

केलि की कलानिधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौनि ।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि ।
पिय - अंग - संग घनआनँद उमग हिय,
सुरति - तरग रस - बिबस उर - मिलौनि ।
झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, श्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥ ३१ ॥

अंग अंग स्याम-रंग रस की तरंग उठै,
अति गहराई हिय प्रेम-उफनानि की ।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै अँखियानि की ।
महाछबि-नीर तीर गए तैं न टरयौ जाय,
मोहनता-निधि विधि पुहमी पै आनि की ।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-ज्यारी,
वृंदावन-सोभा सीवँ सुख-सरसानि की ॥ ३२ ॥

३०—जोर—डोर (राम) । ३२—गहराई—घहराय ।

[३०] बेह=छिद्र । ठौन=ठवनि, मुद्रा । मति०=बुद्धि को चुराती हुई । अनबनी=बेढंगी । [३१] सौनि=सोने (कुंदन) का लाल वर्ण । लाज०=लज्जा से युक्त । [३२] पूर=प्रवाह । पानिप=जल ; शोभा । आनि=लाकर । भान=वृष-

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसैं सुहाति बसी तहाँ नाँसी ।
ज्याय हितै हनियै न हितू हँसि बोलन की कित कीजत हाँसी ।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी ।
हाहा सुजान अचंभो अयान जु भेदि कै गाँसहि बेधति गाँसी ।। ३३ ।।

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति ।
जोबन घूमरे नैन लखैं मति-बौरी भई गति वारि कै मोमति ।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हति ।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तैं होति कहा अति ।। ३४ ।।

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी ।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी ।
मेरी ह्वै मोहिँ कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी ।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ।। ३५ ।।

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे ।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौं दुख-दोष-भरे ।
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ।। ३६ ।।

३३–अयान–अजान । जु–ज्यौं (राम)। ३६–हिय–हित ।

भानु (राधा के पिता)। ज्यारी = जिलानेवाली । [३३] नाँसी = मारने की बान । भेद० = हृदय से पीड़ा की गाँठ काटकर भाले की नोक चुभ रही है । [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई । थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी गति रुक गई । घूमरे = मतवाले । मोमति० = अपनत्व को निछावर करके । अन० = न चाहनेवाली की चाह मार-कर भी जिला रही है । जान० = जान (सुजान ; जी) के जी की बात नहीं समझ पड़ती । [३५] आड़ = परदा । चाड़ = उत्कट इच्छा । लाग = लगन । सहेटी = घुमक्कड़ । निपेटी = भुक्खड़ । [३६] हिय० = हृदय का पोषण ।

चाह-वढ़्यौ चित चाक-चढ़्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै ।
नैक थकैँ छवि-पान छकैँ घनआनँद लाज तौ रीझनि भीजै ।
मोह मैँ आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै ।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै ॥ ३७॥
पहलैँ अपनाय सुजान सनेह सौँ क्यौँ फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू
घनआनँद आपने चातिक कौँ गुन-बाँधिलैँ मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैँ यौँ बिष घोरियै जू ॥ ३८ ॥
रति-साँचैँ ढरी अछवाई भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै ।
छवि घूमि घुरै न मुरै सुरवान सौँ लोभी खरो रस भूमि खगै ।
घनआनँद ऍंड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तैँ भरै न डगै ।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥ ३९ ॥

कबित्त

तोरै लाज-दामै सु छुटावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सोखति सयान की ।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै, प्रान
पैठि उमगावै टैँठ मेटति गुमान की ।
धुनि मैँ वतावै मौन, थकनि जतावै गौन,
हौँ न जानौँ कौन बिधि सीखी तीखी तान को ।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै वन वंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥ ४० ॥

जु–सु । सु यौं–महा । प्यारे–मीत (राम) । ४०–टें ठ–ऐं ठि ।

[३७] न धीजै = ठहरता ही नहीं । आवरी = व्याकुल । दसा० = मेरी दशा दिनदिन दुःख से क्षीण ही होती जाती है । [३८] तेह = रोष । गुन = गुण ; डोर बाँधिलैँ = बँधे हुए को । बिसास = विश्वास । [३९] अछवाई = अच्छाई, सुंदरता । सुरवा = एड़ी के ऊपर चारो ओर का घेरा । खगै = लीन हो जाता है । मिड़ै = चिपक जाता है । भरै = समय काटता है । [४०] दाम = रस्सी । चेटक = जादू । मैन = काम । धुनि० = ध्वनि में मौन हो

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै ।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ।।४१।।

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागतिँ नाहिँ सुभाय निमेखैँ ।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहिं पेखियै लाखनि लेखैँ ।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहैँ दुखहाई परेखैँ ।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखैँ ।।४२।।

पीर की भीर अधीर भईँ अँखियाँ दुखिया उमगीँ झरना लौं ।
रोकि रही उर-मैड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं ।
भीजि बरैँ घिय-धार परैँ हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं ।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैँ कोनी अनीति कहा गौं ।।४३।।

फैलि परी धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति ।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।
क्यौं बचियै भजियै घनआनँद बैठि रहैँ घर पैठि ढँढोरति ।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ।।४४।।

४२–निमेखैँ–'निमेखौं' आदि । दुखहाई–दुखदाई (राम) । ४४–परी–रही ।

जाने का संकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है। थकनि०=उसकी गति (गौन) रुकने का इंगित करती है। [४१] आन= शपथ। सहारियै=सहारा दीजिए। [४२] दुखहाई=दुखिया। आँखिन०= आँखों ने अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी संभव कर लिया) पर वे अपना किया स्वप्न में भी (भूलकर भी) नहीं देखतीं। [४३] उर०=उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेड़ थी वह भी बह गई, छाती फट गई। दौं=अग्नि। गौं=घात। [४४] धर०= पृथ्वी से आकाश तक। मरीचि०=किरणों की लहरें। तरेरना=थपेड़ा देना।

कवित्त

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरै दाव आवहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े नैन चैन-चुहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद,
उमंग-ओपे अंगनि अनग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन व्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जो सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४६॥
रंग लियौ अबलानि के अंग तैं च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सोंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।
प्रान-अबीरहि फैंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥४७॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।
नैन मिलैं उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

४५—आवहीं—पावहीं। नैन—बैन। (राम)। ४८—चमूप-भूप (प्रयाग)।

ढँढोरति = ध्यान देकर ढूँढ़ती है। [४५] चीते = मनचाहे। जिवारी = जिलानेवाली। पैज = प्रतिज्ञा। हार = माला; पराजय। दियरा = और तो दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर योग (सयोग) जगाते हैं। उसे सिद्ध कर रहे हैं। [४६] चुगो = चारा। आथन लग्यौ = अस्त होने लगा। [४७] ढोवा = दुलाई। बिगोवा = विनष्ट। [४८] मवासी = गढ़पति। गढ़ासी = विप्लव करनेवाले। सची = बनाई।

कबित्त

आसहि अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै ।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़यौ रहै ॥ ४९ ॥

बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसैं नीचियै परै ।
अंतर-पुढ़ाई फटै चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सौं जरै ।
दुख-धूम-धूँधरि मैं घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जौ सुजान तनकौ ढरै ।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही हरै ॥ ५० ॥

जल-बूड़ी जरैं दीठि पाय हू न सूझ करैं,
अमी पियैं मरैं मोहिं अचिरज अति है ।
चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकैं बड़ी भूतागति है ।
खुलैं तारे लगैं आँखैं तारी त्यौं न पगैं पिय,
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है ।
गुन बँधैं कुल छूटैं आपौ दै उदेग लूटैं,
उत जुरैं इत टूटैं आनँद बिपति है ॥ ५१ ॥

५०—हरै–दरै (राम) ।

[४९] गुनै = डोर को । दुहेली = दुःखमयी । [५०] पुढ़ाई = दृढ़ता ; पुष्टता । झर = ज्वाला । अरस = आलस्य ; नीरसता । [५१] भूतागति = भूत का सा

रूप - गुन - मद - उनमद नेह - तेह - भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेकौ,
प्रानन सौँ खेलैँ अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैँ,
सीँचे घनआनँद खुले सकोच सौँ मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैँ अनेरे कहूँ,
घाती वड़े काती लिये छाती पै रहैँ चढ़े ॥ ५२ ॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को।
भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर, अंग सोखै संग चीर को।
जीवो विप-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौँ,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैँ सरस बहै परस समीर को ॥ ५३ ॥

वहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैँ उठि जान कौ।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौ।

५२—नेकौ—क्यों हूँ (राम)। सोँ—मैँ (प्रयाग)। ५४—(राम) में नहीं है। व्यापार, विलक्षण वात। गुन=गुण; डोर। [५२] तेह=रोष। अरबीले= अड़नेवाले। अनेरे=आततायी, दुष्ट। [५३] मंजन=मार्जन, स्नान। रंजन= प्रसन्न करनेवाले व्यापार। [५४] आस०=आशा के फंदे मेँ। खरे०=अति हड़बड़ी मेँ। पत्यानि=विश्वास। न थिरत=छिँकते नहीं, पकड़े नहीं जा सकते। निदान=अंत मेँ। अधर०=ओठों पर आ लगे हैं। पयान=प्रयाण।

झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौं ॥ ५४ ॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्रानिनि भावते संग लियें अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।
ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥५५॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाड़िली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझै सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कवै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥५६॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेहनिधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे।
सौतिन तैं पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिनि लै पल-पाट उघारे ॥५७॥

कबित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परब री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी।

५७—नेहनिधान—रूपनिधान (काँक०)। जिनि—जिय (राम)।

[५५] भीजे = सरस। [५६] पन = प्रतिज्ञा। [५७] इकौसैं = अकेले, एकांत मैं। [५८] अरबरी = व्याकुलता। आरति = दुःख। परब = पुण्यकाल; पूर्णिमा।

बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरवरी ॥ ५८ ॥

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलह मदन मयमंत है ।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सुरस मधुराई को न अंत है ।
मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है ।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसत है ॥ ५९ ॥

ललित तमालनि सौं वलित नवेली वेलि,
केलि-रस झेलि हँसैं लह्यौ सुखसार है ।
मधुर विनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है ।
वन की वनक देखैं कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनै को पुकार है ।
विन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत वसंत हमैं होत पतझार है ॥ ६० ॥

देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे.
नीठ न परत जानि दीठ किधौं छल है ।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ जोहियत,
आरसी-दरस लौं परम ध्यान जल है ।
निपट अटपटी दसा सौं चटपटी-बीच,
बूड़त विचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै ।

हरवरी = हड़बड़ी, उतावली । भीजत = बढ़ती है । सरवरी = शर्वरी, रात ।
[५६] बैस = (वयस्) उम्र । [६०] झेलि = प्राप्त करके, भोग करके ।

कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥ ६१ ॥

तू ही गति मेरे मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरेँ चोप-कूप गिरी लेज लाज की ।
सुनि हो सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
प्रीति-सिंधु परे आस तो हित जहाज की ।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ हीं बड़ाई घनआनँद सु काज की ।
हाहा दीन जानि याकी बिनती लीजियै मानि,
दीजै आनि औषद बियोग-रोगराज की ॥ ६२ ॥

सवैया

ह्वै निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहि पागैँ ।
आन दै जान कहौं तुव आनन लागि न आन सौं लोयन लागैं ।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जौ तो मिलि जागैं ।
रंग रचैं सुठि संग सचैं घनआनँद आंगन क्यौं सुख त्यागैँ ॥६३॥

कबित्त

सब सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै ।
देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकैं चकि चाहनि मैं चिंता पागियै रहै ।
तोरि लाज-साकरैं घिरै हैं सोभा-साकरैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै ।

६४–परी–आली । सुजान–सुकुंद ।

पतझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि । [६१] नीठ = कठिनाई से । दीठ = (दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य । छल = भ्रांति । अनमिले० = न मिलने का ही पोषण होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं । [६२] लेज = रस्सी । [६३] निस-वादिल = स्वादहीन । सुठि = सुंदर । [६४] साँकरैं = श्रृखलाएँ । साँकरैं =

ऐसी कछु बानि चाह-बावरे दृगनि परी,
दरस-सुजान लालसाई लागियै रहै ॥ ६४ ॥

पल-दल-संपुट मैँ मुँदै मन मोद मानै,
आरस-बिभावरी ह्वै होत भौँरहाई है ।
द्वै सरोज बीच एक वसत रसत कैसैँ,
लसत सु ऐसैँ अचिरज अधिकाई है ।
वाहिर तैँ रूप-मकरंद-पान करै पुनि,
बड़ी भूतागति हेरैँ मो मति हिराई है ।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौँ प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६५ ॥

सवैया

रिस-रूसनैँ रूखियै ऊठ अनूठियै लागति जागति जोति महा ।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सु बोलनि की कहियै धौँ कहा ।
ननिहारनि हेरि न हारति दीठि औ पीठि दियैँ समुहात लहा ।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै यह बात हहा ॥६६॥

कवित्त

उर-गति ब्यौरिवे कौँ सुदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सौँ मिलन अभिलाखियै ।
बातैँ रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस भीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै ।
भाग जागैँ जौ कहूँ विलोकैँ घनआनँद तौ,
ता छिन कौ छाकनि के लोचन ही साखियै ।

६५-पुनि-पुन्य (राम) । ६६-यह-हित (राम) ।

संकट मैँ । ग्रास० = आशा का फंदा पड़ा रहता है । [६५] भौँरहाई = भौँरों का मँडराना । भूतागति = भूत की सी दशा, विलक्षण बात । [६६] ऊठ = उमंग । ननिहारनि = (आप का मुझे) न देखना । [६७] गाँस० = छोटी

भूलै सुधि सातौ दसा-बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥ ६७ ॥

सपने की संपति लौं भई है मलोलमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ ।
जकी ह्वै थकी हौं जड़ताई पागि जागि पीर,
धीर कैसैं धरौं मन सो धन झराँ गयौ ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ ॥ ६८ ॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियौ जान प्यारे,
इते पै अचभो छोरि दीनी जु सुरति है ।
उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है ।
तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तैं गरैं गाँठि सी घुरति है ।
कैसैं घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है ॥ ६९ ॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है ।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना,
रुचि के बिचार सौं समोय सीझी मति है ।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है ।

६९—बचाय—नचाय (प्रयाग) । तैं गरैं—पै हियें । लिलार—लिखार (राम) ।

फाँस । सुधि० = पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि । [६८] झराँ = खो गया, चोरी चला गया । पह = पौ । [६९] जानी = समझी । लिलार = माथा,

मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है ॥७०॥
हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि विडारौ तौ बिचारो न कछू कहै ।
पाल्यौ प्यार को तिहारौ तुम ही नीकैं निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है ।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियैं कहौं,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै ।
देखैं रूप रावरो भयौ है जीव वावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि परयौ दहै ॥७१॥

सवैया

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै ।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग वने बिन कैसैं बियोग टरै ।
कवहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीर भरै ।
मिलि हू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै ॥७२॥
ऐ मन मेरे कहा करी तैं तजि दीन चल्यौ जु प्रबीन ह्वै तो सौ ।
ल्याई न काहुवै आँखि तरे हौं कहूँ कवहूँ करि तेरो भरोसौ ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली भई वावरे मोसौं भरयौ कित रोसौ ।
सोचत हौं जिय मैं अपने सपने न लहौं घनआनँद दोसौ ॥७३॥
आपु अनंग न संग को रंग भरयौ रिस आनि कै अंग पजारत ।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत ।
और अनीति कहाँ लौं कहौं घनआनँद जो कछू आपदा पारत ।
कैसैं सुहाति सुजान तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसैं बिसारत ॥७४॥

७२–भीर–भीज । ७३–भई–करी ।

भाग्य । [७०] धन = धन्या, प्रिया । सीझी = भिनी हुई । [७१] आन = शपथ । मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत । [७२] झरै = झड़ी ही । भीर = भीड़, मेला । [७४] आपु० = अंगों की सी वनावट काम मैं नहीं,

रीझ तिहारी न बूझि परै अहो बूझति हैँ कहौ रीझत काहैँ ।
बूझि कै रीझत हौ जु सुजान किधौँ बिन बूझ की रीझ सराहैँ ।
रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत बूझि न रीझे हू और निबाहैँ ।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआनँद रीझ औ बूझहि चाहैँ ॥७५॥

कबित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौँ ज्यौँ पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौँ त्यौँ तन ताँवरे तचै ।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकैँ हियौ,
गहकि गहकि गहबरनि गरैँ मचै ।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहैँ,
कैसैँ घनआनँद सुजान बिन ज्यौ बचै ।
महकि महकि मारै पावस-प्रसून-बास,
त्रासनि उसास दैया कौ लौँ रहियै अचै ॥ ७६ ॥

ललित उमंग-वेली आलबाल-अंतर तैँ,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी ।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी ।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैँ इन है पढ़ी ।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥ ७७ ॥

७६—गरैँ—हियैँ (राम) ।

वह अनंग है । ऐन=घर । [७५] बूझ=बुद्धि । मूझत=बेसुध होता है । [७६] ताँवरे=ताप से । गहबरनि=व्याकुलता । चहकि०=जला देती है । अचै=पीकर । [७७] सगुनौती=अर्थात् मंगलपाठ । [७८] कौंधा=चमक,

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे इत चातक प्रान तपे तरसैं।
विन पावस तौ इन ध्यावस हो न सु क्यौं करि यौं अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित हा अँखियाँ उघरी बरसैं ॥७८॥

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान पै वारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनँद कीजै विचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥७९॥

कवित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरें को सुनै।
नेह-रस-हीन दीन अंतर मलीन-लीन,
दोष ही मैं रहे गहे कौन भाँति वे गुनै।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसैं धौं करौं उनै।
टरै नहीं टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥ ८० ॥

नीके नैन ऐन आय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरें हिय सियरात है।
एरी मेरी सहज लडीली अरवीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहैं लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तैं गँवेली गरवीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उसगनि उमदात है।

७८–इत–इग (राम)। ८१–आय–पाय। दियें ०–दीजै पिय सों न मानै यौं (राम)।
झलक। ध्यावस = स्थिरता, धैर्य। [७९] चौचँद = शोर। [८०] चवाई = बदनामी करनेवाले। खीस = लज्जा। [८१] अरवीली = हठी। लाड़ौ = प्यार

आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
दान दियँ पियै सौं न मानै वाँ ही जात है ॥ ८१ ॥

सोभा को निकेत नेत भाखत निगम जाहि,
ताके सुख हेत मीनकेत रसखेत है।
सकल बननि सिरमौर ठौर ठौर जाकी,
राखैं चख-ढौर और थाकै चित-चेत है।
राधा-पद-अंकित विराजि रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तैं दीपति उपेत है।
मधुर बिनोद जहाँ आनँद-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥ ८२ ॥

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकैं छबि हू को अनूपम रूप कढ्यौ है।
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ्यौ है ॥
आनँद के घन राग सौं पागि सुजान सुहागहि भाग बढ्यौ है।
लाड़ तैं लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ्यौ है ॥८३॥

घूँटै घटा चहुँघा घिरि ज्यौं गहि काढ़ै करे जो कलापिन कूकैं।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।
एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि ध्यावस सूकैं।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरौं चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥८४॥

अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै नित पान लखै मुख-त्यौं रँग-चायनि।
औरौ सिँगार सदा घनआनँद चाहैं उमाह सौं आपने दायनि।

८२-नेत-जोरि (भदा०) । ढौर-ठौर (काँक०,प्रयाग) । ८३-सुहागहि-सुहागिल (काँक०) । ८४-ज्यौं-कै (राम) ।

भी बहल जाता है। गँवेली = गाँव की रहनेवाली। [८२] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है। राखैं० = नेत्र उसे ही देखते हैं। उपेत=युक्त। [८३] चोज = उमंग। [८४] कलापी = मयूर। चहकै = जलाती है। ऊकैं =

तू अलवेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि ।
ऐ परि नाच कै सॉच छकौ जु लट्टू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि ॥८५॥

मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिवोई है महासुख-लाहौ ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान पै चाहैं परे तुम नेकौ न चाहौ ।
रावरी वानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ ।
कै विपरीति मिलौ घनआनँद या बिधि आपनी रीति निबाहौ ॥८६॥

कबित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै ।
उठी है उदेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै ।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै ।
तरफौं विसूरि कै बिथा न टरै सूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥ ८७ ॥

सवैया

मिहँदी लगि पायनि रंग लहे सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै ।
तरुनाइयै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै ।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै ।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु तें आपु लसै ॥८८॥

८८—लगि—रँग । तरुनाइयै—तरुनाई पै । गसै—वसै (राम) ।

टल्का, लुक । ध्यावस = धैर्य । [८५] त्यौर = चितवन । ऐ परि = ऐ परि = फिर भी । [८६] चाहैं = चाह में पड़े हैं । [८७] नेरे० = निकट (अनुकूल) होकर फिर दूर (प्रतिकूल) होकर । [८८] सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट । सौंधो = सुगंध, इत्र आदि । कोक = कोकशास्त्र के निर्माता । सुघराई = चतुरता ।

कबित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कबि मित्रन को पोखै मन चैन है।
नेह-निधि बाढ़्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौं मन मैं न है।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचैगो स्रवन कहि सुधासने बैन है॥ ८९॥

मोहिं दीठि-कारन हौ दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तैं पियौं या तिहारे रूप के रसै।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लागै जौ पै बीच बरुनी बसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं बिचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै॥ ९०॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं,
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं बरै,
ढरै नैन नीर बीर! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगैं, अब
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।

८६—मन—कहूँ (राम)।

[८९] अपूरब = पूर्वेतर दिशा ; अद्वितीय। बुध = ग्रह ; पंडित। कबि = शुक्र ; काव्यकर्ता। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। [९०] भटभटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना। [९१] घट = शरीर। बीर = हे सखी।

जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ९१ ॥

अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैं ।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीं मड़रात हैं ।
इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, डर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैं ।
जानि अनखौंहीं बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैं ॥ ९२ ॥

साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तब ही सबनि तजी अब हौं कहा तजौं ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
यौं ही इन काज लाज बिन हूँ खरी लजौं ।
ऐसी कै बिसारी गौं तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौं ।
कौन बिधि कीजै कैसें जोजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं ॥ ९३ ॥

घेरयौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे फानुस के दीप हौ ।
लोचन-पतंग संग तजै न तौऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौं भरे ध्यान-सीप हौ ।

९२–डर-उर । ९४–भरे-बरे (राम) ।

मति० = 'आह' करने की चेतना । झर = ज्वाला । उमाह = उमंग । [९२] सिराएँ = बीत जाने पर ; ठंढी पड़ने पर । अनखौंहीं = रूठनेवाली । [९३] सयान = चतुरता । निदान = अंत में । गौं = घात । बिसासी = विश्वासघाती । भाजत = भागते हो । भजौं = भजती हूँ । [९४] घट = शरीर ; फानूस

ऐसैं कहौ कैसैं घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिँघासन बैठे सुरत-महीप हौ ।
दीठि-आगै डोलौ जौ न बोलौ कहा वस लागै,
मोहिँ तौ बियोग हू मैँ दीसत समीप हौ ॥ ९४ ॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि ह्वै हूजत क्यौँ करुवे गहि दोसनि ।
आपुन त्यौँ तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि ।
तासौँ इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि ।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौ ऐ परि यौँ मरियैगो मसोसनि ॥ ९५ ॥

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौँ जु पै भूलि ही कौँ ठिक ठानत हौ ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥ ९६ ॥

कबित्त

रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह - ओपी अरुनई है ।
उपटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है ।
महारस-भीर परैँ लोचन अधीर तरैँ,
ओछी ओक धरैँ प्यास-पीर-सरसई है ।

९७–उपरि–उलटि । ओछी–आछी (राम) ।

की हाँड़ी। अंतराय = विघ्न । पटनि० = परत पर परत करके लपेटे वस्त्र । पानुस = फानूस । पतंग = फतींगा । सुरत० = स्मृति के शासक । [९५] मीठे = मधुर ; प्रिय । करुवे = कड़वे ; विमुख । त्यौँ = ओर । भिजई = सरस की । ऐ परि = फिर भी । [९६] भूलि रहे = मगन हो रहे हैं। सुधि० = आप मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अतः मेरी सुध इसी बहाने आप के मन पर चढ़ती रहती है । सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे

कैसैं घनआनँद सुजान प्यारी छवि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥ ९७ ॥

नीकी नासापुट ही की उचनि अचंभे-भरी
मुरि कै इचनि सौं न क्यौं हूँ मन तें मुरै ।
रूप-लाड़ जोवन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै ।
सहज हँसौंहीं छवि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै ।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरवीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरै ॥ ९८ ॥

अलग भयौ है लगि तुम्हैं और ठौरन तैं,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै ।
क्यौं हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक असोहियै ।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन विधि टोहियै ।
जब तें सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥ ९९ ॥

सवैया

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै ।
घनआनँद भाजि हँसै सुलसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै ।

९८—जोवन—जीवन (राम)। ९९—लगि—ला अदा०)।

भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते। भूलि कै=भूले भटके। [९७] उझिल= उमड़ाव। तेह=तीखापन। उपटि=उभर कर। ओछी=छोटी। ओक=अंजली। [९८] न मुरै=हटती नहीं। मिहीं०=मंद मधुर स्वर से। रुरै=छा जाती है। ढुरै=मुद्रा के साथ मड़ती है। [९९] सुलग्यौ०=सुलगता (जलता) रहता है; भली भाँति लगता है। खरक=खटक। दुहेली=दुखद। दीठि०=

पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै ।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ॥१००॥

कवित्त

जब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिवे की आन ।
रस-भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,
मधु-मकरंद-सुधा नावौं न सुनत कान ।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करत गान ।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिँघासन पै विराजै तिन ही को ध्यान ॥१०१॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी ।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी ।
चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जोबन साखी ।
नैनन पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥१०२॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी किधौं मान मवास गढास की घाटी ।
कै रसराज-प्रबाह को मारग बेनी बिहार सौं यौं दृग दाटी ।

१००–मधु–छबि (कॉक०)। १०१–इन–है न (भदा०) । १०२–जोबन–जीवन (कॉक०) ।

दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है । [१००] मधु = शराब । भीजि = शरूर चढ़ने पर । बलकै = नशे में उमंगित होती है । इकौसी = अकेली । [१०१] आन = अन्य । आन = शपथ । ज्यारी = जिलानेवाली । [१०२] पानिप = शोभा । गुन = गुण ; डोर । पाट = रेशम । ही = हृदय । चाह = इच्छा । नैननि० = नेत्रों के हाथ में । राखी = रक्षा का

काम-कलाधर ओपि दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखैँ घनआनँद आनन आन तैँ होति उचाटी ॥१०३॥

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैँ धरकै खरकै दुख दोहतु है।
दृग-आगे तैँ बैरी कहूँ टरै न जग-जोहनि-अंतर जोहतु है।
घनआनँद मीत सुजान मिलैँ बसि बीच तऊ मति मोहतु है।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौँ हूँ बिछोहतु है ॥१०४॥

कबित्त

गहैँ एक टेक टारि दीने हैँ बिवेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहि रितौत हैँ।
कैसैँ कही जाय हेलो इनकी दुहेली दसा,
जैसैँ ये बियोगी निसिबासर बितौत हैँ।
कहिवे कौँ मेरे पै अनेरे घेरे जाहिँ नाहिँ,
अति ही अमोही मोहिँ नेकौ न हितौत हैँ।
जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तेँ अनोखे नैन काहू न चितौत हैँ ॥१०५॥

तैँ मुँह लगाई तातेँ मोहिँ मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है।

१०३–सधितटी–सिंधुतटी। किधौँ०–सोभित मान-मवास की (राम)। दाटी–डाटी। ओपि–कोपि (काँक०)। १०४–धरकै०–घर कै दुख को सुख। जग–जगि। मति–मन (राम)। १०५–नैन०–दृग काहिँ।

डोरा। [१०३] सुमेरु=पहाड़; मेरुदंड। संधितटी=संधिस्थल। मवास=पहाड़ी किला। गढ़ास=गढ़न। रसराज=शृंगार; जलराशि। बिहार०–हिलने से। दाटी=प्रतीत होती है। ओपि०=घोटकर चमकाई। पाटी=पट्टी, पटिया। आन=अन्य। उचाटी=उच्चाटन। [१०४] ढिग=पास। जोहने०=देखने के समय बीच में से झाँकता रहता है। [१०५] रितौत=खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं। हेली=हे अली। दुहेली=दुखद। अनेरे=विलक्षण, अपरिचित।

तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन तें नींद गई नसि है ।
छोरि छोरि डारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है ।
आरस-रसीलो घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौं मेरी मति लीनो कसि है ॥१०६॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय बावरो डराय काँपिबो करै ।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै बीचि आभा ऐन,
नैन हेरें हेरनि हिये मैं भूख लै भरै ।
नेकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै ।
ताकें तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमानि को गरूर ओरे लौं गरै ॥१०७॥

बेध्यौ लै बिसासी मोह गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि घनो मेरो मरम महा पिराय ।
हित न लखाय क्यौं हूँ धाय हाय कहा करौं,
जरौं बिषज्वाल पै न काल कैसें हूँ निराय ।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई गई हेरि हौं हिराय ।
है री घनआनँद सुजान बैरी पैंड़े परयौ,
दै री अब ऊतर यौं धीर हू चल्यौ धिराय ॥१०८॥

१०७–बीचि–चिर (राम) । १०८–हित–होत ।

न हितौत = हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते । [१०६] सोई=सोई हुई । सोई = वही । गसि गयौ = चिपट गया । [१०७] चलदल० = पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है । निपात = पतन । बाय = वायु । बीचि = लहर ; चचलता । ऐन = भरपूर । पीठि देना = विमुख होना । नीठि=कठिनाई से । तो = तेरा । [१०८] मरम = मर्मस्थल । न निराय =

सवैया

जिन ही वरुनीन सौं वेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
विष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौं रस मैं अब रोष दिवावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०९॥

उर आवत है अपने कर द्वै वर वेनी विसाल सौं नीकैं कसौं ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि किये अनखौंहैं सुभाव के त्रास त्रसौं ।
घनआनँद यौं वहु भाँतिनि हौं सुखदान सुजान-समीप बसौं ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौं ॥११०॥

साँच के सान-धरे सुर-वान पै छूटैं विना ही कमान सौं जोटैं ।
दीसैं जहाँ के तहाँ सु चलैं अति घूमति है मति या चख-चोटैं ।
घाय को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैं ।
प्रान सुजान के गान-विंधे घट लोटैं परे लगि तान की चोटैं ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन ।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद वूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौंहन ॥११२॥

११०–विसाल–विलास । कसौं–गसौं (राम) । नै–मैं (कॉक०) ।
११२–रावरी–रावरे (राम) । मति–मन (कॉक०) ।

निकट नहीं आता । पैंड़े० = पीछे पड़ा । धिराय = धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०९] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । विष० = विषयुक्त । अजौं = अब भी । [११०] नै = झुककर । [१११] सुर० = स्वररूपी बाण । जोट = प्रतिपक्षी पर । चाड़ = उत्कंठा । [११२] गोहन = साथ । दीठि० = दृष्टि को

कबित्त

मोहिँ दुख-दोप दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिंता मोहिँ चूरि तोहि राखै निधरक है।
रवाय कै जगावै मोहिँ बिहँसावै स्वावै तोहि,
तेरैँ भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौँ करक है।
तोहि चैन-चाँदनी मैँ सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै बारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोबन-रूप-अनूप-मरोर सोँ अंगहि अंग लसै गुन-ऐँठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैँठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैँठी।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैँठी ॥११४॥
गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैँ पुनि आभा-तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियैलैँ बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११५॥

११३–दोखै–सोखै। तोहि०–पोखै सुख तोहि मोहिँ। मोहिँ०–चिंता चिता। बारै–मारै (राम)। ११५–पुनि–इन (राम)। छयौ–घयौ (कॉक०)।

दुह लेता है। सौँहन=शपथैँ। [११३] रवाय=रुलाकर। करक=कड़क, टीस। अरक=अर्क, सूर्य। अतरक=अतर्क्य। [११४] गुन=गुण; डोर। चोख=फुरती। ऊठ=उठान। अमैँठी=उमेठी हुई। गरैँठी=टेढ़ी। टैँठी=(प्राकृत टेंटा) चंचल। [११५] गोरे=गौर। डँडा=बाहु। पहुँचा=कलाई। पहुँची=एक गहना। रयौ=लीन हो गया। हियैलैँ=पहेली।

सवैया

जिन ही बरुनीन सौँ बेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
विष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौँ रस मैँ अव रोप दिवावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०९॥

उर आवत है अपने कर द्वै बर वेनी बिसाल सौँ नीकैँ कसौँ ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियैँ अनखौँहैँ सुभाव के त्रास त्रसौँ ।
घनआनँद यौँ बहु भाँतिनि हौँ सुखदान सुजान-समीप बसौँ ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौँ ॥११०॥

साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैँ बिना ही कमान सौँ जोटैँ ।
दीसैँ जहाँ के तहाँ सु चलैँ अति घूमति है मति या चख-चोटैँ ।
घाय को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैँ ।
प्रान सुजान के गान-बिँधे घट लोटैँ परे लगि तान की चोटैँ ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन ।
सूझ सवै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौँहन ॥११२॥

११०—विसाल—विलास । कसौँ—गसौँ (राम) । नै—मैँ (काँक०) ।
११२—रावरी—रावरे (राम) । मति—मन (काँक०) ।

निकट नहीं आता । पैंड़े० = पीछे पड़ा । धिराय = धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०९] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । विष० = विषयुक्त । अजौँ = अब भी । [११०] नै = झुककर । [१११] सुर० = स्वररूपी बाण । जोट = प्रतिपत्ती पर । चाड़ = उत्कंठा । [११२] गोहन = साथ । दीठि० = दृष्टि को

कवित्त

मोहिँ दुख-दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिंता मोहिँ चूरि तोहि राखै निधरक है।
रवाय कै जगावै मोहिँ विहँसावै स्वावै तोहि,
तेरैँ भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौँ करक है।
तोहि चैन-चाँदनी मैँ सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै बारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोबन-रूप-अनूप-मरोर सौँ अंगहि अंग लसै गुन-एँठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैँठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैँठी।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैँठी ॥११४॥
गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैँ पुनि आभा-तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियैलैँ बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११५॥

११३—दोखै—सोखै। तोहि०—पोखै सुख तोहि मोहिँ। मोहिँ०—चिंता चिता। बारै—मारै (राम)। ११५—पुनि—इन (राम)। छयौ—घयौ (कॉक०)।

दुह लेता है। सौँहन=शपथैं। [११३] रवाय=रुलाकर। करक=कड़क, टीस। अरक=अर्क, सूर्य। अतरक=अतर्क्य। [११४] गुन=गुण; डोर। चोख=फुरती। ऊठ=उठान। अमैँठी=उमेठी हुई। गरैँठी=टेढ़ी। टैँठी=(प्राकृत टेंटा) चंचल। [११५] गोरे=गौर। डँडा=बाहु। पहुँचा=कलाई। पहुँची=एक गहना। रयौ=लीन हो गया। हियैलैँ=पछेली।

कबित्त

प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसैं मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।
ताहि एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं हेरैं सरसायौ है ॥११६॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ़्यौ,
विना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
वानिक-निकाई नीकैं हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोच दीजियै जताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सरसैयै सुख,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥११७॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तैं टरी।
वोलनि चितौनि चारु डोलनि कपोलनि सौं,
चाहि चाहि रंक लौं सु संपति हियैं धरी।
ऐसैं ही मैं सहज विरह कित हू तैं आय,
वावरे-सुभाय-वस कुटिलाई है करी।

११६–पयोदधि–महोदधि। उमडि–उमगि। हेरैं–देखैं। ११७–सोच–सोऽत्र। सरसैयै०–सुख–दुख कैसे (राम)। ११८–कपोलनि–कलोलनि।

[११६] वार=इस ओर का तट, किनारा। सरूप=प्रेम का रूप।
[११७] सुरस=जल ; आनंद, प्रेम। [११८] प्रानदान=जीवनदायिनी।

अब घनआनँद सुजान प्रानदान भेटौं,
बिधि बुधिआगर पै जाचत वहै घरी ॥११८॥

प्रानन के प्रान एहो सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै ।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै ।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
वाहि चिंता-चिता-बीच ऐसें अब दाहियै ।
सब बिधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौं रसीले गुनगननि सराहियै ॥११९॥

सवैया

देखि सुजान छके घनआनँद ढीठ भए सु न नीठ सकोचत ।
चाह के दाह भरे कित तैं नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत ।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत ।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत ॥१२०॥

तेरे बिना ही बनाय की बानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन ।
को कबि सो छबि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिंगार-कलापन ।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जबैं कछु लागै अलापन ।
नाचहि भाव के भेद बतावत, है घनआनँद भौंह-चलापन ॥१२१॥

कबित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रबीन ।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारौ,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन ।

११९–सहज–असह । १२०–छके–छए (राम) ।

[११९] भीजे=सरस, सुखी । [१२०] नीठ=कठिनाई से भी । नीरद=बादलों सी अश्रुवृष्टि । पानिप=पानी ; शोभा । [१२१] बनावट=सजावट । सची=इंद्राणी । अलापन=उत्तमता । कलापन=समूह । चलापन=चंचलता ।

जतन कहा बनाऊँ तुम ही तैं तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई गुन गाऊँ बावरे लौं हितलीन ।
रहौं लागि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥१२२॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो ।
निघटत नाहिँ मो घटाई, उघटत क्यौं हूँ,
रावरी बड़ाई आहि प्रीतिपन पारिबो ।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौं,
चातक बिचारे को है ज़ीवन बिचारिबो ।
यातैं निसदिन रस बरस दरस ओर,
टक जक लाय लोभी करत निहारिबो ॥१२३॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर,
नाहि और ठौर, काहि साँकरै सम्हारियै ।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे
आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै ।
गुनमाला फेरौं, निगुनी ह्वै नित हित हेरौं,
विरह - अधीर टेरौं पीरहि निवारियै ।
पन तन ताको जो हो काचो सो तौ आहि पाकौ,
आनँद के घन प्रीति-साको न बिगारियै ॥१२४॥

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।

१२२–वनाऊ–वताऊँ। गुन–जस। १२३–रस०–सव रस दरसाएँ और (राम)। १२४–हो–हौं। पाको–याको (कॉक०)।

[१२२] अजानता=अज्ञान। जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। रसरासि=आनंद की राशि; समुद्र। [१२३] निघटत०=घटती नहीं। उघटत=कहने से। जीवनि=जीना। [१२४] साँकरै=संकट में। आन=दुहाई। माला=समूह; जपमाला।

देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय।
ऐसैं घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय फरौं हाय हाय ॥१२५॥

बैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सौं कलोलै,
गैन-संग डोलै पै न परस-परोस है।
हेरति हिरावँ, एक ठौर हू न लहौं ठावँ,
झुरि मुरझावँ बीर ऐसी पीर को सहै।
पाय न परति बात प्रान पैठि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है।
आपने किये की छाँह बैठियै बखानै जग,
वे तो घनआनँद मो देखन हीं दोस है ॥१२६॥

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैं कौन पै घिर।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक-रंग,
लाडिली लटक-संग लोयन लगे फिरैं।
अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं।

१२५—करौं—कहौं (राम)। १२६—पैठि—पौढ़ि। हीं—को (राम)। १२७—मतवारी—मतवारौ। प्यारी—प्यारौ (भदा०)। मटक—सटक। अभिनै—अनिनय (काँक०)।

तन = ओर। साकौ=ख्याति। [१२५] निगोड़े = बुरे (गाली), पैर से हीन। तावरेन = ताप, ज्वर। न बसाय = वस नहीं चलता। [१२६] ऐन = घर। गैन = गमन। परस० = स्पर्श की निकटता। बीर=हे सखी। पाय०=समझ में नहीं आती। प्रान० = प्राणों में लेटकर, बसकर। [१२७] घूमरे = मत्त। अभिनै = अभिनय, नाट्य। सोधौ = खोज भी। कनावड़े = दबैल।

राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥१२७॥

अंग अंग छाई है उदेग-मुरझानि महा,
साँस लैबो आली गिरि हू तें गरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
जोबन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारै कौन,
बिरह-बिषम-जुर जीबो करुवौ लगै ॥१२८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसैं बिधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि. हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥१२९॥

गोकुल-नरेस नंद-वंस को प्रसंस चंद,
सोभा-सुखकंद प्रेय - अमिय - निवास है।
सो नित चकोर-चोप तो हित भर्यौ ही रहै,
सुनिहै सुजान कौन माधुरी - बिसास है।

१२८—मुरझानि—उरझानि ; बिषम—विषाद (राम)। १२९—अंक—आँक (प्रयाग, काँक०)।

[१२८] सलत = घुसते हैं। तूल = रूई। हरुवौ = हल्का। [१२९] सिराए = शीतल हुए। परेखो = पछतावा। बिधि० = भाल में ब्रह्मा के लिखे अक्षर।

उचित जु होइ ऐसैं मेरे मन आई,
जैसैं बाढ़्यौ घनआनँद सुदृष्टि-झर आस है ।
जगत मैं जोति एक कीरति को होति है पै,
तो तैं राधे कीरति के कुल को प्रकास है ॥१३०॥

सवैया

फल होत दियैं सम कै अधिकै बरनैं कबि कोबिद यौं सब ही ।
बिपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही ।
उत कौं घनआनँद गौं है यही, इत की जु सुजान परी सु सही ।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपैं हम चिंत लही ॥१३१॥

नैन कहै सुनि रे मन ! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है ।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तैं भयौ है ।
लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है ।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है ॥१३२॥

नाच लटू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि ।
त्यौं सुर-सॉच-सवाद सनैं मन झूठियै लागति बीन की बोलनि ।
नेकु हँसैं सु करोरिक चंदनि चेरो करै दुति-दंत-अमोलनि ।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥१३३॥

मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौ न छकै को ।
भूल कौं सौंपि तबै जु सबै सुधि काहू की कानि कनौड़त कै को ।

१३०–चंद–बंदि । सो–जो । सुनिहै–सुनियै । बिसास–बिलास । उचित–उदित । जु होइ–जुन्हाई (राम)।बढ़ायौ–बाढ़ी (काँक०, प्रयाग) । तो तैं०–राधिका तौ (राम)। १३१–परी–बनी(राम)। १३२–गुन–मन (काँक०) । १३३–मन–मत (प्रयाग) ।

[१३०] झर = झड़ी । कीरति के० = कीर्ति (राधिका की माता का नाम) का वंश प्रकाशित है । [१३१] सम० = बराबर या अधिक । [१३२] तनकौ० = उन्हें मन में ही छिपा रखा है । [१३३] लड़ीलियै = सुहानेवाली । [१३४] मादिक = मदिरा । न छकै० = कौन मत्त नहीं हो जाता । कानि कै को कनौड़त=

प्राननि वारि निवारि कै लाजहि ऐसी बनै बिन काज, सकै को ।
बावरे लोगन सौँ घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥१३४॥
जान प्रवीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भरयौ नित राजै ।
सो सुर सॉच कहूँ नहिँ छाड़त ज्यौँ ही बजावै लियँ मन बाजै ।
भावती मीड़ मरोर दियँ घनआनँद सौगुने रंग सौँ गाजै ।
प्यार सौँ तार सु ऐँचि कै तोरत क्यौँ, सुघराइयै लावत लाजै ॥१३५॥

कबित्त

पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी ।
नैन पिचकारी ज्यौँ चल्यौई करैँ दिनरैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।
कहाँ लौँ बखानौँ घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी ।
तिहारे निहारे बिन प्रानंनि करत होरा,
बिरह-अंगारनि मगारि हिय होरी सी ॥१३६॥

चोप चाह चॉचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैँ टारैँ कुलकानि-कीचि कै ।
घात लै अनूठी भरैँ चेतक चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौँध बीच कौँध सौँ टिकै ।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैँ जिनकी निकाई पै बिकै ।

१३५—लावत—लाजत (राम)। १३६—परि—परी (राम)। अंग अंग—मानो अंग (कॉक०)।

मर्यादा का विचार करके कौन दबता है। सकै०=कौन सँभाल सकता है। [१३५] राग=प्रेम ; गान। सुघराइयै=चतुरतर को। [१३६] दुहेली=कष्टमयी। होला=होरा, लपट में भुना अनाज का हरा पौदा। मगारि=जला कर। [१३७] चाँचरि=चर्चरी राग, होली का गान। चेतक=जादूभरी।

रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मार हुरिहाईं न कहूँ छिकै ॥१३७॥

सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल हौ,
दीन के हृदै कौं दैया दुखनि कहा दरौ ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ ।
मेरो दोष देखौ तौ परेखो है अलेखैं ए जू,
मीन ढोलै निधि कैसैं बूझियत गादरौ ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है बिदरि गएँ बादरौ ॥१३८॥

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि ।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि ।
पै मनसा मधि 'रागत पागत लागत अंकनि जागत ज्यौं करि ।
ऐसेसुजान बिलास-निधान हौ सोएँ जगे कहि ब्योरियै क्यौं करि ॥१३९॥

कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति ताती कथा रसनाहि दहै ।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै ।

१३७—चेतक-वेतक । वीच—वीज (सभा) । १३८—मेरो—मेरे । अलेखैं—अलेखो (राम) । ढोलै—डोलै (प्रयाग) । १३९—पै०—प्रेम निसा । अंकनि—अंगनि (राम । जगे—जपैं (कॉक०) ।

घूँघरि=धुंध । चिलक=चमक दमक । हुरिहाईं=होली खेलनेवाली । न छिकै=छिंकती नहीं । [१३८] ढोलै=निमित्त । निधि=समुद्र । गादरौ=शिथिल । मूँदि०=बादलों के हट जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ में खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलों को नेत्रों में कब तक बंद किए रह सकता है । [१३९] निस्यौं करि=निश्चिंत होकर या स्यौं करि=काम के रंग से भींगे । सोएँ०=सोने में भी जगे रहते हैं । [१४०]

घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै ।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै ॥१४०॥

कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े ।
बैठि सभा मधि न्यारे रहैं, पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े ।
कौन पत्याय कहूँ घनआनँद हैं सब सूधे सयान सौं एँड़े ।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥१४१॥

नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखै ।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै ।
जैसैं सुजान लखैं घनआनँद नेही न आन हियैं अवरेखै ।
ऐसैं उजागर हैं जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखै ॥१४२॥

कवित्त

नेहो की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन दब के ।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो है,
कैसैं गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के ।
खेल अलबेले हियो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के ।
कहिबे कौं कोउ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥१४३॥

१४२–लखें–लसैं (काँ०) । १४३–जेऽब–जब (प्रयाग) ।

ऊतर० = उत्तर के पैर में मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते । [१४१] अमैंड़े = मर्यादा न माननेवाले । चेटक = जादू । बैंड़े = टेढ़े । [१४२] न अवरेखै = नहीं ले आता । उजागर = प्रकाशपिंड । [१४३] बिलोय = मथकर । चाड़ = उत्कंठा । ओटपाय = उपद्रव । परेखौ = फल । चाँदनी० = उजाले में चोरी कर लेनेवाले । मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपंखों की सी आँखें हो जाते हैं, बेकाम ।

सवैया

साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै ।
नैननि बेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै ।
फागु के चाय चुए भरि भाय सौं छाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै ।
नैसिक हेरियै मेरियै सौंहैं सु एरी सुजान यौं चेरियै मोहि कै ॥१४४॥

बिन बूझ असूझ बिरंचि की बेस सनेहू न लागनि गैल गईं ।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दईं ।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लाखनि भाँति रईं ।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं ॥१४५॥

चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके ।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके ।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद कौंबरे अंग सुजान-बधू के ।
चोली-चुनावट-चोन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के ॥१४६॥

कबित्त

गाँसनि गसीले सुरसीले गरुवाई भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तें छोरी हौं ।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौं ।

१४४—अँगेट—अँगेठ (काँक०, प्रयाग)। फागु—दाय। सु एरी—ढरारे। १४५—की०—रचे सपनेहूँ (राम)। १४६—रईं—दईं। कित—किनि (प्रयाग)। ढिग—जिन (राम)। दाग—अंक (काँक०, प्रयाग) ; होत (कवित्त)।

[१४४] अँगेट = अंगदीप्ति। गुनै० = गुणरूपी डोर से युक्त करके। नैसिक = थोड़ा। सौंह = सामने। [१४५] बेस = प्रिय का वेश रूप। तम० = अंधकारमय। रईं = युक्त हुईं। [१४६] अठान = अकरणीय। परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छूओ मत। उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं या चुनावट डालते हैं। उसके कोमल शरीर पर चोली में बने उतू

नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ विरह-गहर लै झकोरी हौं।
तरिवो सुन्यौ हो गुन गहैं घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥१४७॥

सवैया

वात अनोखी कहा कहियै सुनि वैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो।
है घनआनँद सोच महा मरिवो अनमीच बिना जिय जीबौ ॥१४८॥

कबित्त

तेरी अनमाननि हीं मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौंहैं न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तैं मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी वातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तैं टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥१४९॥

१४७-सु रसीले-औं गरूर (राम)। १४८-वात-चाह। सुनि-सजि (राम) छीवो-दीवो (कवित्त)।

के दाग भी उभड़ आते हैं। [१४७] उररि=वरवस हृदय में धँसकर। गहर=गहराई। [१४८] वौरई=पागलपन। दुख०=छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुड़ता। अनमीच=विना मृत्यु के। [१४९] अन०=न मानना जीति०=जीत का लाभ। सुठि=उत्कृष्ट या अत्यंत। अनखि=झुँझलाकर।

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब।
मोहि लियौ हँसि जोहि छबीले कहौं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भरयौ गहि द्वार परयौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥१५०॥

कबित्त

आरति के ऐन, द्यौसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि त्यौं अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि पाकि चूरे मत काचे,
ताचे साँच आँच के टरैं न टेक तें कछूक।
रूप-उजियारे जान प्यारे हैं निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंध हाँस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसैं अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥१५१॥

ललित लसौंहौं सु ढरौंहौं नेकु सौंही भएँ,
त्यौं ही रहि गहैं गौं ही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठै,
देखी बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनैं कीनैं मान,
जान प्यारी बिरचैं हूँ राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥१५२॥

१५०—जोहि—हेरि (राम)। या—वा (कॉक०)। १५१—टेक-टक (राम)। लाभ—लाख (प्रयाग) १५२—बोलनि—बोलिबे (प्रयाग)।

[१५०] दब = दबाव। [१५१] ईठि त्यौं = प्रिय की ओर। मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। ताचे = तपाए। कनौड़ = सकोच। ऊक = लुक। रीस = बराबरी। अरबरैं = हड़बड़ी मचाते हैं। [१५२] बसीठि = दूतत्व। बिरचैं० = विमुख होने

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग विराजति रंगमई ।
घनआनँद जोवन-माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई ।
वसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित-हेरनि-छाप दई ।
वह रूप की रासि लखी तब तैं सखी आँखिन कैं हटतार भई ॥१५३॥

कबित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै ।
आरसी जौ सम दीजै बूझ कौं असूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै ।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तैं प्यारियै ।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान सहा,
वारियै कहा सकोच सोचन ही हारियै ॥१५४॥

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की ।
निपट नवेली नेह-झेली लाड़-अलबेली,
मोह-ढरहरी भरी विरह-रितौन की ।
लोने लोने कोने छ्वै छबीली अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-वितौन की ।
एरी घनआनँद वरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की ॥१५५॥

१५४–आपौ न–आपनो (काँक०) ।

पर भी मजीठ का सा न मिटनेवाला राग (प्रेम; रंग) है । [१५३] छाक= नशा । हटतार=हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला, टकटकी । [१५४] गहर= गहराई, गहरी । पानिप=पानी; शोभा । [१५५] उघरि० = प्रेम का उद्घाटन । भरी० = विरह दूर करने मैं लगी हुई । लोने=सुंदर । औसर० = अवसर को

सोभा-बरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधैं मन छूटै और ओरनि तैं,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥१५६॥

छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रूँधै गरै।
मोरनि की कूकैं सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकैं नहीं चातिक करेजो काढ़िबे अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तैं घनआनँद यौं,
बादर अडबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥१५७॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर,
उजागर सुजागर बिलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
बिधिना बनाय वाने अंग अंग लसे हौ।
छबि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सौं गसे हौ।

१५६—ओरनि—ठौरनि (राम)। १५७—बादर०—बादरनि आडंबर (काँक०,प्रयाग)।

ठीक ठीक बिताने की घात। [१५६] सील=शिष्टता; आर्द्रता। स्वादनि०= स्वादों का ऐश्वर्य। पानिप=पानी, शोभा। उकति०=उक्ति के छोटे आकार में उसके अपार सौंदर्य को भर सकना असंभव है। [१५७] हूकैं=पीड़ाएँ। करेजो०=कलेजा निकालने पर अड़े हुए। अडंबर=बादल में सूर्यकिरणों से

भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाएं,
एहो घरवसे राति कौन घर वसे हौ ॥१५८॥

तिन हूँ तैं हरई भई है गुरुजन आगैं,
पुरजन-पुंज मैं कहानी सी धौं कौन काज।
तो हित वोहित जानि मोहित विहंग मन,
आसा-गुन वँध्यौ हेरि नेह को सरितराज।
कीजै कहा ऐसी अव अति ही अनैसी वात,
हाहा घनआनँद असैड़नि के सिरताज।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजै की लाज ॥१५९॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है।
कै अपने सपने हूँ न सोचत. मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनिमूरति जान जहाँ है।
हाय दई न वसाय विसासी सौं ठौर-रहेन कौं ठौर कहाँ है ॥१६०॥
जान सजीवन-प्रान लखैं विन आतुर आँखिन आवत आधे।
लोग चवाई सवै निरदै अति वान से वैन अयान सौं साधे।
को समझै मन की घनआनँद औरई वेदन वौरई नाधे।
पीर-भरयौ जिय धीर धरै नहिं कैसैं रहै जल जाल के वाँधे ॥१६१॥

१५८–उजागर०–हौ जगत–उजागर। राति–आज (राम)।
१६१–जाल–लाज (कॉक०)।

ललाई छाना। [१५८] सुजागर=सचेत, सुज्ञान। रसमसे=रस में मग्न। वरवसे=उपपति। [१५९] हरई=हलकापन। हित=अपनाव। वोहित=जहाज। मोहित=मुग्ध। सरितराज=समुद्र। असैड़=मर्यादा को न माननेवाला। [१६०] पानि०=हाथ में, वश में। कै०=अपने वश में करके या अपने किए को। ऊखिल=अपरिचित, अजनबी। [१६१] आधे=आधे होकर। चवाई=वदनामी करनेवाले। वौरई०=पागलपन ने ठान रखी है (विलक्षण

कवित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है।
चलनि चितौनि बंक भौंहनि चपल हौंनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौं सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६२॥

अघट घटाई भरयौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौं रावरी बड़ाई लौं निवटिहै।
नीके करि देखौ न परेखो उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसें हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो जौ कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६३॥

आँखैं जौ न देखैं तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखैं लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चदहीन हूँ तैं,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।

१६३—दीन०—दासन पै आनि दया हियहु लगौ। जियैगौ०—जित तित लागी एक तेरी आस (संग्रह)। निवटिहै—निपटिहै (राम)।

वेदना)। [१६२] बिधि=ब्रह्मा; रीति। रिधि=ऋद्धि; ऐश्वर्य। निधि=खजाना। [१६३] अघट०=न घटनेवाली तुच्छता से युक्त। निघरघट=ढीठ। परेखो=

हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६४॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैं मेरे प्रान संग,
जीबो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो बिचार कीजियत है।
रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसैं धौं बिसारि दीजियत है ॥१६५॥

सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन विथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानौ घनआनँद सिंगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं विलोकति वहनि रजनीस की ॥१६६॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी बनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-वसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंहीं वंक तनि है।

१६६–भाग–सुभ (राम)।

खेद। तन = ओर। [१६४] न चूकनि० = चूक में डालकर परीक्षा मत-लीजिए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए। [१६५] जीबो० = अपने जीने को भ्रम समझती हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = देहाध्यास शून्य। [१६६] रीस = बराबरी। चिहुर = चिकुर, केश।

अंग अंग नूतन निकाई-उम्किलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है ।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है ॥१६७॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकैं भरयौ उर कै कजरौटी ।
रोमहि रोम सुजान बिराजत सोचि तचै मति की मति ऑटी ।
प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी ।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६८॥

कबित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं ।
दीह दुख-दव हिय जारि उर अंतर,
निरंतर यौं रोम रोम त्रासनि तचायहौं ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चलायहौं ।
ऐसैं घनआनँद गड़ी है टेक मन माहिं,
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ॥१६९॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस ।
नैनउ धारि दियैं बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस ।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैं सदाई अमावस ॥१७०॥

१६७–छाई–झाँई (काँक०)। १६९–दीह०–दुख-दव हिय जारि अंतर उदेग आँच। निरंतर०–रोम रोम त्रासनि निरंतर। सम्हारि–सहारि। गड़ी–गही(कवित्त)। १७०–नैन उघारि हिये (काँक०)।

[१६७] घमड़ि=घिराव,सजाव। मंजन=मार्जन,स्नान। उम्किलनि=वृष्टि। [१६८] कजरौटी=कज्जली रखने का पात्र। [१६९] न सकायहौं=न डरूँगा। [१७०]

जान के रूप लुभाय कै नैननि वँचि करी अधबीच ही लौंड़ी ।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंड़ी ।
क्यौं करि थाह लहौं घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी ।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ॥१७१॥

दोहा

जानराय ! जानत सबै, अंतरगत की बात ।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥ १७२ ॥

सवैया

आनन की सुथराई कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर ।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दाजियै जौ सर ।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर ।
जान हियें घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर ॥१७३॥

घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि ।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि ।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचभे-भरी छबि-छाजनि ।
देखत देखत दीसि परै नहिँ यौं बरसै घनआनँद लाजनि ॥१७४॥

लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूपलता लगि दीठि-झकोरै ।
हास-विलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै ।

१७१-काज-बात (काँक०)। है जग०-दै जग जाचत (काँक०)। लहौं-लहै (कवित्त)। १७३-सुथराई-सुघराई (सभा)। की-के (काँक०, प्रयाग)। १७४-तिहि-अति (काँक०)।

आवस = औंस, भाप। कहलाय = गरमी से व्याकुल होता है। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य। [१७१] कनौंड़ी = दुर्बल, बदनाम। औंड़ी = गहरी। डौंड़ी = डुग्गी। [१७२] अंतरगत = मन। [१७३] सुथराई = बनावट की सफाई। सर = समता। रति = काम का बाण। चौरस = चार लड़ी की माला। [१७४] सकेलति = समेटती है। ऐन = घर। लाजनि = लावा;

मौन भली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै ॥१७५॥

कबित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, गति बोलनि हरैँ हरी।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति वेली आँचर टरैँ टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा अरैँ अरी।
फंद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैँ,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैँ परी ॥१७६॥

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैवो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँजोग वियोग धौँ आहि! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तैँ न्यारे ॥१७७॥
खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहैं तैँ न दाह दग्यौ है।
जानि परै नहिँ जान! तुम्हैँ लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौँ प्रेत लग्यौ है ॥१७८॥

कबित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैँ।

१७५—चकोरै—झकोरै (प्रयाग)। १७६—निरैठी गरैठी (काँक०)। वेली—बौरी (राम)। १७७—औ सोच—असोच (काँक०, प्रयाग)। १७८—मौन—मान (प्रयाग)। चाकि—चौंकि (काँक०, प्रयाग)। तैँ न—तन (कवित्त)। दाह—दाग। (काँक०)।

लज्जा। [१७५] लहकै=हिलती है। टोहति=टटोलती है। अकोरै=आलिगन (की मुद्रा)। [१७६] निरैठी=मस्त। हरैँ=धीरे से। [१७७]

जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥१७९॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखैं लेखियति है।
उपमा विचारी न विचारी जाहिँ जान प्यारी
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई - तेज - अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियैं,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१८०॥

सवैया

रूप-खिलार दिवारी कियैं नित जोवन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छलै चित सो वित-चाव भरयौ निज दाव बिचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान बिसारै।
जीव बिचारो परयौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै ॥१८१॥

१७९–उवरानी–ढवरानी (काँक०, प्रयाग)। अधार–अहार (काँक०, प्रयाग)। १८०–चपक–चमक (भदा०)। जाहिँ–नहिँ (कवित्त)। १८१–वित–चित (कवित्त)। दिसारै–बिचारै (काँक०)।

धौं = न जाने। [१७८] आहि० = लगा हुआ है। [१७९] अतन = कामोपचार से। निपेटिनि = पेटू। भसमी० = भस्म करनेवाली पीड़ा ; भस्मक रोग, जिसके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय तृप्ति नहीं होती। [१८०] चामीकर = सोना। चटक = रंग। अवरेखियति० = उभराई जाती है। रवाँनी = (रमानी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८१]

कबित्त

विकच नलिन लखेँ सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जानप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौं परै बिषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८२॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसैँ धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग ल बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं बिषम विषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले ॥१८३॥

रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरैँ न मैन-आरतैँ।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-भोयो बिषम बियोग-सर मारतैँ।

१८२–लखेँ–देखे (भदा०)।

चित=कौड़ी का चित पड़ना। चेटक=जादू। हारि०=मुग्ध हो रहा है। [१८२] बिकच=खिला हुआ। बिराग=उदासी की मुरझाहट। रूप=सौंदर्य ; चाँदी। गुन=गुण; बत्ती। गुरझनि=गाँठ। चटपटी=वेग। [१८३] बै=बोकर। गौहन=साथ। हेली=क्रीड़ाशील या हे अली। [१८४] मैन०=

दरस - सुरस - प्यास भाँवरें भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं यौंऽब द्वार तैं ।
जीवनअधार घनआनँद उदार महा,
कैसैं अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥१८४॥

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं ।
लाज-जड़ी बड़ी सील-नसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं ।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं ।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मोपैं ॥१८५॥

कवित्त

कंठ-काँच-वटी तैं वचन चोखो आसव लै,
अधर - पियालैं पूरि राखति सहेत है ।
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
काननि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है ।
छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम - प्यास - आस,
कीनी नेम - धरम - कहानी उपनेत है ।
ऐसे रस-बस क्यौं न सोवैं और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥१८६॥

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता विन विचारनि ही जोति-जाल तमी है ।

१८४–तहै–लहौं (प्रयाग) । गुन–गन (प्रयाग) । पै–की (काँक०, प्रयाग)।
१८५–श्री–की (काँक०, प्रयाग) ।

काम लालसाएँ । दिनदीन = दिनदिन दीन । [१८५] पानिप = शोभा । ओपैं = चमकाती हैं । [१८६] आसव = शराब । उपनेत = उत्पन्न । मीनकेत = काम-

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति बिषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिँ तुम एक, तुम्हैँ मो सम अनेक आहिँ,
कहा कछू चंदहिँ चकोरन की कमी है ॥१८७॥

रिसभरी भोरिबे कौँ देखी सुनी प्रीति-नीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौँ अमित उपायनि सौँ,
ज्यौँ ही बनै त्यौँ ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौँ अधीन ह्वै अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैँ न टरति नेकौ,
हार्‌यौ सब भाँति जो बिचारो सो कहा करै ॥१८८॥

सवैया

जीवन हौ जिय की गति जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौँज सु नैसिक ही हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तेँ क्यौँ अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै ॥१८९॥

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौँ कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुरुस्यौ न उरुस्यौ बनाव लखि जूरे को।

१८८—टारैँ—तऊ (काँक०, प्रयाग)। १८९—गति—सब (कवित्त)। सु—जु (प्रयाग)।

देव। [१८७] अमी=अमृत। तमी=रात्रि। [१८८] दाय=दावँ। लहा=लाभ। [१८९] सौँज=सामग्री। नैसिक=थोड़ा।

जाही जाही अंग परयौ ताही गरि गरि सरयौ,
हरयौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को ।
अब बिन देखेँ जान प्यारे यौँ अनंदघन,
मेरो मन अँवै भटू ! पात ह्वै बघूरे को ॥१९०॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही ! जोहि ।
सो ही मोही सौँ कठिन, क्यौँ करि सोही तोहि ॥१९१॥

सवैया

उर-भौन मैँ मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात-बनी ।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौँ सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी ।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी ।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥१९२॥

कवित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय बसै,
चाहे निरवाहे नित हित-कुसरात कौँ ।
है री वह बैरी घैरी उघरयौ बिगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-बात कौँ ।
मधुर सरूप याहि देखियै अनंदघन,
पोखै जानप्यारे-संग रंग-मनजात कौँ ।

१९०–चावनि–चाइनि (काँक०, प्रयाग) । गरि०–रंग संग रस्यौ (प्रयाग) ; रंग संग रँग्यो (काँक०) । १९२–मनी–सनी (प्रयाग) । मधि–मग (काँक०,प्रयाग) । पध०–पग धारति (काँक०) । १९३–भेद–वेद (काँक०) । सँजोय–सजाय (कवित्त) ।

[१९०] चुकस्यौ=भली भाँति कस गया । गरि० = गलकर चुक गया या गड़ गड़कर तब निदला । बघूरे=बवंडर । [१९१] मोही = मोहित किया । जोहि= देखकर । सो ही = वह तेरा प्रेम-प्रदर्शक हृदय । सोही = मुझसे कठोर हो गया । सोही = यह बात तुझे कैसे फबती है । [१९२] बनी = दुलहिन । पदारथ = रत्न; पद का अर्थ । बूझनि = बुद्धि, मति । [१९३] कुसरात = कुशल । घैरी = बदनामी करने योग्य । बिगोवनि = नष्ट करने के लिए ।

साँझ सही साथिनि सँजोगहि सँजोय देत,
लाग्यौ रहै गौहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥१९३॥

बिष लै बिसारयौ तन, कै बिसासी आपचारयौ,
जान्यौ हुतौ मन ! तैं सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीकैं सहि, असह-उदेग-दुख सेल सो ।
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयौ आय औचक बियोग बैरी डेल सो ।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरैं रंक ! मानि लीनौ मेल सो ॥१९४॥

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसिदिन डाँवाँडोल है ।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रवाह घेरयौ दारुन कलोल है ।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन,
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै ।
आगैं न बिचारयौ अब पाछैं पछताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥१९५॥

अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है ।

१९४–बिसारयौ–बिसाह्यौ (प्रयाग)। तन–तव (कॉक०, प्रयाग)। आपचारयौ–आपचाह्यौ (कॉक०, प्रयाग)। सहि–आहि (कवित्त)।

मनजात=काम। सही=सचमुच, ठीक। [१९४] बिसारयौ=भूल गए; बिपाक्त बनाया। आपचारयौ=मनमानी। सेल=बरछी। डेल=ढेला। [१९५] आह की='आह' करने की; अपने मान की, हियाव

जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
विरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है ॥१९६॥

डगमगी डगनि-धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुंदर बदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकसे औचक आय,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥१९७॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है विपरीति महा घनआनँद अंबर तें धर कौं झर आई।
जारति अंग अनंग को आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥१९८॥

कवित्त

चाहत ही रीझो लालसानि भीजि सुख सीझी,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनिद्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौंड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं।

१९७—निकसे०—निकस्यौ अचानक है (राम)।

र्ग। बनी = वणिज। [१९६] चेटक = जादू। [१९७] ढरनि = हिलना। बनमाला = लंबी माला। [१९८] ही = थी। झर = ज्वाला। अगिलाई =

माधुरी-निधान प्रान-प्यारी जान प्यारी तेरो
रूप-रस चाखैं आँखैं मधुमाखी ह्वै गई ॥१९९॥

आँखैं रूप-रस चाखैं चाहैं उर सचि राखैं,
लोभ-लागी लाखैं अभिलाखैं निबरैं नहीं।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनिबो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति बिथकै तहीं।
जान प्यारो सुधि हूँ अपुनपौ बिसरि जाय,
माधुरी-निधान तेरी नैसिक सुहाचहीं।
क्यौं करि अनंदघन लहियै सँजोग-सुख,
लालसानि भीजि रीझि बातैं न परैं कहीं ॥२००॥

जो कछू निहारैं नैन, कैसैं सो बखानैं बैन,
बिना देखी कहैं तौ कहा तिन्हैं प्रतीति है।
रूप के सवाद-भानै बापुरे अबोल कीनै,
बिधि बुधिहीनै की अनैसी यह रीति है।
सुख दुख साखी मिलैं बिछुरैं अनंदघन,
जान प्रानप्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है।
औरहि न चाहैं पन पूरो नित लै निबाहैं,
हारैं हँसि आपौ, जीति मानैं नेह-नीति है ॥२०१॥

सवैया

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रबि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसौं तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निबाहिबो यौं छवि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥२०२॥

१९९—सीझी—झीनी (कॉक०)।

अग्निदाह। [१९९] चाहत = देखते ही। कनौंड़ी = दुर्बल। [२००] निबरैं० = समाप्त नहीं होतीं। सुहाचहीं = सुख का देखना, दर्शन। [२०१] सुख = संयोग और वियोग के साक्षी क्रमशः सुख और दुःख ही हैं। [२०२]

ज्यौँ बुधि सौँ सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौँ कबिताई सिखावै ।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै ।
रागवधू-चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिँ गावै ।
त्यौँ ही सुजान तियै घनआनँद मो जिय बौरई-रीति रिझावै ॥२०३॥

कबित्त

नैनन मैँ लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीब धीर होत लोटपोट है ।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसैँ, प्यास की न टोट है ।
चलत सजीवन - सुजान - द्दग - हाथन तैँ,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है ।
जब जब आवै तब तब अति भावै ज्यावै,
अहा कहा बिषम कटाच्छ-सर-चोट है ॥२०४॥

सीस लाय, द्दग छ्वाय, हिये पै बसाय राखौँ,
इते मान मान आवै प्रानन्नि मैँ लै धरौँ ।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सौँ मजन कियौ करौँ ।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौँ मनोज-सिंधु कौँ तरौँ ।
यातैँ घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौँ ॥२०५॥

२०३–रचै–रथै (कॉक०, प्रयाग) । कबिताई–सुघराई (कॉक०) ।
२०४–द्दग–हेत (कॉक०) । भावै०–मन भावै (कवित्त) ।

त्रसरैनि = त्रसरेणु, धूलिकण ; पुराणोँ मेँ यह सूर्य की पत्नी है । ऐन = अयन, घर । [२०३] बुधि = बुद्धि की अधिष्ठात्री । सुघराई = चतुरता । पोत = काँच की गुरिया । बौरई० = पागलपने का ढंग । [२०४] गति० = मार्ग पाने की आशा से । टोट =(त्रुटि) कमी । रुचि = कांति । [२०५] इते० = इतनी अधिक

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिँ,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैँ।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैँ।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
अवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैँ।
नेह-भीजी बातैँ रसना पै उर-आँच लागैँ,
जागैँ घनआनँद ज्यौँ पुंजनि-मसाल हैँ ॥२०६॥

सवैया

कंत रमैँ उर-अंतर मैँ सु लहै नहीँ क्यौँ सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैँ गहैँ आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौँ घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैँ वेई दिन-राति, बखानैँ तैँ जाय परै दिन-राति को अंतर ॥२०७॥

कबित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैबे कौँ रसीलो रसधाम है।
जीवन बरसिबे अनंदघन आपुन पै,
चातिक तैँ कोटिगुनी जक आठो जाम है।
आरति पराई सोई जानै न बखानैँ बनै,
देखैँ दसा औरै बिसरत बिसराम है।

२०६–लिखाए–लखाए (कॉक०, प्रयाग) । बहकि–चहकि (वही) । काहू–कहूँ (कबित्त) ।

श्रद्धा उमड़ती है। के ल० = क्रीड़ा की माधुरी से भरे। [२०६] पाँगुरी = पंगु। राती = अनुरागमयी; लाल। दसा = विरहावस्था; बत्ती। नेह = प्रेम; तेल। बातैँ = बातेँ; बत्तियाँ [२०७] तेह = तीखापन, आँच। परतंतर = अधीन होकर। जाय० = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियों मेँ इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनों विपरीत सी लगने लगती

साधा तन हेरियै निवेरियै सु बाधा वारि,
प्राननि आधार तिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०८॥

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै विचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग-रूँधियै मरौं।
हाय कौन वेदनि बिरंचि मेरे वाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी विधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥२०९॥

मुख देखैं गौहन लगे फिरैं चकोर भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति रीझि चायनि सौं पायन-परस कीजै,
रसलोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातैं मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसैं हूँ निगोड़े नैन कैसैं चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारे जैसैं जानौ,
दुसह दसा की बातैं बरनी न आवहीं ॥२१०॥

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी साँज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छवि-हेरे की।

२०८–रसधाम–सुखधाम (राम)। पै–मैं (राम)। २०९–रूँधियै–रूँधिकै (राम)। २१०–लगे०–लगे। फिरैं भौंर–भौंर (राम)। कीजै–काजै (राम)।

हैं। [२०८] रसैवे=रसमय करने के लिए। साधा=साध, उत्कंठा। [२०९] निघटि०=गलती तो हूँ पर समाप्त नहीं हो जाती। भरौं=दिन काटती हूँ।

लिखि राख्यौ चित्र यौँ प्रबाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौँ बिचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२११॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौँ आन घरी मैँ विरंचि बनाई।
रूप की लोभिनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौँ घनआनँद धीर धरैँ बिन पाँख निगोड़ी मरैँ अकुलाई।
प्यास-भरी वरसैँ तरसैँ मुख देखन कौँ अँखियाँ दुखहाई ॥२१२॥

कबित्त

साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौँ,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।
पिय-मनसा लौँ वारी मिहँदी अनंदघन,
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥२१३॥

सवैया

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गन छावत।
देखैँ कहा? सपने हू न देखत नैन यौँ रैनदिना झर लावत।

२११–द्रवित–छवित (काँक०)। मूरति–सूरति (काँक०)। अकि–ऐकि (कॉक०)। २१२–आन–औन (काँक०, प्रयाग)। दुखहाई–दुखदाई (कॉक०)। २१४–गन–गुन। सपने–सपनो (राम)। लखैँ–परै (कॉक०)। तन–तव (काँक०, प्रयाग)।

[२१०] गौहन = साथ। गोय० = छिपा लूँ। [२११] सौँज = सामग्री। अनेरे = विलक्षण। [२१२] आन = अन्य, बुरी। [२१३] पखान = पत्थर, पक्ष। [२१४] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध

जौ कहूँ जान लखैँ घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत ।
कौन बियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैँ आगेई देखन धावत ॥२१४॥

कबित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिँधे,
इते हू पै बिषम बिषाद-जुर लू बरै ।
सूरे पन-पूरे हेत - खेत तैँ हटैँ न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैँ दबि कूबरे ।
संकट-समूह मैँ बिचारे घिरे घुटैँ सदा,
जानी न परत जान ! कैसैँ प्रान ऊबरे ।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता मुरझानि सहैँ न्याय रहैँ दूबरे ॥२१५॥

दसन-वसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौँ कपूर सरस्यौ करै ।
साँसनि सुगंध सौँधे कोरिक ससोय धरे,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै ।
जान प्यारी ! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै !
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौँ तरस्यौ करै ॥२१६॥

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैँ सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ ।
दुख-तम-पुजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे ! भलैँ ही लसत हौ ।

२१५–तैँ हटैँ–मैँ लहैँ । वापुरे–वावरे । यहै–ऐसी (कॉक०) ।
२१६–जु–सु (कॉक०) ।

की भाँति लिखने मैँ बाधक बन जाते हैं। [२१५] हेत०=प्रेम का रणक्षेत्र
[२१६] दसन=होँठ। ओली=झोली। हित=निमित्त। फगुवा=होली

जीव सोच सूखै गति सुमिरँ अनंदघन,
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥२१७॥

तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही ऊतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलेखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसो बैस,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥२१८॥

कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चुहल चित्त जगियै रहति है।
तपति - बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥२१९॥

२१७–समाज–समान (कॉक०)। एतो–इतौ (प्रयाग)। चोप०–चोप ही हू (कॉक०, प्रयाग)। चुहल–चहल (कवित्त)। जगियै–लगियैं (राम)।

का उपहार। [२१७] हित = प्रेम के फंदे फेंका करते हैं। दै = देकर (भेजकर)। उघरि=उचटकर, पृथक् होकर। घुरि = घुलकर, भली भाँति मिलकर। [२१८] बैस = (वयस्) उम्र। रावरी० = यदि आप का वश चलै, आप कर सकें तो। [२१९] केसू = किंशुक के फूल। चाँचरि = (चर्चरी) वसंत के गाने।

सवैया

अकुलानि के पानि परयौ दिनराति सु ज्यौं छिनकौ न कहूँ बहरै ।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यौं ठहरै ।
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै ।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिरहा-बिष की लहरै ॥२२०॥

कबित्त

रातिद्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की ।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछू न बसाति यौं उपाव-बल-हारे की ।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की ।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥२२१॥

हाहा करि हारी ननिहारी रूखियै महा री,
मो हू सौं चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावँ न धरैयै नावँ ऐसियौ कहाय हूँ ।
राकानिसि आली व्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंदमुख हूँ ॥२२२॥

२२०–छिनकौ–छिन क्यौं । को ठिक–कोटिक (कॉक०) । २२२–ऐसियौ–ऐसे श्री (राम) । कहाय०–कहा अहूँ (काँक०, प्रयाग) । ढरि–टरि (काँक०) । हूँ–तूँ (प्रयाग) ।

चहल = चहलपहल या कीच । [२२०] चेटक = कनौड़ा । ठिक ठहरना = ठिकाने लगना । [२२१] बजमारा वज्र के मारे भी जो न मरे (गाली) । जुहार० = सहायता के लिए चिल्लाकर । तिहारे०=आप के किए की । [२२२] ननिहारी=

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति. आवत गरो रुक्यौ ।
सेइ मरौं सुधा तो सुभाय के मिठास, ताकी
आसा लै दहनि, भै चरन-कंज सौं ढुक्यौ ।
इते पै जौ रोष कै रसीली हियो पोढौ करौं,
तौ न कहूँ ठौर जीवे हू को झगरो चुक्यौ ।
ऐसैं सोच-ऑचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढै न नेकौ हाहा जात ज्यौं फुक्यौ ॥२२३॥

सुधा तैं स्रवत बिष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंदा, भई नई रीति है ।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति बिपति पारै, बड़ी बिपरीति है ।
महागुन गहै दोषै, औषदि हू रोग पोषै,
ऐसैं जान ! रस माहिं विरस अनीति है ।
दिनन को फेर मोहिं, तुम मन फेरि डारथौ,
एहो घनआनँद ! न जानौं कैसैं बीतिहै ॥२२४॥

२२३–ऐसी–एही (काँक०, प्रयाग) । सेइ०–साध मारै (कबित्त) । सौं–त्यौं (काँक०, प्रयाग) । ढुक्यौ–दुक्यौ (प्रयाग) । ठौर–गैर (सभा) । जीवे०–जी को वे हू (कबित्त) । २२४–माहिं–साधौं (कॉक०) । एहो–अहो । कैसैं–कैसी (राम) । २२५–सीस–साँस (राम । विषम–विष-समुदेग (कबित्त) । चक–चख (राम) । वै–क्यौं (कॉक०, प्रयाग) ।

न देखना [या 'निहारना' को अकर्मक मानें तो न देखा] । हूँ=हाँ । ढरि०= रात बीत चली । ढरी०=चद्र मुखवाली होकर भी न ढली (चंद्रमा से ही ढलना सीख लेती) । [२२३] साध०=यदि तेरी स्वाभाविक माधुरी की इच्छा करूँ तो वह सुधा ही मारे डाल रही है । यदि (शीतलता के लिए) चरण-कमलों में छिपना चाहूँ तो उनकी आशा जलाती है । उनके प्राप्त होने की भी संभावना नहीं । रोष=जोश, साहस । [२२४] बिरस=नीरसता ।

गरल गुमान की गरावनि दसा को पान।
करि करि, द्यौस रैनि प्रान घट घोटिबो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि सीस पावँ राखि,
विषम उदेग-बान-आगँ उर ओटिबो।
जान प्यारे औ न मन आनैं तौ अनंदघन,
भूलि, तू न सुमिरि परेखैं चक चोटिबो।
तिन्हैं यौं सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो ॥२२५॥

विकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जरयौ करै।
जीवन-अधार-पन पूरित पुकारनि सौं,
आरत पपीहा नित कूकनि करयौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडरयौ सो बन-बीथिनि ररयौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जान प्यारी! तेरे,
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै ॥२२६॥

सवैया

पलकौं कलपै कलपौ पलकै सम होत सँजोग बियोग दुहूँ।
विपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझै कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै तौ समै लहियै न सुहूँ।
तिन हेरैं अँधेरई दीसै सबै, बिन सूझ तैं पून्यो अबूझ कुहूँ ॥२२७॥

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप, सायल घायल चोप बढ़ावत।

२२६–पुकार०–पुकार सुनि (काँक०, प्रयाग)। २२७–तिन–तित (राम)। २२८–दसान–दसाहि (प्रयाग); दसादि (काँक०)। प्यासे–प्यारे। वढ़ावत–

[२२५] गरावनि=गलानेवाली। पावँ०=डटकर। उर०=छाती पर सहना। परेखैं=स्टाघ मे घायल होने का पछतावा। [२२६] बिडरयौ=नष्ट हुआ सा होकर। [२२७] पलकौं०=संयोग मैं कल्प भी पल के समान शीघ्र बीतता था। सुहूँ=

यौं घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत ।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कबित्त बनावत ॥२२८॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयौ ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघरयौ उनयौ ।
चित चाह-निबाह की बात रहौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयौ ॥२२९॥

कबित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं ।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसैं पहचानहीं ।
जान प्रानप्यारे के बिलोकैं अविलोकिबे कौं,
हरष - बिषाद - स्वाद - बाद अनुमानहीं ।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२३०॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै ।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चायनि लुभाय रहि ना सकै ।
परसि सरस विधि रुचिर चिवुक त्यौं हा,
कपित करनि केलि-चाव-दावँ ही तकै ।

चटावत (कवित्त)। २३०—रहैं—फिरैं (काँक०, प्रयाग)। तिन०—तेन हूँ सो। देखत भूली की (वही)। अबिलोकिबे—अवलोकिबे (काँक०)।

(शुद्ध) पूरा, ठीक। कुहूँ = अमावस्या। [२२८] मायल—प्रवृत्त। मेरे० = अर्थात् मेरी कविता का उद्गार स्वाभाविक है। [२२९] उनयौ = छाना। बिसासन = विश्वासघातों के भय से। [२३०] बिलोकैं० = प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं। साखैं० = वस्तुतः वे ही ठीक आँखें हैं। अन्य

लाजनि लसौंहीँ चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौँ भरीन कै ॥२३१॥

भूलनि करी है सुधि जान ह्वै अजान भए,
खुलि मिले कपट सौँ निपट रसाल हौ।
त्यागहि आदर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित धरि चित उचित लहा लहौ।
जहाँ जब जैसेँ तहाँ तब तैसेँ नीके रहौ,
सब बिधि प्रानप्यारे हित आलबाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
एहो घनआनँद जू गरेँ गुनमाल हौ ॥२३२॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सौँ चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौँ घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि-झुंड हिंडोरनि झूलते।
ग्रीषम तैँ हतई जु लता द्रुम-अंकनि लागतीँ ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौँ इत के हित की सुधि भूलते ॥२३३॥

कवित्त

उठे बड़े भोर चैन चोर लाह साह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चलि गेह कौँ।

२३१–चायनि–चाइनि (राम)। सरस–परस (कॉक०)। चाव–भाव (राम)। २३२–जैसेँ०–तुम जैसे तहीं तैसेँ नीके रहौ अजू (राम)। जू गरेँ–जा गरेँ (प्रयाग। २३३–घन–घिरि (प्रयाग)। अंकनि–अगनि (कॉक०)। इत के–इत की (राम)।

तो मोरपंख में की आँखें हैं जो व्यर्थ की होती हैं। [२३१] ओप्यौ=चमकाया हुआ। सिहाय=लालायित होकर। मादिक=मद, शराब। ढोरत०=हवा करते हैं। चिबुक=ठुड्ढी। भरीन=भरन अर्थात् वृष्टि द्वारा। [२३२] भूलनि०=मुझे भूलने की ही याद है। मान=रूठना। लहा=लाभ। [आलबाल]०=प्रेम के थाला। [२३३] हतई=मारी हुई। [२३४] मेह=वृष्टि।

छाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जके थके बैन नैन. निदरत मेह कौं।
दुसह दसाहि देखैं समै बिसमय होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कौं।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि बिषम रच्यौ बिरंचि बेह कौं ॥२३४॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागैं न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।
चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन बियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥२३५॥

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रसरंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
द्वै उर एक भए घुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रबाह बह्यौ है ॥२३६॥

अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहौं जबै तब रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-विचित्र दसा सों थकौं।
अनदेखैं दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न न्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि बिचारि बिचारि जकौं ॥ २३७॥

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुखकारी।

२३४–लाह–लाल (प्रयाग)। २३५–पै–कै (काँक०)। यह–हिय (प्रयाग)।
२३७–सदेह–सनेह (काँक०)।

बेह० =(वेध) छेदने के लिए। [२३५] देखत०=प्रिय को जब तक देखती हूँ तभी तक प्रफुल्लता रहती है। खागी=लगी हुई, मिली हुई। [२३६] भोय०=भींगकर मिल गया है। [२३७] न न्यौरि०=विवेचना करके समझ नहीं सकती। [२३८] बीज=(विद्युत्) बिजली। धूम=

के छकि छायौ सिँगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी ।
कैसी फवी घनआनँद चोपनि सौँ पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥२३८॥

कित जाउँ लै जान-सजीवन ! प्रान कौँ आन के लेखे न छाँहौँ धिजौँ ।
इहि साल दहौँ नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-बारि भिजौँ ।
दुरि आपुन पै हू इकौसैँ मिलौँ घनआनँद यौँ अनखानि छिजौँ ।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौँ सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौँ ॥२३९॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीच तज्यौ तरसै ।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै ।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।
बिछुरैँ मिलैँ मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौँ परसै ॥२४०॥

कबित्त

तेरे देखिबे कौँ सब ही त्यौँ अनदेखी करी,
तऊ जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे ।
सुनि निरमोही एक तोही सौँ लगाव मोही,
सोही कहि कैसैँ ऐसी निठुराई अति रे ।
बिप सी कथानि मानि सुधा पान करौँ जान !
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे ।

२३६-छाँहौँ-छाँहैँ (काँक०) । आपुन०-आप नए हू (कवित्त) । रीझि०-रीझनि (काँक०) । २४०-मीच-मीत (कवित्त) । छटा न-छटानि (काँक०) । दसा-कथा (वहीं) ।

धुएँ मैँ लपटौँ की भाँति । सिँगार = शृंगार (कविपरंपरा मैँ यह श्यामवर्ण माना जाता है) । [२३९] न धिजौँ = नहीँ समझा जाता । दुरि० = फिर भी स्वयम् अपनी ही ओर से छिपकर आपसे अकेले मैँ मिलती हूँ । डर० = दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीँ देख पाती । अपनी इसा विलक्षण रीझ पर रीझकर खीझती रहती हूँ । [२४०] वह = मीन । यह = मेरा मन । न सहारि = सँभाल नहीँ सकता । यह = मेरा मन । तवै = तपता है । आवरी = व्याकुल । थरसै = त्रस्त होती है ।

जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनंद क्यौं,
हति कै हितूनि, काहू कहूँ पाई पति रे ? ॥२४१॥

लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसों,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़्यौ सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयौ जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहा लहौं ॥२४२॥

कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।
क्यौं करि बितैयै, कैसें कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तैं चूकियै।
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकियै ॥२४३॥

अधिक बधिक तैं सुजान! रीति रावरी है,
कपट - चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।

२४१–तऊ–तू हू (राम)। जाहि०–नहि जौन (काँक०)। कहूँ–काहू (कबित्त)। २४२–करै–रहै (काँक०)। सब–बस (काँक०)। पै–यौं (काँक०, प्रयाग)। २४३–मति–गति (काँक०, प्रयाग)। ढूकियै–डूकियै (प्रयाग)।

[२४१] पति=प्रतिष्ठा। [२४२] जियरा=जीव, प्राण। हियरा=हृदय, छाती। धक्यौई०=जलता ही रहता है। दौ=दावाग्नि। खोयबो०=खाने का ही लाभ होता है, अपने को खो बैठती हूँ। [२४३] आपु त्यौं०=अपनी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाती। रितैयै०=मन कहाँ हलका करूँ।

गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा बिषम दया-छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसैं आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक - निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४४॥

विष को डवा है कै उदेग को अँवा है, कल
पलकौ न चाहै अथवा है चक्र बात को।
बीजुरी को बंधु किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दड अतन-अलात को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैसैं हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥२४५॥

मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तैं बिसेखियै।
ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
मरौं हौं, न मरौं जान! हियैं अवरेखियै।
पलकौ बिछोह-आगै कलपौ अलप लागै,
बिलपौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै।

२४४—मरै०—मरहि न जियै (राम)। ही०—हो या (प्रयाग)। या–वा (कॉक०) बनक—बानक (प्रयाग), बानिक (काँक०)। २४५—डवा—टिवा (कवित्त)। मोह—मोद (काँक०)। तलफनि—तलफति (काँक०)।

जीवन० = मरूँ भी तो उनके बिना कैसे मरूँ। मीचौ = मृत्यु भी। ढ़कियै = छिप सकूँ। [२४४] चुगो = चारा। निपाँख = पंख से हीन; पक्ष या सहायक से रहित। ही = थी। बनक = बन की वस्तु, फँसाने का चारा; सजधज। [२४५] डवा = थैला। अँवा = आँवाँ। चक्र बात० = बवंडर। अतन० =

सूनो जग हेरौं रे अमोही ! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखैं लेखियै ॥२४६॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु बोलति है ।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है ।
रिस-संग महा रसरंग बढ़्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है ।
घनआनँद जान पिया के हियैं कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२४७॥

तुम साँची कहौ हित के चित की कित भूल-भरे इत आय परे ।
कि कहूँ पहिली परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे ।
बलि बैठौ सुजान तौ को बरजै ,धरि पावन पावन नैन करे ।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहिं रग-तरंग तरे ॥२४८॥

कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी ।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास-डरी ।
इत काहू सौं मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी ।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैंड़े परी ॥२४९॥

अब यौं उर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँन बोलियै री ।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलौं तौ मिलौं, मन तैं गस-गूज न खोलिय री ।
दृग देखन की कछु सौं हैं नहीं, इन गौहन भूलि न डोलियै री ।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहें परेखनि छोलियै री ॥२५०॥

२४७–ननिहारनि–बनिहारनि (कॉंक०)। रिस०–रिस रंग (प्रयाग)। २४८–धरि०–धरिपाइन। २४९–भुराई–बुराई (कॉंक०)। २५०–री–जू (प्रयाग) तें–सों (कॉंक०)।

काम के अलातचक्र का दंड है। जंत्र=यन्त्र। [२४६] भरौं=दिन काटती हूँ। [२४७] उर०=मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है। गौहन=साथ। फिरि०=रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई। [२४८] चित की=चित्त की बात। पावन=पैरों को। पावन=पवित्र। [२४९] डरी=डली, टुकड़ा। भुराई०=भोलापन मेरे पीछे पड़ गया है। [२५०] गस=गाँस की लपेट।

कबित्त

मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
वैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते प बसंत सो सहायक ससीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
वेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन - गवन - संग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥२५१॥

सवैया

वारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-बिकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम, सु घोलनि सीखिवे कोकिला कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छवि आन क्यौं आँखिन छूजति।
एरी बसंत-लजावनि कंत सौं जान ह्वै मानमई कित हूजति ॥२५२॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५३॥

कवित्त

राधा नवयौवन विलास को बसंत जहाँ,
अंग अंग रंगनि विकास ही की भीर है।
प्यारो वनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहिं धीर है।

२५१—पारै—पावै (कौंक०, प्रयाग)। तैं जु—नेकु (वही)। तीखे—जीए (कौंक०)। २५२—आन—और (प्रयाग)। २५३—कर—करि (कौंक०)।

[२५१] पिता = अर्थात् मन। [२५२] भजैं = सेवा करते हैं। [२५३] छगे = छके। गंडन = कपोलपाली। [२५४] सोसन = श्वासों से।

सुरनि - समाज साजै कोकिला-कुहूक राजै,
सॉसन अनेक सुख - सौरभ - समीर है ।
स्वेद - मकरंद औ मनोरथ मधुप - पुंज,
मंजु बृंदाबन देस जमुना के तीर है ॥२५४॥

सवैया

निसद्यौस खरी उर-मॉझ अरी, छबि रंग-भरी मुरि चाहनि की ।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की ।
चट दै कटि पै वटि प्रान गए गति सौं मति मैं अवगाहनि की ।
घनआनँद जान लखी जब तैं जक लागियै मोहिं कराहनि की ॥२५५॥

किहि नेह बिरोध बढ्यौ सब सौं उर आवत कौन के लाज गई ।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-मॉझ भई तिन तैं हरई ।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन-मानिक ही अनखानि ठई ।
घनआनँद जान अजौं नहिं जानत, कैसे अनैसे हौ हाय दई ॥२५६॥

इत बॉट परी सुधि. रावरे भूलनि कैसैं उराहनो दीजियै जू ।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥२५७॥

२५४—देखि०—देखैं कामहू के हिय मैं न (कॉंक०, प्रयाग)। सुरनि—सुरत (प्रयाग)। राजै—जानैं (राम)। स्वेद—स्वाद। औ—को (राम)। २५५—ढोर—ठौर (प्रयाग) कौर (कॉंक०)। ढोरनि—एरनि (कॉंक०)। वटि—बढि (कवित्त)। २५६—किहि—कित (प्रयाग)। नेह—वेह (कॉंक०)। जिहि—कित (कॉंक०, प्रयाग)। मानिक०—मानि कहा (कॉंक०)। ठई—छई (कॉंक०)। हौ—है (कवित्त)। २५७—हमारियौ—हमारि हू (कॉंक०)।

[२५५] ढोर० = साथ लगे। बाह = प्रवाह। चट० = कमर को फुरती से घुमाकर। जक = रटन। [२५६] हरई = हल्कापन। अनखानि = रूठना; अन+खानि, खान से अलग। अनैसे=बुरे। [२५७] बॉट=हिस्सा। चाड़=

वधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, हति कै गति रावरी क्यौँ हूँ न बूझि परै ।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै ।
घनआनँद यौँ अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै ।
दिनरैन सुजान-बियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥२५८॥

कबित्त

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी
तो सो और कौन, मन ढरकौंहीँ बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौँ समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै ।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै ।
विरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैँ राखौँ पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हाहा ! नेकु आनि दै ॥२५९॥

एक आस एकै बिसवास प्रान गहैँ बास,
और पहचानि इन्हैँ रही काहू सौँ न है ।
चातिक लौँ चाहै घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है ।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है ।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजे,
ऐसी तुम करौ तौ बिचारन कौँ कौन है ॥२६०॥

२५८–क्यों०–क्यौं करि । २५९–एरे–अरे (काँक०, प्रयाग) । वारी–वीरी (कवित्त) ; वारि (संग्रह) । २६०–एक–एकै (संग्रह) । बिचारन–बिचारिन (काँक०, प्रयाग) ।

उत्कंठा । [२५८] आवरी = व्याकुल । मूझि० = मुरझा जाता है । न जूझि० = मर नहीं जाता । [२५९] वारी = निछावर होती हूँ । अंत = अन्यत्र या अंत में । पीठि० = पहचानकर विमुख हो गए या पहचान से विमुख हो गए । [२६०] गहैँ० = ठहरते हैं । कौं = के लिए ।

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रानप्यारे,
कहाँ तैं दुरथौ सो बैरी आड़े आनि है भयौ ।
जियरा बिचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ ।
रावरे हू रंचक बिचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख यौं दयौ ।
मारि टारि दीजै ऐसो नीच बीच भलो नाहिं,
वहै रसभीनो घनआनँद रहै छयौ ॥२६१॥

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मोह सौं मढ़े हियो ठगौ ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई - भरे रोम रोमहि अमी पगौ ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥२६२॥

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को ।
राग बिराग धमार त्यौं धार सी, लौटि परथौ ढँग यौं सब ही को ।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६३॥

सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई ।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई ।

२६१–निपट–निपटै (काँक०, प्रयाग) । २६४–लखि–लगि (प्रयाग) ।

[२६१] आड़े=सामने । [२६२] खगौ=धँसते हो । उघरे=पृथक् हो । [२६३] सौंधे=सुगंधित पदार्थ । अबीर=अभ्रक का चूर्ण, बुक्का । ही=हृदय । धमार=होली के गान । धार=तलवार । [२६४] बिस०=विश्वासघातिनी (रात्रि) ।

अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई ।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६४॥

मन जैसें कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसँ सुजान ही हौ ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥२६५॥

लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसद्यौस कटै ।
करि भौर भरी यह पीर सहा बिरहा तनकौ हिय तें न हटै ।
घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै ।
सपनो सो टरै फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै ॥२६६॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥२६७॥

कबित्त

करुवो मधुर लागै वाको बिष अंग भएँ,
याहि देखैं रस हू मैं कटुता बसति है ।
वाके एक मुख ही तें बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है ।

२६.—लगियै—लगिवे (काँक०) । २६६—घोटि—घोरि (प्रयाग) ।
२६७—इत—यहाँ (कवित्त) । लला—कहाँ (वही) ।

[२६५] लौ=लगन । अंतर=मन । गौ=चला गया । उघरौ०=जगत् हट गया । [२६६] बिसमै०=बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में लीन हो जाती है । चेटक=माया । [२६७] बाँक=वक्र । निसाँक=नि:शंक । आँक=अंक, चिह्न । मन=हृदय ; ४० सेर । छटाँक=थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग । 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाँछ' होता है अथवा छटा+अंक=शोभा की

सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौं कोटिगुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिँ डाहनि डसति है ॥२६८॥

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैँड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौँ ही,
चातक ! घातक त्यौँ ही तू हू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौँ करैँ आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौँ रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६९॥

सवैया

बैरी बियोग की ऊकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
वेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौँ, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनँद जाय छए उत, पैँड़े पर्यौ इत पातकी चातक ॥२७०॥

कबित्त

अंतर मैँ बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।

२६८–तासौँ–तातेँ (काँक,० प्रयाग)। २७०–ऊकनि–हूकनि (कवित्त)
ह्वै–हे (प्रयाग)।

झलक। [२६८] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ। सरवंग = सर्वांग।
लहरि = विष का दौरा। डरारी = डरावनी। बिसारी = विषैली। डाहनि=
नागिन से होड़ लगाकर। [२६९] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले। पैँड़े० =
पीछे पड़े। कलापी = मोर। घेरौ० = घेरनेवाली सेना। बजमारे=वज्र मारने-
वाला, वज्र का मारा हुआ, दुष्ट। घोरि०=गरज ले। [२७०] ऊकनि=जलन

लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझै नाहिँ,
बूझि न परति, ऐसैँ सोचनि कहा दहौ ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान याते,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैँ खोय या बिधि हो कौन धौँ लहा लहौ ॥२७१॥

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे ।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सौँ आनि निहोरत हे ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तव यौँ सब भाँतिन भोरत हे ।
मन माहिं जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौँ जोरत हे ॥२७२॥

घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भाँतिन हौँ दुख-सूल सहौँ ।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस. इते पर एक सी बाट चहौँ ।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौँ ।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि तैँ पाय गहौँ ॥२७३॥

बिरहा-रवि सौँ घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैँ इकलौ छतियाँ ।
हिय - सागर तैँ दृग - मेघ भरे उघरे बरसैँ दिन औ रतियाँ ।
घनआनँद जान अनोखी दसा. न लखौँ दई कैसैँ लिखौँ पतियाँ ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैँ टपकैँ बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥२७४॥

२७१–बासी–बास । प्रयासी–प्रवास (प्रयाग) । सूझै–सूझौ (राम) । २७४–इक लौ–इकलौ (कवित्त) । नित–तित (काँक०) ओलतियाँ–बैलतियाँ (काँक०, प्रयाग) ।

मे । तन=ओर । तक=टकटकी । पैँडे़ ० = पीछे पड़ा । [२७१] अंतर=मन । अंतर=पार्थक्य । जानराय = ज्ञानियों मेँ श्रेष्ठ । खोय=जीवन नष्ट करके । लहा= लाभ । [२७२] ढार=ढलन । मो०=मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे । बिसवासी=विश्वासघाती । [२७३] चहौँ = देखती हूँ । [२७४] घट = शरीर । खिवैँ = चमकती हैं । इक लौ=एक ही ढंग से, निरंतर ।

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिबासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।
घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी ! निज नैन बिसेषि सुजान छकैं ॥२७५॥

कबित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
नाहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसैं धरौं धीर बीर ! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखैं अनदेखैं तहीं अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥२७६॥

सवैया

क्यौंहूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंड़े परयौ बिरहा बजमारो।
ज्यौ बहरै न कहूँ छिन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तें आवै तँवारो।
हौं हीं भरौं इकली, कहौं कौन सौं, जा बिधि होत है साँझ सवारो ॥२७७॥

कबित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तैं बढ़नि लियैं आई है।

२७५–पियके–पिय तो (वही)। कौतुक–कौतिक (काँक०)। २७६–खरक–बरक (वही)। अनदेखैं–मन देखैं (वही)। २७७–इकली-अकली (कवित्त), अकिली (प्रयाग)।

ओलतियाँ=छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी। [२७५] भायनि=भावों से भरकर। न ब्यौरि०=निर्णय नहीं कर पाते। [२७६] हिलग=चाह। खरक=खटक। टोह=खोज। [२७७] तँवारो=मूर्छा। सवारो=

जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
　　सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है ।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
　　सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है ।
आली ! घनआनँद सुजान सौं बिछुरि परें,
　　आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥२७८॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है ।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहा कहूँ लागनि है ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है ।
सुखमै मुखचंद बिना निरखैं नख तैं सिख लौं बिष-पागनि है ॥२७९॥

कबित्त

घर बन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
　　इते हू पै जान ! भई नई बिरहामई ।
बिषम उदेग-आगि लपटैं अँतर लागें,
　　कैसें कहौं जैसैं कछू तचनि महा तई ।
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
　　बाचिबो अचभो, मीचौ निदर करै गई ।
आनँद के घन लखैं अनलखैं दुहूँ ओर,
　　दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥२८०॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोपन तैं ।
जिय ! ता बिन यौं अब आतुर क्यौं तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं ।

२७९—कहा०—कहाँ कहा (कबित्त) । २८०—फूटि०—फूटि फटि (संग्रह) ।

संदेश । [२७८] अंतक=यम । झालरति=झलराते ही, लहलहाते ही । आपौ=अपनापन ; आप, जल ('घन' के साहचर्य में) । [२७९] सुखमै=सुखमय । [२८०] अँतर=अंतर, मन । तपनि=ताप । निदर०=निरादर करके मृत्यु भी चली गई । निरदई=निर्दय : निर+दई, दैव के शासन से परे । [२८१]

घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इतै पर त्यागि हतैं ।
अधबीच परयौ दुख-ज्वाल जरै सठ ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं ॥२८१॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ परि बाँचि न देख्यौ ॥२८२॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८३॥

तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख ।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो दहैगो, परयौ लहि तू तौ सदा सुख ।
एक ही टेक, न दूसरी जानति. जीवन-प्रान सुजान लियें रुख ।
ऐसी सुहाई तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुराइहौ जौ मुख ॥२८४॥

छप्पय

महो-दूध सम गनै, हंस-बग भेद न जानैं ।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानै ।
चदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सँग तोलैं ।
बिन बिबेक गुन-दोष मूढ़-कबि ब्यौरि न बोलैं ।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन ।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥२८५॥

२८३–जनाइयै–जनावत (काँक०)। २८४–दहैगो–पै क्यौं न (कवित्त)। सुहाई–सुहाय (वही)। २८५–बग–बक (कवित्त)। सँग–सम (वही)।

बिरच्यौ=उदास हो गया। को०=किस सुख के लिए दरवाजे पर चिपके रहूँ। [२८२] पन=प्रतिज्ञा। न अवरेख्यौ=नहीं अंकित की। [२८३] आगौ=अग्रगण्य, बढ़कर। पीर०=पीड़ा नहीं समझता। रागौ=गाना। [२८४] सेल=बरछा (कष्टदायक)। [२८५] महो=मट्ठा। ढाक=पलाश। राँग=राँगा।

कहियै काहि जताय होय जो मो मधि बीतै ।
जरनि बुझौं दुख-जाल धकौं, निसिवासर ही तै ।
दुसह सुजान वियोग बसौं ताही सँजोग नित ।
बहरि परै नहिं समै गमै जियरा जित को तित ।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन ।
ऐसी बिरचि त्रिरंचि को कहा सरयौ आनंदघन ॥२८६॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई ।
वंक महाविष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई ।
यौं घनआनँद चेटक सूरति लै जल अंतर ज्वाल बसाई ।
कैसैं दुराइहैं जान अमोही, मिलाप मैं एतियौ ऊखिलताई ॥२८७॥

कबित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं किये बिसाल जे बिछोह-छत हैं ।
प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान,
बिष - भोए विषम - बिसास - बान - हत हैं ।
प्यार मैं पटम पूरा, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान ये अमोहिन के मत हैं ।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैं बीच पारे परबत हैं ॥२८८॥

२८६–काहि–कहा (कॉक०)। जरनि–जरि न (वही)। २८७–जल–जव (राम)। २८८–विसाल–विलास (कॉक०)। पटम–परम (कवित्त)।

रूपौ=चाँदी भी। कवि=पंडित। ब्यौरि=विवेक करके। [२८६] बुझौं=बुझती हूँ, शिथिल पड़ती हूँ। धकौं=तपती हूँ। बहरि०=समय कटता नहीं। गमै=भटकना है। सरयौ=काम निकला। [२८७] विष=विष मिला देनेवाली। सुधाई=अमृत से सनी। सुधाई=सीधापन। चेटक=मायाविनी। ऊखिलताई=अजनबीपन, उष्णता। [२८८] मिलत०=नहीं भरते (घाव)। अमिलताई=

अनाकनी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै ।
मौन हू सौं देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै ।
जान घनआनँद ! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं मलोलिहै ।
रूई दियैं रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥२८९॥

सवैया

घनआनँद जान ! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै ।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै ।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या बिधि सौं भजि कै ।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥२९०॥

कबित्त

रूप-उजियारे जान ! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं ।
सुखद सुधा त हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं ।
सुंदर सुदेस आँखैं बहुरयौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसैं हुलसि हियैं रमैं ।

२८९–जानियैगी–देखियैगी (काँक०, प्रयाग) । मेरियै–मेरियौ (प्रयाग) ।
२९०–घन सकट–धन संकट ,वही) । पूरन–पूरि न (वही) ।

फटे रहने की बान , खटाई (अम्ल) अर्थात् कपट । छत=घाव । अनेरे=दूर ; विलक्षण । बिसास=विश्वासघात । पारे=डाले । [२८९] आरसी=(आदर्श) दर्पण । त्यौं = ओर । बुलाय०=आप को बुलाकर तब मेरी मूकता (मौन) बोलेगी । पैज = प्रतिज्ञा । मलोलिहै=पछताएगा । बहरायबे की=बहलाने की; बधिर बने रहने की । [२९०] भजै०=कहाँ भागे । भजि कै=अर्थात् प्रेम करके ।

ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
रसहि बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥२९१॥

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु बियोग तिहारैं ।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारैं ।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारैं ।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारैं ॥२९२॥
जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ ।
संगम रंग अनंग उमंगनि झूमि न आनँद-अंबुद छावतौ ॥
लाड़िलो जोबन त्यौं अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं प्यावतौ ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥२९३॥

कबित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे ।
हिये मैं उदेग आगि लागि रही रातद्यौस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे ।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे ।
जीवे तें भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीयहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२९४॥

२९१–हियें–हियो (काँक०, प्रयाग)। रसहि–सुरस (कवित्त)। २९२–निहारैं–निहारें (प्रयाग)। कढ़े–बढ़े (काँक०)। २९३–प्यार–पार (काँक०)। प्यावतौ–भावतौ (कवित्त)।

[२९१] तमैं=अंधकार को। जमैं = यम को। सुदेस=अच्छी बस्ती। भाग०=भाग्य से उद्घाटित, भाग्य से भरी। रस=जल, आनंद। [२९२] मनोज=कामदेवरूपी हाथी। पात०=पत्तों का गिरना। डारैं=उच्छ्वासरूपी डाल में। [२९३] आनँद=आनंद का बादल ; घनानंद। अधरासव=होंठ का आसव (शराब)। परेखो=पछतावा। [२९४] हेरत=देखते हुए। हिराने=खो गए।

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं बेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे ॥२९५॥

चदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिवे कौं रहै द्वै।
ज्ञान हूँ तें आगैं जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावँ छ्वै ॥२९६॥

२९५–ध्यावैं–धावैं (प्रयाग)। कैधौं–क्यौं धौं (वही)। २९६–द्वै–र्वै (संग्रह)। भोग०–भोगलात।

पिराने=दुखने लगे। पल=पलकें। थाके=थक गए, रुक गए। दुहेली=दु:ख की। [२९५] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निरगुन=निर्गुण (ब्रह्म); गुणहीन; आकाश। दई=दैव के शासन को न माननेवाला। [२९६] सोऊ=चकोर भी। एक०=वे एक ही हैं केवल देखने में दो हैं, प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी में अभेद हो जाता है। भोगी०=विषयी भी जिसमें डूबकर वशीभूत हो जाते हैं। विषयानद को भूलकर प्रेमानंद में मग्न हो जाते हैं। भूले=बेहोश, प्रेममग्न। सुधि के०=सतर्क होकर चलनेवाले नहीं चल सकते। कैं=के ऊपर। [२९७] प्यास पाना=प्यास को समझना ('पीर पाना' की भाँति)।

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौँ दृगप्यास नहीँ ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीँ ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीँ ।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥२९७॥

सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुरयौ कब आय बसायहौ ।
साचनि ही मुरभ्यौ पिय जो हिय सो सुख सीँचि उदेग नसायहौ ।
हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौँ बियोग के ताप तसायहौ ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं खाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥२९८॥

कबित्त

जहाँ तैँ पधारे मेरे ननिनि ही पाँव धारे,
वारे ये बिचारे प्रान पैँड़ पैँड़ पै मनौ ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फैँट छोरि बैठौ,
मोहिँ वा बिसासी को हो ब्यौरो बूझिबे घनौ ।
हाय निरदई कौँ हमारी सुधि कैसैँ आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौँ हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२९९॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है ।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस - तम - संग रंग - रौंचनि पगत है ।

२९८-साँचि-माँचि (वही) । तसायहौ-तपायहौ (कवित्त) । काहि-सौंतैं (काँरु०, प्रयाग) । २९९-हो-है (कवित्त) ।

कुसुमाकर=फुलवाड़ी । बास = गंध, पता । [२९८] साँचि=कर । [२९९] पैँड़=डग । झूठ०=झूठ की सत्यता से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा । हित०=

सुनि जान प्यारी ! घनआनँद तैँ दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौँ चोपनि खगत है ।
नीठि दीठि परैँ खरकत सो किरकिरी लौँ,
तेरे आगेँ चंद्रमा कलंक सो लगत है ॥३००॥

उघरि नचे हैँ, लोक-लाज तैँ बचे हैँ, पूरी
चोपनि रचे हैँ, सुदरस-लोभी रावरे ।
जके हैँ थके हैँ मोह-मादिक छके हैँ अन-
बोले पै बके हैँ दसा, चीतैँ चित चाव रे ।
औसर न सोचैँ घनआनँद बिमोचैँ जल,
लोचैँ वही मूरति अरबरानि आवरे ।
देखि देखि फूलैँ ओट भएँ भ्रम भूलैँ, देखौ
बिन देखैँ भए ये बियोगी दृग बावरे ॥३०१॥

सवैया

कित जोग-कथा सु बृथा ही बकौ, यह तौ तब ही अनुमानि लई ।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई ।
घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौँ हठ कै सठ-हानि लई ।
ब्रज खेत हो हेत सुमारनि को तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥३०२॥

चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर ! अजौँ दुख पीसत ।
साँस हियैँ न समाय सकोचनि हाय इते पर बान कसीसत ।

३००–कलंक–कलंकी (कवित्त) । ३०१–भएँ०–भ्रमन ही (कवित्त) । ३०२–जोग–लोग । बकौ–करौ (कवित्त) । खेत०–देखत होत (वही) ।

प्रेम के कच्चेपन से पुष्ट । [३००] अपूरब=अद्वितीय, पूर्वेतर दिशा । सुधाधर=चंद्रमा, सुधा+अधर, अमृतपूर्ण होँठ । मित्र=सूर्य ; सखा, प्रेमी । कला=चद्रमा की १६ कलाएँ ; विद्या । नीठि=कठिनाई से । [३०१] मादक=शराब् । चीतैँ=सोचते हैँ, ध्यान मैँ लाते हैँ । लोचैँ=कामना करते हैँ । अरबरानि=हड़-बड़ी, घबराहट । आवरे=शिथिल, दीन । [३०२] गौँ=घात । सठ०=पूँजी

ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत ।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०३॥
ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि बिदेह को लेखौ ।
देखति जो अखियाँ दुखिया नित बैरियौ की सुपने सु न देखौ ।
हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखौ ॥३०४॥

कवित्त

दूध - धाराधर झूमि झर लायौ ब्रज पर,
पूत भयौ नंद कैँ सभागो परिवार को ।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ्यौ निधि मंगल अपार को ।
नीरस परयौ हो सबै जगत रसीले बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार को ।
जिये औ जियैंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति-मंडन उदार को ॥३०५॥

कुल-उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है ।
राधा नाम नीको घनआनँद अमी को सोत,
रंचक उचारैँ रसरानी होति बानी है ।
सबै जग मंगल-निकेत भयौ याहि आएँ,
महा - प्रेम - संपति - बिलास - ठकुरानी है ।
गोकुल प्रकास्यौ ब्रजचंद के उदोत आली,
आज देखौँ भाँति भाँति रावल रवानी है ॥३०६॥

३०४–हौं–है (प्रयाग) ।

की हानि । [३०३] कसीसत=खींचते हो । [३०४] ज्यौ०=जी बहलता नहीं । [३०५] धाराधर=बादल । सभागो = भाग्यशाली । निधि=समुद्र । [३०६] लली०=माता कीर्ति की पुत्री । सिहानी=मुग्ध हो गई । रावल=राधा का

ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन को पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, बियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय तास मद फेटिहौं ॥३०७॥

सोए बहुतेरो, मेरो सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनीदे भाग! जगौगे।
पीर-भरे लोचन! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौगे ?।
अंग अग! कौ लौं तुम्हैं दहैगो अनंग कहूँ,
रंग - भरी - देह जान प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥३०८॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥३०९॥

३०७—तास—ताप (कवित्त)।

ममान। रवानी=आनंद के प्रवाह में मग्न। [३०७] खरी=उत्कट। अमी०=अमृत का भांडार। उरमंडन=हृदय के भूषण, प्रिय। [३०८] रसोत=दारुहल्दी से बनी एक औषध जो आँख के घाव में लगाई जाती है; रसवत्, रसमयता। [३०९]

कबित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौँ।
तुम बसौ न्यारे, यह भूलि हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौँ।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याकैँ महा मोह मो बिना न जानै आन कौँ।
और सबै सहौँ कछू कहौँ न कहा है बस,
तुम्हैँ बदौँ तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौँ ॥३१०॥

बिरह तपत आछे आँसुन सौँ चायनि च्वै,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौँ और हियैँ मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि वारी,
हाहा इन नैननि अतीत किन हूजियै ॥३११॥

चोरयौ चित चोपनि, चितौनि मैँ चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तैँ सरस हाँसी-फंद छंद सौँ दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौँ,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।

३१०—भूलि—नेक (कवित्त)। याकैँ—याको (वही)। ३११—चायनि०—च्चाय चोवा (कवित्त)। वारी—धारि (संग्रह)। इन—नेकु (कवित्त)।
गसौँ = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ [३१०] पैँड़े=पीछे पड़े। न हातो०= दूर नहीँ होता। [३११] मंजन=माँजना, रगड़ना। अतीत=अतिथि।

वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिं नाहिं ठौर,
मारत परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ ।।३१२।।

सवैया

अँसुवानि तिहारे बियोग हरी बरषा-रितु बेलि सी बाल भई ।
हिय-खोपनि चोपनि-कौंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई ।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित्त नई ।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ।।३१३।।

कबित्त

आरसी उसास ज्यौं तुषार तामरस त्यौं ही,
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत को ।
पावक तें पारो कॉजी छिये हूँ बिचारो छीर,
बारुनी सों सुचि जैसें लेखौ कफ गीत को ।
ऐसें घनआनँद बिचार - वारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत को ।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौं दुहेलो मन मीत को ।।३१४।।

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि बैरी वियोगहि सौंपनि ।
जाय लुभाय रहे तित ही जित चाड़ भई है नई चित-चौंपनि ।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसू रतौहैं किये हिये-खौंपनि ।
क्यौं घनआनँद यौं बचियै जिय जात बिध्यौ अनियारियै कौंपनि ।।३१५।।

३१२–मारत–मानतु (संग्रह)। ३१३–हरी–ही सों (कबित्त); भरी (कॉक०)। खोपनि–पोषनि (संग्रह)। घूमनि–धूमनि (प्रयाग)। ३१५–लुभाय–भुलाय (कबित्त)।

[३१२] छंद = छल। अत = निदान, अंत में। [३१३] खोपनि = फटन। कौंप = कौंपल। [३१४] तुषार = पाला। तामरस = कमल। बारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। दुहेलो = कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश में आनेवाला। [३१५] नाहर = सिंह। केसू = किंशुक, पलाश। रतौहैं = रागमय;

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल ! अनेकन सौं सरसौ ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौ तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ ।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तैं दरसौ ॥३१६॥

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सौं पागि जगाए ।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए ।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए ।
भोर हूँ ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३१७॥

कबित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी मति गति गई खोय है ।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि सो बसत बन गोय है ।
वनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन जागैं गयौ सोय है ।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातैं नैन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१८॥

सवैया

घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै विनती कर जोरि करौं ।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अजू धरि ध्यानहिं दूरि तैं पाय परौं ।
मन भायो वियोग मैं जारिबो लौं तौ तिहारी सौं नीकैं जरैंऽरु भरौं ।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख-बीच अमीच मरौं ॥३१९॥

चाइ–चाह (वही)। ३१८–सो–कै। गोय–जोय (वही)। ३१९–अजू–अहो (कबिरा)।

रक्त से भरा। खौंप = चिराव, वेध। कौंपनि=कौंपलों से ; नोकों से। [३१६] त्यौं=ओर। दया० = दया करके। [३१७] चौचँद=क्रीड़ा, कौतुक। का० = किस छल से छूटकर यहाँ तक आए। [३१८] जोय=देखकर। [३१९]

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैई पढ़े ।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, कहियै कहा, सोच-प्रबाह बढ़े ।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिष बारि सु ये अपराध गढ़े न कढ़े ।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े ॥३२०॥

जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं ।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान की धारनि धोवति हैं ।
घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं ।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥३२१॥

पहिलैं पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा ।
इत के हित बैर लियौ उत ह्वै, बित ज्यौहरि-ब्यौहरि लोभ लहा ।
घनआनँद मीत सुनौ अरु ऊतर दूर तें देहु न देहु हहा ।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥३२२॥

सुधि होती सुजान! सनेह की जौ तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू ।
छिन जाते न बाहिर, जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू ।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू ।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३२३॥

कबित्त

छाया छियैं लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौं न दिखाति है ।
रोम रोम रही भोय रोय परौं भरौं साँस,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है ।

३२०–कहियै–करियै (वही) । ३२२–इत–इन (काँक०) । बित–करि (कवित्त) । न देहु–सुजान (काँक०) ।

अमीच=बिना मृत्यु के ही । [३२०] पपीहा०=चातकपन ही । [३२१] दुखहाई=दुख की मारी । जगें०=खुली हैं, पर कुछ देखती नहीं । [३२२] ज्यौहरि०=जी हरने के व्यापार में लाभ के लोभ से । [३२३] दोष०=दोष गुण से

जान प्यारी दूरि ही तैं चेटक चरित कोटि,
मति उपचारिन की हेरत हिराति हैं।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सौं,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है ॥३२४॥

सवैया

किहि बान ठनी, हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान करयौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भरयौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच ररयौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम परयौ ॥३२५॥

कबित्त

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जौ परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चितारि दोऊ हैं न हो हमारैं तातैं,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥३२६॥

सवैया

मो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन, यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हूँ दूनो बिदेह तैं दाहक।

३२४–उपचारिन–उपचारनि (संग्रह)। गति–चाह (वही)। ३२५–बान–ठान (कवित्त)। ३२६–कहूँ–कहैं (काँक०, प्रयाग)। चितारि–चिन्हारि (कवित्त)। गतिनि–गति सुनि हारी (संग्रह)।

लगते। हमैं०=मेरा हृदय पहचान पाते। [३२४] छियैं=छूने से। चेटक=माया। उपचारी=औषध का यत्न करनेवाला। [३२५] निहकाम=कामनाहीन। [३२६] गति=दशा; चाल। परनि=पड़न, स्थिति। अरति०=

चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अनाहक।
प्रान धरोहर है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ॥३२७॥

कवित्त

मूरति सिँगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौँ।
रति - रसना - सवाद - पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सौँ माँजिहौँ।
जान प्रानप्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौँ।
कब घनआनँद ढरौँहौँ बानि देखैँ सुख
सुधा - हेत मन - घट - दरकनि राँजिहौँ ॥३२८॥

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैँ और रुची तौ रुचै न तुम्हैँ बिन मोहिँ जियौ जू।
आँखिन मैँ ढरि आय रहै सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू।
सूल भयौ गुन जो जिहि अंग को दीप सो बारि बियोग दियौ जू।
हाय सुजान! सनेही कहाय क्यौँ मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू ॥३२९॥

सखि सूधे सुभाय लख्यौ मग जात सो टेढ़ो है प्राननि बीच खग्यौ।
मुसक्यानि गई मुसक्यानिहि मैँ मन सो धन नेकु निहारि ठग्यौ।
घनआनँद भोजे कटाछन सौँ रस पागि लई तन स्वेद जग्यौ।
जसुदाकृत पुन्य के पुंजनि को फल पापनि मो अँखियानि लग्यौ ॥३३०॥

३२७–धरोहर–हरौहर (कवित्त)। ३२८–पाय०–पिय चूमे (काँक०)। देखैँ सुख–देखेँ (कबित्त)। राँजिहौँ–सुठि राँजिहौँ (वही)। ३२९–ढरि०–ढरिआई (कबित्त) जिहि–तिहि। ३३०–प्रानन–मारग। (कबित्त)। कटाछन–कहा छिन (काँक०)। पापनि–पापिनि (राम)।

अड़ती है। [३२७] बलकै = बकता है। बलाहक = मेघ। बिदेह = कामदेव। अनाहक=व्यर्थ। [३२८] राँजिहौँ=टाँका लगाऊँगी। [३२९] खग्यौ=धँस गया। [३३०] रूखे = उदासीन; चिकनाहट से रहित। चिकने = भिनकर; चिकना-

हाय बिसासी सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकने अति, सोहौ ।
आपुनपौ अरु आप हु तैं करि हाले हतौ घनआनँद को हौ ।
कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तैं न बिछोहौ ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥३३१॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद कला-कुल-धारी ।
सोभा - समूह भई घनआनँद मूरति अंग अनंग - जिवारी ।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार बिलास मैं रासबिहारी ।
मेरो मनोरथ हू वहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥३३२॥

अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ ।
देखि रहौं, अनदेखैं दहौं सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ ।
जान ! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरु काहि सुनाऊँ ।
यौं घनआनँद रैनदिना नहिँ बीतत, जानियै कैसैं बिताऊँ ॥३३३॥

गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जनावति हौ न ।
दुराव कियैं कहा होत सखी ! रँग और भयौ ढँग ऊतर कौ न ।
हियें धरको, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानिहु तौ न ।
बढ़ायहौ बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥३३४॥

कबित्त

कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानै मन वारे की कहैऽब को सुनै सु कौन ।
निधरक जान अलबेले निखरक - ओर,
दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हौ न ।

३३१–बिसासी–सनेही (कवित्त)। ३३२–अंग–रंग (वही)। ३३३–नहिं०–न बितीतत। ३३४–जनावति–जतावति (कवित्त)।

हट से युक्त होकर। करि० = दूर करके। [३३१] जा० = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जिवारी=जिलानेवाली। मनोरथ हू० = मेरे मनोरथ (मन के रथ) को भी चलाइए जैसे अर्जुन का रथ चलाया था। [३३२] अंक = गोद। [३३३] धरको = धड़कन। तौ० = तो नहीं थी। [३३४]

पर - दुख - दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौं हूँ देखि कै बिबस बकि परी मौन ।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३५॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखास मरौं, इत की तौ चितार रही न उनै ।
रचि कौन से घात लियौ है हियो, बिन हेरें न जीव बिचारि गुनै ।
घनआनँद ऐसी दसानि घिरैं दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै ।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३६॥

कबित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे ।
गुपत लपट जाको तम ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे ।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे ।
बारिद सहाय सौं दवागिनि दबति देखौ,
बिरह-नवागिनि तैं नैना झर कै रहे ॥३३७॥

सवैया

सावन-आवन हेरि सखी ! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी ।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ।

३३५—कहैऽब०—कहौऽब को सुनौ (काँक०)। कहा०—कहैऽब। को—को (कबित्त)
३३६—दिखास-दिखाई। चितार—चिन्हारि। घिरैं—घिरयौ (कबित्त)। ३३७—तम—तन (राम), तुम (काँक०)। नवागिनि—दवागिनि (राम)।

न्हानै = छुटपन मैं। निखरक = खटक से रहित। [३३५] ढरकौं हैं = ढलनेवाले। भसम = भस्म करनेवाली। [३३६] मुख = मौखिक प्रेम या मुँहदेखा स्नेह [३३७] गुरु = बड़े। अर = अड़ करके। [३३८] सम्हारि = जब सँभाल

बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी सौं लागति आँखिन देखी ॥३३८॥

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियैं परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ॥३३९॥

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ।
स्रौन-सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहाँ प्याऊँ।
हाय मरयौ मन पीर तें प्रीतम! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ।
चाहत जीव धरयौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३४०॥

निसद्यौस उदास उसास धकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी।
इत की गति कौन कहै को सुनै मन हो मन मैं यह पीर पकी।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी ॥३४१॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन खेद अखंड-कला को।
ज्यौं सरस्यौ जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को।
सूछम सो. पै भरयौ अतुलै सुख रंक बिभौ जुग नैन-पला को।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ. बिछोह मैं ज्यावत मोह छला को ॥३४२॥

घूमत सीम लगे कब पायनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान. सुजान! सुमूरति माँगत नेरी।

३३९—के—की (कॉक०. प्रयाग) । अँसुवानि०—अँसुवानहिँ (कवित); …कौं (काँक०) । ३४०—स्रौन—कौन (कोक०, प्रयाग) । मरयौ—मनौ (प्रयाग) ३४२—गेट—बैंद (कवित्त) ।

करनी चाहिए, तभी भून बैठे। [३३९] परजन्य=पर्जन्य, बादल, पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए हो। जीवन=जल; प्राण। [३४०] स्रौन= श्रवण, कान। सौं=शपथ। [३४१] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध। टकी=टकटकी। [३४२] मंडन=गहना। हेत०=प्रेमरस की वृष्टि। पला=

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निबेरी ।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सबेरी ॥३४३॥

ललचौंहीं लगौंहीं, भई तुम सौंहीं इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीं ।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी है अरराय परीं ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जरीं ।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं ॥३४४॥

कबित्त

सुरति करौं तौ बिसरे जौ होहिं जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग- मूरति महा रहैं ।
सुधि करैं वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं ।
गूढ़ि गति ब्यौरिबे की भूलियौ सुरति मोहिं,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैं ।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिन ही मैं तेई सुधि मैं सदा रहैं ॥३४५॥

सवैया

जब तें तुम आवन-आस दई तब तें तरफौं कब आयहौ जू ।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन ! जान सुभाय हौ जू ।
बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू ।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥३४६॥

अंगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई ।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई ।

सरस्यौ-तरस्यो (संग्रह) । २क-रंग (राम) । ३४५-महा-कहा (कॉक०) । ब्यौरिवे-धारिवे (संग्रह) ।

पलड़ा । [३४३] घूमत=चक्कर खाता हुआ । थान=स्थान डेरा । नेरी=निकट । रोर=शोर । सबेरी=शीघ्र । [३४४] अरराय०=टूट पड़ीं । [३४६] जान=ज्ञानी । वियोग०=वियोगदूर करेंगे । रसा=पृथ्वी । [३४७] सुथराई=सफाई ।

जान - महा - गरुवे - गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई ।
पैने कटाछनि ओज मनोज के बानन बीच बिंधी मुथराई ॥३४७॥

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं ।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं ।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं ।
जब तैं तुम आवनि-औधि बदी तब तैं अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४८॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तैं तुम आवनि-औधि बदी ।
बरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी ।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी ।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ॥३४९॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की ।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रबीनन की ।
बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की ।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥३५०॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ ।
सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोषन, तोषन रंक महा धन हौ ।
जन-सोच-विमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३५१॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै ।

३४७–हेरि०--घेरि रह्यो (वही) । ३४८–रुमांच–रोमांच (प्रयाग) । चाहनि–वाहनि–(कौक०) । टग–टक (प्रयाग पल–पग (काँक०) । माँपति–नाँपति (प्रयाग) ।
उथराई=किंचित् उठान । रत्यौ०=रति भी थोड़ी पड़ गई । मुथराई=कुंदपना [३४८] टग=टकटकी । [३४९] मैन=मदन, काम । मदी=मद, शराब । बहीर=सेना का सामान । जाति०=समाप्त होने पर आ रही है । [३५०] निधि=समुद्र । [३५१] पतिलीन=प्रतिष्ठाहीन ।

रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै ।
टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै बिहारियै उमंग-रंग भीजियै ।
पयोद-मोद छाइयै, बिनोद कौं बढ़ाइयै,
बिलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५२॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई ।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय ! कहा कहौं हेरनि ऐसें हिराई ।
बातैं बिलाय गईं रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई ।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५३॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तैं महासुख पायौ ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रसमै घनआनँद छायौ ।
ये गुन क्यौं न रचै सजनी ! उन रंग-रचे अधरानि रचायौ ॥३५४॥

कबित्त

जीवहि जिवाय नीकैं जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिं जथारथ करत हौ ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ ।
चाह-बेली-सफल-करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर-आलबालहि भरत हौ ।

३५३—उमग्यौ—उमड़यौ (कॉक०, प्रयाग)। गुन—गुनि (संग्रह) रचै—सचै (प्रयाग), सजीवन सों (कॉक०)। उन०—उन रूप रचे (प्रयाग), उनसों परचे (कॉक०)। ३५४—सुजान—जू जान (कॉक०, प्रयाग)।

[३५२] अमान=प्रमाण से परे या निरभिमान। पयोद०=घनआनँद ; आनँद के घन। [३५३] संभ्रम=भ्रांति मात्र। [३५४] सिरावन=ठंढा करनेवाले ; दूर

प्यार सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस,
विवस ह्वै आप ही तैं मो पर ढरत हौ ॥३५५॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुंदर स्याम ।
चलौ चलियै मिलि दैन वधाई भई अब ही सब पूरनकाम ।
जसोमति सौं झगरौ अगरो करि लेहु रुचै जिहि जो अभिराम ।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५६॥

मुख-चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना ।
अभिलापनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना ।
घनआनँद जान तुम्हैं विन यौं गति पंगु भई मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ विना सुधि आवति ना ॥३५७॥

कबित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तैं ।
जीवन-वरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतैं ।
अचिरजनिधि है तिहारी सब बिधि, प्यारे !
कृपा होति फलित ललित लता छोह तैं ।
मिलन तैं ज्यौं ही बिछुरन करि डार्‌यौ, वारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तैं ॥३५८॥

सवैया

रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौं अंगनि मोरति है ।
मुख-ओप अनूप विराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है ।

३५८–है–हौं (कवित्त) । ३५६–हियौ–हियै (राम) ।

करनेवाले । [३५५] निधि = भांडार । छकौंहीं = छका देनेवाली, संतुष्ट करने वाली । [३५६] अगरो = बड़ा, भारी । [३५७] चाहनि = देखना । सुधि आवति ना = होश नहीं आता । [३५८] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण । [३५९]

अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई, हियो अनुराग लै बोरति है ।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैं डरि डीठि हितू तिन तोरति है ।।३५९।।

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली ।
मद-जोबन, रूप छकीं अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली ।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-वेलि फली ।।३६०।।

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढै कि जियैं गहि काढै ।
अमीनिधि पै बिष-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढै ।
सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढै ।
बियोग मैं बैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ बाढै ।।३६१।।

हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तैं आनि कपोलनि जागै ।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै ।
बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियो रस पागै ।
सुहाग सों ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ।।३६२।।

कबित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय थाँवरो ।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि उर 'गोरी गोरी' जपै नित साँवरो ।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनैं सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास ब्रज-भाँवरो ।
कलाधर केलि को, सुफल बानी-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो ।।३६३।।

३६२–हियो–हियें (कबित्त)।

को० = रति भी क्या है । [३६०] रली = युक्त । चोज = उमंग । [३६१] या = रात । [३६२] मिहीं = पतली । अनी = नोक । सुहाग = रोली की बिंदी । [३६३] थाँवरो = थाला । भाँवरो = आवर्त । नाँवरो = नाम ।

सहज सुहायौ राधा-माधौ मन भायौ,
कुंज-पुंज छबि छायौ घनआनँद-निवास है।
रितुनि को चिंतामनि रसनि सौं रह्यौ सनि,
देखैं बनै जैसो बनि राजै सु प्रकास है।
दंपति-सुजान फूली केलि कै फलित सदा,
कलित ललित लीला-बलित-बिलास है।
ऐसे बनराजै बरनत बानी क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजै चाहत बिकास है ॥३६४॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ, होति रही है सदा चित-चीती।
हैं हम हा धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रचा ती।
प्रान-पपीहन के धन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियैं, हित की गति कौं, सुख सौं नित बीती ॥३६५॥

जित चाहत हौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६६॥

हम सौं हित कै कित कौं नित ही चित-बीच बियोगहि बोय चले।
सु अखैवट-बीज लौं फैलि परयौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौं ख्वाय कै रोय चले ॥३६७॥

३६४—राधा०—राधा माधव के मन भायौ कुंजपुंज छायौ (राम)। दंपति०—दंपति सुजान केलि बेलि (वही)। रितुराजै—रितुराजौ (वही)। ३६५—धन—घन (कवित्त)। ३६६—जित—जिन (प्रयाग)। पाय-पाई (वही)। ३६७—नित—हित (कवित्त)। छाय—छाइ (प्रयाग)। हम—हमैं (वही)। ज्यौं—जौ (वही)। ख्वाय—हाय (संग्रह)।

[३६४] कै=द्वारा। बनराज=वृंदावन। [३६५] धुर की=अत्यंत। ती=थी। हित=प्रेम [३६६] बिसास=विश्वासघात। झला=झड़ी, वृष्टि। पाय०=समझ में नहीं आती। [३६७] अखैवट=अक्षयवट। समोय=अनुरक्त होकर।

कबित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै,
ढकी लाग-आग की लपेटैं जीव ही सहै ।
वे तौ गौं गहेले हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है ।
पातनि तकत, मूल भूले फिरैं फूले वृथा,
आली ! बनमाली जू के फल की कहा कहै ।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्वाँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै ॥३६८॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन उरे हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू ।
उर बैठे दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू ।
हँसि हँसि खवावत हौ, छाहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तैं आन जू ।
सूझत हौ बूझत हौ चाखत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥३६९॥

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाए हौ हमैं दई ।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई ।

३६८–गहेले–गवेले (कॉक०, प्रयाग) । ३६९–मिलन–मिले न (प्रयाग) । उरे–बुरे (वही) । घुरे–धुरे (वही) । बैठे–बैठि (राम) । आपै–आयै (प्रयाग) । चाखत–चाहत (कवित्त) ।

[३६८] गौं०=अपनी घात को ही समझनेवाले । तावरी०=गरम क्यों होती है । घर०=दूसरे से प्रेम कर रहे हैं । [३६९] उरे=दूर, पृथक् । मौन०=आपके निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं । [३७०] जई=अंकुर ।

इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई ।
तुम हूँ तैं अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥३७०॥

सवैया

नीके नए अति जी के लगौं हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक ।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहौरि दै हाथ सज्यौ भटनायक ।
पौन-तुरंग चढ़यौ वनि यौं बनितानि अहेरैं कढ़यौ दुखदायक ।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३७१॥
राधे सुजान इते चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है ।
माखन तैं मन कौंवरो है यह बानि न जानति कैसैं कठोर है ।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिबे को न जोर है ।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है ब्रजचंद सु तेरो चकोर है ॥३७२॥
नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हैं ।
घनआनँद भूमि कटाछन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हैं ।
जिय-वेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन सायक हैं ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निबटे नटनायक हैं ॥३७३॥
राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै ।
दीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है ।
सैंननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३७४॥
वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं बिचारो अमी ।
अरु बंक बिसाल रँगीले रसाल बिलोचन मैं न कटाछ कमी ।

३७१—चाप—चाय (प्रयाग)। ३७२—इतै—चितै (कवित्त) । है यह—है यह (प्रयाग)। सु—पै (कवित्त)। ३७३—हैं—हौ (कवित्त) । सायक—लायक (वही)।
[३७१] चहौरि=सँभालकर । [३७२] कौंवरो=कोमल । [३७३] निखरे०=साफ-सुथरे । निबटे=पूरे, पहुँचे हुए । [३७४] सैननि=संकेतों से ।

घनआनँद जान अनूपम रूप तैं रीति नई जिय माँझ रमी ।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३७५॥

सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ, भरि पूरि रहे जिहि रंग झिलौ ।
इहि लायक हौ बहु भायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ॥
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ ।
हम और कछू नहिं चाहति हैं छिनकौ किन मानस-रूप मिलौ ॥३७६॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस को बन सो दरसै सो ।
जे बनमानस ते सर से तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो ।
हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै मो ।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान जहाँ घनआनँद कौं बरसै जो ॥३७७॥

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित ।
काननि पैठि कै प्राननि बेधति, दीसै नहीं अकुलानि यहै नित ।
क्यौं भरियै, करियै सु कहा, हमैं आनि बनी इन लोगन सौं इत ।
भीर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहि लै रिझवार गए कित ॥३७८॥

चलिबे मधि बैठि रहे हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ ।
किहि ठाँ तिहि बास कहाँ पुनि सो इहि संग बिचारि कै रंग रलौ ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पोष पलौ ।
जग मैं छल सो बलि जीवन कौं कल सौं तुम ही किन ताहि छलौ ॥३७९॥

३७५–अरु–बरु (कॉक०) । ३७६–बसु०–वहौ नायक (कवित्त) । ३७७–को बन सो–के बन सो (कवित्त) । जहाँ–हहा (वही) । ३७८–नहीं–नई (संग्रह) यहै–नितै (वही) । ३७९–ठाँ०–ठानहिं (कवित्त) ।

[३७५] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी । [३७६] झिलौ=लीन होते हो । ऊखिल=अपरिचित । हेत०=प्रेम ठानते हैं । मानस०=जिस रूप में मन आपको देखना चाहता है । [३७७] मानस=मनुष्य । मानस=मन । बन०=बनमानुस । सर०=साधारण तलैया । मानस= मानसरोवर । [३७८] भरियै=दिन काटूँ । [३७९] जग०=संसार में मेरा यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्यों नहीं

जात चले उहि गावँ सबै जिहि ठावँ को ठीक न सूझत काहू ।
कैसो मिलाप लियौ इन मानि मिले मग आनि अनेक उलाहू ।
पौन के भौन रहे बसि गौन मैं आपनी आपनी चाह उमाहू ।
आहि नहीं मधि सोई सुजान जु है घनआनँद ओर-निबाहू ॥३८०॥

मंजुल वंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तें ।
द्यौस मैं रैन सो चैन को ऐन, पै जोति जग्यौ जगि दंपति-देह तें ।
हास-विकास विलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तें ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर डुलै बिजना भरि नेह तें ॥३८१॥

कबित्त

मद - उनमाद - स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं ।
सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हूँ सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं ।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३८२॥

सवैया

चात के देस तें दूरि परे, जड़ ता नियरे सियरे हिय दाहैं ।
चित्र की आँखिन लीनैं विचित्र महारस-रूप-सवाद सराहैं ।

३८०–सूझत–वूझत (कवित्त)। मिलाप–मिलाय (प्रयाग)। मानि–भौन (कवित्त)। मग–मन(वही)। पौन–कौन(वही)। जु–सु (वही)। ३८१–जग्यौ-पग्यौ (कवित्त)। डुलै–दुलै (वही)। ३८३–जड़०–जियरे सियरे हियरे दुख दाहैं (कवित्त)।

छल लेते। [३८०] जिहि०=जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीं। उलाहू=(उल्लास) उमंग। उमाहू=उत्साह। ओर-निबाहू=अंत तक निर्वाह करनेवाला। [३८१] वंजुल=अशोक। अछेह=अखंड। अदेह=कामदेव। तेह=मनोदना। [३८२] अवार०=देर तक। भोए=युक्त। [३८३] कठप्रेम=वह प्रेम

नेह कथैं सठ नीर मथैं हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं ।
क्यौं घनआनँद भीजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहैं ॥३८३॥

हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी ।
टपक्यौई परै यह अंकुर ओस लौं ऐसी कछू रस-रीति घुरी ।
बिछुरैं कित सांति मिले हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी ।
तुम ही तिहि साखि सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी ॥३८४॥

नाहिं पुकार करै सुनि आहिन, को कित ह्वै केहि दोष लगैयै ।
संगम पै बिछुरे मरियै, इनि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै ।
ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै ।
ह्वै घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥३८५॥

आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिं लौटनि ।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि विहाय न हाय करौटनि ।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझे विन ढंग अनंग सरौटनि ।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३८६॥

द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनै ।
कहि कौन सकै दुति लेस कछू जिहि राधिका मोहन हूँ बरनै ।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छबि छाकि धरे मधुरे चरनै ।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनै ॥३८७॥

लाल लपेटी सुही जुही-माल सिँगार को साज बिराजति खोही ।
पीरी पिछौरिया फेट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही ।

३८४–टपक्यौई–पटक्यौई (कवित्त)। ओस०–ऑसलौं (वही)। साखि–साधि (सग्रह)। ३८५–ह्वै–है (कवित्त)। केहि–किन (काँक०)। इनि–यहि (कबित्त) ३८७–दुति०–उहि बेस (कवित्त)। सरनै–वरनै (काँक०)।

जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [३८५] पुकार=आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [३८६] करौटनि=करवटें बदलने में। सरौटनि=शिकन, सलवट। [३८७] मधुरे=प्रिय। बनराज=वृंदावन। [३८८] सुही=

फूले कदंब-तरैं करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छबि सोही।
आजु सखी घनआनँद चाहि न जानति हौंऽब कहौं तब कोही ॥३८८॥

स्याम-मनोहर आगम रूप कि सोहै महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि की यह रासि किधौं हरि हेरनि गैनी।
अंजन सी मनरंजन है व्रजचंद-चकोरन कौं सुखदैनी।
भाव बढ़ै चित चाव चढ़ै रँग-रैनि किधौं रसराज की रैनी ॥३८९॥

कवित्त

अभिलाषी प्रिय के दृगनि प्रतिबिंबवारी,
मन बित जामैं अद्‌भुत चित-चोरना।
किधौं साँवरे की गोरी भावना सरूप धार्‌यौ,
ताही मैं दिपति जान प्यारी छबि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि लालसानि भोई,
सातिक सिथिल होति नीबी बर-डोरना।
राग अनुराग भाग सुभग सुहाग-भीजी,
रीझनि छबीली झूलै सरस हिंडोरना ॥३९०॥

सवैया

कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।

३८८—लाल—भाल (कवित्त)। चाहि—वाहि (वही) कहा०—कहौं कत तोही (वही)। ३८९—आगम—ता तम (कवित्त)। हेरनि—हेरत (वही)। ३९०—मन—मानि (राम)। बिन—बिनु। ३९१—हिय-हित (कॉक०)। औसर—औरस (प्रयाग)। तनकैं-तनकौं (कविन)।

लाल। खोही=पत्तों की छतरी। पीरी०=पीला दुपट्टा। [३८९] सैनी=श्रेणी, पंक्ति, समूह दृग तार=पुतली। गैनी=मार्ग। रँग=आह्लाद। रैनि=रजनी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज=शृंगार (श्याम वर्ण)। रैनी=वृटी [३९०] छबि०=शोभा की पराकाष्ठा। सातिक=सात्त्विक भाव। नीबी=फुफुँदी। [३९१] चेटक=मायावी। चेत=चेतना।

चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकै मिलि क्यौं बहुतै दुख-देत हौ ॥३९१॥

जान हौ ए जू जनाऊँ कहा, न गए कितहूँ जु कहाँ इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौं उर तें कढ़ि यौं उर मैं कब छायहौ।
मोसौं बिछोहि कै मोहि भया करि मो मधि रावरे सूधे समायहौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥३९२॥

दृग दीजियै दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै।
करि बंदन दीन भनै सुनियै दुख-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ॥३९३॥

कवित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध जाहि,
आए सो हरष औ बिषादहू न गत को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन मैं,
रस छाकै ताकै वाहि ठगिया ठगत को।
ताहो न्यारो मिल्यौ जौ बिचारो सो तौ ताहू मधि,
ताहि रंग ढंग राखैं सुमन पगत को।
ऐसी दसा जाग्यौ भाग जागैं जौ जगाय भैंटै,
प्रेम मैं जगत जिहि खेम मैं भगत को ॥३९४॥

सवैया

प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।

३९२–जनाऊँ–जनाहु (कवित्त)। समायहौ–सुभाय हौ (वही)। आय–आप (प्रयाग) ३९३–तहीं–नहीं (कॉक०)। दुख–भ्रम (कवित्त)। स्याम–मीत (प्रयाग)। ३९४–जाहि–ताहि। बिषादहू०–बिषादन दगत। वाहि–ताहि। जाग्यौ–भाग्यौ। खेम–प्रेम (वही)।

[३९२] जान=ज्ञानी। सिरायहौ=ठंढी करोगे। [३९३] मोर०=मोरपख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै=नाचे, चचल बना रहे। खटक=वेदना। [३९४]

मोहन रूप सरूप-पयोद सौँ सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौँ ।
नावँ धरे जग मैँ घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नावँ सहौ क्यौँ ॥२९५॥

सोरठा

जौ लौँ जगै न भूल, तौ लौँ सोवै सुरति-सुख ।
वही होय अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥ २९६ ॥

कवित्त

वेई कुंज-पुंज जित तरँ तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन ज्यौँ गहि गौ ।
सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौँ सींची जिन,
वही जमुना, पै आली! वह पानी बहि गौ ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
ताहि छियेँ देह दैया महा दुख दहि गौ ।
वेई घनआनँद जू जीवन कौँ देते तिन,
ही को नावँ मरिनि के मारिबे कौँ रहि गौ ॥२९७॥

इतै अनदेखेँ देखिवेई जोग दसा भई,
तैँ तो अनाकनी ही सौँ बाँध्यौ दीठि-तार है ।
जान घनआनँद बिनाऽब सुबनक हेरँ,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है ।
छीन अति दीनन कौँ मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैँ मिल्यौ करतार है ।
तेरँ वहरावनि रुई है कान बीच, हाय
विरही विचारिनि की मौन मैँ पुकार है ॥२९८॥

२९६–भूल–मूल (राम)। होय–होत । २९७–ज्यौँ–सो (वही) आली–देनी । ताहि–नाहिँ । नावँ०–नाम मारिनि । २९८–बिनाऽब–बनाव (संग्रह) । ठगिया=ठग । [२९५] पीरक=पीड़ा देनेवाले । [२९६] मूल=अर्थात् ईश्वर । [२९७] गहन=ग्रहण की दुःखदायिनी छाया । बीचि=लहर । [२९८] वहरा-

सवैया

लरिकाई-प्रदोष मैं खेल खग्यौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ ।
बहुरौ करि पान बिषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धुंध सौं चातिक-नेम लयौ ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तैं भोर भयौ ॥३९९॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै ।
धर अंबर खूँदि खगै न कहूँ जियरा इन सोचन बीच बरै ।
घनआनँद जौ गुरु-ज्ञान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै ।
मिटि जाहिँ बिचार-बिकार सबै तब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥४००॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन भाव अनेक लै एक से पोहै ।
दै मन मंजु सुमेर तहाँ बिवि ओर गतागत कै न बिछोहै ।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै ।
या बिधि जो सुमिरै घनआनँद मो मत साधु-सिरोमनि सो है ॥४०१॥

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सो ।
कंजनि लाज को लेस नहीँ, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो ।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो ।
मीत सुजान सिरावत तो दृग है घनआनँद रग अपार सो ॥४०२॥

३९९–खेल०–टोड लग्यौ (राम) । बहुरौ–वहुरथौ । धुंध०–धूँधरथौ (वही) । ४००–वरै–जरै (राम) । ४०१–लै–सो (राम) । ४०२–तो–मो (राम) । है–छै (वही) ।

वनि=बहलाना या बहरापन [३९९] प्रदोप=संध्याकाल । बिषै=विषय, भोग-विलास । तमी=रात्रि । धुंध=माया मे आच्छन्न । केसनि=वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैं । [४००] पारद=पारा । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । खगै न=लगता नहीं । रसायन=वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो [४०१] गुन=गुण; तागा । सुमेरु=माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया । वि वि=(द्वि) दोनों । गतागत=जाना आना । [४०२]

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैँ, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासौँ नहीँ ठहरै ठिक मान को, क्यौँ हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान ह्वै, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की तिनि तान भरी, कित भौँहनि तानति ॥४०३॥

कान्ह ! परे वहुतायत मैँ अकिलैनि की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।
बौरे वियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौँ घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥४०४॥

कवित्त

पानिप अनूप रूप जल कौँ निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कौँ चाय ढरि कै ।
पर्‌यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैँ,
अति ही अपार ताहि कैसैँ सकै तरि कै ।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौँ,
बिबस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै ।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तैँ बच्यौ को सिवार कौँ पकरि कै ॥४०५॥

सवैया

कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिँ संग, तिहारी तरंग तकैँ मति बौरै ।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढौ छतियानि, निदान की ठौरै ।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ॥४०६॥

४०३–हैं–है (राम) । ४०५–कैँ–कौँ (राम) । ४०६–लखावत–लगावत (काक०) ।

बान०=बाण मारकर जिलाना । मार=काम । [४०३] निहोरिहै=खुशामद करेगी । ठिक=स्थिरता । सठ०=बुरा रोष । [४०४] अकिलैनि=अनन्य प्रेमिका की । बिमनैन=विमनस्कों की । [४०५] सिवार=केशों का उपमान । [४०६]

कबित्त

इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै।
पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर बिचित्र अंग भाव रंग सौं सनै।
मुरली मैं गौरी धुनि ढौरी घनआनँद तें,
तेरे द्वार ठठकनि ऊठम घने ठनै।
हाहा हे सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नेकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तें बनै ॥४०७॥

भएँ अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
ताहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे।
जीवै जग मारि राख्यौ झूठियै प्रतीति साँच,
साँचै झूठ जानि कछू औरै अभिलाखि रे।
कृपाबल पैयै कैसैं पंगुहि न नॅघैयै निधि,
ऐयै जैयै भूलनि सुध्यै सुधाहि चाखि रे।
जीवन मरत जौ पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं समीपैं करि राखि रे ॥४०८॥

सवैया

ब्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई।
न परेखो कछू. पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहिँ को सिखवै, सुखई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूलि सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए हैं दई ॥४०९॥

४०७–ढौरी–टेरि (राम)। तें–है। ठठकनि–टहकनि। ऊठम–ऊधम (वही)
४०८–पंगुहि०–पंगुहीन धैयै (राम)। ४०९–हैं–ए (राम)।

निदान=रोग के कारण की पहचान। [४०७] सुही=लाल। गौरी=गौरी राग।
[४०८] भूलनि०=सुध को भूल जाना। मीचु=मृत्यु। [४०९] भाँति=ढंग।

कबित्त

वासर बसंत के अनंत ह्वै कै अत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालान पै झूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान! सुनौ बाल-दसा,
चंदन-पवन तैं पजरि सियराति है
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के सग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥४१०॥

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन-
रातैं जैसैं बीतत सुने तैं डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जात,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं बियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४११॥

दोहा

गोरी! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप।
दावानल सो पान ये करत बिरह-संताप ॥४१२॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहन सौं सरसौ।

४११–पैठि–बैठि (प्रयाग)। चुहल–चहल (राम)।

अनुरागनि०=बड़ों की प्रीति। [४१०] राति=अँधेरा ही अँधेरा। पजरि०=प्रज्व-लित होकर ठंढी पड़ जाती है। [४११] घोर=ध्वनि। चुहल=विनोद। [४१२]

रसनायक मायक, लायक हौ कितहूँ भर लाय कहूँ तरसौ ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौ ॥४१३॥

इक तौ जग-मॉझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देखि सकै न बडो बिधि कूर, बियोग-समाजहि साजि पिलै ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तैं कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥४१४॥

मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा ।
अरु जौ अपढार ढ़रै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा ।
जिय जाचक ह्वै जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा ॥४१५॥

अंतर हौ किधौं अत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं ।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं ॥४१६॥

कबित्त

होनि सौं मढ्यौ पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायबे बनाई रहठानि हैं ।
साँचो झूठ देखियै सुपेखनै लौं पेखियै हो,
सोई लखि लैहै जाहि पूरी पहचानि है ।
वही घनआनँद ह्वै पोखत सुजाननि कौं,
नीर न्यौरि छीर पीबो हंसनि की बानि है ।

४१३—निवाहन—निबाहिनि (राम) । ४१४—क्हौं—कहा (प्रयाग) । ४१७—लौं—लै (राम) । हो—है । लैहै—जैहै । पीबो—पीयैं । उपजि—उपजै (वही) ।

स्यामघन=श्रीकृष्ण ; काले बादल । [४१३] तरसौ=त्रस्त करते हो । [४१४] बास=गंध । पिलै=टूट पड़ता है । धीर०=धैर्य को निगल जाती है । [४१५] अपढार=वेढंगे तौर से ढलनेवाला । लहा=लाभ । [४१६] अभागिनि०=मैं अभागिनी बिपत्ति सहूँ । अकि=अथवा । [४१७] होनि=अस्तित्व, सत्ता । अनहोनि=अन-

कैसो अचरजखानि दीसि परयौ जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकी उपजि बिलानि है ॥४१७॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, वहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ ।
भरि नैन हियैं हरि सूझ सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ ।
घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तैं सिख लौं चरचाय रह्यौ ।
लखि सूनो सकै कित रावरो ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१८॥

मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जौ वटिहै ।
वहु ओरनि लै भटकावत यौं. अटकावत क्यौं न कहा घटिहै ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहै ।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै ॥४१९॥

कवित्त

रास मैं सुरस दसौ दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चुहल चोख आप-आपनी मची ।
सुधाई सौं भरे सुर साँचे साधैं लघु गुरु,
भीजी धुनि सुनि मति राग-रंग ह्वै रची ।
पौन गौन थकि स्रौन रूपियै जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मौन कछू लै पची ।
रीझि घनआनँद रही है छकि छाय तहीं,
यातैं अब रीझनि कहूँ न रंचकौ बची ॥४२०॥

४१९-पटिहै०-पढ़िहै वढि (काँक०) । वटिहै-चटिहै (कवित्त) । यौं-क्यौं (वही) । ४२०-मैं०-सिंधु (राम) । चोख-चोप । ह्वै-है (वही) ।

न्तित्व असत्यता । रहठानि=रहने का स्थान । साँचो०=यह असत् सत् दिखाई पड़ता है । सुपेखनै०=देखने को तो यह सुंदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते, जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है । उपजि०=इसकी उपज ही नाश है । [४१८] चौचँद=बदनामी । करि०=नाक के बल । [४१९] पन की०=इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी । चटिहै=समाप्त हो जायगी । खोरि=दोष । तन०= अर्थात् मरणासन्न हो जायगी । [४२०] मौन०=मौन ने

सवैया

हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिँ कहूँ ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिँ कहूँ ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे थरु नाहिँ कहूँ ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिँ कहूँ ॥४२१॥

कबित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हौ हो कान्ह,
जानराय गुनहिँ लगाऊँ कैसैँ दोष जू ।
बिनाई कहूँ करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहूँ क्यौँ न करौ दान प्रान-परितोष जू ।
तुम्हैँ रिझवार जानि खीझ सौँ कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू ।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥४२२॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचै मन,
मौन होत सोई सुख मुख पुनि ल्यावई ।
मौन मिहीँ बात है समझि कहि जानौ जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैँ भरि प्यावई ।
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझ घनआनँद निवेरै याहि न्यावई ।
कहूँ कौन मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिँ मारि मारि ज्यावई ॥४२३॥

४२१-रची–चर्चा (कॉक०)। स्रौन०–श्री जडक्रियै (राम)। याने–पावे (वही)। ४२२–हौं–हो (राम)। विनाई–विना ही। दान–दीन (वही)। ४२३–मौन होत–मोहन हौ (राम)। कहूँ०–कहै कोऽव (वही)।

ही वह स्वाद कुछ पचा पाया। वह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है। [४२१] मन०=आपका मन कहीं अन्यत्र अनुरक्त नहीं है। [४२२] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। [४२३] मिहीँ=सूक्ष्म, गूढ़। कान०=जिसके नेत्रों में कान हों, जो

सवैया

आँखिन मूँदिवो वात दिखावत, सोवनि जागनि वातहि पेखि लै ।
वात·सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै ।
वात को वात सुवात विचारिवो सूछमता सब ठौर बिसेखि लै ।
नैनन्नि-काननि वोच वसे घनआनँद मौन-वखान सु देखि लै ॥४२४॥

कबित्त

सुधि करैं भूल की सुरति जव आय जाय.
तव सव सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं ।
जातैं सुधि भूलै सो कृपा तैं पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं ।
मेरो सुधि-भूलहि विचारियै सुरतिनाथ !
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं ।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ विसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥४२५॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यो जलपै अव यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू ।
मिटिहै तवहीं तिहि ताप जवै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू ।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति वावरी ह्वै रही झूलिहै जू ।
सुधि कौन करै इन वातन की कवहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥४२६॥

कवित्त

रसिक रँगीले भलो भाँतिनि छवीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैं ।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही विना वूझै रिझवार हैं ।

४२४-सूछमता-हैं छमता (कवित्त) ४२५-अचौन-उचौन (काँक०) ।

देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले । [४२४] अलेख=ब्रह्म । [४२५] अचौन=
आचमन, पीना । [४२६] झूलिहै=समाप्त हो जायगी । [४२७] अचाह०=

चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्रानन अधार नंदनंदन उदार हैं ॥४२७॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित ब्यौरि सकौं हित की बतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखी किहि भाँति परै पतिया ॥४२८॥

कबित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखौ,
सब ही के जिय नेकौ मीच सौं न है चिन्हारि।
होनि सो सही है अनहोनि हूँ वही है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न सोच कोउवै विचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कहै कौन,
ऐसी जाहि सूझै दीजै प्रानौ तिहि बूझि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनँद मैं,
उघरि छए हैं पै पसारो आपनो पसारि ॥४२९॥

सवैया

पीठि दियैं सब दीठि परैं निमुहैं, जग ईठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही नितहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि कानन सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥४३०॥

४२८—बरराय—बहराय (कॉक०)। ४२९—सो०—सही ह्वैहै (राम)। प्रानौ०—प्रान तेहि चूकि। पसारो—पसारि (वही)। ४३०—नितही—तिनही (राम)।

जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए कल्पवृक्ष हैं। [४२८] बरराय०=बर्राने लगती है। [४२९] मीच=मृत्यु। चूकि=भूलकर विचार किए ही। [४३० [illegible] मुँह के। सकेरै=सकेलै,

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत ।
चाहनि चोप उमाह उमग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत ।
हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असंम्हारहि नाहिँ सम्हारत ।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या बिधि आरत ॥४३१॥

हम आपनो सो बहुतेरो पचैँ कि बचैँ अपलोक तेँ एकौ घरी ।
न रहै वस नैसिक तान भिदै छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी ।
घनआनँद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री ।
कित जाहिँ कहा करैँ कैसेँ भरैँ यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥४३२॥

कबित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भरयौ,
पानिप अपार धरैँ जोबन अदेह को ।
उब्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को ।
दोऊ अद्भुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिँ देहिँ स्वाद-सुख आनँद अछेह को ।
मोहिँ नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग अंग अररात रंग मेह नेह को ॥४३३॥

सवैया

बरसैँ तरसैँ सरसैँ अरसैँ न कहूँ दरसैँ इहि छाक छई ।
निरखैँ परखैँ करखैँ हरखैँ उपजी अभिलाषनि लाख जई ।
घनआनँद ही उनए इन मैँ बहु भाँतिनि ये उन रंग रई ।
रसमूरति स्यामहिँ देखत ही सजनी अँखियाँ रसरासि भई ॥४३४॥

४३२–पचैँ–करैँ (रान)। अपलोक–अवलोक तेँ–(काँक०); अवलोकनैँ (सग्रह)। ४३३–धार–धरि (प्रयाग)। ओरनि–वोरनि (काँक०)।

आगर=अत्यत। [४३१] आरति०=आप वेदना से रहित हैं। [४३२] अपलोक=बदनामी। [४३३] अदेह=रूपहीन। अपूरब=अपूर्व, अनुपम; पू० में इतर दिशा। अछेह=अछेद्य; अखड। [४३४] जई=अनुरक्त हुई।

छप्पय

चलनि रही मँडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू ।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यौ तू ।
बृथा बाद पचि मरयौ सबद-सोधौ न धरयौ तू ।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कबहूँ न करयौ तू ।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैबो कहाँ ।
चित चलाय नित ह्वै अचल, घनआनँद चलिबो जहाँ ॥४३५॥

सवैया

जिय सूझ करौ हठि बूझत जौ कि बृथा रुचि बीच पच्यौ परि क्यौं ।
अरु भूलि गई सुधि ऊतरु की अपराधन तैं न बच्यौ डरि क्यौं ।
घनआनँद त्यौं सुनि लेहु अबै सु बजायहै साँच खच्यौ टरि क्यौं ।
कित कौं करतूतिहि खोरि लगै नित या बिधि मोहिं रच्यौ हरि क्यौं ॥४३६॥

हारे उपाय कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै ।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं ब्याकुल प्रान पुकारै ।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सम्हारै ।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥४३७॥

जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गौन-समै ।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै ।
गति बूझि परी. किन सूझत रे, कहिबो न छियै किहि घाँ सुगमै ।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमैं तजि दै बिसमै ॥४३८॥

रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कब काननि पान करायहौ जू ।
गति हंस-प्रसंसित सौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू ।

४३५—तू-तैं (प्रयाग)। ४३६—जौ-हौं (राम)। त्यौं-तौ। सु०—सुनै जाय है। टरि—ढरि। लगै—लई। हरि—मरि (वही)। ४३७—आँसू—आँसुनि (कॉक०)। सम्हारै—सहारै (राम)। ४३८—छियै—छिपै (राम)।

[४३५] छल=भ्रांति, मिथ्या। सबद०=वास्तविक बात की खोज। चित०=चित्त मैं विचार करके। [४३६] पच्यौ=परेशान हुआ। साँच०=सत्य असत्य कैसे होगा। खोरि=दोष। [४३८] घाँ=प्रकार, तरह। [४३९] रस=प्रेम; जल।

अभिलापनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तैं मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना परि रीझनि छायहौ जू ॥४३९॥

कबित्त

बीतनि को रूप तूँ ठहरि हेरि गए बीते,
ऐसैं जरि जग मैं निसा अहा बिताव रे।
ठहरनि बातनि तैं बहुरि अहुरि नीकैं,
निहचै सौं हियो भरि संसय रिताव रे।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हेत-बात सुनि हाहा चेतहि चिताव रे।
ऐसैं रंग रचै जौ बचै तौ घनआनँद ह्वै,
तचै कैसें ताप आप जीवन हिताव रे ॥४४०॥

सवैया

चितवें जिहि भाँति, सकौं सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानत जीवत कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।
घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सोच न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ ॥४४१॥

कबित्त

सबद-सुरूप यहै जानन सुजन चहै,
अचिरज यहै औरै होत सुर लाग मैं।
बेद-भेद ताके जानि परी यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाव पावत बिभाग मैं।
पूरि तानै बानै पहचानै घनआनँद जौ,
पाँवड़े करत रीझि प्रानपति आगमैं।

४४०—तूँ०—झूठे हेरि (राम)। गए—गयो। जरि—जगि। निसा—कहा। निहचै०—नगो सो न हियो मारि। तचै—नचै (वही)। ४४१—चितवें—बितवैं (प्रयाग): चितवौं (कबित्त)।

[४४०] बीतनि=क्षणभंगुरता। बहुरि०=बहुर बहुर कर, किसी प्रकार बचकर। रिताव=खाली कर, दूर कर। [४४१] न हितात=अच्छा नहीं लगता। बनाय

सूछम उसास गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन,
पौन पट रँग्यौ पेखियत रंग-राग मैं ॥४४२॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, जु परथौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गनै गन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे बिधि आनँद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही ॥४४३॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलें अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावें,
एक गावँ बसि वैरी ऐसो राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसासी यह कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसें सोई है कृपा-ढरक ॥४४४॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भरथौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु सोंच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल जरथौ अब होत हरथौ हरि नेकु, कृपा घनआनँद-सीच मैं॥४४५॥

४४२–यहै–चहै (राम)। ताके०–ताको जानि परथौ। पावत–तिन ही। बानै–ठानै। पेखियत–देखियत (वही)। ४४३–गनै–गुनै (राम)। ४४४–वैरी०–ऐसी निचै (राम)। ४४५–न–सु (राम)।

कै=कृत्रिम। [४४२] सुर=ध्वनि। लाग=प्रीति। आगमैं=आगमन में। गुन=सूत। [४४३] तन=ओर। बिसरै०=विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति में लगे रहते हैं। [४४४] मरक=खिंचाव। करक=पीड़ा। [४४५] भ्रम=मिथ्या।

आयौ महारसपुंज भरथौ घनआनँद रूप-सिँगार को मौरै ।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरै ।
मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैं धुनि मैं मति बौरै ।
आज की मोरनि की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरै ॥४४६॥

धर अंबर तैं जु कछू लखियै सु समै गुन-बीतनि रूप बन्यौ ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक ठान ठन्यौ ।
घनआनँद तौ सहजै सब जान तकौ रहि जानि जौ बोध जन्यौ ।
उत की इत की सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४७॥

दोहा

सहज रचै सोई बचै, बृथा पचै संसार ।
सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्यौहार ॥४४८॥

सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारैं सीस ॥४४९॥

हरि तुम सौं पहचानि को, मोहिं लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यौ फिरौं, बसौं कृपा के देस ॥४५०॥

मोसे अनपहचान कौं, पहचानै हरि कौन ।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४५१॥

कवित्त

दीनो जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हो ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-सर भरे हो ।

४४६—कौ—के (राम) । ४४७—धर—घर (काँक०) । समै—सबै (राम) । ठहरै—थहरै (वही) उतकी०—उन की इनकी (राम) । ४४८—संसार-ह्वै सार (राम) । ४५०—फिरौं—रहौं (राम) ।

[४४६] मौरै=मुकुट ही । सुदेस=उत्तम । [४४७] गुन-बीतनि=गुणरहित । चेटक=माया, जादू । बोध०=बोध उत्पन्न हो । [४४८] सहज=सरल, स्वाभाविक [४५०] कृपा०=कृपा में ही । [४५१] कृपा०=जैसे आपके नेत्रों में कृपा के

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अग-संग रंग ररे हौ ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४५२॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा-नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५३॥

सवैया

रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी ।
समुहाय तहाँ हरि भासिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की ।
उत मूठि-गुलाल उठैं उकसैं सु लगैं पहिलैं छतिया दुचकी ।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥४५४॥

कबित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वैहै खेह खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहैगो नहीं रे नाम ।
फूलै भ्रम भूलै कित झूलै मोह फंदनि तू,
तनकौ सम्हारै किनि प्रानन के सगी स्याम ।
जागत हू सोवै खोवै समै सो रतन बौरे,
पाय घनआनँद तचै अचेत काम धाम ।
आएँ औधि-औसर उसासहू उसरि जैहै,
धरेई रहैंगे धनधाम धंधे धूमधाम ॥४५५॥

४५२—जनाय-जनाई (राम)। जुगति—सुगति (कॉक०)। सर भरे—गहभरे (राम)। रंग—रस (वही)। ४५३—बरसौ—दरसौ (राम)। बरसौ—दरसौ (वही)। ४५५—मोह—भ्रम (संग्रह)। उसासहू—उसासहि (राम)।

कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन में है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५२] ढरहरे=द्रवीभूत। आनँद०=आनंद के बादल; घनआनंद। निरभर=पूर्ण; निर+भर=जो भरा न हो। नीठि=किसी प्रकार भी। [४५३] ऐन=घर। हित=प्रेम या लिए। [४५५] खेह=धूल। हाते=दूर

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगौ रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नीरस रावनि ही सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परथौ तुम तैं घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत से हौ कहा वहौ सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५६॥

मन मेरो अनेरो घनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौं ।
सुखकंद अहो ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही सौं लरौं ।
अनमोह भए जु न मोहत हौ मनमोहन या विधि याहि भरौं ।
घनआनँद ह्वै दुख-ताप तपावत क्यौं करि नावँहि नावँ धरौं ॥४५७॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैंगी ।
पावन-साध असाध भई इहि जोवनि यौं मरिबोई करैंगी ।
हाय महादुख है सुखदैन विचारौ हियें भरिबोई करैंगी ।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान कहा अँखियाँ बरिबोई करैंगी ॥४५८॥

सुनि वेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न थिरै ।
निसिद्यौस घुमेरिनि भौंरि परथौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै ।
घनआनँद भीजत सोचनि सूखत थाकनि दौरि सम्हारि गिरै ।
तन तौ यहि लाज घिरथौ घर मैं बन मैं मनमोहन-संग फिरै ॥४५९॥

कबित्त

विरह की वेदनि तैं गिरे जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आएँ दुख दूनो है ।
बिलखत छाँड़ो द्यौस चारिक चिन्हारी करि,
वारि दियो हिये मैं उदेग को अभूनो है ।

४५६–अलगौ–अलगै (राम) रहौं–हिहौं (काँक०)। वहौ–कहौं (राम) ।
४५७–सौं–तें (खोज)। अनमोह–मनमोह (काँक०)। भरौं–अरौं (खोज)
तचावत–तपावत। क्यौं०–भावते (वही)। ४५८–यौं०–कौ (कवित्त)।

होकर। काम०=कामना के वर में। उसरि०=छिन्नभिन्न हो जायगा। धूम०=
धूम-धड़ाम। [४५६] गुन=गुण: डोर। खगावत=मिलाते क्यों नहीं; कसते
क्यों नहीं। [४५७] अनेरो=दुष्ट। [४५८] साध=उत्कंठा। असाध=असाध्य। भरि

ऐसैं कैसैं कौ लौं रूँधि राखियै पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद बिहूनो है ।
बसत हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४६०॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तें हटै नहिं हाय हितैबो ।
लेखो कहा हमसौं है तुम्हैं हमहीं है घरी जुग कोटि बितैबो ।
पूरि परेखैं रह्यौ चित-चातक हौ घनआनँद कैसैं रितैबो ।
आँखि बिसासिनि आस गही न तजै इतनं पर बाट चितैबो ॥४६१॥

देख तुम्हैं तब लेखैं लिखैं लिखिबो लखिबैं भई आहि अहा गति ।
एक सा आँसुनि बाढ़ि बहैं न रहैं झरना लौं गहैं सु महा गति ।
यौं दिनराति मरैं घनआनँद देखो बिचारि कै नेकु हहा गति ।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहो नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति ॥४६२॥

हौ सु भले हौ कहा कहियै हम आपने पूरन भाग लहे हो ।
आँखि निगोड़िन ही यह दोप अजू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हो ।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय कितै उमहे हो ।
लै मन बैठि रहे तब त्यौं अब क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हो ॥४६३॥

रूप-सुदेस को राज करयौ करौ छत्र-गुमानहिं सीस धरे जू ।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चोप चहूँ दिसि चौर ढरे जू ।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरे जू ।
राचत हैं तुम्हैं जाचत यौं ब्रजजीवन रावरी आस करे जू ॥४६४॥

बांई=दुख से दिन काटना । [४५९] घुमेरिनि०=बेसुध रूपी भँवर में [४६०] गिरे=शिथिल हो रहे हैं । गात=गात्र, अंग । अझूनो=आग । दुहेलो=दु:खमय । बिहूनो=विहीन, रहित । [४६१] हितैबो=प्रेम करना । [४६२] अहा गति=आनद की स्थिति । महा गति=तीव्र चाल । हहा गति=हाय दुर्दशा । कहा गति=क्या वश ! । [४६३] गाँस=फदा । [४६४] दिन-दूलह=प्रतिदिन दूल्हा,

तुम्हैँ देखि जियौँ पियौँ रूप-असी घनआनँद प्यारे सदा सौँ कहौँ ।
मिलि जाहु तुम्हैँ रँग नीर लौँ पाय पै हाथ मिलौ नहीँ तासौँ कहौँ ।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौँ कहौँ ।
सुनि ऊतर देत न तौऽव कहौ कि तुम्हारे सवादहि कासौँ कहौँ ॥४६५॥

प्रीति के दाँवहि वैर सो लैन कौँ ताकि रही भरि कै अभिलाखनि ।
चातक-चोपनि चाहति हौ घनआनँद अंग सवादिली चाखनि ।
लाज-लपेटी लखावति क्यौँ करि सील सैँ साह तेँ सौगुनी साखनि ।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर वहै हियरा धरि राखनि ॥४६६॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाष-महोदधि-मंजन कै ।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ वसी मन-रंजन कै ।
तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै ।
घनआनँद-रूप निहारन कौँ व्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६७॥

नंद के आनँदकंद उदै व्रजचंद बधाएँ सबै मिलि जाहीँ ।
नैन हियैँ सुनि ही कै जियैँ अभिलाष चकोरनि तेँ अधिकाहीँ ।
दूध दही रु मही की नदी वही गोकुल गाँव-गरथारिन माँहीँ ।
आनँद को घन चोपन सौँ अति ही वरसै सरसै हित-छाँहीँ ॥४६८॥

गोकुल-घाँ तेँ कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है ।
रानि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है ।
चाह-चमूह सुनेँ सरस्यौ घनआनँद नैनन कौँ रसकंद है ।
आजु लख्यौ सजनी रजनी-दुति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६९॥

कवित्त

गोकुल-गरथारिन मैँ महा गहमह माँची,
　　गोपी-गोप उमहे बधाएँ व्रज-ईस को ।

सदा दूहा : [४६५] अपढार=सरलता से ढलना । [४६६] सवादिली=स्वादिष्ट । साख=प्रतिष्ठा । [४६७] पद०=चरण कमलों से । [४६८] गरथारि=छोटी गली । [४६९] घाँ=ओर । सुछंद । पूरब०=पूर्वजन्म के भाग्य से ।

कान्ह कुलमंडन प्रगट भए भूरि-भाग
भादौं कृस्न-पाख आठैं उदै रजनीस को।
पूरी है कुलाहल की धुनि-धारा चहूँ ओर,
आनँद को घन घोरै बोलत असीस को।
कामना-सुतरु छायौ फूल-संग फल पायौ,
औसर अनूप आयौ उर-बकसीस को ॥४७०॥
मुकुट मनोहर मैं लटक-अटक भरि,
घूमरे बिलोचन चलावै कास-कटकै।
केसरि की खौरि रौरि पारत निहारें मन,
दौरि दौरि अंग-सग रगनि त्यौं भटकै।
कहा कहौं हेली मनमोहन अनूप रूप,
इते मान बाँसुरी हटावै लाज-हटकै।
देखैं घनआनँद रसीला मृदु सूरति कौं,
ऐसी कौन बावरी सयान लैन पटकै ॥४७१॥

सवैया

झुकि रूप-तरंगनि जाल परे गुनमाल बिसालनि लै फँदईं।
उफनाय उठ्यौ रससिंधु हियौ मुखचंद लखैं अभिलाष छईं।
घनआनँद औसर के बस ह्वै मति औ गति केतियौ संग गईं।
जित ही जित मोहन गौन कियौ अँखियाँ तित ही तित क्यौं न भईं ॥४७२॥
तीर ही जाके महाछबि-भीर सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँव री।
बासिन के दृग-तारन-पुंज की मूरति मंजु लसै तिहिं ठाँव री।
ऐसें रसामृत पूरित ह्वै भरिबाई करै अभिलाषनि भाँवरी।
है अमुना जमुना घनआनँद साँवरे-संगम रगनि साँवरी ॥४७३॥

कवित्त

मन के मनोरथ-महोदधि-तरंगनि मैं,
अति ही तरल गति प्रबल प्रचंड है।

[४७०] गहमह=चहल-पहल। ब्रज०=नंद महर के यहाँ। उर०=हृदय को दान कर देने का। [४७१] लाज०=लज्जा की हिचक। पटकै=परेशान हो। [४७३]

एक एक बीचि-बीच सायर असेष जहाँ,
सूखौ राखि वोरैं तीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है बिथक्यौ है ओज,
खोजैं सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पपीहा,
सोभासीवँ जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७४॥

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं नित नाथ विसासनि मारत हाय तऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुवास भरी घनआनँद है दुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरी रसना सौं कहा कहियै वकि सोई उठै कित कौ कस कीजै ॥४७५॥

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब हो बिधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम पिकीन की प्यास भरथौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखसैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥४७६॥

नीकी नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति ओप बढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि फँदी फिरि चोपनि मोहन मंत्र पढ़ी है।
रीझनि भीजे सुधा-रत स्याम सदा घनआनँद एँड़ अढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ी है ॥४७७॥

प्रेम के पाले परै जिय जाको धरै कल क्यौं अकुलानिमई है।
दीसत देखौ दसौं दिसि प्रीतम कौन अनूठियै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यौ तब लाज सम्हारै सु बीति गई है।
जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भेंट भई है ॥४७८॥

४७४–सुजान०–सुरूप को पपीहा करि (संग्रह)।

अमुना=इस प्रकार। [४७४] बीचि=लहर। सायर=सागर। महिमंड=महिमावान्। सिखंड=मोरपंख। [४७५] खिसियौं=रोष मे हिचकती हुई भी। कस०=खींची जाय [४७७] अढ़ी=लगी। [४७८] बनायनि=भली भाँति।

तजि के रंगनि संग अलीन लै झूलत फूल सों प्यारे बनायनि ।
सामुही ह्वै सधि बैठति द्वै इक झूलति आप गॅसावति पायनि ।
साँवरे छैल तहाँ रचि ताकहों यों मिहॅदी लौं लग्यौ घुरि चायनि ।
गीतनि भास भिदै घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७९॥

हरि राधा जहीं जहीं राजत है वह ठौर जथारुचि रंजन हैं ।
सु सँजोग बियोग महारस रूप तिही तित ही मन मंजन दै ।
न मिलै बिछुरै कतहूँ न कहूँ घनआनँद यों भ्रम-भंजन जै ।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४८०॥

गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि ।
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि ।
मोहन ही सबके धन जीवन प्रीति रची रसरीति बिसेखनि ।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह, असेखनि ॥४८१॥

तुम्हैं प्रान लगे तुम प्राननहूँ मनमोहन मोह न मानियै जू ।
निठुराई सों कौ लौं निबाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनियै जू ।
दरसे तें कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातिक दानियै जू ।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियै जू ॥४८२॥

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन वीच निकेत ही राखौ ।
वंसी बजावनि रीझि रिंगावनि पाननि ताननि खेत ही राखौ ।
एहो सुजान सुनौ घनआनँद चातक त्यौं अब हेत ही राखौ ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसें सचेत ही राखौ ॥४८३॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि वेस-बिलास निहारियै हूँगे ।
कानन बीच बसैं भरि प्यास अमीनिधि बैननि पारियै हूँगे ।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सुसम्हारियै हूँगे ।
प्रान धरे मुरझैं उरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥४८४॥

४८५–अचंभे०–अभै भरयौ लेखिग्र (सग्रह) ।

[४८०] मंजन=मार्जन, स्नान [४८१] असेखनि=परीपूर्ण । [४८२] सोहन=शोभन । अरसौ=आलस्य मत करो । घुरि=घुलकर । भास=ध्वनि । [४८३]

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं ।
संग सदा तिन को सूधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं ।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचंभे भर्यौ लखि ऊखिल-भाँतैं ।
यौं घनआनँद-ओर उतै उघरै किनि रे मन ! तू सब घाँतैं ॥४८५॥

कबित्त

मेरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद इनै पै साखि सुनौ प्रानपति है ।
अंतर मैं रहौ पै न अतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँपति है ।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते तौ तुम जानौ अति है ।
कहौ हाय बूझति हौं सूझति मलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो तिहारी यह गति है ॥४८६॥

सवैया

भरि-जोवन-रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अंग समोय रहे ।
उर फागुन-दाँव को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे ।
घनआनंद चोपहि चोपनि लै उर चौचँद नेकु न सोय रहे ।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥४८७॥

गोरे कपोलनि लाली गुलाल की भोय रही कछु पौंछँऊ पाछैं ।
दर्पन देखि हियें हुलसैं सुलसैं छबि छ्वै मुसक्याँही कटाछैं ।
ओठ पै मानिक-ओप अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं ।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्राननि तोखति पाखदि आछैं ॥४८८॥

कन-स्वेद भयौ सु बिराजत यौं उडुपौ नभ तारनि संग भयौ ।
मद लाली चढ़ै अति ओप बढ़ै मुखचंद तें प्रात-पतंग भयौ ।

४८६–उझ्यौं०–नव (संग्रह) ।

[ौं] गावनि=चलाना । [४८५] ऊखिल=अपरिचित । घाँ=ओर । [४८६] साख०=
मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८७] चौचँद=बदनामी । भोय०=डूब रहे । [४८८] पौंछँऊ०=

भयौ आदिहि कज कुमोदनि के, रति-अंत चहैं भ्रम-भंग भयौ ।
घनआनँद ओज मनोज-उमगनि अंगनि अद्भुत रंग भयौ ॥४८६॥
लाल के तोही मैं प्रान बसैं तुहूँ जानति प्रीति की रीति सयानी ।
ज्यौं ब्रजजीवन जीवत तो बिन त्यौं कहा मीन मरै बिन पानी ।
तो हित-प्यास भरयौ घनआनँद आस पपीहन तें अधिकानी ।
राधे हठीली कहै किनि है, कब तें यह रूठनि है मनमानी ॥४६०॥
मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै ।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन त्यौं तब ही कबहूँ को हिलै ।
घनआनँद रोमहि रोम भिजै रसरंग-समोदनि अंग झिलै ।
उनसौं मिलि जौ बिछुरै सजनी सु न जानति हौं किहि भाँति मिलै ॥४६१॥
परदेस बसे बस ह्वै विधि के जिय जीवत यौं कछु नाहिं नई ।
जु परै सु सहैं कित-कासौं कहैं जग दीसि परयौ सब सुंनिसई ।
घनआनँद जान मिले न कहूँ इहि हेत सम्हार अचेत भई ।
यह तौ सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मीत लई ॥४६२॥
नित हौ चित हौ हित हौ कित हौ इत हौ इतने पै उदेग दहैं ।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनँद कासौं बिथाहि कहैं ।
बसि एकहि वास बिसास करौ बस नाहिं बिसासी बनौ सु सहैं ।
हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ. तुम संग बसौ हम न्यारी रहैं ॥४६३॥
देखि बिचारि बिचारै सँचारहि कौनहीं कौन सवाद पग्यौ तू ।
राचि पच्यौ बहु प्रीति सुरीतिनि लाग लच्यौ अलगाय लग्यौ तू ।
यौं भ्रम भूलि परयौ स्रम कै, अब लौं सुधि ना बिन बोध ठग्यो तू ।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौं ज़ड़ क्यौं न जग्यौ तू ॥४६४॥
करि बैर बिसासिनि बाँसुरिया सब ही कुल मैंड की ऐंड दली ।
मँडराति रहै धुनि कानन मैं मन प्रान पगे रहैं रंग रली ।

४६५—धुनि—पुनि । मन०—ब्रजमोहन (संग्रह) ।

पाँछने पर भी । काछैं=पास । [४८६] उडुप=चंद्र । पतंग=सूर्य । [४६०] तिन०=उनकी ओर होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का हिल रहा है । झिलै=कष्ट सह रहा है । [४६४] लच्यौ=नमित । [४६५] भटभेर=मुठभेड़ ।

घनआनँद क्यौं बचियै भटभेर अचानक होत गरयारँ गली ।
कित जाहि कहा करैं कैसैं रहैं मनमोहन गोहन लागि छली ॥४९५॥

रूप-निकाई अनूप कहा कहौं अंगनि जोति सुरंगनि जागति ।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा कियैं पिय-लोचन पागति ।
और सिंगारनि की सब ही रहौ याहि बिचारत ही मति रागति ।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतिन के तरवानि तैं लागति ॥४९६॥

व्रज की छबि हेरि हरयौ हित होत, खिली मिलि जूथनि जूथ जुही ।
घन घोरि घुरे चहुँ ओरनि तैं बरसैं परसैं सरसैं सु फुही ।
तिहि कुंजन मैं रसपुंज-भरे बिहरैं हरि-राधिका चोप उही ।
घनआनँद नैन-पपीहन कौं नित ही रसरासि रहौ समुही ॥४९७॥

कबित्त

भले ही रसीले अरसीले सुनि हूजियै न,
गुननि तिहारे उरभयौ है मन गाय गाय ।
काननि सुनो है तैसैं आँखिन हू देखैं जातैं,
दीखत नहीं औ सब ठावँ रहे छाय छाय ।
ऐसैं घनआनँद अचंभे सौं भरे हौ भारी,
खोए से रहत जित तित तुम्हैं पाय पाय ।
एक वास बसे सदा बालम बिसारौं, पै न
भई क्यों चिन्हारि कहूँ हमैं तुम्हैं हाय हाय ॥४९८॥

सवैया

सुनि कै गुन रावरे बावरे लौं उरझानि सुरूप की बानि परी ।
दरसे बरसे सरसे परसे घनआनँद-रीझ बिकानि परी ।
प्रगट्यौ न कहूं अब यौं उघरे गति जानि परी जु न जानि परी ।
रसदानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९९॥

४९७–घुरे–झुरे (सग्रह)। ४९८–अचमे–अभेद। (सग्रह)।

गरयारँ=गलियारा, छोटी गली में। [४९६] तरवानि०=पैरों से आग लगती है, नख से सिख तक भस्म होने लगती हैं। [४९७] फुही=सीकर हलकी वृष्टि। उही=वही। समुही=सम्मुख। [४९८] बालम=प्रिय। [४९९] बाँट=हिस्से में।

घातनि ठानत बातनि छानत चायनि दायनि जाचि रहे हौ ।
यौँ घनआनँद चाँचरि देत न हाथ लगौ छल बाचि रहे हौ ।
छाय तऊ उघरेई परौ हित-काचे तऊ पन पाचि रहे हौ ।
फाग सो खेलत डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥५००॥
ठगई धरि कै लगई जु करी न गई अजहूँ करौ घातैँ पढ़े ।
षचि कै रचि कै मचि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै बातैँ पढ़े ।
बिन लेखे मिलौ न बड़े लिखधार कहौ हित-मूरति कातैँ पढ़े ।
घनआनँद छावत भावत हौ दिन पारि इतै उत रातैँ पढ़े ॥५०१॥
रग भर्‍यौ उन सूखति हौँ उन सौँधो रच्यौ भई हौँ नकवानी ।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो दृग आवत है भरि पानी ।
आँच तचे हम सीरी परैँ पिय मो हिय खौँप गुली सुखदानी ।
आनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ॥५०२॥
आए हौ फाग मनाय कै लाल कियौ जित नेह नयौ थपनौ जू ।
आछे निचोय भिजै पठए फगुवा मन-मानतो लै अपनौ जू ।
भूलि परैँ सुधि मेरियौ लीनी किधौँ कछू देखति हौँ सपनौ जू ।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपीहन तैँ तपनौ जू ॥५०३॥

कवित्त

अपबस होहु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुबस बसौ बिसासी तहीँ बस और के ।
कहा जानौँ कितहूँ कसक है कि नाहीँ तुम्हैँ,
भौँर से भुलाने देखियत ठौर ठौर के ।
साँचिली बिचारी भोरी हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौर के ।

५००–छानत–वानत (संग्रह)। छाय०–ढाँपे तऊ (वही)। ५०१–ऐसियै–ओखियै (संग्रह)। लिखधार–खिलदार (वही)। ५०२–आँच०–ऐँचत चीन्हव सीच परै (संग्रह)। गुली–पुली (वही)।

[५००] छानत=बाँधते हो। [५०१] दिन०=बुरे दिन डालकर। रातैँ=रात्रि; अनुरक्त होना। [५०२] सौँधो=सुगध। नकवानी=नाक मेँ दम होना।

क्यौं हौ घनआनंद पपीहनि को गति कहा,
मन भए पंगु ये तिहारी एक दौर के ॥५०४॥

सवैया

कीरति की मति की गति की अति की रति प्रापतिदाइनि देखी।
देवनदी-अहियान-पदी महिमान बदी स्रुति साखि बिसेखी।
और कहौ कहि कौन सकै घनआनँद यौं उर ही अवरेखी।
तरैई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि दै विदिसा अनिमेखी।॥५०५॥

कबित्त

नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा.
रूप के विधान को बखान कहा सूर सौं।
सरस परस के विलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ो दिन भरै भखि ऊरसौं।
चाह की चटक तें भयौ न हियेँ खौंप जाके,
प्रेम - पीर - कथा कहै कहा भकभूर सौं।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कौं,
दैया कहूँ काहू कौं परै न काम कूर सौं ॥५०६॥

सवैया

नेह सौं भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूपउज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति ॥५०७॥

५०४–भुलानें–लुभाय (संग्रह)। और–रौर (वही)।

[५०५] अति०=अत्यंत प्रेमप्राप्ति की दात्री, अत्यंत प्रिय बना देनेवाली। देवनदी=गंगा। अहियान=शेषशायी विष्णु के पद से उद्भूत। श्रुति=वेद। अवरेखी=विचार किया। तिविक्रम=त्रिविक्रम, वामन का अवतार। विदिसा=विदिशा, एक नदी। पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है। वामन ने त्रिविक्रम रूप इसी के तट पर धारण किया था। अनिमेखी=निरंतर। [५०६] सूर=अंधा। भरै=रटता है। भखि०=खाकर। ऊरसौं=कुरसी, स्वादहीन वस्तु को। खौंप=छेदन, कंगूर। भकभूर=उजड्ड, मूढ़। [५०७] नेह=प्रेम; घृत। भोय=भिंगोकर। सँजोय=जलाकर। दसा = अवस्था; बत्ती।

कृपाकंद

कवित्त

नेक उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लैकै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद है,
मूढ हू प्रगट गूढ़ छंदन कृपा करै।
आरति - निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति वंदन कृपा करै ॥१॥

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जौ कछू हैं तौ न छूहैं हम,
छीलर रचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।
महा घनआनँद घमड पाइयति जहाँ,
सोच सूखा परौ करमठ दुख दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपादिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ॥२॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसकानि सौं रग महा लहियै।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३॥

[१] मंदन=मंद बुद्धिवालों पर। मूढ़०=मूढ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति०=क्लेशनाशक [२] डरे०=फेंके रहें। छीलर = तलैया। [३] जीवनी = संजीवनी।

स्याम-सुजान-हियेँ बसियै रहै नैननि त्यौँ लसियै भरि भाइनि ।
बैननि बीच बिलास करै मुसकानि सखी सौँ रची चित चाइनि ।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि ।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥४॥

बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दृस्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई ।
ज्ञान कृपा गुन-गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई ।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-संपति साधि कृपाई ।
यौँ सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥५॥

बलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै ।
मन बाढ़ि चढै अति ऊरध कौँ टक-टेक सौँ स्याम सुजान तकै ।
जक एक, न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै ।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीलो-कृपा-मधुपान छकै ॥६॥

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेमपुंज छवि धरै हरै दरप मनोज को ।
चाव-मतवारो भाव - भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के चोज को ।
और फूल भूलि रीझि भीजि घनआनँद यौँ,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को ।
बानी रससानी ता मधुव्रत की, लह्यौ जिन
कृपा - मकरंद स्याम - हृदय - सरोज को ॥ ७ ॥

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।

६—छबीली—छबीले (वृंदावन) । ७—रससानी—रसरानी—(वृंदा०) ।

[४] रची=अनुरक्त । [५] आधि=मानसिक क्लेश । ठाँ=स्थान । [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है । सील०=शिष्टता न रह जाए; शील से आवृत हो जाए, उछकै न=नशा उतरेगा ही नहीं । मधु=शहद; शराब । [७] चोज=उमंग ।

रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को ।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ॥८॥

नेम लियौ सब बातनि तैं अब बैठिहै साधि कै त्याग महातप ।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सौं देखि तप्यौ जम-बाद को आतप ।
कैसैं कहै कछु भोई सवाद मिलै बड़ी बेर सौं याहि मिल्यौ टप ।
मौन हू जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै जीभ कृपा-जप ॥९॥

क्यौं हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसे तैं ।
हाथ चढ़ै जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं ।
नीरस मानस ह्वै रसरासि बिराजत नैसिक जा सरसे तैं ।
ऊसर हू सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसे तैं ॥१०॥

ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो ।
त्यौं मन कौं तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो ।
बे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भ्रम भार अपारहि ढोइबो ।
जागत भाग कृपा-रस पागत दीखत यौं सहजै सुख सोइबो ॥११॥

आयु जौ बायु तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं ।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठैं बनैगी बिचारत क्यौं नहीं ।
नेमनि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं ।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं ॥१२॥

कबित्त

चाहियै न कछू ताको चाह जातैं फल पायौ,
यातैं वाही बन के सरूप नैन कीनौ घरु ।

९–त्याग–ज्ञान (राम) । जम–जग । जीभ–एक (वही) । ११–भ्रम–भरि (राम) । पागत–माँगत (लदन) । १२–आयु०–आय जौ छाय (राम) ।

मधुब्रत=भ्रमर । [८] गति=मोक्ष । [९] आतप=धूप । टप=शीघ्र । [१०] परसे तैं=क्या तूने स्पर्श किया ? मानस=मन; मानसरोवर । नैसिक=थोड़ा । [११] ज्यौ=जी, चित्त । घँघोइबो=गंदे जल में डुबोना । [१२] महागति=परम

जहाँ राधा-केलि-वेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु।
महा घनआनँद फुहार सुखसार सींचे,
हित-उतसवनि लगाय रंग-भरयौ भरु।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति बिराजौ मेरे,
मन-आलवाल कृस्न-कृपा को कलपतरु ॥१३॥

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखैँ पै हौँ अपने मन एकौ न लेख्यौ।
तातैँ सबै तजि स्याम सुजान सौँ साहस औरै हियैँ अवरेख्यौ।
जे निरखे उरझे तिन मैँ किनहूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ।
प्रान-पपीहन कौँ घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥१४॥
काहे कौँ सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैँ घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौँ सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तेँ बौरे! बचाय ही लीहै ॥१५॥

कबित्त

साँवरे-सुजान-रंग-संगमतरंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन बसीठि है।
एक गुनहीननिहीँ सूझत सरूप जाको,
कृपा-मद-अंध तिन्हैँ सपनैँ न नीठि है।

१३-ताकी-जाकी (राम)। जातैँ-तासौँ (वही)। १४-हौँ-मैँ (वृंदा०, लंदन)। सोच०-सूचक छीन (लंदन)। कृपा०-कृपाकर (वृंदा०)। १६-संगम-संग मति रंग (राम)।

गति। गति=अर्थात् शक्ति। पारत०=पालता क्यों नहीं। [१३] वन=वृंदावन। सुदेस=सुंदर। [१४] अनलेखे=अगणित। बिन०=सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] छीलर=तलैया। छीहै=छूएगा। [१६] पैज=

सदा घनआनँद बरसि प्रान - चातकनि,
पोखति पुकार विन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्यों सनमुख होदि कैसैं,
सबै दिसि पीठि कृपा-मन तन दीठि है ॥१६॥

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चौंच की खोंच सु क्यौं करि धारौं।
त्यौं रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौं।
पै गुन ताके अनेक लखौं निहचै उर आनि कै एक बिचारौं।
कूल बढ़ाय प्रबाह बढ़ै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि सम्हारौं ॥१७॥

कबित्त

अमल अपूरब उजागर अखड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मडन ह्वै,
बन घन राजै रसनायक निसंक है।
आनँद - अमृत - कंद बंदनीय प्रानन को,
सुषमा संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा - चंद्रिका - मै नंदनंदन मयंक है ॥१८॥

हरि हू के जेतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिन ढरै दातुरी।
दीनता न आवै तौ लौं बधु करि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी।

१७-सम्हारौं-सहारौं (कबित्त)।

प्रतिज्ञा। बसीठि=दूती। नीठि=कठिन। ईठि=इष्ट। [१७] खौंच=कौंछ, झोली। रतनाकर=रत्नों का समूह। जीरन=जीर्ण, पुराना। [१८] चितारिबो= ध्यान में लाना। तारा=पुतली, आकाश का तारा। मित्र=सखा; सूर्य। आनँद०=

गुननि बँधे हैं निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहैँ धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर बिचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही कँ एक आतुरी ॥१९॥

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही गुनहीनन तैँ सब दोष प्रमानैँ।
हा हा बुरो जिन मानियै जू बिन जाँचैँ कहौ किन दानि बखानैँ।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैँ हैँ हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैँ।
बूझौ कहैँ कहा एक कृपाकर रावरे जौ मन के मन मानैँ ॥२०॥

कबित्त

रही न कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तैँ बचाय राखैँ सुखन सौँ सानि हैँ।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैँ।
तापु बापुरेनि की सिरानी आय नेकु ही मैँ,
छाए घनआनँद सुबात-बस आनि हैँ।
अब पहचानि हमैँ चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा - लीनैँ पहचानिहैँ ॥२१॥

सवैया

जल मैँ थल मैं भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैँ।
सम रूप सदा गुनहीनन सौँ निज तेज तैँ त्रासति ताप-तमैँ।

१९–को०–को जोतिक (राम)। ढरै–बढ़ै (कबित्त)। २०–ढरौ–बढ़े (लदन)। रावरे–रावरो (वही)। २२–सरसैं–दरसै (लंदन)। अरसै–सरसै (वही)। तिन–नित (लदन)।

आनंदरूपी अमृत का बादल। मै=युक्त [१९] दातुरी=(दातृत्व) दान की वृत्ति। बीर=हे सखी। [२०] कृपाकर=कृपा की खान। [२१] बात=वायु; वचन। [२२] सम०=विषम को भी सम कर देती है। अरसैँ=चलने मेँ

घनआनँद जीवनरासि महा बरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्राननि संगम रंग अभग कृपा दरसी सब ठौर हमैं ॥२२॥

पद

भजि मन कृपासहित सुखरासि ।
सो राधिका दृगनि अभेद गुन दृस्टि रूप नित रही प्रकासि ।
बदन-कमल मधि स्याम भँवर हित मंद हँसनि रसढरी बिकासि ।
रसिकहि पान कराय छिनक मैं डारति बिषम बियोगहि त्रासि ।
हियहीँ बसति लसति जिहिँ ढरकति कोरि कोरि माखन उपहासि ।
जगजीवन मय है आनँदघन तिस उपजावति प्यासहि नासि ॥२३॥

कृपाकलपतरु श्रीगोपाल ।
अति रसमय अचिंत्य फलदायक प्रफुलित सदा धरेँ बनमाल ।
गोपीजन - मन - आलबाल मधि सोभित सोभामूल रसाल ।
चढ़ि बढ़ि भाव-बेलि चहुँ दिसि तेँ ललित केलि सुख बलित बिसाल ।
गुन अनंत साखा सुदेस लसि राजत रुचिर चरित्र-प्रबाल ।
मधुर रूप मकरंद बृस्टि दृग-मधुप पपीहा पन-प्रतिपाल ।
अवनीमनि बनराज भाग पर जगमगात जगि जोतिनि जाल ।
सेवित छबि छाया आनँदघन अखिल तापमोचन सब काल ॥२४॥

कोऊ कृपा-बल दूबरो ह्वै करि क्यौँ नहिँ साधन के सत साधौ ।
लीन कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि ऐँचि अराधौ ।
मेरेँ कृपा घनआनँद है रस भीजेँ सदा जिहिँ राधिका-माधौ ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैँ भ्रम-भूल लहैँ सु न एक न आधौ ॥२५॥

२३–तिस–संग (वृंदा०) । २५–सत–सब, सब (सग्रह) ।

आलस्य नहीं करती । [२३] माखन=मक्खन । तिस=(तृष्णा) लालसा, प्रेम । [२४] आलबाल=थाला । रसाल=रसिक रसमय । सुदेस=सुंदर । प्रबाल=नए पत्ते, कोंपल बनराज=वृंदावन । भाग=आधार, अंचल । [२५] सत=

कबित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू ।
प्रेम सो रतन जातैं पाइहै सहज ही मैं,
वह नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू ।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू ।
बोहित बिलास हू चढ़ाय लैहै सोई हा हा,
कृस्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥२६॥

पद

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं ।
बहुतै बहुत प्रान-सर्वसु लै वारि सकौं तौ वारौं ।
तोही तैं जीहा मझार की सब अभिलाष उघारौं ।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरनि-संग सम्हारौं ।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित की कृपा-भरोसो धारौं ।
आनँदघन प्रीतम सुजान हौ मौनहि गहैं पुकारौं ॥ २७ ॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध को अध-आवन-आस-बिसास तहीं ।
गति औसर की अनि ढाँसि परी बरुनी खुलि फेरि मिलैं कि नहीं ।
इहि बीच बिचारियै जीवन मौं मरियै तिहि साधन-सोच महो ।
घनआनँद-बात-कृपा-बस है अब यौं सब ही करतूति रही ॥२८॥

२६-वह-वहै (राम)। २७-तोही०-त्यौं ही तौ हिय के (राम)। की-कौं (वही)। २८-तहीं-नहीं (राम)। मिलैं०-फिरैं कि तहीं। बात-गात। है-ह (वही)।
सब्व, यत: सों। एक=एक क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती।
[२६] नेग०=भेंट हो जाय। बोहित=जहाज। [२७] उघारौं=प्रकट करूँ। [२८] गति० = जीवन की गति अवसर मात्र है।

कबित्त

बिना माँगे देत माँगि लेत सु तौ मूढ ताते
गूढ गति जानिबे कौं प्रभु हौ उदार हौ ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन रिझवार हौ ।
गुननि सरूप छाय रहे घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ ।
बिपति तिनैई परौ जिनके न पति तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥२९॥

सवैया

औगुन हूँ करि लेत गुनै निगुनीनि ढरै गुन की अधिकाई ।
झूमि रही घनआनँद यौं बरसै सरसै सुख-सीतलताई ।
मोहिं महारस-रासि मिली जिन पागि दई मति-मोद-मिठाई ।
रीझि कृपा लखि रीझि रही अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥३०॥
जे करतूति पचैं दुहुँलोक लै तेही लहौ जु कछू उन पायौ ।
कोष-कृपानिधि के हिय तें हम रंकनि बाँट कृपा-धन आयौ ।
जाहि न भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥३१॥
सदा द्रव मूरति प्रेम पगे भली भाँति जगे भए आप हि आप ।
महा निहचै सौं रचे रचना पै हियेँ सियराने प्रबोध प्रताप ।
खिले हित रंग मिले नित सग झिले सब अंग हिले चित चाप ।
कृपा घनआनँद छाँह बढ़े तिन्हैं ब्यापत क्यौं दुख-आतप-ताप ॥३२॥

२९–देत–(राम) में नहीं। प्रभु०–प्रभु अति ही (राम)। सदन–सदा न (लदन)। तिनैई–तिनहि (राम)। ३२–द्रव–इव (राम)। लगे–जगे। रचना०–रचियै हिय के। झिले–झले (वही)। चाप–जाप (लदन)।

[२९] बूझ=बुद्धि। [३०] अकि=या कि, अथवा। [३१] करतूति०=जो कर्म-साधन में परेशान रहते हैं। [३२] द्रव०=कोमलता की मूर्ति। हिले०=चित्त के

कवित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हौ हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू।
विनाई कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहैं क्यौं न करौ दान-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसाओ,
बरसि सरसि कीजै हेत लता-पोष जू ॥३३॥

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातैं सुधि भूलै सो कृपा तैं पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।
मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ,
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू मौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ.
ताहि जौ बिसारौं तौ सम्हारौं फिरि कौन कौं ॥३४॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौं जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तब ही तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही झूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३५॥

३३—मोहन०—मोह नाहिँ है (राम) । दान—दीन । हेत—हित (वही)।
३४—कूकौं कहूकौं (वृंदा०)। ३५—अब यौं—अठयौं (वृंदा०) ।

सतरंगी धनुष से युक्त। [३३] मोह=भ्रम । [३४] सुधि०=प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो आती है। अचौन=आचमन, पीना । [३५] झूलिहै=झूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥३६॥

सवैया

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥३७॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन करै इहि भाय कों गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझ परी, किन सूझत रे, कहिवो न छियै किहि घों सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिषमै ॥३८॥

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।

३६—अचाह—अचाही (वृंदा०)। ३८—बूझि—सूझि (वृंदा०, लंदन)। किन०—सु न बूझत क्यौं (वही)। छियै- छिपै (राम)। ३६—वैरी०—ऐसी। जियै (राम)।

[३६] अचाह०=अचाह व्यक्ति के लिए कल्पवृक्ष। [३७] मसोस=पछतावा। पारै=डालै। [३८] किहि०=किस प्रकार। आहि=है। रसमै=आनंदमय, प्रेम रूप। बिषमै=विषमय; विषम। [३९] मरक=खिचाव। ढरक=ढलना।

जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि बैरी ऐसी राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ, हा हा
मात औं बिसासी यह कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसे सोई है कृपा-ढरक ॥३९॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भर्‌यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु सोच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल-जर्‌यौ अब होत हर्‌यौ हरि नेकु कृपा-घनआनंद-सीच मैं ॥४०॥

दोहा

सुख-सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारैं सीस ॥ ४१ ॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिं लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस ॥ ४२ ॥
मो से अनपहचान कौं पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥ ४३ ॥

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद है सरस सींचे रोम-रोम,
भाव - निरभर लै सुभाव - सर भरे हौ।

४०—न—जु (रान)। ४२—मोहिं—मोह (वृं दा०)।

[४०] नीच=नीच मन। भ्रम = मिथ्या संसार। मीच=मृत्यु। [४१] अवनीस= हम राजा हो गए। [४२] इहि०=क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं। [४३] कृपा०=जिस प्रकार आपके नेत्रों मैं कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रंग ररे हौ ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, ढरथौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४४॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा - नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५॥

दोहा

तुम नियरे अति दूरि हौं, मिलन उपाय न कोय ।
एक ढरौंहीं कृपा तें अनहोनी हू होय ॥४६॥

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगौ रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नीरस राचनि ही सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परथौ तुम तें घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत से हौ कहा बहौ सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४७॥

कबित्त

लखैं नहीं जनम अलेखैं तौ सकल बातैं,
ऐसी जग-पैंठ मैं गवैंबोई लहौंगो कहा ।

४४–जनाय–जनाई (राम) । सरभरे–गहभरे । रंग–रस (वही) । संग–भंग (वृंदा०) । ऐसें–ऐसी (वही) । ४५–बरसौ०–दरसौ पै बरसौ (राम) । ४६–ढरौंहीं–करौ हरि (राम) । ४७–अलगौ-अलगे (राम) । बहौ–बहु (वृंदा०), बहौं (लदन) ।

भी मौन में है । [४४] ढरनि=ढलना । ढरहरे=ढलनेवाले, कृपालु । आनँद०=आनंद के बादल, घनआनंद । निरभर=निर्भर. पूर्ण । गहभरे=भली भाँति भरे हुए । रस०=रसयुक्त । नीठि=कठिनाई से भी । [४५] रस=जल; प्रेम । ऐन=अयन, घर । [४६] एक०=अद्वितीय; केवल । [४७] खगावत०=बाँधते या

लहाछेह कहै हूँ तैं अंतर अनंत परै,
या विधि की मिलनि वियोग दौ दहौंगो कहा।
चिरजीवौ मोहिं मारि तुम्हैं सुख होहु प्यारे,
परवस महा कहा कहा न सहौंगो कहा।
कृपा-घनआनँद पपीहा की पुकार लागौ,
तुम सनमुख हू पै बिमुखै रहौंगो कहा ॥४८॥

छप्पय

भूल न कवहूँ होय सुरति की सुरति देहु हरि।
सुरति किये ही रही कृपा-अवलोकनि सौं ढरि।
सुचि चरित्र रुचि परचि राचि चित-चेत थकै तहँ।
निज सरूप की लहनि कहनि अरु रहनि एक जहँ।
सुंदर सुदेस आनंदघन छाय रहे सु विनोद बनि।
संदेह-ताप-व्यापनि हरौ अंतरजामी जानिमनि ॥४९॥

पद

माधौ कब पुकार लागौगे।
मो उर अजन अजिर मैं निज जोतिहि जमाय जागौगे।
गहि गुन कृपा दोष गन मेरे अंतर तें त्यागौगे।
नीरस रचनि बचाय रँगीली प्रीति सुरस पागौगे।
मोसे सिथिल अचेत ओर अपनी रुचि खुलि खागौगे।
आनँदघन आरत चातक त्यौं प्यास-रूप रागौगे ॥५०॥

४८—नहीं—नाहिं (राम)। तौ०—तव सव। लहौंगो—लहैंगो। कहै हूँ०—कहौं तौ है (वहीं)। दौ—दै (वृंदा०) होहु—होय (राम)। कहा०—कहा सरयौ। लागौ—जागौ। हू पै—भए (वहीं)। ४९—रही—रहौ (राम)। ढरि—हरि (लंदन)। रहनि०—कहनि लहनि (राम)।

बसते क्यों नहीं। [४८] पैंठ=हाट, बाजार। गवैबोई=खोना ही। लहाछेह=तीव्र। [४९] सुरति०=अपने प्रेम की स्मृति। चेत=चेतना, बुद्धि, होश। [५०] अजन=

आयौ सरन बिकार भरयौ ।
तुम सरबज्ञ अज्ञ हौं बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु करयौ ।
सदा दयाल दीन - दुख - मोचन यही सुमिरि सबहीं बिसरयौ ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा द्वार परयौ ॥५१॥

भूल - भरे की सुरति करौ ।
अपनी गुननिधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरौ ।
या असोच कौं सोच कीजियै हा हा हो हरि सुढर ढरौ ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा-तपति हरौ ॥५२॥

करौ सु ज्यौं चित चरन जटै ।
हित - मकरंद पान करि कबहूँ कहूँ न काहू भाँति बटै ।
ताप-कला प बिलाहिँ कृपानिधि सब बिधि मोहादिकनि हटै ।
पन-पराग रचि परचि अरचि रुचि सुचि सुरूप गुनगननि रटै ।
बार बार बिनती हैं हो हरि हौ पूरन सुनि कहा घटै ।
दुखित दीन चातक आनँदघन एक तिहारी ओर डटै ॥५३॥

सवैया

सुरझै किन रे उरझे मन तू ममता गुरझैं उरझावत क्यौं ।
जित को तित ही लगि ह्वै अलगौ इत के हित-फंदनि आवत क्यौं ।
घनआनँद कृस्न-कृपा-रस कौं करि पान जियैं न जिवावत क्यौं ।
निहचै जचि रे परिचै रचि रे थिरता सचि रे भ्रमि धावत क्यौं ॥५४॥

५४—रे—दे (राम) ! ह्वै—है । जियैं—हियैं । परिचै—पचि रे (वही) ।

निर्जन, जनरहित । अजिर = आँगन । लागौगे=प्रवृत्त होओगे । रागौगे = प्रिय लगोगे । [५१] कृपाकद=कृपा के बादल । आनंदकंद=आनद के मूल । [५२] सोच=चिंता, फिक्र । [५३] जटै = जुड़ जाय । बटै= हटे, बहके । कलाप=समूह । [५४] गुरझैं=गाठेँ । सचि=संचित कर ।

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन - कृपा - पियूष पालत रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन कौं।
गोविंद गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद - गेह
गिरा अगराई गुन - गरिमा - गनन कौं।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है संनिधि सवादनि सनन कौं ॥५५॥

विष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भलो सबै दिस तें रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ बिषै-बिस तें रे।
परयौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तें रे।
नित हितमय उदार आनँदघन रस बरसत चातक-तिस तें रे ॥५६॥

पद

तुम्हैं रुचै सो रचौ कृपानिधि।
हम कछु जानत नाहिं बापुरे दीन हीन सब भाँति बिधि अबिधि
सुनि सुचि साख सदा तैं स्वामी रहै रसीले गुननि गनत गिधि।
चातक-जन-पुकार आनँदघन अब दरसै बरसै ही-पन सिधि ॥५७॥

५५—पालत—पालन (राम)। गहे—गाय। अगराई—अरगाई (वही)। संनिधि-रसनिधि (वृंदा०) ५६—हितमय—हित मैं (राम)। चातक०—आनँद मिस (वही)।
५७—रीनि०—प्रीति जानि (राम)।

[५५] जन=दास। अपनैन०=अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अगराई=अग्रगण्य श्रेष्ठता। [५६] सटकनि=हटना। गटकनि=पीना। तिस=तृष्णा। [५७] बिधि=विहित कर्म। अबिधि=निषेध; निषिद्ध कर्म। साख=प्रसिद्धि। गिधि=परचना।

जिहि लजाउ सु न कीजै स्वामी।
मो मन दसा असाधि कृपानिधि कहाँ कहा हौ अंतरजामी।
असुचि असोच पोच पै गुन सुनि उरझत मुरझत पतित सकामी।
सरसि दरसि बरसौ, परसौ जू आनँदघन चातक-हित नामी ॥५८॥

कबित्त

दान के बिधान यौं बखानत सुजान संत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं।
सूछम पुनीत पै निपट ताकी रीति नीति,
जानत जे एक दानी एही रसवंत हैं।
फल आगैं लागै पाछैं अंकुर मनोरथ को,
पानिप - निधान मान - महिमा - महंत हैं।
तातैं मन चातक तू पन लै सजीवन सौं,
कृपा - घनआनँद अधार जगजत हैं ॥५९॥

पन ऊँची दीठि नीठि नीचियौ न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के।
सुधा कौं सुरालै लखै नीच कीच कैसैं चखै,
तोषे रस-पोषे घनआनँद अमंद के।
जिन पर रीझ-भीजे छाए सुख-संपै लियैं,
लसत रसत प्यारे जसुमति नंद के।
तिन्हैं तेई तकैं तेऊ तहीं पान छकैं और,
कैसैं देखि सकैं जे अजाची जगबंद के ॥६०॥

५८—एही०—राय साजवंत। जगजंत—जराजत (वही)। ६०—संपै०—संपदा लै (राम); सबै लियै (वृंदा०)। तहीं—तिहि (राम)। सकैं—जकैं (राम)।

लुभाकर। [५८] पोच=नीच। [५९] जगजंत=जगद्यंत्र। [६०] कंद=बादल। सुरालै=सुरालय, मदिरा का स्थान या देवलोक। संपै=(शंपा)

सवैया

द्वारे न जाइहौं जू जन के जगदीस तिहारियै पौरि परयो हौं ।
आस की पासहि काटि कृपा-बल पूरन पैज भरोसैं भरयौ हौं ।
ह्वै अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अरयौ हौं ।
हौं पनधारी सुने घनआनँद सींचन की अभिलाष हरयौ हौं ॥६१॥

कबित्त

दौरि दौरि थाक्यौ पै थके न जड दौरनि तें,
गति भूलै मन की न दुरी कछू तोतें रे ।
तातें ठौर दीजै याहि, सुधि लीजै मोदघन,
बूझियै न बिड़रयौ अनाथ तोहि होतें रे ।
हाय हाय हे अमोही हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब ह्वैहै वही रची जो तैं रे ।
आस-बिसवास दै असाधन हूँ साधि लै न,
साधन कृपा है और कहा सधै मोतें रे ॥६२॥



६१—द्वारे०—द्वार न जाइहै या (राम) । हौं—है । की—के । भरोसैं—भरोसो । सुने—सुनो (राम) । हरयौ—अरयौ (वृंदा०, लंदन) । ६२—थके०—थक्यौ न तऊ (राम) । दुरी०—न दूरि । दै०—ऐन साधन हूँ साधन दैन (वही) ।

बिजली; (संपत्) धन-संपदा । जगवद=जगद्वंद्य । [६१] जन=साधारण जन । पौरि=द्वार । पास=पाश, फंदा । खरो०=अत्यंत क्षुब्ध होकर । हरयौ= हराभरा; प्रसन्न । [६२] मोदघन=आनंद के बादल, घनआनंद । बिड़रयौ=छिन्न भिन्न । होतें=होते हुए ।

वियोग-बेलि

(बंगाली बिलावल)

सलोने स्याम प्यारे क्यौँ न आवौ ।
दरस-प्यासी मरैँ तिनकौँ जिवावौ ॥ १ ॥
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ ।
लगे ये प्रान तुम सौँ हैँ जहाँ हौ ॥ २ ॥
रहौ किन प्रान - प्यारे नैन - आगैँ ।
तिहारे कारनै दिन - रैन जागैँ ॥ ३ ॥
सजन ! हित मानि कै ऐसी न कीजै ।
भई हैँ बावरी सुधि आय लीजै ॥ ४ ॥
कहाँ तब प्यार सौँ सुखदैन बातैँ ।
करौ अब दूरि त दुखदैन घातैँ ॥ ५ ॥
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ ।
अकेली कै हमैँ ऐसैँ दुरे हौ ॥ ६ ॥
सुहाई है तुम्हैँ यह बात कैसैँ ।
सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसैँ ॥ ७ ॥
दिखाई दीजियै हा हा अमोही ।
सनेही ह्वै रुखाई क्यौँऽब सोही ॥ ८ ॥
तुम्हैँ बिन साँवरे ये नैन सूनै ।
हिये मैँ लै, दिये बिरहा अभूनै ॥ ९ ॥
उजारौ जौ हमैँ काकौँ बसैहौ ।
हमैँ यौँ खाय कै औरैँ हँसैहौ ॥ १० ॥
कहौँ अब कौन सौँ बिरहा - कहानी ।
न जानी ही न जानी ही न जानी ॥ ११ ॥

२–हैँ–जू (लंदन)। ३–रैन–रैनि (कॉक०)। ९–ये–यह (लंदन
११–कहौँ–कहैँ (सभा)।

[९] अभूनै=(अक्षीण) पुष्ट आग, हृदय मैँ प्रचंड आग लगी है।

लिखौं कैसैं पियारे प्रेम - पाती ।
लगै अँसुवन झरी ह्वै टूक छाती ॥ १२ ॥
परयौ है आनि कै ऐसो अँदेसो ।
जरावै जीभ अरु कानन सँदेसो ॥ १३ ॥
दसा है अटपटी पिय आय देखौ ।
न देखौ तौ परेखौ है परेखौ ॥ १४ ॥
अजू ऐसैं कहौ कैसैं बितैयै ।
अवधि बिन हूँ सदा पैंडो चितैयै ॥ १५ ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ।
पुकारौं मौन मैं कहिवो न आवै ॥ १६ ॥
अचंभे की अगनि अंतर जरौं हौं ।
परौं सियरी मरौं नाहीं भरौं हौं ॥ १७ ॥
कहा जाने तुम्हारे जी कहा है ।
असोची मोहिं तौ संसौ महा है ॥ १८ ॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै ।
लग्यौ मन बावरौ तोरैं न टूटै ॥ १९ ॥
अजौं धुनि बाँसुरी की कान बोलै ।
छबीली छैल-डोलनि - संग डोलै ॥ २० ॥
सलोनी स्याम - मूरति फिरै आगैं ।
कटाछैं बान से उर आनि लागैं ॥ २१ ॥
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै ।
चितवनी बंक जियरा-बीच सालै ॥ २२ ॥

१२–लिखौं–लिखैं । १३–जीभ-जीव (वही) अरु–औ (खोज) । १६–कहिवो–कहिबें (सभा) । १७–अगनि–अगिन (वही) । सियरी–सीरी (वृंदा०, सभा) । १८–जाने–जानो (सभा) । तुम्हारे–तिहारे । तौ०–तोसी सो (वही) । २१–से–सौं (सभा) । २२–चितवनी०–चितौनी बंक जिय मैं आय ।

हसन मैं दसन-दुति की होइँ कौंधैं ।
बियोगी नैन चेटक चाहि चौंधैं ॥ २३ ॥
अधर कौं देखि प्यासे प्रान दौरैं ।
अमी के पान बिन ह्वै बिबस बौरैं ॥ २४ ॥
अचानक आय भैंटनि जब सतावै ।
कहौ तब की दसा कहि को बतावै ॥ २५ ॥
लगै लालन ! बिरह को तब चटपटी ।
कहौ कैसैं सहौं यह गति अटपटी ॥ २६ ॥
बहै तब नैन तैं अँसुवानि - धारा ।
चलावै सीस पै यौं बिरह आरा ॥ २७ ॥
इतै पै जौ न पावौ पीर प्यारे ।
रहैं क्यौं प्रान ये बिरही बिचारे ॥ २८ ॥
सुहाई है तुम्हैं कैसैं अनैसी ।
कहैं कासौं करौ तुम ही जु ऐसी ॥ २९ ॥
जरावै नीर तौ फिरि को सिरावै ।
अमी मारै कहौ जू को जिवावै ॥ ३० ॥
जु चंदा तैं झरैं दैया अँगारे ।
चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे ॥ ३१ ॥
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे ।
करै बिरहा हमारे हाल ऐसे ॥ ३२ ॥
अचंभो है अचंभो है महा जू ।
सनेही ह्वै कहौ कीनौ कहा जू ॥ ३३ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियौ है ।
बली अबलान मारन पन लियौ है ॥ ३४ ॥

२३—होइँ—होत । चाहि—चाय । २४—प्रान—नैन (वही) । २५—भेंटनि—भेजनि (वृंदा०), मदन (सभा) । २६—कहौ०—कहौ कैसे इह गत । २७—यौं०—विरहा जु आरा (वही), विरह अपार (कॉक०) । २८—पावौ—पाऊँ (सभा) ३१—प्यारे—पारे (खोज) ३३—महा—यहाँ (सभा) । ह्वै—हौ । ३४—अवलान०—अवलीन मारें सु न ।

करौ अब सो तुम्हैँ आछी लगै हो ।
जसोदानंद जैसेँ जस जगै हो ॥ ३५ ॥
तिहारे नाम के गुन बाँधि डारी ।
बिचारौ जू बिचारी है बिचारी ॥ ३६ ॥
दया दिखराय बिनती कीजियै जू ।
परैँ पायनि हियेँ धरि लीजियै जू ॥ ३७ ॥
भरोसो है भरोसो है भरोसो ।
रही व्रत धरि अजू अब तौ परोसो ॥ ३८ ॥
रँगीले हौ छबीले हौ रसीले ।
न जू अपनीन सौँ हूजै गसीले ॥ ३९ ॥
तुम्हैँ बिन क्यौँ जियैँ तुम ही बिचारौ ।
बचैँ कैसेँ कहौ तुम ही जु मारौ ॥ ४० ॥
लगौ नीके सबै विधि प्रान - संगी ।
तिहारी मीन है प्यारे तरंगी ॥ ४१ ॥
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे ।
हमारे हौ हमारे हौ हमारे ॥ ४२ ॥
तिहारी हैँ तिहारी हैँ तिहारी ।
विचारी हैँ बिचारी हैँ विचारी ॥ ४३ ॥
तुम्हारे नाम पै हम प्रान वारे ।
जहाँ हौ जू तहाँ रहियै सुखारे ॥ ४४ ॥
तुम्हैँ निसिद्यौस मनभावन असीसैँ ।
सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैँ ॥ ४५ ॥
लगौ जिन लाड़िले जू पौन ताता ।
सुहाई है हमैँ तुम कौँ सुहाता ॥ ४६ ॥

३७–दया-दमा (खोज) । ४१–मीन–मौन (सभा) । ४६–लगौ–लगै (भरत) । ताता–ताती (सभा) ।

[४५] कसीसैं=खिंचना, रुजू होना अर्थात् कृपा करना ।

गहौ तुम ही जु प्यारे दीन दोखै ।
दया की दृस्टि सौं फिरि कौन पोखै ॥ ४७ ॥
सुरति कीजै बिसारैं क्यौं बनैगी ।
बिरहिनी यौं अवधि कौ लौं गनैगी ॥ ४८ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियौ है ।
मिलौ औरन हमैं बिरहा दियौ है ॥ ४९ ॥
नहीं पाई परैं प्यारी लपेटैं ।
कहौ हा हा कहाँ धौं आहि पेटैं ॥ ५० ॥
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी ।
न करिहैं मान फिरि सौं हैं तिहारी ॥ ५१ ॥
चढ़ाई मूड़ अब पायनि परैंगी ।
कहौ जोई अजू सोई करैंगी ॥ ५२ ॥
दई कौं मनि कै, अब आनि ज्यावौ ।
पियासी हैं पियारे सुरस प्यावौ ॥ ५३ ॥
तिहारी ह्वै कछू क्यौं हूँ जियैंगी ।
बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैंगी ॥ ५४ ॥
यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ ।
रह्यौ पहचान को ही मैं न लेसौ ॥ ५५ ॥
बिसासिनि बाँसुरी फिरि हूँ सुनैंगी ।
कि यौं हीं सीस औसेरनि धुनैंगी ॥ ५६ ॥
न तोरौ जू कहौ क्यौं ही ऽब जोरी ।
निगोड़ी प्रीति की दुखदैन डोरी ॥ ५७ ॥
करी तुम तौ अजू गुनखान हाँसी ।
परी गाढ़ी गरैं बिसवास फाँसी ॥ ५८ ॥

४७—दृस्टि वृस्टि । ४८—कौ०—कब तक । ४९—तैं—तक । ५०—आहि—आह (वही) । ५४—कछू—बिछुर (खोज) । ५६—औसेरनि—ऐसैं सिर-(वही) । ५७—ही—हूँ (सभा) । गाढ़ी—गाढ़ै ।

न छूटै जू न छूटै जू न छूटै ।
ठगौरी रावरो विरहाऽव लूटै ॥ ५९ ॥
हमारैं एक तुम सौं टेक प्यारे ।
मिले मैं कै कपट ह्वै गए न्यारे ॥ ६० ॥
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी ।
अहो ब्रजचंद क्यौं पहचान लोपी ॥ ६१ ॥
छबीले छैल तुम कौं पीर काकी ।
बिथा की कथा तें छतियाँ जु पाकी ॥ ६२ ॥
सजीवन साँवरे कब धौं ढरौगे ।
मरैं साधा. बिरहबाधा हरौगे ॥ ६३ ॥
टरै नाहीं हिये तें हेत - थाती ।
सम्हारौ आय कै प्यारे सँघाती ॥ ६४ ॥
बढ़ै आसा हियैं भादौं - नदी सी ।
न दीसे को मसोसो भाँवरी सी ॥ ६५ ॥
तिहारो ह्वै दुखारी बूझियै क्यौं ।
सुनौ सुखदैन प्यारे दीन हैं यौं ॥ ६६ ॥
दईमारानि की अब दया आनौ ।
परैं पा दूरि तें ब्रजनाथ मानौ ॥ ६७ ॥
सनेही हौ तुम्हैं सब गाँव जानै ।
सबै मिलि रावरे गुन कौं बखानै ॥ ६८ ॥
अजू अब सक लागै प्रानप्यारे ।
सुने जिन कान मोहन गुन तिहारे ॥ ६९ ॥

५९—विरहा०—विरहीन (खोज)। ६०—हमारैं—हमारी (सभा)। मिले—मिलन। ६४—सम्हारौ—सम्यारौ (वृंदा०)। ६५—मसोसो—मसोसैं (सभा)। ६६—यौं—ज्यौं (सभा)। ६८—हौ०—है तुम्हैं सँग राख (खोज)। ६९—संक—संग (सभा)। मोहन—मोतैं (खोज)। तिहारे—निहारे (वृंदा०)।

[६४] सँघाती=संगी ।

तिन्हैँ घटि बात कैसैँ सही परिहै ।
बिना ही काज जियरा जूझि मरिहै ॥ ७० ॥
हमैँ तुम तौ लगौ सब भाँति नीके ।
करौ किरपा हरौ ये साल ही के ॥ ७१ ॥
कहा वारै निछावरि ह्वै रही है ।
कही कौ लौँ कही है जू कही है ॥ ७२ ॥
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लीजै ।
तनक मन नाम के गुन बाच दीजै ॥ ७३ ॥
धरैयै नावँ कौँ अब नावँ ऐसैँ ।
दुहाई है सुहाई परै कैसैँ ॥ ७४ ॥
सदा तैँ रावरी विनमोल चेरी ।
घरनि तैँ काढ़ि बन बंसीनि घेरी ॥ ७५ ॥
किये की लाज है ब्रजराज प्यारे ।
बिराजौ सीस पै जग मैँ उज्यारे ॥ ७६ ॥
सदा सुख है हमैँ तुम साथ आछैँ ।
लगी डोलैँ छबीले - छाँह - पाछैँ ॥ ७७ ॥
तुम्हैँ भेटैँ तुम्हैँ देखैँ भले ही ।
जगे सोए 'रु बैठे हू चले ही ॥ ७८ ॥
न न्यारी है न न्यारी है न न्यारो ।
भई है प्रानप्यारे - प्रान - प्यारो ॥ ७९ ॥
हमारी औ तिहारी एक बातैँ ।
रँगीले रंगरातैँ द्यौस - रातैँ ॥ ८० ॥
सदा आनंद के घन स्याम सगी ।
जिवौ ज्यावौ सुधा प्यावौ अभंगी ॥ ८१ ॥

७०—घटि—घर (खोज) । ७१—किरपा०—फिर पातरो ये (सभा) । ७३—बीच—माहिँ (कॉक०) । ७५—वंसीनि—वासीनि (सभा) । ७६—उज्यारे—उजारे (वृंदा) । ८१—जिवौ—जियौ (सभा) ।

[७१] साल= शल्य) पीड़ा। [७७] आछैँ=रहते हुए। [८१] अभँगी=अखंड, निरंतर।

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपबधू - चित - चोर ।
आनँदघन बंदन करै, जै जै नंदकिसोर ॥ १ ॥
लगा इस्क ब्रजचंद सूँ, अंदर अधिक अनूप ।
तव ही इस्कलता रची, आनँदघन सुखरूप ॥ २ ॥
स्याम सुजान विना लखैं, लगे बिरह के सूल ।
तामैं इस्कलता भई, घनआनंद को मूल ॥ ३ ॥
संजोगी हूँ इस्क सैं, इस्क - वियोगी खूब ।
आनँदघन चस्मों सदा, लग्या रहे महबूब ॥ ४ ॥
विरह-सूल सौं बारि करि, घनआनँद सौं सींच ।
इस्कलता झालरि रही, हिये चिमन के बीच ॥ ५ ॥

अरल्ल

सजन सलोना यार नंद दा सोहना ।
रसिकबिहारी छैल सु मनमथ - मोहना ।
दिखलावो मुखचंद सु झाँकी प्यारिया ।
आनँद-जीवन ज्यान असाडी ज्यारिया ॥ ६ ॥
पल पल प्रीति वढ़ाय हुवा वेदरद है ।
आसिक-उर पर जान चलाई करद है ।
घनी हुई महवूव सु मरम न छोलियै ।
आनँद-जीवन ज्यान दया कर बोलियै ॥ ७ ॥

२–सूँ–सों (वेल०) । अंदर–इंदर (खोज), अंधर (वेल०) । ४–हूँ–उै (वेल०) । लग्या–लगा (वही) । ६–ज्यान–जान (वेल०) ।

[२] इस्क=प्रेम । [४] चस्म=आँख । महवूव=प्रिय । [५] सूल=पीड़ा ; काँटा । बारि=काँटे की रोक । [६] दा=का (पुत्र) । सोहना=(शोभन) सुंदर । मनमथ=कामदेव । असाडी=हमारी । ज्यारिया=जिलानेवाली । [७] करद=छुरा । वर्ना० = बहुत चोट कर चुके ।

क्यौँ चितचोर किसोर हुवा वेपीर है ।
भौँह कमाने तान चलाया तीर है ।
अंत कहा हौ लेत नंद के लाडिले ।
आनँद-जीवन ज्यान सुचित के चाडिले ॥ ८ ॥

इस्क नहीँ यह होय करंदे जोर हौ ।
लीना चित्त चुराय अनोखे चोर हौ ।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है ।
आनँद-जीवन ज्यान अटपटी रीति है ॥ ९ ॥

प्यारे प्रीत बढ़ाय लिया चित चोर कैँ ।
हूठ्यो दे इठलाय चल्या मुख मोर कैँ ।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौँ जहर है ।
आनँद-जीवन ज्यान किया तैँ कहर है ॥ १० ॥

हो हलधर दे वीर चले कित जात हो ।
निठुर कान्ह महबूब न सुनदे बात हो ।
इत्थूँ आवत नाहि सु की तकसीर है ।
आनँद-जीवन ज्यान वढी उर पीर है ॥ ११ ॥

भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है ।
बाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है ।
गांवति हैँ ब्रजनारि फाग रँगवोरियाँ ।
आनँद-जीवन ज्यान सु हो हो होरियाँ ॥ १२ ॥

८–जीवन–धन के । चाडिले–लाडिले (वही) । १०–चल्या–चलौ (वेल०), लल्या (वृंदा०) । ११–दे–के (वेल०) । न०–सुनिदे । इत्थूँ–इत्थे । वढी०–कहा वेपीर (वही) ।

[८] अंत०=मारते क्यौँ हो । [९] करंदे०=जबर्दस्ती करते हो । [१०] हूठ्यो०=हाथ मटकाकर । [११] हलधर०=बलदाऊजी के भाई । इत्थूँ=(अत्र) यहाँ । की=क्या । तकसीर=अपराध, चूक । [१२] चंग=डफ के ढंग का एक बाजा ।

साँझ

की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है।
बूका बंदन अगर कुमकुमा भरै गुलालन झोरी है।
आनँद-रंग घने से भिजवै हाथ लिये पिचकारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी, जिंद असाडी ज्यारी है॥ १३॥

अहो अहो नँद-नंद साँवरे छिन छिन बानक न्यारी है।
ओढे जरद दुसाला यारों केसर की सी क्यारी है।
आनँदघन हित-प्यारे ज्यानी मूरत लगदी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥ १४॥

सजन सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है।
दरदवंद दरसन दी खातर बंदा हुकम हजूरी है।
ब्रजमोहन घनआनँद तैंडी रीति अटपटी न्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥ १५॥

यारों गोकुलचंद सलोने दिया चस्म दा धक्का है।
ढारि दिया घनआनँद जानी हुसन सरावी पक्का है।
सेन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारों झुक झारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥ १६॥

दरदवंद डाला बेदरदी खूब इस्क दा फंदा है।
हँस हँस कर मन मूसि लिया वे बडा गरीब गिरंदा है।

१३–कीकी०–···खूबी (वेल०)। से–सो। १४–ओढे–ओढौ। १५–रीति–निपट (वही)।

उपग=जलतरंग। ताल=मँजीरा। [१३] तुसाडी=आपकी। बूका=बुक्का, अभ्रक का चूर्ण। बंदन=सिंदूर। महर=कृपा। दी=की। जिंद=जिंदगी, जीवन। असाडी=हमारी। ज्यारी=जिलानेवाली। [१४] बानक=सजधज। जरद=पीला। लगदी=लगती। [१५] सजन=स्वजन, प्रिय। नंद दे=नंद के पुत्र। मगरूरी=घमंड। दरसन०=दर्शन के लिए। तैंडी=तेरी। [१६] चस्म०=आँख की चोट। ढारि०=पीछे लगा लिया। सेन=इशारा। झुकि०=क्रुद्ध होकर चलाई है।

टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १७ ॥

जिगर जान महबूब अमाने की बेदरदी दैंदा है ।
पाक दिलाँ दे अंदर धँसकर बेनिसाफ दिल लैंदा है ।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १८ ॥

दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तरसाँदा है ।
रत्ति-दिहाडे तलब तुसार्डा अक्कल इलम उडाँदा है ।
मैंनूँ ध्यान आन नहि जानी तू घन-कुंज-बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १९ ॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है ।
बिसरै नहीँ रैनदिन जी से प्यारा प्रीतम प्रानी है ।
दीजै इन्ही असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २० ॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमाने तित जावौ जू ।
कदी कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू ।
आस लगी अँखियाँ नूँ याराँ दीजै झाँकी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २१ ॥

१७—हँस०—हस हंस (वेल०) । १८—वे०—विना साफ । १९—उडाँदा—लडाँदा । आन०—न आवत । प्रानी—प्यानी (वृंदा०) । २०—इन्ही—यही (वेल०) । कदी०—कहीँ कदी (वही) ।

[१७] हंस=हँसकर । मूसि०=चुरा लिया । वे=रे । गिरदा=फदा लगानेवाला । [१८] अमाने=जो किसी की माननेवाला न हो । दैंदा०=देता है । वे०=अन्यायपूर्वक । लैंदा०=लेता है । [१९] की=क्या । तरसाँदा=तरसाता है । दिहाडे=दिन । अक्कल=अक्ल, बुद्धि । इलम=इल्म, यत्न । [२०] महर=गोपों के सरदार । मैंडा=मेरा । असानूँ=हम को । [२१] कदी=कभी ।

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोने गात ।
आवत धीर-समीर तँ, चल्या पुलिन को जात ॥ २२ ॥

निसानी

यननूँ क्यौं कर गहि सकौं घनआनँद पीया ।
मैं तैंडी लटकन फँद्या क्या तुजनूँ कीया ।
क्यौं महबूब सुजान तैं औरै क्या कीया ।
मैंडा दिल तैंने अबे क्यौं मुसि कै लीया ॥ २३ ॥

चोर लिया चित चाहते घनआनँद जानी ।
मैंडा दिल तैं मोहि कै उर औरहि ठाना ।
इस्क-सहर के बीच है यह अकह कहानी ।
अलकौं से बांधे रहैं महबूब गुमानी ॥ २४ ॥

क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीं ।
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीं ।
घनआनँद नित दीजियै नहिं कीजै नाहीं ।
अँखियाँ तैंडी चुभि रहीं मैंडे दिल माहीं ॥ २५ ॥

दोहा

आनँद के घन जान के, कीन्हौं तुम सौं हेत ।
रूप-सुधा दरसाय कै, कहर-जहर क्यौं देत ॥ २६ ॥
वंसी के विच मोहनी, मोहन याको नाम ।
आनँदघन निरमोहिया, मोह्यौ सगरो गाम ॥ २७ ॥

२२—सलोने—सलोनो (बेल०) । २३—पीया—दीया ।

[२२] धीर समीर=कुंज विशेष । पुलिन=तट । [२३] यननूँ=इनको । तैंडी=तेरी । फँद्या=फँसा हुआ । तुजनूँ=तुमको । मैंडा=मेरा । अबे=ओ, ऐ । मुसि कै=चुराकर । [२५] मैंडे=मेरे ।

अरल्ल

कालिंदी के तीर बजी हरि-मुरलिया।
समझ परै नहिं तान अनोखा सुर लिया।
पूरि रही धुनि कान न छाँडत गैल है।
आनँद-जीवन जान छबीलो छैल है॥ २८॥

बाढ़ी गाढी पीर करेजैं आय के।
मोहन मन हर लिया सु बैन बजाय के।
लग्गा मैंनूँ तीर इस्क दा खूब है।
आनँद-जीवन जान कान महबूब है॥ २९॥

खैंचत है तुव डोरि किधौं मन मैंडडा।
रहै असानूँ चाव नद दे तैंडडा।
खडा उडावत चंग सुरंग अजूब है।
आनँद-जीवन जान कान महबूब है॥ ३०॥

बीज-छटा पटपीत घटा तन स्याम है।
इंद्रधनुष बनमाल लाल अभिराम है।
बसो-धुनि घन-घोर रूप-जल छलमलै।
आनँद जीवन जान मेघ लौं झलमलै॥ ३१॥

दीजै इननूँ सीख सलोने सॉवरे।
खून करैं ये नैन हुए लडबावरे।
खूनी कीयैं जाय करेजैं घाव है।
आनँद-जीवन जान न आन बचाव है॥ ३२॥

२८—तान—प्रान (वही)। २९—लग्गा—लागा (वेल०)। कान—कान्ह। ३१—घटा—घनों। इननूँ—मुजनूँ। कीयैं—कीजै।

[२८] सुर=स्वर, ध्वनि। [२९] बैन=वेणु, बाँसुरी। मैंनूँ=मुझको। दा=का। [३०] मैंडडा=मेरा। कान=कान्ह कृष्ण। चंग=पतग। [३१] बीज=विद्युत्, बिजली। बनमाल=घुटनों या पैरों तक लंबी माला। बार=ध्वनि, गर्जन। रूप=सौंदर्य। छलमलै=छलकता है। [३२] लडबावरे=सिरचढ़े दुलरुए।

दोहा

बरसैँ आनँदघन अनत, इत नित नित ही छाय ।
प्रान-पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय ॥ ३३ ॥
आनँद के घन तुम बिना, तलफत नेही दीन ।
पल हू कल नहिं परत है, जैसे जल बिन मीन ॥ ३४ ॥

निसानी

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिँ भावै ।
नयन असाडे लागनै तुजही नूँ धावै ।
हुण क्या कीजै लाडिले वेखन नहिँ पावैँ ।
जुलम करैँ ये बावरे मुजनूँ तरसावैँ ॥ ३५ ॥
तैँडे मुख पर तिल अवे अति खून करँदा ।
अलकैँ तैँडी यौँ छुटी ह्वै नागिन लसँदा ।
तिलक बीच छापे अवे दिल का है फंदा ।
चंदागोबिंद सु नँद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३६ ॥

दोहा

आनँदघन हित पोखि कै, पाले प्रान अमीन ।
ते ही अब बिललात यौँ, जैसैँ जल बिन मीन ॥ ३७ ॥

निसानी

दे गिरंद गिरँदा हूवा वे जिंद असाडी छीनी है ।
छिप छिप कर मुखडा दिखलावै रीति अनोखी लीनी है ।
मगजदार महबूब करंदा खूब मजे दी यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ३८ ॥

३४–तलफत–डीतल । ३५–लागनै०–लागतैँ तुम (वही) । ये–जे (वेल०) । मुजनूँ–तुजनूँ ।

[३३] अनत=अन्यत्र । [३४] मुजनूँ=मुझको । असाडे=हमारे । [३५] हुण=अधुना, अब । वेखन०=देखने नहीं पाते । [३६] करँदा=करता है । लसँदा=सुशोभित है । नँद दे=नंद के पुत्र (गोविंदचंद्र) । [३७] अमीन=अमृतों से । [३८] गिरंद=फंदा ।

अहो अहो घनआनँद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है ।
बेपरवाही जाहर कर कर चस्मा नूँ चमकाँदा है ।
नोक नजर टुक करदा नाहीँ की तकसीर हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ३९ ॥

ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चस्मोँ बिच आया है ।
इस्क सराबी कीया मुजनूँ गहगा नसा पिलाया है ।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ४० ॥

हीन भए जल मीन छीन बुधि मैँडी पीर न पावै है ।
लाय कलंक यार अपने कूँ तैँ ही छिन मरि जावै है ।
आनँदघन इस दिल दी वेदन लहै सुजान बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ४१ ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की छवि निरखै धरि ध्यान ।
इस्कलता के अर्थ कौँ समझै चतुर सुजान ॥ ४२ ॥

आनँद के घन छैल सौँ करि ले चित को चाव ।
इस्कलता जौ चाहिये तौ बृंदाबन आव ॥ ४३ ॥

इस्कलता ब्रजचंद की जो बाँचै दै चित्त ।
बृदाबन सुखधाम सो लहै नित्त हां नित्त ॥ ४४ ॥

३९–अहा०–अहो अहो (वही) ।

गिरँदा=वधन लगानेवाला । जिंद=जिंदगी प्राण । असाडी=हमारी । मगज-दार=बुद्धिमान् । [३९] जित्थूँ०=जहाँ तहाँ जाता है । चस्माँ नूँ०=आँखों को चमकाता है । नोक=अनी, कोना । करदा०=करता नहीं । की०=हमारा अपराध क्या है । [४०] जद=जब । चस्मों०=नेत्रों के बीच । इस्क० = प्रेममदोन्मत्त । मुजनूँ=मुझको । [४१] हीन०=मिलाइए 'सुजानहित', छंद ४ ।

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसैं अवगाहौं ॥१॥
जमुना कहँ रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी ॥२॥
जाके तीर रसिक रसरंगी। बसत लसत गोपाल त्रिभंगी ॥३॥
जमुना को रस कहत न आवै। नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥४॥
जो रस अगम अगोचर महा। सो याके तट प्रगटित अहा ।५॥
या जमुना की भाग-निकाई। मति अति रीझि बिचार बिकाई ॥६॥
महा रसवती राधापति की। पूरन-प्रेम-तरंगनि तति की ॥७॥
श्रीजुत अंगराग की धारा। जमुना-रूप अनूप अपारा ॥८॥
सविता पिता उजागर यातैं। कृस्नचंद सुख पावत न्हातैं ॥९॥
विविध केलि सुख-वेलि बढ़ावै। बनमाली कौं निपटै भावै ॥१०॥
जमुना वृंदाबन की सोभा। नित नित प्रगटि करति हित-गोभा ॥११॥
कुंजनि पुंज तरंगनि तोषै। कुंज-रमन कौं बहु बिधि पोषै ॥१२॥
जमुना हृदय हेत को खानि। कौन सकै या मरमहिं जानि ॥१३।
गुपत प्रगट रस जमुना जानै। जमुना को हित को पहचानै ॥१४॥
घूमति फिरति भरति भाँवरी। नित संगम-रंगनि साँवरी ॥१५॥
गौर चरन राधा को गोय। स्याम-रग मैं धरयौ समोय ॥१६॥
राधा को रस जमुना जानै। भानु-नंदिना नातो मानै ॥१७॥
जमुना-हृदै रहति नित राधा। जमुना लखैं टरति भ्रम-बाधा ॥१८॥
सुख-सेवा साधिवो करति है। राधा-धव केर सहि ढरति है ॥१९॥
यह जमुना का मरमु कह्यो है। जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥२०॥
या जमुना कौं हौं हीं गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ ॥२१॥
या जमुना मैं नित हीं न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥२२॥

१३-हृदय-पाय (प्रयाग)। या०-पामर नांहिँ (वही)।

[११] गोभा=अंकुर। [१३] हेत=हित, प्रेम। [१७] भानुनंदिनी=भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)। [१९] राधा-धव=राधा के

यह जमुना मेरी सुखदायनि । याकी लहरि भरथौ चित चायनि ॥२३॥
उफनत स्याम - रसामृत - सिंधु । बिबिध भाव नर पूषन-बंधु ॥२४॥
या जमुना को मोहिँ प्रसाद । रसनैं जमुना-सुजस - संवाद ॥२५॥
ऐसी जमुना मोकौं चहियै । जमुना-कृपा कहाँ लौं कहियै ॥२६॥
जमुना के तट फूल्यौ फिरौं । हेरि तरंगनि रंगनि हिरौं ॥२७॥
जमुना लीला - रंग दिखावै । परम-प्रीति की रीति सिखावै ॥२८॥
यह जमुना जीवति है मेरी । जमुना सी जमुना ही हेरी ॥२९॥
ऐसैं ही जमुना यह देखौं । नित नित नैननि भाग बिसेखौं ॥३०॥
जमुना - महिमा बेद बखानै । सप्तसिंधु-भेदिनि जग जानै ॥३१॥
जमुना जल - करुना - रसरैनी । दरस - परस पूरन-पद-दैनी ॥३२॥
जमुना देखि न देखै जम कौं । भानकुँवरि मेटति दुख-तम कौं ॥३३॥
जमुना - जलहि सहज हू पियैं । भव-दव-ताप न व्यापति हियैं ॥३४॥
जमुना देखत ही हरि दरसैं । स्याम रूप आनँदघन बरसैं ॥३५॥
बहुत भाँति महिमा जमुना की । कहि को सक न सकति रसना की ॥३६॥
गोकुल-घाट पियौ जिन पानी । जमुना-रस-महिमा तिन जानी ॥३७॥
जमुना - तीर बसत बलबीर । गोचारन-सुख बिलसत तीर ॥३८॥
स्याम - सरीर गुननि गंभीर । जमुन-तीर बिहरत बलबीर ॥३९॥
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात । मसरत सुभग साँवरे गात ॥४०॥
कहा कहौं जमुना को भाग । अंगराग पूरन रस-पाग ॥४१॥
पैरत जमुना अपने रंग । कान्ह कौतुकी ग्वारनि संग ॥४२॥
बिबिध कलाल केलि बिस्तारत । जमुना सौं पूरन पन पारत ॥४३॥
यह जमुना रस-रास खिलावै । पुलिन सुमंडल रुचिर रचावै ॥४४॥

२५–सवाद–सँवाद (प्रयाग)। ३०–ऐसै०–ऐसइ या जमुना हौं। ३२–जल-जा। ३४–भव–तव। ३५–आनँद०–आनदनि। ३६–को०–न सकति (वही)।

पति, श्रीकृष्ण। [२४] पूषन०=सूर्य का बधु, चद्रमा। [२५] रसनैं=रसना को जीभ को। [२७] रगनि=आनद मैं। हिरौं=खो जाता हूँ। [३४] दव=दावाग्नि। [३६] सकति=शक्ति। [४०] मरसत=मसलते हैं,

स्रमित जानि व्रजमोहन धीर। जमुना सीतल सजति समीर॥४५॥
वहुत भाँति जमुना सुख देति। उमँग-भरी हित-लहरैं लेति॥४६॥
महल टहल की चहल-पहल है। जमुना लहरनि भरी लहलहै॥४७॥
जमुना विहरति वैठि सदेसनि। सगन स्यामसुंदर सजि वेसनि॥४८॥
जमुना विविधि कलोलनि ठानति। टहल-रीति जमुनाईं जानति॥४९॥
यह जमुना मेरी जिजमानि। दंपति-सुख-संपति की दानि॥५०॥
मधुर - केलि - चिंतामनि जमुना। रटि जमुना जटि राखी रसना॥५१॥
जमुना दई रसवती वानी। तव जमुना-रस-रीति वखानी॥५२॥
जमुना जमुना जमुना कहौं। धीर-समीर-तीर बसि रहौं॥५३॥
जमुना मोकौं सव कछु दियौ। दरसि परसि सरसान्यौ हियौ॥५४॥
जमुना नावँ जगत - उजियारो। रसिक जननि कौं अति ही प्यारो॥५५॥
जो जन जमुना को रस चाखै। सो नित जमुना जमुना भाखै॥५६॥
जमुना चाहि चैन चित होत। उमगि चलत लीला-रस-सोत॥५७॥
जमुना कहत जीभ जगि परै। कृस्नचरित - लीला-रस ढरै॥५८॥
जमुना कहत कृस्न ढरि आवै। रस ही रस निज दरस दिखावै॥५९॥
जमुना ढरैं ढरत व्रजनाथ। बहत जानि कै गहत सु हाथ॥६०॥
ऐसो जमुना को प्रताप - वल। और कहा यातैं उत्तम फल॥६१॥
जमुना को फल जमुना न्हैयै। नित ही जमुना जमुना गैयै॥६२॥
जमुना जाचैं जमुना पैयै। मन वच करि जमुनाईं ध्यैयै॥६३॥
जमुना सव-स्वारथ - भंडारिनि। जमुना परमारथ-विस्तारिनि॥६४॥
जमुना है मंगल को माला। जमुना देखी दीन-दयाला॥६५॥
जमुना जो कछु मो पर ढरी। पावन पैज प्रगट है करी॥६६॥
जमुना सुकृत कहाँ लौं वरनौं। पालै पोखै राखै सरनौं॥६७॥
जमुना सुख-समाज दरसावै। नीरस मनहिं परसि सरसावै॥६८॥

६३—ध्यैयै—ध्येये (प्रयाग)।

रगड़ते हैं। [४८] टहल = काम-धंधा। सगन = मंडली-सहित। [४९] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, संपन्न। जिजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, दानशीला। [५१] जटि० = जड़ रखा है। [५३] धीर०=

कृस्न - तरंगिनि यातेँ कहियै । जमुना देखि कृस्न उर गहियै ॥६९॥
जमुना तेँ निरवधि रस लहियै । जमुना चहियै जमुना चहियै ॥७०॥
जाके मन जमुना को पन है । रती अतुल को पूरो मन है ॥७१॥
जमुना जमुना जमुना एक । जमुनाईँ सौँ निवहौ टेक ॥७२॥
बृंदाबन जिहिँ जमुना - कूल । यह नित ही मोकौँ अनुकूल ॥७३॥
जमुना - तट बनराज निकेत । सदा स्याम को निज संकेत ॥७४॥
यह जमुना यह बन मेरो धन । या जमुना बन सौँ मेरो पन ॥७५॥
यह जमुना यह बन यह पन है । यह जमुना-बन मान्यौ मन है ॥७६॥
जमुना बन पन मन मैँ बसौ । रसना जमुना के रस रसौ ॥७७॥
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ । मति जमुना-कीरति-गुन गुनौ ॥७८॥
जमुना - बचन मौन मैँ रचौ । मन जमुना-चिंतन मैँ खचौ ॥७९॥
जमुना सुंदर लोचन देखैँ । सजौ सिंगार सुअंजन रेखैँ ॥८०॥
राधा मोहन - सहचरि दरसौ । जमुना दरसि केलि-सुख सरसौ ॥८१॥
जमुना को आनद अमोघ । गोपीजन - वल्लभ रस - ओघ ॥८२॥
मो पर ढरौ भरौ रस-रंगनि । निरखत जमुना रुचिर तरंगनि ॥८३॥
निरवधि रस की रासि रसीली । हित-कादंबिनि नित वरमोली ॥८४॥
प्रगट पुहुमि अचरज यह देखि । जमुना-कीरति-कला बिसेखि ॥८५॥
जमुना को मंगल जस गायौ । रसना निज सवाद-फल पायौ ॥८६॥
जमुना - जस जैसेँ मन भायौ । जमुना - ही अपढार कहायौ ॥८७॥
जमुना - रस - जस ऐसेँ कह्यौ । बानी निज परमारथ लह्यौ ॥८८॥
जमना-जस कौँ जियरा तरस्यौ । जमुना-कृपा-सुरस उर सरस्यौ ॥८९॥
तब कछु जमुना-मरमहि परस्यौ । बानी ह्वै आनँदघन वरस्यौ ॥९०॥

दोहा

जमुना - जस बरन्यौ विसद, निरवधि रस को मूल ।
जुगल - केलि - अनुकूल है, बसिबो जमुना - कूल ॥ ९१ ॥

७५–वन०–सौँ ही (वही) ।

कुंज विशेष । [६६] पैज=प्रतिज्ञा । [६७] सरनौँ=शरण में भी । [८२] ओव=प्रवाह, वाढ़ । [८४] कादंबिनि = मेघमाला । [९०] अपढार=आप से आप ढलनेवाला ।

प्रीति-पावस

चौपाई

वन विहरत मोहन घनस्याम। गिरि-गोधन-समीप सुखधाम ॥१॥
रितु बरषा हरषी ब्रज वसिकै। जित तित बसत स्यामघन लसिकै ॥२॥
उमहि असाढ़ बाढ़ि यौं रहै। चोप-चटक आगम ही चहै ॥३॥
भयौ करति कौंधनि सी हियैं। देखैं जियैं चटपटी लियैं ॥४॥
सावन-रूप महारस-प्यावन। ब्रजलोचन हरियारो सावन ॥५॥
मनभावन हित झूमि रिझावन। ब्रजमोहन है ब्रजसुख-सावन ॥६॥
नित ही हित-झलानि झुकि बरसै। नित ब्रजमोहन-सावन सरसै ॥७॥
सो विलसत वरषा-सुख वन मैं। नए नए नेह के पन मैं ॥८॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी। बन भीजत डोलत बनवारी ॥९॥
सुमिल सखा-समाज-सँग सोहै। मन लोचन अभिलाषनि दोहै ॥१०॥
बरन बरन सिर ललित लपेटा। कोरि कोरि मनमथ-मद मेटा ॥११॥
रचे रुचिर पातन के छतना। मुख-छबि सम सारद-ससि सत ना ॥१२॥
मधुर अधर अभिगुंजी धरै। कान्ह मुरलिया सुर-सँग ररै ॥१३॥
मित्र अनेक एक मन मतै। सदा स्यामसुंदर-रुचि रतै ॥१४॥
बहुत भाँत वन लीला करै। परम-चरित्र कहे क्यौं परै ॥१५॥
गिरि कंदरनि कहा छबि कहियै। सब रितु रुचिसमूह सुख लहियै ॥१६॥
तहाँ बैठि वन ब्रज छबि हेरत। फैलि फैलि सुखरासि सकेलत ॥१७॥
बिहरत कबहुँ कलिंदा-तीर। कहा परति क्यौं सोभा-भीर ॥१८॥
मेघ-माधुरी जमुना-तीर। तैसो सुंदर स्याम सरीर ॥१९॥
वृंदावन घनस्याम-सरूप। ताल तमाल कदंब अनूप ॥२०॥

७—नित-निन (मदा०)। ११—कोरि०—कोटि कोटि मनमथ। १३—अधर०—उर अर्नी गुजा। १५—परम—प्रेम। रुचि-सुख। १८—कबहूँ—कहूँ। २०—सरूप—सुरूप (वही)।

[७] झला = वृष्टि। [११] छतना = छाता। [१२] कोरि=करोड़। [१३] अभिगुंजी=अभिगुंजन करनेवाली। [१४] मतै = मत करते हैं।

कुंज-पुंज बानिक बहु भाँतिन। लसत लतागन अपनी पाँतिन ॥२१॥
मोहन ठावँ मोहनै मोहन। को है बरनि सकत छबि-जोहन ॥२२॥
ताल बिसालनि झूला झेलत। फूलनि झूलि झूलि रस झेलत। २३॥
सुख-सहेत ब्रज गोरिनि घाती। दिनहीं कियौ रहत अधराती ॥२४॥
पावस-दिन मावस-निसि मनौं। निसि-बिलास कैसैं धौं गिनौं ॥२५॥
भीजे रहत प्रेम - पावस मैं। संगम पर्ब लहत मावस मैं ॥२६॥
जमुना - पूर परम सुखदायक। दरस परस सरसत ब्रजनायक ॥२७॥
उमड़यौ रहत सदा आनँदघन। यह जमुना यह बरषा यह बन ॥२८॥
हित - पावस नित ही इत रहै। चातक - चोप सदा निरबहै ॥२९॥
फिर पावस रितु जब इत आवै। रीझ भीजि रस-पारस पावै ॥३०॥
रितु अनरितु इत की रितु औरै। सेवति रसिक स्याम सिरमौरै ॥३१॥
मुरली मैं मलार धुनि पूरति। या बिधि जड़-जगम-चित चूरति ॥३२॥
बन - ब्रज नेह - मेह बरसावै। यह पावस-सुख कहत न आवै ॥३३॥
सजल नैन देखैं अनदेखैं। उघरति नहीं न लगत निसेखैं ॥३४॥
चटक - चोप चपला हिय लवै। सबही दिस रस-प्यासनि तवै ॥३५॥
बरन बरन अभिलाषनि धुरवा। मुदित मनोज-मनोरथ मुरवा ॥३६॥
भीजति भिजवति बाहर घर मैं। कछु सुधि नाहिं परति हित-झर मैं॥३७॥
सब ब्रज रस - धाराधर धूमि। सदा एकरस आरति भूमि ॥३८॥
बढत प्यास ज्यौं ज्यौं झर सरसै। आनँदघन ब्रज अचरज बरसै ॥३९॥
दामिनि-प्यास भरयौ घन डोलै। सदा मिलन मैं मानत ओलै ॥४०॥
नित ही इतहि कोकिला कूजै। केलि-कलाधर आसनि पूजै ॥४१॥

२२–मोहनै०–मोहन को (वृंदा०)। २४–सहेत–सहेट (भदा०)। २६–पर्व०–प्रबल होत। २८–उमड़यौ–घमड़यौ। ३०–पारस–या रस। ३१–की रितु–की रति।

[२४] सहेत = संकेतस्थल। घाती = घात (दाँव) वाला। [२६] मावस = अमावास्या। [२७] पूर = प्रवाह। [३५] लवै=चमकती है। [३६] धुरवा= बादल के स्तंभ मुरवा=मोर [३८] धाराधर=बादल। [४०] ओलै=विरह ही।

रस की फैल सदा ब्रज दरसै। सदा अपूरब अंबुद बरसै ॥४२॥
सब विधि भरत मनोरथ क्यार। ब्रज पावस नित दरसत प्यार ॥४३॥
यह पावस या ब्रज नित बसै। सदा स्यामघन इत रसमसै ॥४४॥
अद्भुत घन दामिनि सुख सरसै। रस पीवतहू प्यासनि बरसै ॥४५॥
चढ़े रहत नित हियनि हिँडोरनि। बिह्वल प्रेम-झूल झकझोरनि ॥४६॥
मधुर प्रेम - पावस के गीत। रसनिधि राधा मोहन - मीत ॥४७॥
सूहे बरन बसन अनुराग। धारे रहत सदा बड़भाग ॥४८॥
भीजे सहज भिजावत सदा। नव घन दामिनि रस-संपदा ॥४९॥
ब्रजबन भीजि रह्यौ है रस मैं। ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैं ॥५०॥
यह पावस नित ही इत रहै। बरसनि सुख-सरसनि को कहै ॥५१॥
अचरज-झर लाग्यौई दरसै। घन तरसै चातक-रुचि बरसै ॥५२॥
दामिनि घनहिं भिजै रस पीवै। घन दामिनिहिँ देखि ही जीवै ॥५३॥
अद्भुत घन दामिनि को धर्म। लह्यौ न परत अनोखो मर्म ॥५४॥
प्यासनि बरसत अति रस भरै। अचरज घन दामिनि संचरै ॥५५॥
बरन - बरन लीला - रस - रंगनि। नित नवीन पूरन सब अंगनि ॥५६॥
ब्रजबन रस सींचत घुरि ढुरिकै उघरि घमड़ि अरु घमड़नि ढुरिकै ॥५७॥
बिसद केलि-रस - रेलि बढी है। प्रबल प्रेम - भर नदी चढ़ी है ॥५८॥
उमग असाढ चटक झर सावन। भरि भेँटनि भादौँ मनभावन ॥५९॥
बारह मास छ रितु यह पावस। पून्यो को सुख देत अमावस ॥६०॥
या ब्रज सब रितु अचरज-रूप। अचरज गोपी कान्ह अनूप ॥६१॥
सुरस प्रीति - पावस ज्यौं बरसै। त्यौँ ही सब रितु को सुख सरसै ॥६२॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै। लहत लहत मति सुरति भुलावै ॥६३॥
या ब्रज सहज प्रीति - पावस है। सब रितु सुख इकरस ब्रजरस है ॥६४॥

४२—सदा अपू०—जहाँ अपू०। ४३—क्यार—प्यार (वही)। ५०—है—हित (सभा०)। ५२—बरसै-परसै। ६४—सुरस—आइ करत।

[४३] क्यार=(केदार) क्यारी। रसमसै=रस बरसाता है। [४८] सूहे=लाल। [५८] बिसद=स्वच्छ। रेलि=प्रवाह।

जिनके दृग चातक मन मोर । तेई तकत सु पावस - ओर ॥६५॥
रसकदंब - कादंबिनि दरसै । भीजि भीजि आनँदघन बरसै ॥६६॥
सब रितु मच्यौ रहत चौमासो । बरसि बहायौ सब ही साँसो ॥६७॥
तोष पोष जैसो जब चहियै । हित-पावस मैं नित ही लहियै ॥६८॥
यहाँ आय पावस हू भीजै । नित त्यौहार मनावत जीजै ॥६९॥
सो पावस ब्रज बसि यौं सोहै । सोहै मोहै पटतर को है ॥७०॥
फूले सरस कदंबनि पुंज । महा मनोहर मधुकर - गुंज ॥७१॥
अमित, लतागन फूलनि छाए । सोभित बन के सदन सुहाए ॥७२॥
बनवारी को सुख दरसावत । पैठत बैठत बूँद बरावत ॥७३॥
गायनि को सुख देखत ठाढ़े । लिये लकुट आनंदनि बाढ़े ॥७४॥
साँवल - बरन सहज ब्रजमोहन । मन दृगनि के मनोरथ-दोहन ॥७५॥
सुहृद-संग बिहरत बन फिरै । अँखियाँ निरखि न क्यौं हूँ घिरै ॥७६॥
मुरली माँझ मलार जमावत । पावस को सौभाग्य बढावत ॥७७॥
सुरहि परसि पखान जल होय । ब्रज पावस-गुन धर्यौ समोय ॥७८॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर । पावस बिहरत ब्रज-सिरमौर ॥७९॥
गावत गोपी रितु के गीत । भीजत रीझत मोहन - मीत ॥८०॥
झुरमट झूला बगर बगर है । पावस को सुख डगर डगर है ॥८१॥
सरवर तीर समाजहि सजै । झूलै, गावै, निरखै, लजै ॥८२॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति । पीवत नैननि मानत साँति ॥८३॥
पावस को सुख बहुत प्रकार । ब्रज बन बिहरत रसिक उदार ॥८४॥
गोप-कुमर सबके मन मोहत । सब रितु हित सब ही बिधि सोहत ॥८५॥

६६—मन—या (वही)। ६९—जीजै—तीजे (वृंदा०)। ७५—साँवल—सावन (भदा०)। ७६—घिरै—फिरै । ८५—रितु—ही ।

[६६] कदब=समूह । कादंबिनि=मेघमाला । [६७] साँसो=संशय । [७०] पटतर=समानता । [७३] बरावत=बचाते हुए । [७८] सुर=स्वर, मुरली की ध्वनि । पखान=पाषाण । समोय=भिँगोकर । [८१] झुरमट=समूह, भीड़ । बगर=घर । डगर=गली । [८३] साँति=शांति ।

सोभित खोही लकुट सुदेस। पावस ग्वार मनोहर बेस ॥८६॥
ब्रज-बन गैल-गरधारनि गाहत। लहत फिरत ज्यौं ज्यौं सुख चाहत ॥८७॥
बहु बिधि पावस के सुख बिलसै। नित गोपी गुपाल मिलि हुलसै ॥८८॥
चोप-हरयारी हिलमिल बाढ़ी। पावस निज संपति है काढ़ी ॥८९॥
राधा - मोहन रचन - बिहार। उर धरि पावस कियौ बिचार ॥९०॥
श्री ब्रजभूमि वास करि पावस। कृस्न - ब्रजबधू रस को पारस ॥९१॥
पाय तुस्ट ह्वै अति छबि छाय। हित हरियारी रची बिछाय ॥९२॥
तापर ते पद धरि धरि सरसैं। अति कोमल तृन-अंकुर परसैं ॥९३॥
बन बेलिन बहु भाँति फूल फल। सरनि समाज भरे निरमल जल ॥९४॥
बिलसत सब सुख मोहन स्याम। उर पर पीत जुही की दाम ॥९५॥
कौतुक - रूप सदा बनवारो। आनँद - मूरति रसिकबिहारी ॥९६॥
सहज सिंगार कहा कछु कहौं। रूप-गहर की थाह न लहौं ॥९७॥
बरन मनोहर जगत उज्यारो। कारो ब्रजलोचन को तारो ॥९८॥
पावस बन बन घूमत डोलै। जोबन-छक्यौ छैल-गति बोलै ॥९९॥
ब्रजरस भिजै रिझै इन राख्यौ। ब्रजरस-सार सोधि इन चाख्यौ ॥१००॥
आतँक अ ल प्रीति-पावस को। जल-रसियै चसको ब्रजरस को ॥१०१॥
भै जे रहत प्रीति - पावस - रस। पावस-सुख बिलसत भीजनि बस ॥१०२॥
यौं ही भीजत भिजवत रहौ। ब्रजरस सुख-संपति नित लहौ ॥१०३॥
गोप - दुलारे जसुदा-जीवन। अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥१०४॥
पावस - प्रीति पर्पीहा दरसै। तोपै पोषै पीवैं तरसै ॥१०५॥
घन चातक को मरम न परसै। ब्रज प्यासनि आनँदघन बरसै ॥१०६॥

९८–रचन–चरन (वहीं)। ९१–पावस–छावस (भदा०)। पारस–पावस। ९२–ह्वै–दै। छाय–छांय। ९५–पीत–पीन। १०१–आतँक–चातक। सपति–[illegible] (वही)।

[८६] खोही=पत्तों का छोटा छाता या कंबल की घोघी। सुदेस=सुंदर। [८७] गरधार=गलियारा, छोटी गली। गाहत=घूमते हैं। [८९] हरयारी=हरियाली। [९५] दाम=माला। [९७] गहर=गहराई।

प्रेम-पत्रिका

प्लवंग

कान्ह तिहारी पाती तुमहिँ सुनाइहौँ।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जौ पाइहौँ ॥ १ ॥
कटुक प्राति को स्वाद मिठास-भरयौ महा।
छ्वै रसना करि किलक कहौ बरनै कहा ॥ २ ॥
जानै बिरही प्रान और कैसैँ बनै।
तीखो तरल सुबात कहत रसना छनै ॥ ३ ॥
स्रवन सहैँ ते और लहैँ पर-पीर कौँ।
धनि धनि हो ब्रजनाथ तिहारे धीर कौँ ॥ ४ ॥
सुखी हौ सुखदैन हमारी हम भरैँ।
बाँको बार न होउ असोस सदा करैँ ॥ ५ ॥
अकथ कथा की पाती छाती है भई।
नेकु लागि पिय बाँचौ दूरि भए दई ॥ ६ ॥
बिसरि गए बिसवासी सरक सनेह की।
मुरली-बेधनि बेधी गति मन देह की ॥ ७ ॥
धरी दूरि पहचान निकट की को कहै।
सुधि भूले सब भाँति परेखनि ज्यौ दहै ॥ ८ ॥
बृंदावन घन कुंजैँ देखति हैँ जबै।
पात फूल फल डार बिराजत हौ सबै ॥ ९ ॥
ढिग ह्वै यौँ दुख देत दूर तेँ दूरि से।
हाथ न लागत हाय रहे हौ पूरि से ॥ १० ॥

१–तिहारी–तेरी (याज्ञिक)। हाय कहूँ–कहूँ जौ तुम्है। २–छ्वै–ह्वै (वृंदा०)। ४–स्रवन–श्रव न (याज्ञिक)। हो–है। ७–गए–गई (वही)। मन०–मद नेह (वृंदा०)। ८–ज्यौं–जो (लदन) ९–हौ–है (वृंदा०)।

[२] किलक=पुकार। [३] छनै=छिद जाती है [७] सरक=मद्यपान।

विवस विसूरि विसूरि रात दिन बीतई।
सब विधि हारी हाय विरह बल जीतई ॥ ११ ॥
चेटक चितहि लगाय निचीते हौ भले।
जुवती-जन-मद-गंजन घातन ही पले ॥ १२ ॥
परमेसुर डर करौ निवारि अनीति कौं।
प्रेमी परम प्रवीन एक रस रीति कौं ॥ १३ ॥
जानि बूझि अनकनी दयाल न दीजियै।
दुखिया जन को जतन कछू तौ कीजियै ॥ १४ ॥
या विधि ब्रज वसि रहैं बिसासी साँवरे।
तुमहीं देउ वताय सवै बिधि भाँवरे ॥ १५ ॥
कँवल नैन वह चितवनि सालति है दई।
वेध्यो हियो दुसार सुसार कपटमई ॥ १६ ॥
अव पिय कपट न करियै हरियै कदन कौं।
पाय डारि कित मूड़ चढ़ावत मदन कौं ॥ १७ ॥
सुंदर रसिक सजीवन तुम ही तें जियैं।
तुम विन कहूँ न रहैं कहैं सौं हैं कियैं ॥ १८ ॥
आँखिनि कहा दिखावैं मन बैठे रहौ।
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहौ ॥ १९ ॥
धरी धरोहर पिय की प्रान सुदाम हैं।
जव चाहौ तव लेहु जु गावत जाम हैं ॥ २० ॥
सदा सुखी सुख देत रहौ दुख पावत नाहीं।
कीरति जोन्ह सु जगमगै जसुधा-सुत पाहीं ॥ २१ ॥

१३–डर–कौं (याज्ञिक)। प्रेमी०–प्रेम परम परवीन। १४–अनकनी०–आनाकनी नहिं। जन–जिय (वही)। १६–दुसार–उसार–(वृंदा०)। १७–कपट–निपट (याज्ञिक)।

[१२] निचीते=निश्चिंत। [१५] भाँवरे=चक्कर काटनेवाले भौंरे। [१६] दुसार=आरपार छेद। सुसार=प्रवेश। [१७] कदन=कष्ट, पीड़ा। पाय=पैरों पर गिरकर। [२०] दाम=द्रव्य।

मंगल मूरति सबन कौँ सुख लै बिस्तारौ।
हम निपटै राउरी हैँ आसरो तिहारो ॥ २२॥
तुमरी कुसर कुसर सदा ब्रज मैं नित है हो।
और भाँति कहि को सकै प्रीतम सोँ लै हो ॥ २३॥
नित सुहाग-पागी रहैँ ब्रजनाथ गुसाँई।
आनँदघन उनए रहौ निसिबासर छाँई ॥ २४॥
तुम चाहौ सु करौ जु सही कछुव न कहैँ।
आनँदघन रसरासि चातकी ह्वै रहैँ ॥ २५॥
या पाती कौँ देखि पथिक प्रानै लहै।
आसा निगड़ समेत चलन उमह्यौ रहै ॥ २६॥

कबित्त

वही जमुना है वही बन वेई कुंज-पुंज,
वही रितु वही चंद और सब वहियै।
वेई हम वही मन वेई अभिलाष लाख,
वही धुनि मुरली की अजौँ रमि रहियै।
कान्हर किसोर चितचोर ओर के बिसासी,
अब ही दुरे हैँ कहूँ ढूँढ़िबे उमहियै।
बिरहा बिषम घनआनँद यौँ छाय रह्यौ,
सीरी परि दहियै हो गति कासौँ कहियै ॥ २७॥

सवैया

मुख देखि जियौँ अनदेखेँ मरौँ मुख चाहि मरौँ तौ जियौँ सु करौ।
ब्रजजीवन आनँद के घन हौ इन दीन पपीहनि पीर हरौ।
झर पै झर लाय दवाइयै लाय बलाय लै पाय परौँ कि ढरौ।
अब औसर है सुखदैन सुनौ इक बार जिवाय कै जीवो करौ ॥ २८॥

२६—देखि—देस (वृंदा०, लदन)। उमह्यौ—उनयो (याज्ञिक)। २८—पीर—प्रान (याज्ञिक)।

[२३] कुसर=कुशल। [२६] निगड़=बेड़ी। [२७] ओर के=चरम सीमा के, अत्यंत। बिसासी=विश्वासघाती। [२८] झर=झड़ी, वृष्टि। लाय=लगाकर। लाग=आग।

सीतल सुंदर मोहन मंदिर कंदर केलि-कलानि बिसेषैं।
गोविंद गोधन ग्वारन कौं घनआनँद छावत भावत देखैं।
फूलन कै फल कै दल कै ललकै जल कै भरि भाव असेषैं।
लै मन हाथ रहै हरि को-हरि हाथ रहौ गिरिनाथ सु लेखैं ॥२९॥

कवित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम-नैन पहचानहीं।
राधिका दरस कौं सुदेस आदरस याहि,
चाह्यौई करत जब जब जैसैं जानहीं।
ऐसे रंग मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं।
जमुना कें तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैं ई बखानहीं ॥३०॥

स्याम यासैं बसे यह बसै स्याम-हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै।
यही वृंदावन देखौ प्रकट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै।
नैन बैन मनसा समोय राख्यौ बड़भागी,
तिनहीं की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरज-धाम मोहिं ऐसैं दीसि पर्‌यौ,
दीसत न काहू बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥३१॥

२९–मंदिर–कंदन। विसेषैं–विसेखौ (वही)। ३०–जैसैं–जैसो (लंदन)। दुरयौ–उरयौ (वृंदा०)। ३१–दुरयौ–उरयौ (वृंदा०)। बैन०–मन साँवरे को मोहि (वृंदा०), बैन मनसा रमाय (याज्ञिक)।

[३०] गोभा=अंकुर। सुदेस=सुंदर। आदरस=आदर्श, दर्पण। मरीचैं=किरणें। बितान=चँदोवा। [३१] समोय०=लीन कर रखा है। लाल०=श्रीकृष्ण और श्रीराधा।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदाबन कहौ कैसैं करि दीसई ।
दीसत दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरयौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई ।
परैं तैं परैं है भयौ हाय यह बृंदाबन,
राचैं, रज जाचैं ईस हू से वकसीसई ।
ताहि दौरे जात पाय लियौ है सबनि सूधो,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ॥ ३२ ॥

बृंदाबन-माधुरी अचंभे सौं भरो है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै ।
अंग - रंग - संग एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवता राधा रानी अवरेखियै ।
सुबन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदीकूल,
आनँद को घन रसमूरति बिसेखियै ।
देखत दुरयौ सो अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा हो तैं परस-गुन पेखियै ॥ ३३ ॥

बृंदाबन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहू गए तैं रस - पारस क्यौं पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकैं,
सुभर भरयौ है तौ लौं उर न बसाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा - चरन - रज आँखिनि अँजाइयै ।

३२–परैं तैं–वरैं तें । ३३–देखौ–देखैं (याज्ञिक) । एकमेक०–एक एक है (वही), एकमेक थोहयौ है सदा (वृंदा०) । सो–है (याज्ञिक) । तें–पै (वृंदा०) । ३४–पारस–या रस (याज्ञिक) । है–लै जौ (वही) ।

[३२] हरयौ=हराभरा । बिसे०=पूर्णतया । राचैं=अनुरक्त होते हैं । वक्सीस=प्रसाद, भेंट । परीसई=स्पर्श करते । [३४] भानुजा=वृषभानुजा, राधा ।

निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥ ३४ ॥
राधा-हरि-आरति मरोरि मोड़ि मारति है,
या विधि जिवाय जिय दसा करै औरई ।
वन उपवन ब्रज बाखर खरिक खोरि,
गिरि गह्वर उफनाति प्रेम - रौरई ।
कहा जानौं कैसी है कहा है दुहुँनि की लाग,
रंचक विचारैं अति बाढ़ति है बौरई ।
रमन रँगीली भूमि आनँद को घन भूमि,
रमड़ि रमड़ि दरसत ठौर ठौरई ॥ ३५ ॥

सवैया

ब्रजमोहन राधिका की रहठानि सदा अनुराग सुहाग भरयौ ।
कहि आवत क्यौं निरखेई बनै गिरि गोधन मैं जु कछू लै धरयौ ।
भरि भोवत नैन हियैं दिन रैन सहेटनि भेटनि ढार ढरयौ ।
सु कलिंदी के कूल अनंदनि मूल सनेह को देस है दीसि परयौ ॥ ३६ ॥

कवित्त

जोई हौं विचारौं गैल तहीं तहीं दीसै छैल,
आडोई अरैल पै छराए लौं न छ्वै परै ।
तौ की गति कहा कहौं कहाँ जाऊँ कैसैं रहौं,
नैन मूंदैं चहौं चित भावनानि भ्वै परै ।
आनँद को घन प्यारो चेटक वमड़ लियैं,
चहूं ओर घुरि घेरि चोपनि सौं च्वै परै ।
गोकुल को बसवास सास ननदी को त्रास,
दूखते की चोट लौं कनौंड़ें भैंट ह्वै परै ॥ ३७ ॥

३७—भ्वै—च्वै (लदन)।

[३५] आरति=लालसा। बाखर=घर। खरिक=पशुशाला। खोरि=गली। रमड़ि०=विलासपूर्वक क्रीड़ा करते हुए। [३७] छराए लौं=माया दृश्य की भाँति। तौं=तब। भ्वै०=लीन हो जाता है। दूखते०=पीड़ावाले स्थान पर ही चोट लगने की भाँति।

सवैया

सौंधें सनी अलकैं बगरीं मुख जोबन जोन्ह सौं चंदहिं चोरति ।
अंगनि रंग-तरंग बढ़ी सु किती उपमानि के पानिप ढोरति ।
मोहन सौं रस-फाग मची सु भली भई हौं कब तें ही निहोरति ।
आनँद के घन रीझनि भीजि भिजै पठई कहा चीर निचोरति ॥ ३८ ॥

कबित्त

एक डोलै बेचति गुपालहिं दहेंडी धरें,
नैननि समान्यौ सोई बैननि जनात है ।
और उठि बोलै आगें ल्याइ री कहा है मोल,
कैसो धौं जम्यौ है ज्यौ सवादै ललचात है ।
आनँद को घन छायौ रहत सदाई ब्रज,
चोपनि पपीहा लौं चहूँघा मँडरात है ।
गोकुल-बधूनि की बिकानि पै विकाय रहै,
गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकात है ॥ ३९ ॥

सवैया

बसि नैन हियें दुरि दूरि लसौ सुख-दैन सदाई सहायक हौ ।
कितहूँ दरसौ कितहूँ सरसौ गति को समझै पन-पायक हौ ।
जित झूमि झरौ तित भाग भरौ घनआनँद जू रसनायक हौ ।
ब्रजमोहन छैल छबीले सुनौ कहियै सु कहा सब लायक हौ ॥ ४० ॥

कबित्त

मोहन के बदन मिठास-भरी तानैं भिदि,
मीठियै लगति जब मिलै सब डाटि लै ।
भोरी ब्रजगोरिनि की लाज-पाज तोरि तोरि,
गैल करि देनि खेद-बाधा-खाईं आटि लै ।

३६–धरें–लियें (संग्रह) । समान्यौ–समायौ । लाइ–लाव । ४०–दरसौ०–
दरसौ गति को समझै मन की तुम तौ । सु–तौ ।

[३८] सौंधें=सुगंध से । पानिप=शोभा । ढोरति=बहा देती है । [३९] दहेंडी=
दही की मटकी । [४०] पन०=पन को पी जानेवाले । [४१] डाटि०=डटकर

ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढ़ति है,
काढति घरनि तैं उपायनि उचाटि लै ।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै बन व्यापक ह्वै,
देखौ गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥ ४१॥

कौनैं हरि देव सो बतावौ हरिदेव हा हा,
नॉवैं हरिदेव पै हियो हू हरि लेत हौ ।
गिरिवर-कंदरानि मंदिर मैं बसौ लसौ,
साँवरे सलोने साधु से दिखाई देत हौ ।
आनँद के घन झूमे रहत सदाई इतै,
घेरौ अबलानि दान माँगौ धरि हेत हौ ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद - भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥ ४२॥

नाम कौं न नेम बाँध्यौ प्रेम सौं सुलेखो कहा,
धायौ नहीं धाम लीला-माधुरी बिभूति कौं ।
जनम जनम तैं अपावन असाधु महा,
अपरस पूति सौं न छाँड़ै अजौं छूति कौं ।
भूलि मोद-मंहे राच्यौ भ्रम-धूम-धूँधरि सौं,
केवल कलंकी-रूपी जननी-प्रसूति कौं ।
करुनानिधान कान्ह आपने गुनैं सम्हारौ,
मेरी गति कौन जौ बिचारौ करतूति कौं ॥ ४३॥

जप-रस-धारा मन मज्जन करै न जौ लौं,
नित्य-रसहीन-ज्वाला प्रानहि पजारैं कहा ।
अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसैं,
वासना न धोवैं तौ लौं तन के पखारैं कहा ।

घर लेती है । पाज=बाँध । खाइँ=खाईं को भरकर । बजाय=डंके की चोट । गति०=राग से भरकर यमुना की गति अवरुद्ध कर दी है । [४२] हरि०=हरण करके दे देते हैं । नाँवैं०=नाम से तो हरकर 'देने' वाले पर काम से हृदय भी हर 'लेने' वाले हो । दान=कर । भाय=भाव । दाय=दाँव, घात । [४३] अपरस=नीरस ।

बृंदाबन-माधुरी अगाध है अगम अति,
बातैं सुनि सीखै सठ हठ-पन पारैं कहा।
आनँद को घन झूमै केवल कृपा-समीर,
सहज बनक देखौ ढकैं औ उघारैं कहा॥४४॥

कछू न करत यामैं सब कछू करत हौ,
मोसे अनकछू सौं कछू न हौ करत क्यौं।
अंतर की जानौ जानि बूझि राखौ अंतर कौं,
गाँसनि गसीले महा ढाले न ढरत क्यौं।
जगत के जीवन छबीले घनआनँद जू,
छाए सब ठौर हा हा छिये न परत क्यौं।
साँचे कपटी हौ सूधी बातनि हूँ टेढ़े परौ,
परे तें परे हौ पै न टारे हू टरत क्यौं॥४५॥

मतिमान ह्वै कै मति मानिबो कहाँ तें तीखे,
रति मानि आए अति मान मोहि दियौ है।
घूमरे दृगनि कछू पिये से फिरत कहा,
पटहि पलटि आए महा पोढ़ो हियौ है।
इते मान सौं हैं खाय खाय न अघाए कहूँ,
सुघर कहाए सठता को हठ लियौ है।
भोरहीं भले हौ जू भले को मुख देखि चले,
कितहूँ तें मोहू कौं दरस आय दियौ है॥४६॥

पूति=दुर्गंध। छूति=अस्पृश्यता। मोद०=आनंदघन को। [४४] अपरस=अस्पृश्य, अप्राप्य। सपरस=सस्पृश्य, छूत से युक्त। बनक=सजधज। [४५] अंतर=अंतःकरण। अंतर=भेद। गाँस=गाँठ, भेद की बात। गसीले=युक्त। ढीले=शिथिल। न ढरत=द्रवीभूत क्यों नहीं होते। छिये०=छुए नहीं जाते, पहुँच में नहीं आते। परे०=परात्पर होकर भी सदा निकट रहते हो, हटते नहीं। [४६] खंडिता का कथन है। मतिमान=बुद्धिमान्। मति०=न मानना। रति०=प्रेम करके। पट०=वस्त्र को पलटकर, दूसरे के वस्त्र पहनकर। सुघर=चतुर।

भूषन कौं भूषन हौ कहा लै सिँगारै कोऊ,
अति ही अनूप रूप कैसेँ धौँ कह्यौ परै ।
आनँद के अंबुद रसीले ब्रजमोहन जू,
पपीहा विचारे पै न चाय हू रह्यौ परै ।
दीसौ अनदीसौ नैन लागेई रहत सदा,
लहाछेह रावरो छबीले न लह्यौ परै ।
खुलि मिलिवे मैँ दूरि दुरि दुख देत दैया,
सीतलता तुम्हैँ मेरो हियौ क्यौँ दह्यौ परै ॥ ४७ ॥

स्याम-रंग-रँगी दीठि लोयन भगौहैँ सदा.
अंगनि अनंग-ज्वाला दुरी पजरति है ।
नखसिख भसम-चढ़े से गात देखियत,
आँसुनि की धारा हू न धोइयौ परति है ।
विकल अचेत तारी तुम ही त्यौँ लागी रहै,
रातिद्यौस ताकौँ सोई जानै ज्यौँ भरति है ।
चातकी भई है घनआनँद तिहारैँ व्रत,
जोगिनि तेँ अधिक वियोगिनि वरति है ॥ ४८ ॥

सवैया

दिन फाग के भागनि आनि मिले लगि लेत हैँ दावँहि दायनि सौँ ।
मची राधिका मोहन त्यौँ हित होरी रची रुचि चाँचरि चायनि सौँ ।
लखि दीठि रँगी नव जोट जगी गुन जोबन रूप सुभायनि सौँ ।
... . ॥४९॥

रसना बलभद्र सुनाम लियेँ सब ठौर सबै बिधि होति भली ।
ब्रजमोहन मोह की मूरति राम जतैँ धनि रोहिनि पुन्य फली ।

[४७] भूषन०=गहनों को भी शोभित करनेवाले । लहाछेह=शीघ्रता, फुरती । [४८] भगौहैँ=गैरिक, गेरू के रंग का । भसम=भस्म, राख; प्रचंड अग्नि । तारी=ध्यान । राति०=वे ही रातदिन उस प्रकार उसका समय व्यतीत करना जानते हैं । मिलाइए-जानैं वेई दिनराति बखानैं तेँ जाय परै दिन राति को अंतर । [४९] दावँ=अवसर । दाय=दात । [५०] जतैँ=जिससे या जहाँ । धनि=

घनआनद छाय सदा ब्रज पै बरसौ सरसौ करि रंग रली।
मन रे सुख-संपति चाहत जौ नित ही भजि लै मुसली कुसली ॥५०॥

कबित्त

गुरनि बतायौ राधा-मोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृंदाबन गाढ़ँ गहि रे।
अद्भुत अभूत मही-मंडल परे तेँ परे;
जीवन को लाहौ हाहा क्यौँ न ताहि लहि रे।
आनद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौँ पपोहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥५१॥

सवैया

अब सो करियै ब्रजमोहन जू जु करौँ बिनती कर जोरि यही।
सब ठौर तेँ दौर थकै मन की कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही।
घनआनँद दीन पपीहन कैँ तुम ही धन जीवन-मूल सही।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे की रही ॥५२॥

बंसी मैँ मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लई वपुरी अबला सब।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौँ को बरनै 'रु सुन्यौ किनहूँ कब।
व्यापि रही चर थावर लै घनआनँद घोर घमंडन की फब।
कानन मूँदेऊ तैसियै बाजति क्यौँ भरियै करियै सु कहा अब ॥५३॥

छप्पय

ब्रजबासिन की सहज होय जैँ प्रापति मन कौँ।
यहै आस बिसवास राखि पालै हित-पन कौँ।

५३–फब–भव (संग्रह); तैसियै–तैसियौ (लंदन)।

धन्या, स्त्री। रोहिनि=बलरामजी की पत्नी रोहिणी। मुसली=मुसल धारण करनेवाले बलराम। [५१] गाढ़ँ०=भली भाँति ग्रहण कर। बहि=वहन कर। पुलिन=तट। [५२] पौरि=द्वार। देहुँ०=पड़ा रहूँ। [५३] थावर=स्थावर।

नितलीला - रगमगे - नैन - थाकनि - सँग डोलै ।
जमुन-तीर तरु - वेलि केलि-रस झेलि कलोलै ।
अहोभाग कहियै कहा आनँदघन अभिलाष - झर ।
क्यौं न लगै आसा - लतैं, फूल - सहित ऐसो सुफर ॥५४॥

कबित्त

आनँद को अंबुद पपीहापन पैज धरैं,
झूम्यौ देखियत ब्रज वंसी-धुनि-घोरना ।
चोप चपलानि की चमक चारु चहूँ कोद,
लाख लाख अभिलाष ऊमस को ओर ना ।
रस-झर लाग्यौ हित-हरियारी नित नई,
नीकी प्रीति-पावस को समै चित-चोरना ।
हिलनि मिलनि झूल आस-लाँबी झूलनि सौं,
झूलत गुपाल - गोपी हिलग - हिँडोरना ॥ ५५ ॥

सवैया

मित्र के पत्रहि पावत ही उर काम-चरित्र की भीर मची है ।
सीस चढ़ावति आँखिनि लावति चुंबन की अति चोप रची है ।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौनि अची है ।
छाती सौं छ्वावत ही घनआनँद भीजि गई दुति-पाँति नची है ॥ ५६ ॥

कबित्त

ऊधौ विधि-ईरित भई है भाग-कीरति,
लहो रति जसोदा-सुत-पायनि परस की ।
गुलम लता ह्वै सीस धर्यौ चाहै धूरि जाकी,
कहियै कहा निकाई महिमा सरस की ।
झूम्यौई गहन सदा आनँद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी-बरस की ।

५४—घर्ट—घट (गंध्रद) । झर—उर । क्यौं न०—क्यौं लगै फूल । सुफर—सुघर ।
फर=फल । [५४] जैं=जैसे । [५५] पैज=प्रतिज्ञा । कोद=ओर । ओर=सीमा,
अंत । [५६] अचौनि=आचमन, पीना । [५७] ईरित=घोषित । आरति=

आँखिनि लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥५७॥

गोपिनि के आँसुनि सों सींची अति लोनी लगै,
देखि पाई भाग जागें जीवन की मूरि मैं।
मोहन रसीले को सुरूप दरसावै मन-
रंजन सुअंजन कै राखौं चख पूरि मैं।
याही मिलि रहौं कहा कहौं जैसी जिय आवै,
हेत-खेत गहौं ह्वै निपट चूरि चूरि मैं।
सीसहि चढ़ाऊँ घनआनँद कृपा तें पाऊँ
प्रेमसार धर्यौ है समोय ब्रज-धूरि मैं ॥५८॥

सवैया

आवै कहूँ मनमोहन मो गली पूरब भागन कों ब्रज ऊजै।
आय कछू न बसाय तवै दुरि देखिबो दूभर छाँह क्यौं छूजै।
माँगति हौं बिधिना पै बड़े खन जौ कबहूँ जिय आसहि पूजै।
चौथ को चंद लखैं ब्रजचंद सौं लागै कलंक तौ ऊजरे हूजै ॥५९॥

रीति यौं चेटक ही सौं भरी धुनि मैं करै धीरज-दोहन बाँसुरी।
घेरि लै आनि बसावै वनैं ब्रजगोरिनि के परी गोहन बाँसुरी।
रीझ भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छोहन बाँसुरी।
हाथ लिये रहैं रैनदिनाँ मनमोहन की मन - मोहन बाँसुरी ॥६०॥

कबित्त

ऐसी कृपा कीजिय कृपानिधि निवारि भ्रम,
भरिबो करौं सदाई ब्रज - वन - भाँवरी।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि,
चकि जकि चाहि रहौं वहै छबि साँवरी।

६०–यौं–या (संग्रह)।

लालसा। [५८] लोनी=सलावण्य। समोय=मिलाकर। [५९] ऊजै=आंदोलित होता है। खन=क्षण। ऊजरे=उज्ज्वल; हर्षित। [६०] चेटक=जादू।

आनद के घन हौ पपीहा प्रान पोखियै जू,
हित-छाँह छाय मेटौ सोच-घाम-ताँवरी ।
छोरि सब ओर तेँ सुदेस लै बसैयै हाहा,
मोहन रसीले यौँ गसैयै मोह-दाँवरी ॥ ६१ ॥

ब्रज वृंदावन गिरि गोधन जमुन-तीर,
सुवस सुदेस पुर वन सुख-साधा को ।
जाकी भूमि भागहि सिहात हैँ गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख्ख सब बाधा को ।
एकरस विहरत दोऊ महारस भीजे,
आनँद-पयोद प्रीति परम अराधा को ।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होइ,
तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को ॥ ६२ ॥

राधा-रूप-साधा साधिवे की महाचिंतामनि,
गौरी गाय चायनि च्वै साँवरो सम्हारई ।
ग्वैँडे आय टेरत है, नेह सौँ निवेरत है,
जातेँ भरि पावत है भाव भरि ग्वारई ।
धौरी ढार ढौरी लै बुलाय वोलि सौँपि देत,
काजर कुरंगनैनी चोपनि चितारई ।
दोहन करन ब्रजमोहन मनोरथनि,
आनँद को घन रंग-झलनि झमारई ॥ ६३ ॥

ऐसे परवस हो रसीले ब्रजमोहन जू,
झूठी वतियानि लै के साँच सौँ मढ़त हो ।

६१–रहौं–रहै (लंदन) । छाय–छई (वही) । ६२–जमुन–जमुना (लंदन) । ज [illegible]–जागी (वही) । ६३–आय–आप (लंदन) ।

[६१] ताँवरी=मूर्छा । यौं०=अपने प्रेमबंधन में ऐसा बाँधिए । [६२] गोधन=गोवर्धन । पयोद=घन । [६३] ग्वैँडे=गाँव का परिसर । निवेरत=पृथक् करता है । धौरी=धवल, सफेद । चितारई=जगाती है । झला=वृष्टि । झमारई=झाँवरा

तुम्हैँ दब कौन की लजौँ हैँ नैन सौँ हैँ खात,
रूखेँ रुख राखि राखि वादहिँ वढ़त हौ ।
आनँद को घन झूमि झूमि रसबाद नाधौ,
प्राननि के प्यासे क्यौं परेखनि दढ़त हौ ।
आए हौ सुधारि भेषौ आरसी लै मुख देखौ,
निखरि सलोने स्याम चित पै चढ़त हौ ॥ ६४ ॥

भाव भरे चाव भरे सरस बनाव भरे,
हिये तेँ कढत कसे कसक-कसौटी के ।
सुंदर सलोने ब्रजमोहन परस पगे,
परम मरम अपरस तापतौटी के ।
रसना को भाग, साँचे स्रौननि सुभूपन हैं,
जगमगि रहे महा मोहन हथौटी के ।
भीजे घनआनँद अनूप रूप-झलनि सौँ,
रसिक पपीहा साछी आछी अछरौटी के ॥ ६५ ॥

सहज सुगंध भाँति भाँति भाव-फूल बिछे,
सम रस-रीति जामैँ केसरि को झोलना ।
बिसद सुवास नाना बिधि सौँ सँवारि रच्यौ,
चौकस गुननि गस्यौ गूढ़ गाँस खोलना ।
राधा-मनमोहन-विलास को सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठबोलना ।
तन कहूँ क्यौँ न बसौ बस न तनक मेरो,
मन ब्रज-मडल को उड़न-खटोलना ॥ ६६ ॥

६६–सहज–विविध, सरस (संग्रह)। सम–सब (वही)। केसरि–कसरि (लंदन)। सुवास०–सुवासना वसन सौँ सुधारि सज्यौ (संग्रह)। सँवारि–सँभारि (लंदन)। मनमोहन–ब्रजमोहन (संग्रह)। तन०–तनकौ न कहूँ (वही)।

कर देता है; जल से भर देता है। [६५] कसक०=वेदना की कसौटी। अपरस=जिसका स्पर्श न किया जा सके। तापतौटी=जलन की व्याकुलता। हथौटी=हाथ की शैली। झला=वृष्टि। साछी=साक्षी। अछरौटी=वर्णमाला लिखने का प्रकार,

सवैया

चारिक द्यौस रचे चिकनाय कै दीसत नेह-निबाहन-रूखे ।
झूमि झमारहि दै घनआनँद राखत हाय बिसासनि सूखे ।
छैल छबीले भरे छल-छंद ढरौ ढब ही अनदोखहू दूखे ।
रावरे पेट की बूझि परै नहीँ रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥ ६७॥

सोरठा

जासौँ अनबन मोहि, तासौँ बनक बनी तुम्हैँ ।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥ ६८ ॥

कबित्त

अंग सुखमूल, रंग रुचिर गुलाब फूल,
कोमल दुकूल तूल - पूरित अजायबी ।
छूटीँ छबि - रसमैँ चटक चोखे बसमैँ,
त्रिलोकैँ मन बस मैँ न रोकैँ रहै दायवी ।
केसरी लपेटा छैल बिधि सौँ लपेटे,
मुख बीरा कंठ हीरा-जोति उपमा लजायबी ।
सीत कैँ सिँगार घनआनँद उदार देखैँ,
रीझनि पसीजै तन कछु न सहायवी ॥ ६९ ॥

चलि रे सुबल आजु वाही कैँ बगर कालिह,
जो ही मैँ लखाई घनआनँद सु ओवरै ।
छरहरैँ गात मँडरात भौँर भाँवरी दै,
छूटे वार मोतिन को द्वै-लरी वनी गरै ।

वर्ण-विन्यास : [६६] विसद=निर्मल । [६७] झमार=वृष्टि के जल से भर देना । अन०=रूप मैँ निर्दोष होकर भी मन से सदोष हो । रीझि०=मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो । मेरी रीझ की तो चिंता नहीँ करते पर दूसरोँ से मिलने-जुलने की ताक मैँ लगे रहते हो । [६८] अनबन=बिगाड़; मनमुटाव । बनक=मैत्री । परेखनि०=पछतावों से गुथकर । गुन=गुण, डोर । [६९] तूल=रूई । अजायबी=अद्भुत । रसमैँ=रश्मियाँ । चटक=स्पष्टता । चोखे०=तीक्ष्णता की उत्पत्ति से युक्त । दायवी=दावँ, अवसर की खोज मैँ रहनेवाला । केसरी=पीला । लपेटा=पगड़ी ।

आँचर उलटि सीस डारै कैँ न जानै क्यौँ,
निहारतही हियेँ त्यौँ जु बात मन मैँ धरै ।
औचकौं ही कित इत डीठि कैँ परत, पीठि
दैन देखि नैन ईठि नीठि न कह्यौ करै ॥ ७० ॥

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भीजी,
रीझी कहूँ स्यामैँ देखि दसा ताकी को कहै ।
फंद को मृगी लौँ छंद छूटिवे को नेकौ नाहिं,
चारयौं ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है ।
मोहन को वेनु सुनै धुनै सीस, मन ही मैँ
घुनै, भीरी सोच गुनै गहि बूड़ै सोक है ।
उघरै न बास गुरुजन आसपास घनआनँद,
कठिन कहा अहा नेह - झोक है ॥ ७१ ॥

पीरे पीरे फूलन की माला रचि हियेँ धारि,
वारि वारि ताही कौं सफल करैँ काय कौँ ।
ऐसे धीर-काचे, पूरे प्रेम-रग-राचे बीर,
पीरे फल चाखैँ अभिलाषैँ नीके दाय कौँ ।
डोलैँ वन बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान,
धाय धाय भेटैँ भावती ही दिसि बाय कौँ ।

७०–ओवरै–औसरै (खोज) । छरहरैँ–फरहरे । भौँर–मोर । कैँन–कौन । निहारत०–निहारे ते ही होवै त्यौँ सु । औचकौं–औचक (वही) ।

उदार=उत्तम । सहायबी=सहायक [७०] सुवल=श्रीकृष्ण के एक सखा । बगर=घरे । ओवरै=कोठरी मैँ । छरहरैं०=इकहरे शरीरवाली । कैं० = कोई जानता नहीं किस लिए । औचकौं० = अचानक कहीं से किसी की दृष्टि पड़ती है तो वह पीठ फेर लेती है और उसके पीठ फेरने की शोभन छटा से नेत्र हटने की वात बहुत कहने पर भी नहीं मानते । [७१] भीति=दीवाल । रही०=भीत पर चित्रलिखी सी लगती है । छंद=उपाय । धुनै=छीजती है । भीरी०=सोच के ढेर मैँ दबी । गुनै०=गुण (गुण, डोर) को पकड़कर भी शोक मैँ डूब रही है ।

उमगि उमगि घनआनँद सुरलिका मैं,
गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गौरी गाय कौं ॥ ७२ ॥

सवैया

प्रेम - अमी - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूनन की रुचि-राजी ।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी ।
राग-रची अनुराग - जची सुनि है घनआनँद बाँसुरी बाजी ।
मैन - महीप बसंत - समीप मतो करि कानन सैन है साजी ॥ ७३ ॥

कवित्त

नीकी नई केसरि को गारौहू गरब गारै,
फीकी रारि गारि सी निहारैं रूप गोरी को ।
चारु चुहचुही मँजी एड़िन ललाई लखैं,
चपरि चलत च्वै बरन बूकी रोरी को ।
हँसि बोलैं कोरिक कपूर सौंधे वारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक उन्हैं चोरी को ।
प्यारे घनआनँद के राग भाग काग देखौ,
रग-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥ ७४ ॥

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी ।
कौंवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकैं बजाय हरै हियरारी ।
साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौनि मैं दीसति न्यारी ।
कान हैं पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥ ७५ ॥

७४—गारौ—गारे (लंदन) । बूकी—बूका (वही) । रोरी—बोरी (कवित्त) । रंग—रग (वही) ।

उघरै०=परदा न खुल जाय । [७२] वाय=वायु (आकाश, शून्य) । गौरी=एक रागिनी । ढौरा=ढंग । गौरी=गौर वर्ण । [७३] रुचि०=सुंदर पंक्ति । बनराज=वृंदावन । [७४] रारि०=अर्थात् केसर भद्दी जान पड़ती है । रारि=लड़ाई । गारि=गाली । चुहचुही=आर्द्र । सौंधे=सुगंधित द्रव्य । वारि०=निछावर करके फेंक देना पड़ता है । [७५] सौनि=मुहँ में अबीर की ललाई ।

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै ।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि सु गावति गारि बजाय डफै ।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफै ।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥ ७६ ॥
पातरे गात कियैं नवसात, निकाई सौं नाक चढ़ाएँई बोलै ।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गरथारैं ई डोलै ।
स्यामहि चाहि चलै तिरछी, मन खोलौं खिलारि न घूँघट खोलै ।
आली सौं आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलै ॥ ७७ ॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सौं काज करै ।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि अरै ।
घनआनँद रूप - अनूप - भरी धरनी पर सूधे न पाय परै ।
पिय को हिय ताहि लखैं अभिलाषनि लाखनि लाखनि भाँति भरै ॥ ७८ ॥
चाल-निकाई लखैं बिलखै पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति ।
पाय परै न परै मति पाय सची तरसै थरसै, न कछू रति ।
घूँघट-बीच मरीचन की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति ।
लाजनि सौं लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥ ७९ ॥

कबित्त

चुँहटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
भहराई जानि सम्हराई मुँह चाँपि कै ।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै ।

७६–सु०–गवावति (कवित्त)। ७७–खोलौं–खेलै (कवित्त)। ७८–अनूप–गरूर (कवित्त)। ७९–माल–भाल (लंदन)। मद–मृदु (वही)।

[७६] रफै=सुंदर ढंग। लंक०=कमर लचकती है । दृग०=नेत्ररूपी नूपुर । गुजरी=गोपी । गुलफ=टखना । [७७] नवसात=सोलहो शृंगार । मन० = मन खोलने पर भी । घामरि = बेहोशी । [७८] रहठानि=वासस्थान । [७९] थरसै=त्रस्त होती है ।

दिन होरी-खेल की हराहर भरथौ हो सु तौ,
भाग जागैं सोयौ निधरक नैत ढाँपि कै।
सपने की संपति लौं दुखदैन जान्यौ घन-
आनँद कहा धौं सुख पायौ पंथ नॉपि कै ॥ ८० ॥

तरुनाई - वारुनी - छकनि - मतवारे भारे,
झुकि घुकि धाय रीझि उरझि गिरत हैं।
सम्हरि उठत घनआनँद मनोज - ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।
सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कसि,
कर ही मैं लियैं निसिबासर फिरत हैं।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागैं बीर,
गिरिधर - धीरता के किरचा करत हैं ॥ ८१ ॥

सिसुताई-निसि सियराई बाल-ख्यालनि मैं,
जोवन बिभाकर - उदोत - आभा ह्वै रली।
गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तैं अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच - बिकच-दसा देखैं मन आई मनौ,
चाहति कमल हौन कौन रूप की कली।
बड़भागी रागी चलि ऐहै घनआनँद सो,
ऑखिनि सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥ ८२ ॥

८०–चुँहटि–चिहुंटि (कवित्त)। नेत–नैन (लंदन)। ८२–देखैं–देखौं (कवित्त)। घन–अलि (लंदन)।

[८०] चुँहटि=चुटकी से स्पर्श करके, चिकोटी काटकर। औटपाई=नटखटपने मे। डरे=दूर, पृथक्। नाहर=शेर। हराहर=छीना-झपटी। गैत=सुअवसर [८१] बिफरत=उत्पात करते हैं। मसि=अंजन। चुहट=कसक। किरचा=टुकड़े। [८२] बिभाकर=सूर्य। गमागम=जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। बिकच=खिलने की।

सवैया

जात नए नए नेह के भार बिँधे उर ओर घनी बरुनी के ।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैँ होत हैँ बोलत सोत अमी के ।
भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जहीँ के ।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन ओर दिनान तेँ लागत नीके ॥ ८३ ॥
होते हरे हरे रूखे जो दूखे, किते गई सो चिकनानि तिहारी ।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतियाँ छिदि बंक बिहारी ।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होत दुखारी ।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बारि चिन्हारि बिसारी ॥ ८४ ॥
भोर तेँ साँझ लौँ कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तेँ भोर लौँ तारनि ताकिबो तारनि सौँ इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सौँहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ ८५ ॥
नैन की सैन मैँ कोटिक मैन लजैँऽरु भजैँ तजि कै सर पाँचनि ।
आनँदमै मुसक्यानि लखैँ पघिल्यौई परै चित चाह की आँचनि ।
ता पिय के हिय कौँ हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि ।
नूपुर-बीन सौँ लीन कै प्यारी प्रबीन अधीन किये सुर साँचनि ॥ ८६ ॥
पूरन चंद के चूरन कौँ तट धूरि हँसै सु कपूर किती पति ।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽत्र कहा परसै पय की गति ।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति ।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैँ सबिता-दुहिता अति ॥ ८७ ॥

८३—बोलत०—रोल तमोल (कवित्त)। ८६—की—के (कवित्त)।

[८३] अमी=अमृत । अँकोर=भेँट [८४] होते०=रूखे दूखे भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे । [८५] न हारति=नहीँ थकती । तारनि=आकाश के तारों को । तारनि सौँ=पुतलियों से । इकतार=लगातार । भावतो=प्रिय । आँसुनि०=उस अवसर पर आँसू गिराती है [अथवा आँसुओं द्वारा अवसर को निचोड़ देती है, खो देती है]। सौँहन=संमुख । जोहन०=देखने की । आरति=लालसा । [८६] सर०=अपने पाँचो बाणों को । प्रवीन=(वीणा बजाने में) निपुण ।

घूँघट - ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सु घात बनावै ।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर छरा धरि ढूकति आवै ।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौँकति छाँह न छ्वावै ।
बाल अनूठियै ऊठि गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥ ८८ ॥

कबित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद - सुधाधर उदोत - आभा रद की ।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की ।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग - बोरी,
छैल-मति छकै छबि हेरैँ रदछद की ।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौँ रली भली कली कोकनद की ॥ ८९ ॥

सवैया

दावँ तकै, रस-रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै ।
चौँकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौँ छाँह न छ्वावै ।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट बितै अँगुठाहि दिखावै ।
भावती गाँ-बस ह्वै रसिया हिय-हाँसनि सौँ सनि आँखि अँजावै ॥ ९० ॥

पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली ।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली ।

८९—मौं—मैं (लंदन) ९०—ठठि—लखि (लंदन)।

[८७] पति=प्रतिष्ठा। मघवा०=इंद्रनील, नीलम। पय=पानी। मति=समता। सवित०=यमुना [८८] उसारि=वस्त्र मेंसे निकाल कर। बरा=बाँह का एक गहना, टाँड। छरा=नारा, नीवी। ऊठि=उमंग। मूठि चलावै=जादू करती है। [८९] तिलौनी=फुलेल से सुगंधित। रदछद=होंठ। रली=भरी। कोक०=लाल कमल। [९०] ठठि=शान से डटकर। छराय=छलावा, मायादृश्य। चोट०=आघात बचाकर।

घनआनँद खेल-अलेल दसै बिलसै, सु लसै लट झूमि झुली ।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥ ९१ ॥

आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन ।
साँवरी पोति-छरा छलकै छबि गोरी अँगेट लखैं सम कोइ न ।
एड़ी झवैंलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै डग दोइन ।
आवती गौँ पगि लावनि सौँ लगि डोलैँ लला के लगौ हैँई लोइन ॥९२॥

कबित्त

सींचे रस-रंग अंग फूलि फैलि फबि दबि,
देखि देखि मालती - लतानि उकसति है ।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओटि कीजै,
अलक छबीली मन छूटियौ कसति है ।
कहा कहौँ राधे घनआनँद पिया कैं हिय,
बसि रसि जैसी मेरी आँखिनि ससति है ।
कौन धौँ अनूठो रस प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हसनि बसंत कौँ हसति है ॥ ९३ ॥

गलिन मैं छली, रली तिनहीँ सौँ चली भली,
धोखैँ बावरे ह्वै हियैँ रावरे प्रतीति है ।
आजु लौँ लला हो काहू बाम सौँ न काम पर्यौ,
देती जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है ।
गाल क्यौँ बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावँ ग्वैँडे जानि परै हार जीति है ।

९३—फवि—छवि (याज्ञिक) । आँखिनि०—आनिल समाति है (लंदन) ।

[९१] अछेह=अखंड । हेत=जोश । तुली=ठीक, अंदाजभर । अलेल=किल्लोल । खुली=फबी है । [९२] तिलौनी=सुगंधित । लोइन=सुदर । पोति०=काँच की गुरियौँ की लड़ी । अंगेट=अंगदीप्ति । झवैंलिनि=झाँवे से रगड़ी हुई । लावनि=पैर रखना, चलना । लोइन=लोचन । [९३] ओटि०=छिपाने पड़ते हैं । ससति=

आन हमैँ बाबा बृषभानु की अरैँ न टरैँ,
गई करैँ धरैँ सो अबै ही सबै बीतिहै ॥ ९४॥

गोरे भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है।
बदलि परी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचंभे की समीति लेखियत है।
देखैँ भूलियत कछू कहत न आवै सखी,
इनकी हिलग नई नई देखियत है।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद बरस यह,
ब्रज बृंदाबन ही मैं यौँ बिसेखियत है॥ ९५॥

९४–हियें०–हियरा रे परतीति (याज्ञिक)। सो–तौ (वही)। ९५–गोरे–गोर (नोज)।

समा जानी है। [९४] ग्वैंडे=परिसर, निकट। आन=शपथ। गई करैँ=अप्रतिष्ठा करैँ। सबै०=सब कुछ निबट जायगा। [९५] समीति=समूह। हिलग=लगन।

प्रेमसरोवर

दोहा

प्रेमसरोवर अमल बर, ढिग कदंब-तरु-पाँति ।
भानकुँवरि-बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥ १ ॥
सोभा-झर लाग्यौ रहै, भूमि सघन तरु-वेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥ २ ॥
सब रितु-हित सोभित सरस, करियै कहा वखान ।
कीरतिलली अलीनि मिलि, खेलन की रहठान ॥ ३ ॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखैं बनै बनाव ॥ ४ ॥
बरन बरन नव पाट के, झूला झुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥ ५ ॥
जूथ-जूथ-सँग झूलई, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचिरज-रूप निहारि ॥ ६ ॥
बिच झुरमुट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप-झलानि की, बदन भरे अति फूल ॥ ७ ॥
भूषन बसन सुरूप गुन, ललित लहलहे अग ।
मोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥ ८ ॥

———

[१] भानकुँवरि=श्रीराधा । [२] झर=झडी । [३] कीरतिलली=श्रीराधा । रहठान=स्थान । [४] पाट=रेशम । झुले=लटके हुए । [७] झुरमट=वृक्षों का समूह, निकुंज । झूल=पेंग । फूल=प्रसन्नता । [८] रंग=आनंद ।

व्रजविलास

दोहा

मोहन व्रजवन की थली, भली रँगरली ठौर।
मन आएँ आवै सु क्यौँ, कहौ फिरि कछू और ॥ १ ॥

ललित लाल लीला रली, व्रजबन-रुचि रहठानि।
आँखिनि देखैँ ही भटू, आँखिनि पैठत आनि ॥ २ ॥

सदा सुहायो रसमसो, सुंदर व्रज को बास।
मोहन-मुख-सुखमा सन्यौ, सोहत सहज प्रकास ॥ ३ ॥

व्रजवन जमुना गिरितटी, मची रहति रसकेलि।
सब ठाँ भीजे देखियै, आनँदघन - रस - झेलि ॥ ४ ॥

कहा कहौँ व्रज की बनक, कान्ह कुँवर कैँ हेत।
घर बाहिर बीथी बगर, मन दृग मोहे लेत ॥ ५ ॥

मोहनहीँ सौँहीँ तकैँ, जिते गरथारे आहि।
व्रज-गलीनि की लालसा, दीसति स्यामहि चाहि ॥ ६ ॥

कृपा करैँ व्रजनाथ जौ, व्रजदरसन के नैन।
या व्रजवन की माधुरी, तौ परसै उर - ऐन ॥ ७ ॥

जमुना - कूल सुहावनो, ललित बलित तरु-बेलि।
सूचत राधारमन की, महा मधुर रसकेलि ॥ ८ ॥

प्रेमरंग - रस - रगमगो, सुंदर व्रजवन - भूमि।
व्रजजीवन आनंदघन, हित बरसत नित झूमि ॥ ९ ॥

ठौर ठौर सोभा महा, नई नई हित - जोति।
मुदित उदित व्रजचंद लखि, जगमग जगमग होति ॥ १० ॥

मोहन मदनगुपाल को, मोहन यह व्रज देस।
अति उदार भागनि भर्यौ, राजत नंद नरेस ॥ ११ ॥

खरिक खोरि महमह महा, गोधन गोपकुमार ।
गोदोहन ब्रजसंपदा, मोहन प्रान - अधार ॥ १२ ॥

अमृत-बृस्टि हित-द्रस्टि सौं, सींच्यौ ब्रज निज देस ।
ब्रजजीवन आनंदघन, उनयौ भरि आवेस ॥ १३ ॥

ब्रजमगल गुन स्याम के, अद्भुत प्रेमनिधान ।
घर घर मैं सुनियत सदा, बिस्व - बिमोहन गान ॥ १४ ॥

ब्रजमोहन ब्रज मैं बसै, नित ब्रजमंगल रूप ।
घर बाहिर ब्यापक सदा, मंगलचरित अनूप ॥ १५ ॥

ब्रजबिलास रसरीति को, करियै कहा बखान ।
कृस्नचंद क्रीड़त जहाँ, पूरन - कला - निधान ॥ १६ ॥

नैन मिलैं मन मिलि गयौ, बढ़ी अनमिली चौंप ।
अचिरज-फल लाग्यौ सखी, उलहि तहीं हित-कौंप ॥ १७ ॥

भई कलंक कुलीनता, चाहत ही ब्रजचंद ।
चख-चकोर चौंपनि तचैं, प्रगटी कला अमंद ॥ १८ ॥

देखी अनदेखी भई, अब सब ही कुलकानि ।
दीसि परी आँखिनि सखी, उघरि परनि की बानि ॥ १९ ॥

जगत - उजारो साँवरो, दुरयौ हिये मैं आय ।
गोरी नावँ प्रगट भयौ, सपनैं संगम पाय ॥ २० ॥

हिलग नई ब्रज - छैल की उघरी कियैं दुराव ।
सपनैं ही परतख कियौ, लाज - लपेट्यौ चाव ॥ २१ ॥

भयौ सँजोग बियोग हूँ, भई गात - गति ओर ।
दाबत दाबत मचि गई, घर बाहिर हित - रौर ॥ २२ ॥

राधा मेरो नाम है, वे ब्रजमोहन स्याम ।
गीत ग्वारिनी गाइयै, सु लगलाग के काम ॥ २३ ॥

कोरि उपाव करौं सखी, दुरै नहीं हित-बानि ।
रोम रोम मैं रमि रही, ब्रजमोहन - पहचानि ॥ २४ ॥

मुरली - धुनि काननि रमी, राति द्यौस मझराति ।
त्यौँ मूरति आँखिनि बसी, सनमुख ही दरसाति ॥ २५ ॥

घर ही मोहन के रही, बाहिर राधा नाँव ।
उलटी गति है प्रेम की, जानत गोकुल गाँव ॥ २६ ॥

छको छकी सब अंग हौं, छकी मोह कैं छाक ।
उघरि परी घूँघट कियैं, निपट अटपटी ताक ॥ २७ ॥

हित - टौँना आँखिनि परयौ, हरयौ हिये को धीर ।
जागति हौं बतराति हौं, सँग सोवन की पीर ॥ २८ ॥

दुसह विरह जदुनाथ को, मिल्यौ कहूँ तैं आइ ।
बिछुरि बिसासी यौं मिले, कछु गति गही न जाइ ॥ २९ ॥

संग लगें डोलै सदा, बोलै नाहिन बात ।
एक बात बूझै सु क्यौं, अनमिल की कुसरात ॥ ३० ॥

तिन्हैं चैन क्यौं बिन हमैं, हमैं चैन जौ नाहिं ।
कहा मिलैं वे अनमिल, हम बिछुरैं मिलि जाहिं ॥ ३१ ॥

सुनै कौन बरनै सु को, ब्रज को दुसह बियोग ।
बन्यौ आनि ऐसें सखी, अनमिल सौं संजोग ॥ ३२ ॥

बाय - बावरो गाँव सब, भूलन माँझ सम्हार ।
मुँह मूँदैं डोलैं थके, कान्हैं कान्ह पुकार ॥ ३३ ॥

बन जमुना गिरि ब्रजगली, लखियत मोहन स्याम ।
देखन भूलो है भई, मोहि आठ हूँ जाम ॥ ३४ ॥

एक कान्ह देखें जियें, ये सब ही ब्रज लोग ।
चेटक रूपी कान्ह को, अचिरज विरह-सँजोग ॥ ३५ ॥

मोहन - मूरति साँवरी, डोलति डीठिहि लागि ।
अँसुवनि दरसत स्याम घन, जल मैं लागी आगि ॥ ३६ ॥

याद्यौं रहत गुपाल ह्याँ, ब्रज को दुसह बियोग ।
यातैं सब ठौं होत हैं, ब्रजमोहन - संजोग ॥ ३७ ॥

ब्रजमोहन - मै ह्वै रह्यौ, देखत बिरही लोग ।
यातैं कछु कहत न बनै, अचिरज बिरह - सँजोग ॥ ३८ ॥

ब्रज छायौ आनंदघन, बिरह - सँजोग अनूप ।
दरसै सुंदर स्याम को, मोहन अचिरज - रूप ॥ ३९ ॥

अचिरज गति मन दृगनि की, लगि मोहन के संग ।
करत रहत हम सौं सदा, नवरंगी पै रंग ॥ ४० ॥

बिछुरैं जियैं मिले न ते, मिले न तिन्हैं बिछोह ।
सब पै समझि परै नहीं, ब्रजमोहन को मोह ॥ ४१ ॥

प्राननाथ ब्रजनाथ सौं, बिछुरैं जियै सु कौन ।
अकथ कथा ब्रजप्रेम की, कछु बरनत है मौन ॥ ४२ ॥

मोहन - रस बरनैं सुनैं, औरै रसना कान ।
बिमन भएँ मन समझियै, मोहन ही की आन ॥ ४३ ॥

मोहन मन मोहन लगे, मानहुँ मोहन संग ।
जकि थकि रहियै लखत ही, ब्रजमोहन के रंग ॥ ४४ ॥

कबै मिले बिछुरे कबै, विषम बिसासी स्याम ।
मिलैं अमिल अमिलैं मिले, ये कपटनि के काम ॥ ४५ ॥

अहा कहा गति प्रेम की, क्यौं हूँ समझि परै न ।
मिलैं अनमिलैं एक से, कछु कहिवे की है न ॥ ४६ ॥

निपट नवेलो देखियै, या ब्रज हित - व्यौहार ।
गहे गहि रहे एक से, मोहन - गुन आधार ॥ ४७ ॥

अचिरज मोहन साँवरे, अचिरज नेही नैन ।
ब्रज अचिरज सौं रचि रह्यौ, बरनैं अचिरज बैन ॥ ४८ ॥

महा मरम ब्रज प्रेम को, कहा बरनियै ताहि ।
मोहन - गुन गहि बूड़ियै, कौन सकै अवगाहि ॥ ४९ ॥

मिलैं चटपटी बिरह की, बिछुरैं मिलन-बिनोद ।
लपट - लपेट्यौ बरसई, ब्रज मैं प्रेम - पयोद ॥ ५० ॥

ब्रजमोहन आनंदघन, कियैँ पपीहा मान ।
घन-पन - प्यास-परयौ फिरै, ब्रज-रसरीति प्रमान ॥ ५१ ॥
प्यासनि ही बरसै सजल, सदा करत रसपान ।
रीझ भीजि सूखत बदन, अचिरज मरम बखान ॥ ५२ ॥
को समझै ब्रज प्रेमगति, मति बिचार बौराय ।
अतुल अगम रसरीति क्यौँ, रसना परसी जाय ॥ ५३ ॥
रहि न सकै ब्रजरस बिना, रसनैँ परयौ सवाद ।
कहि रहि सकै न फिरि बकै, मौन-गह्यौ उनमाद ॥ ५४ ॥
रसैं आनि रसना ढरयौ, रस ही करयौ बखान ।
ब्रजरस यौँ रसना रस्यौ, बस्यौ नैन मन प्रान ॥ ५५ ॥
ब्रजरस के रसिया रतन, अचिरज-खानि अमोल ।
चौंप चटक टाँकीनि सौँ, कढ़त रग मगे बोल ॥ ५६ ॥
ब्रज-सोभा ब्रज की कुसल, ब्रजजीवन घनमूल ।
ब्रजनायक ब्रज मैं सदा, जित तित हित अनकूल ॥ ५७ ॥
ब्रज सनमुख राजत सदा, ब्रज तेँ पोढ़ी पीठि ।
सोवत जागत एकरस, रहत ब्रजै त्यौँ डीठि ॥ ५८ ॥
ब्रज सुदेस मन बसत नित, ब्रजै बसत मन धाम ।
नित लीला ब्रजनाथ की, दरसत आठौ जाम ॥ ५९ ॥
ब्रज - सुखमा दृग जानई, ब्रजलोचन कैँ चाय ।
ब्रजविनोद आनंदघन, रह्यौ निरंतर छाय ॥ ६० ॥
स्रवैं ओर ब्रजकौतुकी, आप सामुहैँ होत ।
प्रेमपियूष मयूख तें, स्रवैं सु लीला - सोत ॥ ६१ ॥
ब्रजस्वरूप आँखिनि बसैं, ब्रजमोहन - रस - स्वाद ।
स्रवननि त्यौँ मँडरात है, मोहन - मुरली - नाद ॥ ६२ ॥
नखसिख ब्रज व्यापक भयौ, कहा कहौँ निज प्रीति ।
ब्रजमोहन विलसत सदा, यह अपनी रसरीति ॥ ६३ ॥

सकल कला ब्रजचंद की, प्रगटति नेही - अंग ।
ब्रजजीवन जिय मैं बसे, करत महा रसरंग ॥ ६४ ॥
ब्रजविलास दरसै सदा, ब्रजमंडन को साथ ।
ब्रजमोहन पायनि लगे, ब्रजनेही - हिय - हाथ ॥ ६५ ॥
ब्रज को अमल अगाध रस, बूड़त है चित चाहि ।
लीला अचिरज लहर कौं, सकै क्यौंऽब अवगाहि ॥ ६६ ॥
नेही मन गोहन लग्यौ, हठि ब्रजमोहन छैल ।
भूलैं हू सुरत्यै रहै, ब्रजबन - वीथिन गैल ॥ ६७ ॥
ब्रजसंपति कौं पाय कै, भयौ निपट ही रंक ।
मन ब्रजरज छानत सदा, लखि मोहन-पद-अंक ॥ ६८ ॥
श्रीब्रजमोहन - माधुरी, रही नैन - मन छाय ।
अद्भुत रस आनंदघन, प्यासै बढ़ति अघाय ॥ ६९ ॥

———

६६-मोहन-मंडल, (लंदन) ।

[६९] अघाय=छककर ; भली भाँति

सरस वसंत

दोहा

वृंदावन आनंदघन, राजत जमुना - कूल ।
सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि-अनुकूल ॥ १ ॥
बनसंपति दंपतिमई, नई नई नित जोति ।
कृस्न - राधिका - रूप तें, जगमग जगमग होति ॥ २ ॥
या बन की सोभा सरस, कमलनैन कौं चैन ।
बर बानिक बरनौं कहा, सब रितु अचिरज - ऐन ॥ ३ ॥
रितु औरै मौरै नवल, वृंदावन तरुवेलि ।
सहज सुहायो देखियै, आनँदघन रसकेलि ॥ ४ ॥
या बन सरस बसत रितु, विलसत मधुर किसोर ।
फागु खेलि चोंपनि खिले, चाहत वन की ओर ॥ ५ ॥
चाहनि चाह भरयौ सुबन, प्रफुलित सरस वसंत ।
गुंजभरे अलि-पुंज मिलि, सोहत अति रसवंत ॥ ६ ॥

चौपाई

घमड़ि पराग लता - तरु भोए । मधुरितु-सौरभ - सौंज समोए ॥७॥
वन बसंत बरनत मन फूल्यौ । लता लता झूलनि सँग झूल्यौ ॥८॥
खगनि-चुहक पिक-कुहक सुहाई । वन मनमथ की फिरी दुहाई ॥९॥
मलय-पवन - आगम सुखसार । रोचक महा सुदेस सुढार ॥१०॥
बरसत पुहुप पुहुमि पर सोहत । बन-छवि लखि व्रजमोहन सोहत ॥११॥
झौंरनि चौंर चाय सौं ढोरत । परम प्रीति रसमसे झकोरत ॥१२॥
कुसुम नु आसव स्यामहिं प्यावत । बन-तरु जड़ पै यौं जिय ज्यावत ॥१३॥
मधुरितु मधुप-हित-भरी टपकन । मधुप-किसोर चौंप सौं लपकन ॥१४॥

१—राजत—र जित (लंदन) । सुखद—सु सुख (वृंदा०) । ३—बानिक—बानन (लंदन) । ४—केलि—केलि (लंदन) । १४—मधुप-हित०—मधुफल हित करै (लंदन) ।

सरस बसंत सौंज बहुरंग। लियेँ फिरत बनमाली-सग ॥१५॥
कुंजन के प्रकार बहु भाँति। जमुना-तीर विराजति पाँति ॥१६॥
नवपल्लव दरपन-दुति दबै। या बन की छबि या बन फबै ॥१७॥
पुहप-तलप जित तितहि रचावै। यातैँ सरस बसंत कहावै ॥१८॥
बनबिहार के स्रमहि निवारै। मदनगुपाल-प्रीति-पन पारै ॥१९॥
सरस बसंत प्रीति की गोभा। प्रगटित होति विराजति सोभा ॥२०॥
बृंदावन बसंत रसवंत। राधा-माधव कामिनि-कंत ॥२१॥
तन मन फूले बिहरत बन मैँ। फूली ललित सखी जन-गन मैँ ॥२२॥
रूपमंजरी रुचिर सु अंगनि। नई तरुनई बरसति रंगनि ॥२३॥
या बन बर बसंत की संपति। बिलसत लसत रँगीले दंपति ॥२४॥
सरस राग हिंदोल जम्यौ है। नाद-स्वाद दिसि-दिसिनि रम्यौ है ॥२५॥
मुरली-टेर व्यापि बन रही। थिर-चर-गति कछु परति न कही ॥२६॥
तैसिय होति भवँर-भंकार। सरसत बन बरसत सुखसार ॥२७॥
सरस बसंत समय सुख बढ़्यौ। होरी-खेल-चाव चित चढ़्यौ ॥२८॥
सहज रंगमगे राधा-मोहन। रंगनि भरत हरत मन जोहन ॥२९॥
होरी सो खेलिबो करत हैँ। फिरि फागुन के रसहि ढरत हैँ ॥३०॥
खेल चुहल रुचि रचनि मची है। दुरी चौंप अब उघरि नची है ॥३१॥
ब्रज कँ बास खेल रचि राख्यौ। बन बसंत औसर अभिलाख्यौ ॥३२॥
सरस बसंत फागु को खेल। बिटपी बिटनि कामिनी मेल ॥३३॥
तरु बेलिनि झुरमटहि निहारि। फागु खेलि गौं रहे विचारि ॥३४॥
बनसंपति दंपतिरुचि सरसै। जित तित फागु-खेल ही दरसै ॥३५॥
बन तन मन होरियै भरी है। औसर पै अति उघरि परी है ॥३६॥
सरस बसंत भावती होरी। मदनगुपाल माधवी गोरी ॥३७॥
सरस बसंत सहज तन सोभा। तैसिय बन प्रगटित गुन-गोभा ॥३८॥

३०–सो०–सी खेल कौ (वृ दा०)।

[१४] मधुप-किसोर = भ्रमरबाल। [३३] बिटनि = शखाओं पर ; सखाओं से।

लहलहानि तन वनहि लसो है। पुहुप-बिकास हुलास हँसी है ॥३९॥
अंग अंग बहु रंग प्रकासै। तन बन एकमेक ह्वै भासै ॥४०॥
सरस वसंत रूप वनराज। राधा - मोहन - प्रेम - समाज ॥४१॥
सरस वसंत बिचारत बनै। बरसत मोद नैन अरु मनै ॥४२॥
हित-होरी खुलि खेल मच्यौ है। अमित अतन-रति-ओज लच्यौ है ॥४३॥
सरस वसंत फागु के रंग। मिलि रस बढ़्यौ अमोघ अनंग ॥४४॥
व्रज वन सरस वसंत - विकास। होरी - खेल अनंग - बिलास ॥४५॥
यह वसंत यह होरी चौंप। छिन छिन नई नई रुचि कौंप ॥४६॥
सौरभ घमड़ रमड़ रस रेल। सरस वसंत फागु को खेल ॥४७॥
मधुरितु मधुर फागु या वन है। चौंपनि बिवस खिलारिन मन है ॥४८॥
मन की फूल फैलि तन छाई। बन बसंत - संपति सरसाई ॥४९॥
यातें सरस वसंत बन्यौ है। फागु खेलि अनुराग सन्यौ है ॥५०॥
सरस वसंत फागु - रस भोए। अचिरज - अंग अनंग-समोए ॥५१॥
सरस वसंत अनंत मौर हैं। और रतिपति रंग - रौर है ॥५२॥
ललित लहलहनि मधुर महमहनि। अंग डहडहनि रंग गहगहनि ॥५३॥
व्रज वृंदावन सरस वसंत। विहरत रसिकराय रसवंत ॥५४॥
चटक चाव चढ़वारि महा है। अति रस रँग कहि परत कहा है ॥५५॥
सरस वसंत खेल रँगभरे। मुकलित वैस - विलासनि ढरे ॥५६॥
बहु रँग संपति सरस वसंत। व्रजवन बिलसत राधाकंत ॥५७॥
भाग फाग अनुराग राग भरि। प्रमुदित सरस वसंत केलि करि ॥५८॥
नित ही सरस वसंत विराजै। मधुरितु समय परम सुख साजै ॥५९॥
जा हिय सरस वसंत विकासै। वृंदावन मधुरितु सुख भासै ॥६०॥
केलिमंजरी प्रगटित होय। दंपति - संपति दरसै सोय ॥६१॥

४२–मनै–सनै (वृंदा०)। ४५–अनंत–अनग (वृंदा०) ५१–फागु–भागु (नंदन)। अंग–रग (वहीं)।

[४३] अनन=कामदेव। [५२] रंग०=आनंद का कोलाहल। [५३] लह०=लहलहाना, हरा भरा होना। महमहनि=सुगंध। डह०=प्रसन्न होना। गह०=रंग का चढ़ना।

ब्रजबन बिसद बिहार-बिनोद । सरस बसंत बढ़ावै मोद ॥६२॥
परमानंद - भाव उर जागै । सरस बसंत रीतिरस पागै ॥६३॥
महा मधुर मधुरितु-सुख लहै । सरस बसंत - माधुरी कहै ॥६४॥
बानी स्रवै प्रम - मकरंद । सरस बसंत - विकास अमंद ॥६५॥

दोहा

ललित फागु रचना रची, विलसत सरस बसत ।
जै जै राधा माधवी, जै बनमाली कंत ॥ ६६ ॥

गोपीवल्लभ - पद - कमल, सुंदर प्रीति - पराग ।
मन-मधुकर मकरंद-बस, मंडित पूरन भाग ॥ ६७ ॥

मूरति सरस वसंत की, वनमाली अभिराम ।
प्रफुलित रूप अनूप तन, मोहन अगनित काम ॥ ६८ ॥

राधा - बदन - बिकास - रस, मोहन मधुप सुजान ।
चौंपनि चसकँ दृगनि भरि, करत निरंतर पान ॥ ६९ ॥

मुकलित बैस बसंत को, अद्भुत अमित बिकास ।
राधा - माधव - माधुरो, पीवत सरसै प्यास ॥ ७० ॥

हित - फूले झूले रहत, गौर स्याम तरु - वेलि ।
जमुना कँ तट बैन वट, मधुरितु - रँग रसकेलि ॥ ७१ ॥

यह बसंत या बन बनै, धनि वृंदाबन - खेत ।
रसिकराय आनंदघन, नैन हियँ भरि देत ॥ ७२ ॥

राधा - मोहन छैल जुग, रस - रगमगे खिलार ।
फागुन सरस वसंत के, सब रितु मैं रिझवार ॥ ७३ ॥

गुपत प्रगट चौंपनि भरो, मचो रहत रस - फाग ।
सब रितु एकै रितु रहै, होरी सौं अनुराग ॥ ७४ ॥

६८—वन-मन (लंदन) । ६९—विकास—प्रकास (वृंदा०) । ७१—रँग०—रग सकेलि (वृंदा०) ।

फागुन-रस भीजे सहज, आँखिनि विलसत आय ।
यह सुख सरस बसंत को, हिय भरि रह्यौ घुमाय ॥७५॥

हित - होरी मचिचै रहै, नित ही सरस बसंत ।
फिरि फागुन की को कहै, रंग - तरंग अनंत ॥७६॥

हित की गति कहत न बनै, हिय ही होति लखाय ।
फाग भाग अनुराग को, फूलि रह्यौ बनराय ॥७७॥

ब्रजबासी राधारमन, वृंदाबन सुख लेत ।
फाग - भरे फूले रहैं, पूरन प्रेम - निकेत ॥७८॥

---

[७५] घुमाय=चारों ओर, सर्वत्र ।

अनुभवचंद्रिका

चौपाई

ब्रजबन स्याम-रंग रचि रह्यौ । ब्रजबन को सुरूप यह लह्यौ ॥१॥
ब्रजबन देखन के दृग औरै । ब्रजवन सुखद स्याम सिरमौरै ॥२॥
ब्रजबन परम तत्व को सार । ब्रजबन लीला नित्य बिहार ॥३॥
तन तैं निकसि मन पगै पन सौं । तब पहचान होय ब्रजबन सौं ॥४॥
ब्रजबन को सुरूप आनंद । कृस्नचंद नित उदित सुछंद ॥५॥
अद्भुत प्रेमसुधा झर सरसै । कृस्नचंद आनँदघन बरसै ॥६॥
या रसमय ब्रज बन को रूप । असल अखंड अगम्य अनूप ॥७॥
लीला-रस-बिलास को सागर । ब्रजबन गोकुलचंद उजागर ॥८॥

दोहा

गोकुलचंद मयूख लखि, जे दृग भए चकोर ।
ते ब्रजबन देखत सदा, बिसरि साँझ अरु भोर ॥९॥

चौपाई

ब्रजबन सोभा मन ही जानै । मनमोहन-मन बैठि बखानै ॥१०॥
ब्रजबन निरवधि रस तैं सान्यौ । ब्रजबन-रस रसिया ही जान्यौ ॥११॥
या ब्रजबन मैं जो कछु होय । प्रगट निगमहूँ राख्यौ गोय ॥१२॥
परम परैं सो कैसैं भनै । महा मरम न बिचारत बनै ॥१३॥
या ब्रजवन-रस-बस को होय । सबनि अगोचर लहै न कोय ॥१४॥
ब्रजबन-महिमा अधिक अगाध । नित्यानंद बिनोद अबाध ॥१५॥
गोपभेष गौ पालत सदा । ब्रजवन विलसत निज संपदा ॥१६॥
परमधाम को परम धाम है । ब्रज वृंदावन सरस नाम है ॥१७॥
ब्रजबन-सुख ब्रजमोहन लेत । सो सबही ब्रजवन लै देत ॥१८॥
ब्रजबन ब्रजमोहन को हेत । कछु कहि परत न अति रस-खेत ॥१९॥
ब्रजबन-रस सबही तैं न्यारो । मुरलीधर प्रानेसुर प्यारो ॥२०॥
या ब्रजबन बाँसुरी बजति है । लीला ललित समाज सजति है ॥२१॥

ब्रजवन वंसी - धुनि मँडराति । ऐसी कछु बंसी - धुनि जाति ॥२२॥
धुर के सुरनि बजी सो बजी । स्रननिहूँ सुनि बहुरि न तजी ।२३॥
कहा कहौं ब्रजबन की बात । सुमिरत सब बिचार बिसरात ॥२४॥
ब्रजवन दरसि दरसि फिरि डरै । हरि लौं हियरा ढारति ढुरै ॥२५॥
लीला ललित लोभ नहि जगै । ब्रजवन सौं कैसैं पन पगै ॥२६॥
इतने पैं कछुवै न सुहाय । ब्रजबन नैन हियैं मँडराय ॥२७॥
ब्रजवन - बासी स्याम सुजान । गोपीबल्लभ रूपनिधान ॥२८॥
सुंदर डीठि कवहुँ जौ करै । मन-तन-सँग ब्रजबन लै धरै ।।२९॥
तन मन ब्रजबन रहै समोय । कृपा करैं तौ सब कछु होय ।।३०॥
इन आँखिन जौ ब्रजवन दरसै । हमकौं सोई सब सुख बरसै ॥३१॥
आस-बास ब्रजवन मैं रहौ । मन तन ब्रजबन - मारग गहौ ॥३२॥
ब्रजवन - सोभा नैन बिलोकौं । सब तन तें ब्रजबन मन रोकौं ॥३३॥
फुरौ सहज आनंद - बिलास । सफल होहु यौं ब्रजबन - बास ॥३४॥
ठौर ठौर सौं बिनती यहै । नित ही मन तन इतहीं रहै ॥३५॥
ब्रजवन ही जीवन - धन जानौं । मन तन ब्रजबन-रस लै सानौं ॥३६॥
ब्रजबन-भरि-सरिता-जल पियैं । उपजै सांति जरि गए हियैं ॥३७॥
लीला - अंकुर उपजै मन मैं । यातैं मचलि परयौ ब्रजबन मैं ॥३८॥
ब्रजमंडल बनराज - बिहारी । गोपीनायक लायक भारी ॥३९॥
सुंदरि गुननि ढरकत ढिग आय । हरिहूँ आधि मधुर मुसिकाय ॥४०॥
यह ब्रजबन-प्रसाद की आस । ब्रजवन कृस्न-कृपा - बिसवास ॥४१॥
ब्रजबन बसि ब्रजनाथहि गाऊँ । श्रीगोपीपद - रज सिर नाऊँ ॥४२॥
जमुन - तीर ब्रजजीवन - केलि । मन रसना हित धरूँ सकेलि ॥४३॥
स्रवन सुनौं ब्रजबन-गुन-गीत । मंगलमूरति परम पुनीत ॥४४॥
आनँद - लहर उठै मन दवै । ब्रजवन के सुख साधौं सवै ॥४५॥
ब्रजबन सदा बिनोदहि परसौं । दरसौं सोभा हियरा सरसौं ॥४६॥
ब्रजबन-रसिक-संग अभिलाखौं । तिनतैं सुनि बूझैं कछु भाखौं ॥४७॥

३९–लायक–नायक (लंदन)।

[२५] डरै=पृथक् होती है, दूर होती है।

ब्रजबन-रस की गाँसनि खोलौं। जौ राखै तौ गौंहन डोलौं ॥४८॥
ब्रजबन बसिबे को यह फल है। जिनि मिलि दरसत रूप अमल है ॥४९॥
ब्रजबन बसियै रसिकौ मिलैं। ब्रजबन-भाव इन्हैं मिलि खिलैं। ५०॥
रसिक-सजीवन ब्रजबन-बासो। राधा-मोहन सदा बिलासी ॥५१॥
ब्रजबन परमानंद - रसायनि। गोपी-पद-रज यह रसदायनि ॥५२॥
ब्रजबन बसि पद-रज-रति मिलै। मति-गति अति आनँद-रस झिलै ॥५३॥

दोहा

प्रकटी अनुभवचंद्रिका, भ्रम - तम गयौ बिलाय।
ब्रजमंडन की कृपा तें, रह्यौ मोद - घन छाय ॥५४॥
ब्रजवन - लीला - माधुरी, निरवधि रस को सार।
रसिक - मुकटमनि कृपा तें पायौ प्रान - अधार ॥५५॥

---

[५३] झिलै=धँसती है। [५४] मोद-घन=आनंद का बादल; आनंदघन।

रंगबधाई

चौपाई

घोष-नृपति - घर ढोटा जायौ । ब्रज पर आनँदघन बरसायौ ॥१॥
मधुर स्याम ब्रज-लोचन-तारो । गोकुल जीवन जगत - उज्यारो ॥२॥

दोहा

लीला ललित गुपाल की, अति अद्भुत रसकंद ।
आनँदघन बरस्यौ उदै पूरन गोकुलचंद ॥३॥

चौपाई

जसुदा-कूख-ककुभ ह्वै निकस्यौ । पूरव भाग अपूरब बिकस्यौ ॥४॥
सदा सनमुखो सबहीँ भाँतिनि । व्यापक रुचि चरित्र-कुल-काँतिनि ॥५॥
अचरज-प्रभा कछु न कहि आवै । सबकौं सबहीँ दिसि दरसावै ॥६॥
मित्र - मण्डली - मंडन लसै । निसिदिन मन नैनन मैँ बसै ॥७॥
ब्रज की कमलमुखी लखि फूलैँ । गोकुलचंद पालनैँ झूलैँ ॥८॥
रंगबधाई को सुख जैसो । मन लोचन नहिँ जानत तैसो ॥९॥
महा घोष बाजन को भयो । बंदी बिरुद दसौँ दिसि छयो ॥१०॥
ब्रज निरवधि सुखसिंधु बढ़्यौ अति । बरनत थकै कोरि सारद-मति ॥११॥

दोहा

कृस्नचंद मैँ मन दियैँ, फुरै सु मंगल - मोद ।
सबै कोद बरसै लसै, ब्रज मैँ प्रेम - पयोद ॥ १२ ॥

चौपाई

नन्द महोछै के सुख देखैँ । जीवन-जनम मानियत लेखैँ ॥१३॥
दधिकादौं सुख - भादौं भई । ब्रज मैँ सोभा प्रगटी नई ॥१४॥
आनन्द उफनि उठ्यौ थिर चर मैं । मंगल व्याप्यो धर अबर मैँ ॥१५॥

१--पर--पै (लंदन) । १५--उठ्यौ--बढ़्यौ (वृंदा०) ।

[१३] महोछै=महोत्सव । जीवन०=जन्म लेखे मैं मानते हैं, सफल समझते हैं ।

सजन - बंधु ब्रज मैं इकठौरे। मगन गरथारनि डोलत दौरे ॥१६॥
आवत धावत मिलत सु लपटत। प्रेममगन नाचत अरु रपटत ॥१७॥
नंद - सदन रस - रंगबधाई। कोटि फागु खेलैं अधिकाई ॥१८॥
इक दिसि मागद सूत रटत हैं। बंदी विरुदनि पढ़ि न हटत हैं ॥१९॥
निकरध झगरत नेग चुकावत। झगरि झगरि हित-चौंप बढ़ावत ॥२०॥
बरनौं कहा नंद को देबो। भरि थकि परैं लेतहूँ लेबो ॥२१॥
कान्ह-दरस - हित आसा पूजी। रहै काहि अभिलाषा दूजी ॥२२॥
धौंसा धुधक ढोल ढमकारनि। इत नटनचनि पुलकि किलकारनि ॥२३॥
गायक बिबिधि सोहिले गावत। अपनो मनवंछित भरि पावत ॥२४॥
जित जित चहत चकित ह्वै रहियै। या औसर की छवि कह कहियै ॥२५॥
सुर किंनर अपसर लखि झूमैं। थके छके आनँद-बस घूमैं ॥२६॥
अतुलित रस को सिंधु बढ़्यौ है। मुहँमाँग्यौ फल हाथ चढ़्यौ है ॥२७॥
रावर की छवि बरनौं कैसैं। सोवर को घर सोहत जैसैं ॥२८॥
भागनि भरी जसोदा दिपै। दिसि दिसि जसदीपति सौं लिपै ॥२९॥
गोपबधू घर आनँद - भरी। गावति हँसति मल्हावति खरी ॥३०॥
अखिल भुवन-सुख सदन नंद कैं। जनम - समै आनंदकंद कैं ॥३१॥
सबकौं सबै मनोरथ मिलै। अपने रंग - उमंगनि खिलै ॥३२॥
गोकुल गाँव कलिंदी - तीर। बढ़ी महा मंगल की भीर ॥३३॥
सबही के हिय परम हुलास। सफल भयौ गोकुल को बास ॥३४॥
ब्रजपति सपति परति न बरनी। जसो सपूती सी जिहि घरनी ॥३५॥
यह धन धाम सदाई रहौ। नित नित सुतहित के सुख लहौ ॥३६॥
जागौ जियौ कन्हैया बारो। नंद-जसोमति प्राननि प्यारो ॥३७॥
लाड़िल अतिलड़ लला सलोनो। ब्रजमोहन सोहन दिनहोनो ॥३८॥
बड़ो होउ बड़भाग हमारैं। दिन दिन लोचन फलहि निहारैं ॥३९॥
सबकौं सब ही विधि सुख पोखौ। हितुवनि देहु चैन-चित चोखौ ॥४०॥

२२—अभिलाषा—अभिलाषनि (लंदन)। २३—ढम०—ठनकारनि (वृंदा०)।

[१७] रपटत=गिर पड़ते हैं। [१९] मागद=मागध। [२८] सौंवर=सुवर्ण। [३५] जसो=यशोदा।

गैयनि पालौ मैयनि हरषौ। नंदहि परमानंदहि बरषौ ॥४१॥
नित ही व्रजजन-हित अनुकूलौ। जसुदाजीवन लला जरूलौ ॥४२॥
चाकौ केस खसौ मति न्हातैं। या व्रज की सुख-सोभा यातैं ॥४३॥
नित नित मोद विनोदनि करौ। चित के चीते हित बिस्तरौ ॥४४॥
बलिबलि जावँ आज के दिन की। सुभ नछत्र सुभ घरी सुछिन की ॥४५॥
या बर यह दिन दिन ही रहौ। मंगल - मोद सदा निरवहौ ॥४६॥
आनँद को घन रस जस बरसौ। हित-हरियारी नित ही सरसौ ॥४७॥
व्रजजन चातिक यह रस पियौ। व्रजजीवन-रस पीवत जियौ ॥४८॥
व्रज सुदेस सुख सदा बिराजौ। गोपराज नित सजौ समाजौ ॥४९॥
श्रीयुत नंदराय - दरबार। नित ही आनँद मंगलचार ॥५०॥
व्रजमंगल व्रज प्रान - अधार। जै जै जै व्रजराजकुमार ॥५१॥
स्याम राम की जोट छबीली। जसुमति रोहिनि रस-बरसीली ॥५२॥

दोहा

लाड़चाव बिलसौ लसौ, व्रजजीवन रसकंद।
हित - पियूष पोषौ सदा, पूरन गोकुलचंद ॥ ५३ ॥

---

[४२] जरूलौ=[जटुल] ललगावाले ।

प्रेमपद्धति

चौपाई

कहा कहौं गोपिन को प्रेम । बिसरे जहाँ सबै बिधि नेम ॥१॥
प्रेम-पंथ बाँको अति आहि । सूधैं इन अवगाह्यौ याहि ॥२॥
इनके चरन सीस लै धरै । तब यह अगम गैल अनुसरै ॥३॥
अगह बस्तु मन याहि न गहै । रसना अकथ कथा क्यौं कहै ॥४॥
इनको भाव इन्हैं बनि आयौ । कहूँ न पैयै सो इन पायौ ॥५॥
इनको परम प्रेमपद दूरि । महामूरि इन पायनि धूरि ॥६॥
सो अति अलभ हाथ क्यौं लगै । परम प्रेम कैसैं उर जगै ॥७॥
सिव बिधि सुक उद्धव से जाचत । महिमा-बस अचरज-रस राचत ॥८॥
सुमरि समझि सूझत अभिलापनि । व्रज बसि निरवधि रस की चाखनि ॥९॥
व्रज परिकर सौभाग सराहि । बूड़त विषमय महिमा चाहि ॥१०॥
महा मरम सकत न अवगाहि । को धौं समझि सकै फिरि याहि ॥११॥
परम प्रेमगति कछु उर फुरै । दिब्य ज्ञान उघरैं हूँ दुरै ॥१२॥
व्याकुल ह्वै कलमलत सलोभ । जाचत जनम व्रजधरनि-गोभ ॥१३॥
रस-सवाद रसिया ही जानै । बिन रस भएँ कौन अनुमानै ॥१४॥
सो रस अमिल मिलै धौं काहि । निगम नेति करि वरनत जाहि ॥१५॥
ते कछु जो अनुमानत ताहि । मगन होत लीला अवगाहि ॥१६॥
अति लघु ह्वै व्रजरज आराधत । गोपी-मग डग सोधत साधत ॥१७॥
अनुचर-गति बिन रज क्यौं मिलै । भाव-वेलि-पुहुपावलि खिलै ॥१८॥
व्रजरज-रूप गुरु-कृपा दरसै । तब रस परम हेत हिय सरसै ॥१९॥
रसकदंब चूड़ामनि स्याम । राधारमन परम अभिराम ॥२०॥
रस ही रस अपने रस ढरैं । तब व्रजरज-अधिकारी करैं ॥२१॥
बढ़ै चौंप उपजै उर भाव । जानि परै व्रजजन-चित-चाव ॥२२॥
गोपी नट गुपाल की प्रिया । हरि-हित-भरीं खरीं सब क्रिया ॥२३॥
काहू समय कछु न रुचि और । जगि पै रहै काम की रौर ॥२४॥
गोपिन के वस गोपीनाथ । नित बिहरत व्रजबन इक साथ ॥२५॥
मोहनचंदहि कियौ चकोर । मोहमई माचत चहुँ ओर ॥२६॥

अरस - परस - रस भीजे रहैँ। व्रजबन को सहेट - सुख लहैँ ॥२७॥
व्रज-वस कृस्न गोपिका - लाग। महाभाग पूरन अनुराग ॥२८॥
रचे सहज ही अति रस राचनि। कहै कौन पूरन पन-पाचनि ॥२९॥
मुरली - धुनि गोपिन ही सुनी। जु कछु बजाई मोहन गुनी ॥३०॥
सब अनसुनी करी धुनि सुनिकै। टरयौ धरम धीरज सिर धुनिकै ॥३१॥
प्रबल प्रेम को ओज दिखायौ। जगमोहन हूँ पकरि नचायौ ॥३२॥
या रस - बिवस एकरस रहै। अति अमोघ सुखसंपति लहै ॥३३॥
व्रज - भूतल अभूत रससाज। सजे रहत नित प्रेम-समाज ॥३४॥
बर बिहार व्रजबधू - संग को। निरवधि रससागर - तरंग को ॥३५॥
को धौं कहै लहै धौं कौन। बानी बिरल अपूरब मौन ॥३६॥
बिन इन कृपा परस नहि मन को। अतिअपरस है पन व्रजजन को ॥३७॥
सब तें ऊँचो सब तें न्यारो। या रस-बस व्रजनायक प्यारो ॥३८॥
रिनी भएँ रस को जस राख्यौ। रसिकसिरोमनि यौं अभिलाख्यौ ॥३९॥
सो धौं कहौ कौन ह्वै सकै। याको अधिकारी ह्वै सकै ॥४०॥
गोपिनि हितगति चितहि बिचारै। परम प्रेम पूरन पन धारै ॥४१॥
गहै सु गति गोपिन जो गही। या व्रज-रस को साधन यही ॥४२॥
रूप-अटक की खटक सम्हारै। व्रजमोहन-मुख-ओर निहारै ॥४३॥
रुकनि बढ़नि अभिलाष तरंगनि। मगन होन उमगनि रसरंगनि ॥४४॥
दिन बिनवनि चितवनि समायकै। जियहि जिवावनि चटक चायकै ॥४५॥
सब ठाँ एक स्याम की सूझ। बूझि न परति छकनि की बूझ ॥४६॥
इनतें प्रगट प्रेम की पद्धति। अति ही गुपत समझि मुरझै मति ॥४७॥
तातें गोपिन के गुन गाऊँ। इनकी रचनि मनैँ परचाऊँ ॥४८॥
इनकों सु लगलगन सौं लागौं। मधुर किसोर-रूप-रस पागौं ॥४९॥
बस ह्वै बिबस कियौ व्रजमोहन। लाग्यौ लाग्यौ डोलत गोहन ॥५०॥
रसिक - मुकुटमनि इनकौं नवैं। जु कछु करैं सोई संभवै ॥५१॥
महा उच ऊरध रस - पदवी। व्रजनायक बिन काहू न दवी ॥५२॥

[२९] पाचनि=पकना। [३७] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।
[५२] न दवी=आरूढ़ नहीं हुआ।

यह रस ब्रज बृंदाबन धाम। गोपिनि मिलि बरखत घनस्याम ॥५३॥
रासबिहारी गोपिनि किये। बस करि लिये सदा सुख दिये ॥५४॥
नाचि नाचि कै भलै नचाए। प्रबल प्रेमबस अबस लचाए ॥५५॥
निपट निसंक निरंकुस मोहन। फँदे रूप-गुन बिहरत गोहन ॥५६॥
भिजए रीझ रसिक रिझवार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥५७॥
अति रसबिबस मगन करि राखे। परसि सरसि अपरस फल चाखे ॥५८॥
यह सवाद गोपिनि हीं लह्यौ। नेति नेति निगमन हूँ कह्यौ ॥५९॥
कहै कहा कछु थाह न पावै। निरवधि रस कौं थकि थकि धावै ॥६०॥
मिलै न गोपी-पद-प्रसाद बिन। सब अधिकारी विकल किये इन ॥६१॥
ललचि ललचि जाचत अपनो सो। पै नहि टरत मोह सपनो सो ॥६२॥
देखि देखि भूलत सुधि साधत। अगम अगाह वस्तु आराधत ॥६३॥
ब्रजरस निपट अटपटो आहि। को धौं याहि सकै अवगाहि ॥६४॥
प्रबल तरंग रंग अति आगर। ब्रज अचिरज-रस को सुख-सागर ॥६५॥
श्रीगोपी-पदरज-अवलंब। लहियत ब्रजरसकेलि-कदंब ॥६६॥
तातैं नंद गोप ब्रजवास। जौ पाइयै कृपा अनयास ॥६७॥
तन धरि धरि यह बानक बनै। ब्रजरज खरिक-कीच मैं सनै ॥६८॥
अलभ लाभ को भाजन होय। ब्रजव्यौहार रहै हिय भोय ॥६९॥
ब्रजजन सहज रीति कौं परखैं। ब्रज की प्रीति सहज मन करखैं ॥७०॥
कृस्न-गोपिका-कौतुक ताकै। उछकि परै जब या रस छाकै ॥७१॥
गोपी-प्रबल-भाव उर फुरै। तब सब ओर आप ही ढुरै ॥७२॥
घूमत फिरै सुरति-भूल्यौ सो। तन मुरझान्यौ मन फूल्यौ सो ॥७३॥
स्याम-रूप रसभूप उज्यारो। लखै सहज ब्रजलोचन-तारो ॥७४॥
ताकी कहा बहुरि गति कहियै। जौ राखै तौ निरखत रहियै ॥७५॥
ये ब्रजवधू परम बड़भाग। यह रस इन ही को निज भाग ॥७६॥
इनको गैल छैल-रस लहियै। तातैं सब तजि ब्रज बसि रहियै ॥७७॥
आस-बास ब्रज हो मैं रहौं। गोपीपद-प्रसाद मैं लहौं ॥७८॥
यह ब्रजरस मेरे मन मान्यौ। अनजानौ हूँ यहि पै जान्यौ ॥७९॥
जदपि स्वाद याको अति दूरि। ब्रजरज मिली सजीवन-मूरि ॥८०॥

याही लै निज नयन आँजिहौं। याहि चाहि मन-मुकुर माँजिहौं ॥८१॥
यह ब्रजरज - रस करिहौं पान। गोपीपद - प्रसाद सनमान ॥८२॥
गोपीपद - रज - रस अभिमान। परम गूढ़ मति मूढ़ निदान ॥८३॥
रहि न सकौं बिन किये बखान। अब रसना उचरै नहिं आन ॥८४॥
हियरा ब्रजरस - ढारैं ढरयौ। केलि - बेलि अवलंबन करयौ ॥८५॥
कछुक परयौ ब्रजरस को चसको। दूभर परस प्रेम अपरस को ॥८६॥
सोऊ सुगम मोहि परस्यौ है। गोपीपद - प्रसाद सरस्यौ है ॥८७॥
रस जो रसै कहा रसना बस। नतरु कहाँ रसना कित यह रस ॥८८॥
बकिबो करत मौन की बात। सुनि मेरे स्रवनौ न अघात ॥८९॥
हौं ही बरनौं हौं ही सुनौं। हौं ही समझौं निगुनौं गुनौं ॥९०॥
जिती कहावैं तितियै कहौं। ब्रज - सनेह को छेह न लहौं ॥९१॥
मौन बकै बानियो न बोलै। ब्रजरस-सिंधु अगाध कलोलै ॥९२॥
यह रस पीवत प्यासै सरसै। अब तौ उघरि उघरि हित बरसै ॥९३॥
यहरस पाएँ सब कछु पायौ। या ब्रजरज मैं उघरि दुरायौ ॥९४॥
गोपीरस गोपालै जानत। भावक-जन तिन कृपा बखानत ॥९५॥
त्रिभुवन संत - सिरोमनि गोपी। अतुल प्रेम पूरन पन - ओपी ॥९६॥
गोपी-विट रस को बट पाय। सदा रह्यौ आनँदघन छाय ॥९७॥
जीवन सरस भयौ ब्रजरस तैं। घूमत गोपी-रस - आरस तैं ॥९८॥
हियो बिरस या रस - उद्‌गार। जै जै राधा नंदकुमार ॥९९॥
दंपति - कृपा - भरोसो मोहि। जातैं ब्रजरज पाई टोहि ॥१००॥
अब न और कछु या बिन चहियै। याही रज मिलि मिलि रस लहियै॥१०१॥
गोपी - चरन - रैंन मेरे धन। गोपिन के पन सौं पारयौ पन ॥१०२॥
परम प्रेमपद्धति कछु कही। गोपीपद - प्रसाद तैं लही ॥१०३॥
सब रस को निगूढ़ मत यही। ब्रजरज गही भयो अब सही ॥१०४॥
गोपीवल्लभ के गुन गनौं। गनि गनि निज सरूपसुख सनौं ॥१०५॥
गौर-स्याममय ब्रजबन देखौं। ठौर ठौर लीला अवरेखौं ॥१०६॥

[९१] छेह=(छेद) विच्छेद। [९६] ओपी=ओपित, देदीप्यमान।
[१०२] रैंन=रेणु, रज।

लह्यौ परम रस को बिरजास। श्रीब्रज बृंदाबिपिन - बिलास ॥१०७॥
भ्रम-तम गयौ भयौ सु प्रकास। गोपी - पदरज पूजी आस ॥१०८॥

दोहा

प्रगट प्रेमपद्धति कही, लही कृपा - अनुसार।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्भुत रस - आसार ॥१०९॥
सुरति स्याम सौं मिलि रही, करत धाम के काम।
यह गति ब्रज अबलान की, प्रबल प्रेम नव दाम ॥११०॥
बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति।
याही तैं सब.तैं अमिल, या ब्रज की रसरीति ॥१११॥
प्रेमअवधि आनंदघन, लिये महारस पागि।
सर्बस साध्यौ बिसरि सुधि, मोहदसा उर जागि ॥११२॥
कहि न परति कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि।
ब्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाह ताहि ॥११३॥
सदा मगन मुरली धरैं, गावत ब्रज को प्रेम।
ब्रजनायक नेही निपुन, गहे प्रेम को नेम ॥११४॥
गोरस ह्वै सो रस लियौ, जो नर लहै न कोय।
लैनि दैनि अति रसमसो, गति मति रही समोय ॥११५॥
घर बैठी बन मैं फिरै, गोपिन की यह गैल।
गोहन क्यौं न लग्यौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥११६॥

११०–प्रवल०–परम प्रेम तकि राम (राम)। ११३–अवगाहै–अवगाधै (राम)।

[१०७] निरजास=(सं० निर्यास) निचोड, निष्कर्ष। [१०९] आसार=वृष्टि। [११०] सुरति=स्मृति, ध्यान। दाम=रस्सी। [१११] गुनी=गुणी; रस्सीवाला। [११२] मोह०=अचेतावस्था। [११५] रसमसो=रसमय। समोय रही=लीन हो रही है। [११६] गैल=गली; रीति। गोहन=साथ।

गाँव गाँव बाखरि बगर, ब्रजमोहन मँडराय।
कहौ ताहि कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥११७॥

एकहि लगि दुहुँघाँ खगी, लगी पुरातन प्रीति।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥११८॥

परम प्रेमगति अगम अति, अमल अपूरब रूप।
सब तैं न्यारी सुचि सुसिल, ब्रज - रसरीति अनूप ॥११९॥

मधुर मुरलिका - नाद सौं, मति गति लई बिलोय।
निगम तान बेधे मरम, बिषम बिषामृत मोय ॥१२०॥

प्रेमपरावधि ब्रजवधू, सुनि बंसी - धुनि मंद।
तजत भईं सब कछु तबैं, भजत भईं ब्रजचंद ॥१२१॥

आरजपथ भूलीं भलै, बिबस परीं हित - फंद।
ब्रजमोहन ब्रजमोहनी, पूरन प्रेम अमंद ॥१२२॥

थकित चलीं सुनि मुरलिका, सु धुनि अपूरब गैल।
बिबस भईं अपबस कियौ, मदनमनोहर छैल ॥१२३॥

अतुल अनूप सुरूप गुन, गोपी परम पुनीत।
जिनके बस रसनिधि सदा, स्याम सजीवन मीत ॥१२४॥

ब्रज बृंदावन देखियै, पूरन प्रेम - समाज।
गोपराजनंदन नवल, नित बरसत रसराज ॥१२५॥

चौंप चाव तिनही नयौ, नवल रूप नवरंग।
ब्रजबाला ब्रजचंद की, अद्भुत केलि अभंग ॥१२६॥

११७–बाखरि–पोखरि (राम)। ११९–सुचि–सुठि (वृ दा०)। १२०–तान–बान (राम)। १२१–कछु०–सकुच तब। १२२–ब्रजमोहनी–मनमोहनी। १२६–रामनगर की प्रति में यह दोहा यों है–चोप वाल ब्रजचंद की अदभुत केलि अभंग।

[११७] बाखरि=घर। बगर=बरोठा, प्रकोष्ठ। [११८] ठाँ=ओर।
[१२०] मोय=भिँगोकर। [१२२] आरज०=मर्यादा का मार्ग।
[१२५] रसराज=शृंगार।

गिरिबर घन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार।
सदा कुलाहल मचि रह्यो, लीला ललित अपार ॥१२७॥
परम अमल अति ही अमिल, हरि-ब्रजबधू-बिलास।
जाँचत हैं बिधि संभु से, श्रीब्रजमंडल - बास ॥१२८॥
श्रीपद - अंकित ब्रजमही, छबि न कही कछू जाय।
क्यौं न रमाहूँ को हियो, या सुख कौं ललचाय ॥१२९॥
रची निरंतर केलि यह, अद्भुत अमित रसाल।
बिहरत भरैं अनंद सौं, गोपी मदनगुपाल ॥१३०॥
मिलि बिछुरत बिछुरैं मिलत, अचरज मिलन-बिछोह।
जग मोहन जग तैं बिरल, ब्रजबन लीला मोह ॥१३१॥
देखत भूली सी लगैं, लखि ब्रज को ब्यौपार।
चकचौंधी सबके चखनि, अचरज प्रेम - विहार ॥१३२॥
यह बिनोद या ब्रजबनै, अद्भुत अमल अखंड।
गान करत ब्रजकेलि को, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥१३३॥
रसिक - सिरोमनि सॉवरो, रमनीमनि ब्रजबाम।
बिलसत हुलसत एकरस, ब्रज बृंदावन धाम ॥१३४॥
महाभाग ब्रज की बधू, निज बस किये गुपाल।
रिनी रहे हित मानि कै, सुकृती परम रसाल ॥१३५॥
गोपिनि की पदवी अगम, निगम निहारत जाहि।
पद-रज बिधि से जाचहीं, कौन लहै फिर ताहि ॥१३६॥
एक कृपाबल पाइयै, मतिगति रति भरिपूरि।
निकट होति पाछैं परैं, श्रीपदपकंज - धूरि ॥१३७॥

छाके हूँ अछके रहत, अछके छाक–उमंग ॥ १२८–अमल–अमिल (राम)। अमिल–सुमिल (वही)। १२८–मंडल–मंडन। (वृंदा०)। १२९–भरैं–भरि (राम)। १३१–विरल–विलग। १३६–जाचहीं–जोवहीं।

[१२८] अमिल=अप्राप्य।

गोपिन को रस गुपत अति, प्रगट करै तिहि कौन ।
सुक सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥१३८॥

गोपी-मदनगुपाल मिलि, मोहन ब्रजबन - केलि ।
अति प्यारी न्यारी नवल, निरवधि आनँद-वेलि ॥१३९॥

परम प्रेमगति को लहै, मन बुधि थकित बिचारि ।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपौ हारि ॥१४०॥

गोपी - रसलंपट कियौ, हियौ आपनो स्याम ।
ब्रजबन बसि हुलसत सदा, प्रकट इकौंसैं धाम ॥१४१॥

अतुल रूप-गुन - माधुरी, परम अपूरब साज ।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥१४२॥

परम प्रेम - गुन - रूप रस, ब्रज - संपदा अपार ।
जै जै जै श्रीगोपिका, जै जै नंदकुमार ॥१४३॥



१३८—नक-भव । १३९—न्यारी-भरी (वही) ।

[१४१] इकौंसैं=एकांत, अकेले । [१४२] रसमसो=रसीला ।

वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन

दोहा

बरोसानु गिरि गाइयै, परम पुनीत सुथान।
उज्वल बपु हिय स्यामरस, जहाँ उदित बृषभान ॥१॥

चौपाई

गिरि के नावँ गावँ ढिग बसै। बरसानो सरसानो लसै ॥२॥
भागनि भरी भूमि रँगभीनी। काहू बर बिरंचि रचि कीनी ॥३॥
कीरतिकुवँरि राधिका जितई। खेल्यौ करति निरत-रति तितई ॥४॥
सोहति संग सबै सहिँदोली। कछुक लियेँ अप-अपनी ओली ॥५॥
हिलनि मिलनि खेलनि चित चायनि। गावति गीतनि लै लै नायनि ॥६॥
खरक खोरि गहबर घाँ डोलति। सींचति स्रवन सुधा जब बोलति ॥७॥
राधा की हौँ चौकस चेरी। सदा रहति घर बाहिर नेरी ॥८॥
नीको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुंदर खेरो ॥९॥
याही घर की जाई बाढ़ी। सदा रहति राधा-ढिग ठाढ़ी ॥१०॥
राधा-दृस्टि लियेँ ही रहौँ। जो कछु बूझैँ सोई कहौँ ॥११॥
मन की पाय टहल अनुसरौँ। अपनी को मनभायो करौँ ॥१२॥
राधा हौँ सब भाँति पढ़ाई। पायँ झवाय गुमान बढ़ाई ॥१३॥
रससिंगार साँज सजि जानौँ। कबरी सोधौँ बहु बिधि बानौँ ॥१४॥
राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ। सोई अरथ हियेँ अभिलाख्यो ॥१५॥
आछीताननि गाय सुनाऊँ। रीझि रीझि राधाहि रिझाऊँ ॥१६॥

[१] वरीसानु=बरसाना। वरी=सूर्य की पत्नी। सानु=चोटी, शिखर। वृषभान=वृषभानु, राधिका के पिता ; वृषराशि का सूर्य। [४] निरत०=रतिलीन, प्रेमविह्वल। [५] सहिँदोली=सखी। ओली=कोँछ, झोली। [७] खरक=पशुओं के चरने का स्थान। खोरि=गली। गहबर=निकुंज, गुप्त स्थान। घाँ=ओर। [८] चौकस=सावधान। नेरी=निकट। [१२] अपनी को=अपनी स्वामिनी का। [१४] बानौँ=शैली, प्रकार या बाँधती हूँ।

राधा - रीझ अटपटी अति है। सोई मो मति की गति रति है ॥१७॥
उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ ॥१८॥
छंद कवित्तनि रटौं चटक सौं। कहौं प्रेम-रसरंग अटक सौं ॥१९॥
नंदकुवँर को मुरलीनाद। सुनति कान दै लै सुरस्वाद ॥२०॥
रीझनि बिबस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला उर आनौं ॥२१॥
ताही सुरहि साध कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गाँसनि खोलौं ॥२२॥
दुरी बातहू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब ॥२३॥
रीझि बूझि के बनक बनाऊँ। चौंप चाव की रीझनि पाऊँ ॥२४॥
चित-हित-कीसमझति अति औंड़ी। राधा करी लाड़िली लौंड़ी ॥२५॥
ललिता सखी मोहि अति मानै। राधा को हित लै पहचानै ॥२६॥
प्रीति विसेष बिसाखा करै। बिहँसि बोलि माथे कर धरै ॥२७॥
राधा - लौं हौं इन्हैं मनाऊँ। इन प्रसाद राधा मन भाऊँ ॥२८॥
सहचरि मेरो करतब चाहै। राधा के ढिग बैठि सराहै ॥२९॥
इन सबकी प्यारी सब बातनि। तकैं रहति सेवा की घातनि ॥३०॥
गिरि वन बाग तड़ागनि खेलति। राधा सखि-समाज-सुख झेलति ॥३१॥
बहुत भाँति के कौतुक करहीं। एक प्रान मन इक रस ढरहीं ॥३२॥
बीनति पुहुप बनावत भूषन। बनहि प्रकासति बदन मयूखन ॥३३॥
नंदराय को ललन छबीलो। ब्रजमोहन गुन-रूप - रसीलो ॥३४॥
तित ही निकसत आनि अचानक। बरनौं कहा मनोहर बानक ॥३५॥
तब सबके मन दृग सकेलि कै। करत हाथ कछु खेल खेलि कै ॥३६॥
मुरली - तान सुनाय अचगरो। बस करि लेत सब गुननि अगरो ॥३७॥
हिलग-चौंप-बस रस अभिलाखे। रसिक छैल चितवनि मैं चाखे ॥३८॥
रूपमाधुरी पीवत प्यावत। ब्रजजीवन यौं जीव जिवावत ॥३९॥
नित यह चुहल रहति बन गहवर। लग्यौ रहत आनँदघन को झर ॥४०॥
इत उत की हितरीति अटपटी। हौं ही समझति चौंप-चटपटी ॥४१॥

---

[१८] उकति०=उक्ति की युक्ति से। [२८] राधा०=राधा की ही भाँति।

गोकुलगीत

चौपाई

नंदराय को गोकुल गाऊँ । आप बरनि आप ही सुनाऊँ ॥१॥
यह सुख मुख ह्वै को उच्चरै । सुख ही निज सुख बरनन करै ॥२॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार । गहमह रहति महर के द्वार ॥३॥
कान्ह कुवँर जीवन सब ही के । हुलसत बिलसत लागत नीके ॥४॥
मैया महरि जसोमति रानी । भागनि भरी बिधाता वानी ॥५॥
निज कृत फल निज नैननि देखै । ओपित करत भाग की रेखै ॥६॥
ऐसी यहै सपूती जग मैं । जगमगाति महिमा जगमग मैं ॥७॥
सुत सनेह सौं सब ब्रज सान्यौ । याके सुख सबको सुख जान्यौ ॥८॥
बरस्यौ करति दूध की धारनि । जै जै कृस्न - पपीहा - पारनि ॥९॥
ब्रज की मंगलरासि रहौ नित । ऐसैं ही तोपौ पोषौ हित ॥१०॥
बडभागी नँदराय साधु मन । जिनके ऐसी धन यातैं धन ॥११॥
मोहन पूत होय सो लेखैं । कहत न बनै बनै सुख देखैं ॥१२॥
खेलनि हसनि चलनि अरु गावनि । स्यामसुँदर की रसबरसावनि ॥१३॥
भीजे रहत सबै ब्रजबासी । आनँदघन गोपाल - उपासी ॥१४॥
जमुना - तीर गाँव की राजनि । कहा कहौं गोकुल-छबि-छाजनि ॥१५॥
गोकुल-छबि आँखिनिहीं भावै । रहि न सकै रसना कछु गावै ॥१६॥
चहूँ ओर अति चुहल चैन की । पोषै चितवनि कमलनैन की ॥१७॥
आनँदघन बिनोद-झर बरसै । कान्ह कान्ह ही सबकौं दरसै ॥१८॥
सोएँ जगे कान्ह ही जिनकैं । तिनकी सुख - संपति है तिनकैं ॥१९॥

१९–तिन–तिन्ह (लंदन) ।

[११] धन=(धन्या) पत्नी । धन=धन्य ; भाग्यवान् । जिनकैं=जिनके ध्यान मैं । तिनकैं=उनके ही पास ।

साँझ भोर लीला-भर भीजे। डोलत नव नव पुलक पसीजे ॥२०॥
यह गोकुल नित नैननि दरसौ। प्रानन पै आनँदघन बरसौ ॥२१॥

दोहा

स्याम-जोति जगमग भर्‌यौ, गोकुल दिपत सुदेस।
जै जै ब्रजरानी सदा, जै जै नंद नरेस ॥२२॥
सुख सोभा संपति महा, राम स्याम को चाव।
लाड़ लड़ायौई करै, सब ही सहज सुभाव ॥२३॥

---

[२०] भर=(पानी-आँसू-का) भराव।

नाममाधुरी

चौपाई

बृंदाबन - रानी श्रीराधा । मोहन - मनमानी श्रीराधा ॥१॥
जय नित्यबिहारिनि श्रीराधा । ब्रजसुख - बिस्तारिनि श्रीराधा ॥२॥
कीरति - की कन्या श्रीराधा । सब ही बिधि धन्या श्रीराधा ॥३॥
जय रासबिलासिनि श्रीराधा । नित कुंज - निवासिनि श्रीराधा ॥४॥
हरि - उर - बनमाला श्रीराधा । गुन - रूप - रसाला श्रीराधा ॥५॥
श्रीदामा - अनुजा श्रीराधा । बृषदिनमनि - तनुजा श्रीराधा ॥६॥
रसिकिनि की स्वामिनि श्रीराधा । करुनानिधि - नामिनि श्रीराधा ॥७॥
बंसीवट - बासिनि श्रीराधा । संगीत - प्रकासिनि श्रीराधा ॥८॥
श्रीकृस्न - सिरोमनि श्रीराधा । जय स्याम - सजीवनि श्रीराधा ॥९॥
आनंद - रसायनि श्रीराधा । प्रीतम - सुखदायनि श्रीराधा ॥१०॥
अनुराग - सुवेली श्रीराधा । सौभाग्य - नवेली श्रीराधा ॥११॥
सरसीरुह लोचनि श्रीराधा । हरि-बिरह-बिमोचनि श्रीराधा ॥१२॥
गोपाल - उपासिनि श्रीराधा । बृंदाबन - बासिनि श्रीराधा ॥१३॥
श्रीगान - सुधानिधि श्रीराधा । प्रेमावधि सब बिधि श्रीराधा ॥१४॥
जय नख - चंद्रावलि श्रीराधा । प्रीतम - प्रेमावलि श्रीराधा ॥१५॥
ललितादिक - प्यारी श्रीराधा । अति रूप - उज्यारी श्रीराधा ॥१६॥
मंगल की मूरति श्रीराधा । ब्रजबन - सुख पूरति श्रीराधा ॥१७॥
ब्रजचंद - कमोदिनि श्रीराधा । भांडीर - बिनोदिनि श्रीराधा ॥१८॥
लीला - रसरंगिनि श्रीराधा । अनुराग - अनंगिनि श्रीराधा ॥१९॥
त्रिभुवन - ठकुरायनि श्रीराधा । गोविंद - गुसाँयनि श्रीराधा ॥२०॥
गोपीजन - मंडिनि श्रीराधा । रसरासि - अखंडिनि श्रीराधा ॥२१॥
नटनागर - भामा श्रीराधा । परिपूरन - कामा श्रीराधा ॥२२॥
तरूनीमनि - दच्छनि श्रीराधा । सब भाँति सुलच्छनि श्रीराधा ॥२३॥

१३—गोपाल—श्रीकृस्न (लंदन)। १७—पूरति—पूरित (वही)। १९—अनगिनि—अभंगिनि— (बृंदा०) ।

कल केलितरंगिनि श्रीराधा। लावन्य - विभंगिनि श्रीराधा ॥२४॥
कात्यायनि - वंदिनि श्रीराधा। अभिलाष-अमंदिनि श्रीराधा ॥२५॥
गोपी - चूड़ामनि श्रीराधा। सुषमा-महिमामनि श्रीराधा ॥२६॥
रामा अभिरामा श्रीराधा। स्यामा सुखधामा श्रीराधा ॥२७॥
रसरासि - रचावनि श्रीराधा। नटराज - नचावनि श्रीराधा ॥२८॥
ब्रजजीवन - जीवनि श्रीराधा। निरवधि-रसपीवनि श्रीराधा ॥२९॥
जमुनाजल - विहरिनि श्रीराधा। लीलामृत - लहरिनि श्रीराधा ॥३०॥
निगमादि - अगम्या श्रीराधा। प्रेमावधि - रम्या श्रीराधा ॥३१॥
जगवंदन - वंदित श्रीराधा। नँदनंदन - नंदित श्रीराधा ॥३२॥
निस - जागर-साजित श्रीराधा। सुखसेज - बिराजित श्रीराधा ॥३३॥
ब्रजचंद - चकोरी श्रीराधा। बृषभान - किसोरी श्रीराधा ॥३४॥
ब्रजमोहन - मोहिनि श्रीराधा। अभिलाषनि-दोहिनि श्रीराधा ॥३५॥
बृंदावन - सोभा श्रीराधा। क्रीड़ा - तरु - गोभा श्रीराधा ॥३६॥
अतिसय-रति-रूपिनि श्रीराधा। माधुर्य - अनूपिनि श्रीराधा ॥३७॥
कमनीय कुमारी श्रीराधा। हरिवल्लभ - प्यारी श्रीराधा ॥३८॥
श्रीकृस्नाकर्षिनि श्रीराधा। आनँदघन - वर्षिनि श्रीराधा ॥३९॥
दिव्यांसुक - वेसी श्रीराधा। अति मंजुल केसी श्रीराधा ॥४०॥
अभिसार - प्रपन्ना श्रीराधा। अत्यंत प्रसन्ना श्रीराधा ॥४१॥
कल - केलि-परावधि श्रीराधा। रसरीति - रहःसिधि श्रीराधा ॥४२॥

२४—लंदन की प्रति के पुट्ठे पर ये पंक्तियाँ और हैं—नित गढ़ भंगिनि श्रीराधा। गोपांगनामनि श्रीराधा। २६—सुषमा—सुख की। मनि—धनि (लंदन)। लंदन की प्रति में एक पंक्ति और है—निधिबन घन छावनि श्रीराधा। २७—रामा—राधा (वृंदा०)। ४२—रहः०—रहः सुधि (लंदन)।

गिरिपूजन

चौपाई

गिरि गोधन-पूजन दिन आयौ। ब्रजबासिन को अति मनभायौ ॥१॥
घर घरनी सुत बित कुसरात। गोधन पूजि लहत सुख सात ॥२॥
याको चाव बरस दिन रहै। गोधन पै माँगत सुख यहै ॥३॥
गिरि गोधन पूजिबैं उछाह। हाँसनि घर घर चढ़े कराह ॥४॥
होन लगे बहु बिधि पकवान। तिनको कब लौं करौं बखान ॥५॥
भरि भरि डला सकट अरु काँवरि। हिय जिय गोधन-पूजनि भाँवरि ॥६॥
या बिधि सजि ब्रजपति के साथ। सकल घोष धावत गिरिनाथ ॥७॥
ता छिन की छबि कहियै कहा। देत दौंहनो भरि मुद महा ॥८॥
गावत गीत टोल ब्रजतिय के। को बरनै उछाह हिय जिय के ॥९॥
स्याम राम की जोट सुहाई। सबके मन-नैननि सुखदाई ॥१०॥
रंगनि करत ग्वालगन संग। ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥११॥
दीपदान औसर की दीपति। सब दिसि कौं दीपति सौं लीपति ॥१२॥
मावस पै पूनो ह्वै रही। यह दुति कैसैं आवति कही ॥१३॥
ब्रज को चंद उजागर स्याम। अँखियनि तारो प्यारो नाम ॥१४॥
गिरि गिरिधर दीपति के धाम। मनिभूषन-भूषित अभिराम ॥१५॥
सुकटि करे मेखला सुदेस। मन जानै या सुख को देस ॥१६॥
गोपी-गोप-भीर अति भारी। परिकरमा की हौं बलिहारी ॥१७॥
इक अपनी साथिनि कौं टेरति। और कोऊ बिछुरे कौं हेरति ॥१८॥
महा कुलाहल की धुनि होति। भाजत जग स्रवननि की छोति ॥१९॥
रोहिनि जसुमति को समाज जहँ। दौरि जात है कान्ह कुवँर तहँ ॥२०॥

[२] कुसरात=कुशल। सुख०=सातो स्वर्गों का सुख। [६] डला=डाला, दौरा। सकट=शकट, गाड़ी। काँवरि=बहँगी। [१०] जोट=जोड़ा। [१६] सुदेस=सुंदर। [१९] छोति=स्पर्श। भाजत०=ध्वनि जब कानों को स्पर्श करती है तो जग भागता है। जग की आसक्ति हट जाती है।

गोद भराय फिरत कछु बाँटत । मधुमंगल लै लै फिरि नाँटत ॥२१॥
या बिधि हठि परिकरमा देत । कबहुँ नंद कनियाँ करि लेत ॥२२॥
गिरिधर पायन पायन पायन । उतरि चलत भरि गोधन भायन ॥२३॥
पायनि गायनि सुरनि बिराजनि । नखजगमगनि दुरत ससि लाजनि ॥२४॥
यह छबि मन जानै कै नैन । अरु कैसैं हूँ कहत बनै न ॥२५॥
जसु मैया सिहाति सुख देखति । सब बिधि भाग-सफलता लेखति ॥२६॥
सबके जीवन सबके प्रान । गिरिधर सबही कौं सुखदान ॥२७॥
गैयनि रखवारो बलवान । खेलत हरयौ अमरपति - मान ॥२८॥
गोबिंद लाल रँगीलो नाँव । कहि कहि जीवत सब ही गाँव ॥२९॥
गोधन पूजि नंद घर आए । घर घर घोष बधाए गाए ॥३०॥
बल मोहन चिर जियौ सुहाए । तिनपै सुख - संजोग दिखाए ॥३१॥
नित नित नए नए सुख सरसौ । ब्रजबन गिरि आनँदघन बरसौ ॥३२॥
नीके रहौ लहौ सुख सदा । बिलसौ अपनी ब्रज - संपदा ॥३३॥
कुलमंडन ब्रजराज - दुलारो । ब्रजजीवन ब्रजलोचन - तारो ॥४४॥



[२१] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा । [२२] कनियाँ=गोद । [२३] पायन=पैरों से । भाय=भाव, प्रेम । [२४] गायनि = गाना । [२८] अमरपति=इंद्र । [३०] घोष = अहीरों का गाँव ।

विचारसार

चौपाई

कृस्न - कृपा हौं सदा मनाऊँ। कृस्न - कृपा तैं कृस्नहि गाऊँ ॥१॥
कृस्न-कथा - रुचि अंतर बाढ़ी। मोहन - मूरति आगैं ठाढी ॥२॥
रसना कृस्न-गुननि गुन-गसी। सब बातनि ढीली करि कसी ॥३॥
कृस्न - गुननि को यहै सुभाव। चित चढि बढ़त चौगुनो चाव ॥४॥
कृस्न - गुनानुबाद ही भावै। अब कछु और न मन मैं आवै ॥५॥
बानी कृस्न-कथा - रुचि रची। रसना सुजस बखानत नची ॥६॥
कृस्न-ललित-लीला - रस - पगी। सोवतहूँ गुन - गनना जगी ॥७॥
कृस्न - मधुर-रस रसना भाग। पायौ परम - प्रेम - पन - पाग ॥८॥
वचन मौन मैं कृस्नहि बोलै। रसना कृस्न - चरित्र कलोलै ॥९॥
कृस्न-नॉव-सुख-स्वाद अगाध। समझत कृस्न - सनेही साध ॥१०॥
कृस्न कृस्न ही सर्वस मेरो। कृस्न कहै ताकौं हौं चेरो ॥११॥
कृस्नकथा - प्रेमामृत - धार। कृस्न नाम सब स्रुति को सार ॥१२॥
कृस्नकथा अघओघनि हरै। मो से नीचहि उत्तम करै ॥१३॥
कृस्नकथा अगतिन कौं गति है। धनि धनि ते जिनके यह रति है ॥१४॥
कृस्नकथा महोषधी आहि। संसै-रोग मिटहि सुनि याहि ॥१५॥
कृस्न नाम रसना जब भाखै। बिषै-महाविष फिर क्यौं चाखै ॥१६॥
कृस्न कहत ही सब दुख जाहिं। तनकौ संसै यामैं नाहिं ॥१७॥
कृस्नकथा जे बरनि सुनावैं। तेई सुजन मोहि अति भावैं ॥१७॥
कृस्ननाम - हित आसा राखौं। जान्यौं कृस्न कृस्न ही भाखौं ॥१९॥
कृस्न नाम अभिलाष पुजावै। तबही कृस्न कृस्न कहि आवै ॥२०॥
कृस्न कहे तैं परम पुनीत। स्रवननि मंगल हरिगुन-गीत ॥२१॥
एक बार जो कृस्न कहैगो। आनँदघन-रस भीजि रहैगो ॥२२॥
कृस्न परम रस को निरजास। कृस्न - कृपा तैं यह बिसवास ॥२३॥

[३] गुन=रस्सी। गसी=बँधी। बात=वार्ता, विषय। [१०] साध=उत्कट इच्छा। [२३] निरजास=(निर्यास) निचोड़।

कृस्न नाम गुरु दियौ बताय। रह्यौ महा आनँदघन छाय ॥२४॥
केवल कृस्न कहौं अरु सुनौं। कृस्न - गुनानुबाद ही गुनौं ॥२५॥
कृस्नकथा सौं सरस्यौ भाव। रसन स्रवन यह सहज सुभाव ॥२६॥
कृस्नकथा को परस्यौ स्वाद। समझि तज्यौं सबही बकवाद ॥२७॥
कृस्नकथा को जु कछु मिठास। अनुभव रसना कौं अनयास ॥२८॥
कृस्नकथा परमानंद - सोत। कृस्नकथा अनुराग - उदोत ॥२९॥
कृस्नकथा परमारथ - बेलि। उर झालरी मधुर ब्रजकेलि ॥३०॥
कृस्न कृस्न बानी को भूषन। या बिन बावदूकता दूषन ॥३१॥
कृस्नकथा-सुख सनक बखानैं। ईस गिरीस सेष सुख जानैं ॥३२॥
कृस्नकथा - रस नारद पियैं। उनमद फिरत जिवावत जियैं ॥३३॥
कृस्नरसासव निरवधि छाक। ब्रह्मादिकनि रंक जिमि ताक ॥३४॥
कृस्नकथा - मादक जो छकै। गहै अगम गति ऐसो थकै ॥३५॥
कृस्न कहै अरु कृस्न कहावै। कृस्न बिना न और कछु भावै ॥३६॥
निगम-सार है कृस्न - कहानी। नितलीला - बिनोद-रस सानी ॥३७॥
कृस्न नाम उर-अजिर-प्रकासक। ताप अनेक एक दुखनासक ॥३८॥
कृस्नकथा आनंद - रसायन। गावत अनिस ब्यास द्वैपायन ॥३९॥
बरनत स्रुति भागवत पुरान। छक्यौ रहत ताही रसपान ॥४०॥
कृस्नकथा बरनैं सो रसना। या बिन बृथा बाद मैं रस ना ॥४१॥
कृस्नकथा संतन को धन है। कृस्नकथा ही सौं हित - पन है ॥४२॥
कृस्नकथा - रस निसदिन पियै। कृस्नहि गाय गाय नित जियै ॥४३॥
कृस्न मूलमंत्र है हमारो। जपि जपि जियरा होत सुखारो ॥४४॥
कृस्न कहत सब दुख दुरि गए। उदय भए नित मंगल नए ॥४५॥
कृस्न सुनत सुख बाढ़त हियैं। जीवत प्रान कृस्नरस पियैं ॥४६॥
कृस्नकथा - फल कृस्नकथा है। और कछू समझिबो बृथा है। ४७॥

[३०] झालरी=हरीभरी। [३१] बावदूकता=वाग्मिता, वक्तृता। [३२] सनक=प्रसिद्ध मुनि, निंबार्क-संप्रदाय के आदि-प्रवर्तक। [३४] छाक=तुष्टि। ताक=खोज। [३८] अजिर=आँगन। [३९] अनिस=अहर्निश, रातदिन, निरंतर। ब्यास०=कृष्ण द्वैपायन व्यास, पुराणों के कर्ता।

कृस्न नाम ही कृस्न - मिलाप । कृस्न कहन को यहै प्रताप ॥४८॥
कृस्न कृस्न रसना - रट लागी । कृस्नकथा-रति अंतर जागी ॥४९॥
कृस्नकथा तैं मन न अघाय । भावत यहै न और सुहाय ॥५०॥
कृस्नकथा - मधुरिमा अपार । कृस्नकथा सब स्रुति को सार ॥५१॥
कृस्नकथा-सुख सदा अखंडित । कृस्न कहै अरु गहै सु पंडित ॥५२॥
कृस्नचरित चिंतामनि - दाम । हेरत फेरत पूरनकाम ॥५३॥
कृस्न नाम-लावन्य भरयौ है । मधुरिम-सार सकेलि धरयौ है ॥५४॥
कृस्ननाम - गुन कहियै कहा । कहत मौन सुख लहियै महा ॥५५॥
कृस्न अपूरब सुख को सिंधु । कृस्न कहैं तेई जन बंधु ॥५६॥
बुधि सोई जो कृस्न-सुधि सोधै । सब दिस तैं मन कौं अवरोधै ॥५७॥
एक कृस्न उर - अंतर फुरैं । अन्य भाव नीके करि दुरैं ॥५८॥
कृस्न कृस्न देखत ही फिरे । निसरत साँस कृस्न - गुन-घिरे ॥५९॥
बैठत उठत कृस्न ही सूझै । सोएँ जगैं कृस्न - गति बूझै ॥६०॥
कृस्न सुमिरि भूलै सब बातैं । कृस्नकथा - रति कृस्नकथा तैं ॥६१॥
कृस्नकथा बिन कथा न दूजी । कृस्न कहत सब आसा पूजी ॥६२॥
कृस्न स्यामसुंदर बनमाली । मधुर किसोर परमसुखसाली ॥६३॥
कृस्न कलपतरु आनँदमूल । लसत कलिंदनंदिनी - कूल ॥६४॥
श्रीबृंदाबन कृस्न - सुधाम । बसत निरंतर अति अभिराम ॥६५॥
लीला-मगन कृस्नरस - सागर । गुननिधि गोपीनाथ उजागर ॥६६॥
कृस्न-सरूप कहत नहिं आवै । मोहन मनमथ - जूथ लजावै ॥६७॥
मुरली धरें त्रिभंग बिराजै । मोहन सुधुनि अखंडित बाजै ॥६८॥
ब्रजबन व्यापि रहति धुनि भाई । बिस्वबिमोहन कृस्न कन्हाई । ६९॥
अमित कृस्नमहिमा क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ॥७०॥
यहै कृस्न को सुभग सरूप । अद्भुत अमल अखंड अनूप ॥७१॥
या सरूप को मोहन ध्यान । हिय जिय बसौ बिलासनिधान ॥७२॥

गोपभेष ब्रजराजकुमार । यहै कृस्न मो प्रान - अधार ॥७३॥

[४९] अंतर=हृदय में । [५३] दाम=माला । [५८] फुरैं=स्फुरित हों जगें, प्रकट हों । दुरैं=छिप जाते हैं ।

कृस्न कृपाकर पूरन चंद। अमल अपूरब परमानंद ॥७४॥
सदा सनमुखो सब दिन दरसै। मद हसनि आनँदघन बरसै ॥७५॥
दृग-चकोर चित - चातक पोषै। अगनित कला बढ़ावत तोषै ॥७६॥
ऐसे कृस्नचंद की हौं बलि। रूपसुधा सौं प्रान रहौ पलि ॥७७॥
कृस्नचंद आनंद - उदोत। ब्रज मैं जगमग जगमग होत ॥७८॥
सब जग - तारो कृस्न उज्यारो। ब्रजमोहन ब्रजजीवन प्यारो ॥७९॥
अमल कृस्न - कीरति - चंदिनी। खिलि खुलि रही जगत-बंदिनी ॥८०॥
सबको सब ठाँ सुजस प्रकासै। जग-चकोर-चिंता - तम नासै ॥८१॥
पूरन गोकुलचंद सदाई। रुचिर केलि - किरनावलि छाई ॥८२॥
सुख सीतलता अमल अमंद। जै जै जै श्रीगोकुलचंद ॥८३॥
आनँद-अमी स्रवत सब ही कौं। मोद-विनोद बढ़ावत जी कौं ॥८४॥
असुर अनीस उलूक न देखैं। सखा चकोरनि चौंप - परेखैं ॥८५॥
रसिकवृंद आनंद बढ़ावै। गुन सुछंद विरुदावलि गावै ॥८६॥

दोहा

सब विचार को सार है, या निबंध को गान।
श्रीगोपी - पद - रेनु - बल, बानी कियौ बखान ॥८७॥
निरवधि वस्तु अगम्य अति, सब बिचार तैं दूरि।
रसिकसिरोमनि - कृपा तैं, लही सजीवन - मूरि ॥८८॥

---

[८०] चंद्रिनी=चाँदनी। [८४] अमी= अमृत। [८५] चौंप०=(देखने पर) उत्साह, (न देखने पर) अनुत्साह।

दानघटा

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरैल भए हौ ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन - तए हौ ।
लाज अँचै बिन काज खगौ तिनही सौं पगौ जिन रंग रए हौ ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥१॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड अमैंड अयानी ।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यौं इती इतरानी ।
दान दियें बिन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी ।
आगैं अछूती गई सो गईं घनआनँद आज भई मनमानी ॥२॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ बढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन ।
भीति की दौरनि खौरनि है सठता हठ औरनि सौं समझे बिन ।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे कौं कौनैं दयौ सु लयौ किन ।
टौड़िक ह्वै घनआनँद डाटत काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ॥३॥

श्रीकृष्ण—

देहिगी दान जौ ऐहै इतैं नहीं पैहै अबै सु किये को सबै फल ।
बाबा दुहाई सुहाई कहौ जिय जानि कै मानि छुटै न कियें छल ।

२–अयानी–अमानी (कवित्त)। इती–इते (वृंदा०)। ३–बढ़ाय०–पढ़ाय पढ़ाय (वृंदा०)। कौनैं–कौन (कवित्त)।

[१] अरैल=अड़नेवाले। मैन०=कामतप्त, मदनपीड़ित। अँचै=पीकर। खगौ=लगते हो। रए=अनुरक्त। [२] उघटै०=ताना मारती है। अमैंड=मर्यादा न माननेवाली। दान=कर। खोरि=गली। बिरानी=पराई। अछूती=कोरी, बिना कर दिए। [३] भीति०=गली में छेंकना भीत से भिड़ना है। टौड़िक=पेटू।

एक ही ओल दै जाहु चली भगरो सगरो मिटि बात परै सल ।
नावँ परथौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ॥४॥

गोपी—

जीभ सम्हारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेरैं ।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैं ।
खाय कहा फल माय जने जिय देखौ बिचारि पिता-तन हेरैं ।
कंज - कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौं टेरैं ॥५॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित ।
जैसे सों तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित ।
एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै जौ बिधना घर बैठैं दयौ बित ॥६॥

गोपी—

गोद भरै बित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सौं माय के आगै ।
पेट परे को लखै फल ज्यौं निपजे हौ सपूत सु भागनि जागै ।
बाँटिहैं बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातें महा पति पागै ।
चास दिये को यहै गुन है घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ॥७॥

४–देहिगी–दैहैगी । ओल–बोल (कवित्त) । ५–चाहत–चालत (वृंदा०) । मूड़–मूद (वही) । हेरैं–तेरैं (कवित्त) । ६–भया–भैया (वृंदा०) । ७–गुन–फल (कवित्त) । जौ–और (वृंदा०) ।

[४] सुहाई=रुचनेवाली । जानि०=जान मानकर । ओल=जमानत । बात०=बात में परत पड़े, बात समाप्त हो । ऐंठति०=टेढ़ी मेढ़ी होती है । [५] कानि०=मर्यादा और एहसान का विचार । नेरैं=निकट । फेर=अंतर । न्यारे=पृथक्, दूर । [६] भया=भैया । कानि=प्रतिष्ठा । एकहि०=एक के साथ एक भिड़ जाओ । सकेरियै=संचित करो । [७] पेट०=गर्भ में तुम्हें धारण करने का । निपजे हौ=उत्पन्न हुए हो । पति=प्रतिष्ठा ।

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सौं ललिता रिस की सलिता न बढ़ैयै ।
नागरि आगरि हौ सहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै ।
चोखन तोष नहीं उपजै घनआनँद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै ।
नेकु ढरैं सुधरैं सब काज अकाज इतो अपलोक चढ़ैयै ॥८॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर ओड़ि दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति विनै करि नै ।
घनआनँद ऐंठ अमैठ कियैं कहा पैयत है रिझवारन पै ।
गुन गाय रिझावहु देहिं अबै वृषभानलली की निछावर कै ॥९॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग-भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिदा कुलमंडन जौ निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि ।
दान हँसैं चुकिहै घनआनँद रीझनहीं रुकिहै हित-आँचनि ॥१०॥

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई ।
पठन देहिं न एक सखै अकिले इन्हैं छेकि करैं मनभाई ।
भावती टेक रही बहु भाँति किये न बनै अति ही कठिनाई ।
लेत हौं राधे बलाय कह्यौ करि आज मनौ इतनी हम पाई ॥११॥

८—सहु—बहु (कवित्त) । ९—करि नै—करिहै । ऐंठ—आँठ । कहा०—कहियै कहा पै अब पैयति है । गुन०—रिझवारिनि पै गुन गाय रीझावहु देहिं लली की निछावरि है (वही) । १०—जौ—ज्यों (कवित्त) । हित—कित (वृंदा०) ।

[८] सलिता=सरिता, नदी । सहु=सब । चोख=तीक्ष्णता, तैश । अकाज=व्यर्थ । अपलोक=कलंक । [९] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा । ओड़ि=फैलाकर । विनै=विनय, प्रार्थना । नै=झुककर । ऐंठ०=टेढ़ामेढ़ा होने से । पै=से । [१०] कीरतिदा=यशोदा । हित०=प्रेम की आग । [११] सुघराई=चतुरता ।

राजदुलार - भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन-कोरनि-छोरनि छ्वै मुसिकानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि वापुरी डारियै वारि लखैँ घनआनँद रूप लली को ॥१२॥

रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
कैलि परथौ रस को भगरो अति ही अगरो निबटै न चुकाएँ।
काहूँ सम्हार रही न भटू तनकौ तन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेमपगे रिझवारन की तहँ रीझ कै रीझ ही लेत बलाएँ ॥१३॥

दोहा

दानघटा मिलि छबिछटा, रसधारनि सरसाय।
जियत पियत और न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥१४॥

दानघटा - रसपान के, चातक रसिक सुजान।
चखनि लखत चसके चखत, रखत तृषित ही कान ॥१५॥

दानघटा सींचत सदा, मधुर केलि नव वेलि।
आलवाल पचि रचि सुमन, लेत रसिक रस भेलि ॥१६॥

१२-राज०-राजदुलारी (वृंदा०)। सुभाय-सुहाय (वही)। १३-कैलि-केलि (कवित्त)।

[१२] इकसार = समान ढंग से। ही=हृदय। [१३] अगरो=अधिक, बढ़कर। निबटै०=समाप्त करने पर भी समाप्त नहीं होती। रीझ०=स्वयम् रीझ ही रीझकर।

भावनाप्रकाश

चौपाई

राधा - मोहन - जोट अनूप । अमल अमंद अपूरब रूप ॥१॥
इनकी लीला अचरज - खानि । कौन सकै या मरमहि जानि ॥२॥
निरवधि प्रेम-अवधि अति मोहन । मंगल-मुकट सनातन सोहन ॥३॥
निगम-हृदय सिव को धन यहै । गवरी सौं कबहूँ जौ कहै ॥४॥
ताहि गूढ़ को गाढ़ जताय । कृपादृस्टि कछु दियौ बताय ॥५॥
सो ब्रज बृंदाबन मैं बसै । गुपत प्रगट सुछंदता लसै ॥६॥
दरसै परसै अपने ढारनि । बरसै कृपाकंद रुचि - धारनि ॥७॥
नंदीसुर बरसानो गाँव । जगमनि मोहन - राधा - नाँव ॥८॥
बरन स्याम अरु गौर सुबेष । अतुल माधुरी अमित असेष ॥९॥
परिकर-निकर कहाँ लौं कहियै । इनकैं सुख सबको सुख चहियै ॥१०॥
नित त्यौहार दुहूँ घर रहै । घर घर ब्रज ब्यापक सुख यहै ॥११॥
नित ही चौंप चाव टेहले । सबकौं सब बिधि लागत भले ॥१२॥
सबके लोचन सबके प्रान । हरि-राधा-अनुराग - निधान ॥१३॥
नव नव भाँति नवल रुचि लियैं । बिहरत सबकौं सब सुख दियैं ॥१४॥
लीला ललित भेद बहु भाव । जब जैसो तब सबै बनाव ॥१५॥
ठौर ठौर की रचना नई । आनँदमूरति अचरजमई ॥१६॥
ब्रजबन के प्रदेस अति उत्तम । बिसद बिहार उदार सदा सम ॥१७॥
अति कमनीय अलौकिक रचना । कहा कहौं कछु बची न बचना ॥१८॥
रमन - भूमि कालिंदी - कूल । बृंदावन बिहार - अनुकूल ॥१९॥
सुषमा - सदन सदा सर्वोपर । अति अद्भुत यातैं दरसत धर ॥२०॥

२०–दरसत–दरसै (बृंदा०) ।

[४] गवरी=गौरी, पार्वती । [५] गूढ़=रहस्य । गाढ़=कठिन । [६] सुछंदता=स्वच्छंदता । [७] ढार=शैली । [८] नंदीसुर=नंद-यशोदा का गाँव । [२०] धर=धरा पर ।

मनहि अगम्य सहज बन-रूप । जयति जयति बनराज अनूप ॥२१॥
राधा-मोहन-बर-बिनोद - थल । दरसत सरसत बरसत मंगल ॥२२॥
ब्रजनायक निसंक जहँ खेलत । मनबंछित सुखपुंज सकेलत ॥२३॥
रमनीमनि श्रीराधा प्यारी । ऐसी जोरी की बलिहारी ॥२४॥
मधुर बैस नव जोवन जगी । दुहुँनि ठगौरी दुहुँवनि लगी ॥२५॥
रहत डीठि सौं डीठि समोएँ । आरति डारति मनहि बिलोएँ ॥२६॥
निपट सुतंत्र महा परबस ये । भीजे कौन भाँति के रस ये ॥२७॥
इनकी गति सु कौन मति धरै । बिछुरन मिलन कछु न सुधि परै ॥२८॥
अमित ओज क्यौं बरनि वतैयै । खोय खोय अचिरज ही पैये ॥२९॥
परसि न सकियै इनहीं धैयै । इनही तें इनकी बलि जैयै ॥३०॥
ब्रजवन वसत जुगल अनुरागी । भरे सँजोग महा बैरागी ॥३१॥
सहज लगन अति अलग लगी है । महामोद की नींद जगी है ॥३२॥
कौन लहै इनके मन की गति । इनही कौं इनके पन की पति ॥३३॥
इनको नाम लेत ही बानी । होति महारसनिधि - ठकुरानी ॥३४॥
लेत लेत नामैं गुन फुरैं । तेई तब बानी त्यौं ढुरैं ॥३५॥
उघरि कृपा उर - अंतर दुरै । निपट दूरिहूँ आवत उरै ॥३६॥
यौं कछु कही परै तौ परै । रिझवारन की रुचि अनुसरै ॥३७॥
राधा - मोहन अति वड़भागी । गौर स्याम मूरति रस-पागी ॥३८॥
कहियै कहा सरूप - निकाई । इनकी मति इन माँझ बिकाई ॥३९॥
भीजे रहत रीझ - रस नागर । सव-गुन-आगर गुपत उजागर ॥४०॥
महामधुर कमनीय जुगल बर । इनही कौं दीजै इग पटतर ॥४१॥
प्रेमबिवस न गनत निसि भोर । दोउ दुहुँन के चंद - चकोर ॥४२॥
केलि - कला-पंडित रसमंडित । नितनव-नवरुचि-रचे अखंडित ॥४३॥
हित महट के सुखनि समेटत । अति अभिलाप-भरे भरि भेटत ॥४४॥

२५–नए–भए । २५–तव–वत (लंदन) । ३६–हूँ–हैं (वृंदा०) ।

[२५] ठगौरी=ठगविद्या । [२६] समोएँ=लीन किए हुए । आरति=लालसा । बिलोएँ डारति=मथे डालती है । [३३] पति=प्रतिष्ठा का ध्यान । [४१] पटतर=समता ।

तके रहत मिलिबे की घातनि। समुझत नन-सैन की बातनि ॥४५॥
निपट नवेलो नेह निबाहत। मगन मनोरथ - सागर गाहत ॥४६॥
महाधीर अरु अधिक अधीर। परम सुखी परिपूरन - पीर ॥४७॥
इनको प्रेम पूरि ब्रज रह्यौ। सब लीलनि मैं रसिकनि लह्यौ ॥४८॥
सबके हितहि साधि सुख साजत। चतुरसिरोमनि भए विराजत ॥४९॥
नन - हियैं रंगनि भरि देत। या बिध सौं समीप-सुख लेत ॥५०॥
औरै दिन इनकैं निस औरै। इनकी गति व्यौरति मति बौरै ॥५१॥
ब्रजबन के सुख सदा मनावत। भाँति भाँति मन मैन सिरावत ॥५२॥
निकसत बन बिहरत अधिरतियनि। हितबतियनि कहि मिलवत छतियनि॥
ललक लालसा उमग बढ़नि सौं। उरझति आधी अधर कढ़नि सौं ॥५४॥
अतुल प्रेम - रस ओज-उफानै। निरवधि उझिल-झेल सुख-सानै ॥५५॥
मोदमेघ दामिनि मिलि बरसै। कहा कहौं जैसी रुचि दरसै ॥५६॥
केलि-रसिक अघानि क्यौं आवै। मिलैं अनमिलैं केल्यै भावै ॥५७॥
केलि - कुसलता कहौं कहा लौं। पहुँचनि पहुँचति नाहिं जहाँ लौं ॥५८॥
अचिरज - दाव उपावन भरे। ब्रज बसि बन-रस-चसकैं परे ॥५९॥
घरनि घात खरिकनि की हेट। नित व्यौहार ह्वै रहै भेट ॥६०॥
जमुना-घाटनि गह्वर-बाटनि। पटुता - पाज पैजपन - पाटनि ॥६१॥
इनकी गह इनही पै फबै। सब जानत पै लहत न कबै ॥६२॥
बैठत उठत मिलत बतरात। औरै साँझ और परभात ॥६३॥

४६—मनोरथ—मनोहर (वृंदा०) । ५१—इनकैं—इनको (वृंदा०) । ५२—मैन—नैन (लंदन) । ५५—उफानै—उफानौ (लंदन) । ५७—केल्यै—केल्यौ (वृंदा०) ६२—गह—गुह (लंदन) ।

[५१] व्यौरति=विचार करती हुई । [५२] मैन०=कामशांति करते हैं । [५६] रुचि=शोभा । [५८] पहुँचनि०=जहाँ पहुँच की भी पहुँच नहीं है । [५९] चसकैं=बान, टेव; चपक । [६०] खरिक=पशुओं के चरने का स्थान । हेट=सहेट, सकेतस्थल । [६१] गहवर=गुप्त स्थान । पटुता=चातुर्य । पाज= बाँध । पैज=प्रतिज्ञा । पाटनि=पूर्ण करना, निबाह करना । [६२] गह=टेक ।

इनके रँगनि समै हूँ रचै। बड़भागिन सब कोऊ लचै ॥६४॥
रसिकराय चूड़ामनि सबके। साँवल गौर ढुरि मिले ढब के ॥६५॥
प्रेमसरोवर - ढिग संकेत। बट-बढ़वारि दुहुँन के हेत ॥६६॥
बरसाने तेँ लाड़ - गहेली। ग्वैंड़ैं निकसति सहित सहेली ॥६७॥
सहज बनक ब्रजमोहन - भाग। उमगत रोम रोम अनुराग ॥६८॥
खेलत खेलत रुचि के खेलनि। निरखि सिहाति तरु-लता-मेलनि ॥६९॥
पुहुप - पुंज बीनत रँगभीनी। माला रचति गास गहि झीना ।७०॥
सुहृद सखी सिंगारनि सजै। अधिक प्रान तेँ राधैँ भजै ।७१॥
राधा को हित रहति बिचारै। रीझि अपुनपौ वारि निहारै ॥७२।
नंदीसुर के कान्ह अवगरै। बरहैँ रहत ग्वांर गुन-अगरै ॥७३॥
बिह्वल सरहि सरकि नियरात। जित मिलि रही मिलन की घात ॥७४॥
निपट गहन गह्वरु तरु-छाँही। पर्नसालिका जहाँ तहाँ ही ॥७५॥
सहज भाव की भेट अचानक। बिधना सदा बनावत बानक ॥७६॥
हिलनि मिलनि बिह्वलता की गति। देखैँ बनै अलौकिक अति रति ॥७७॥
ये रसनायक लायक धुर के। पढ़े पढ़ाए पूरन गुर के ॥७८॥
जानत मनैं सनेह - निकाई। सबतैँ न्यारी प्रेम - सगाई ॥७९॥
सबै बात मनभाई पाई। जु कछु रची रचना बनि-आई ॥८०॥
ब्रजबन्न ये ही कौतुक देखौ। राधा - मोहन - प्रेम बिसेखौ ॥८१॥
खग मृग द्रुम बेली जित तित ही। या रस बीच पगि रहै नित ही ॥८२॥
सब ब्रज रँग्यौ अपूरब हित ही। सुन्यौ न कित ही देख्यौ इत ही ॥८३॥
दान केलिरस रास - बिलास। सुखद सनातन ब्रजबन-बास ॥८४॥
लीला ललित रसामृत सरसै। गौर स्याम आनँदघन बरसै ॥८५॥
मुरली-गरज ब्यापि अति रही। चित हित-कौंप परति नहिं कही ॥८६॥
गाँव गाँव ब्रज प्रेम घमंड। परिपूरन रस अमल अखंड ॥८७॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार। छके रहत लीला - रस-सार ॥८८॥

[६४] लचै=दबता है। [७०] झीनी=पतली। [७३] अवगरै=सूझबूझ-वाले या अचगरै=नटखट। [७५] पर्नसालिका=कुटिया, पत्तों से बना घर। [७६] बानक=संयोग। [७८] धुर के=चोटी के, चरम कोटि के।

नवरँग नवल नवेली सैल। नव राधा नट गिरधर गैल ॥८९॥
सबके हिय जिय इनको हित है। इनके हित सबको सुख नित है ॥९०॥
यह समाज देखे हीँ जीजै। अद्भुत चरित अमीरस पीजै ॥९१॥
ब्रजबन उपवन रस - आगार। भीजौ आनँदघन - आसार ॥९२॥
दृगनि देखि मन प्रेम कलोलै। सुख - समाज आगे ही डोलै ॥९३॥
जित जैयै तित प्रेममई है। प्रीति पुरातन रीति नई है ॥९४॥
या रस को सवाद जौ आवै। रसना फिर न और कछु गावै ॥९५॥
जुगल कुँवर कौँ लडकि लडावै। परम प्रेमरस - पारस पावै ॥९६॥
ब्रजबन सहज माधुरी हेरै। मन फिर गएँ वहुरि को फेरै ॥९७॥
श्रीगुरबर - प्रसाद के लेस। हियेँ बढै आवेस असेस ॥९८॥
रमन-भूमि-रज - अंजन परसै। तव लीला - सुरूप कौँ दरसै ॥९९॥
दिस दिस तन मैँ चकित निहारै। ब्रजसंपति दंपति उर धारै ॥१००॥
ब्रजरस परस प्रसादहि पाय। रहै महा आनँदघन छाय ॥१०१॥
अंतर बाहिर ब्रजरस भरै। मोद - बिनोद - सिंधु बिस्तरै ॥१०२॥
भावतरगनि करि बढ़वारि। वेसम्हार ह्वै रहे सम्हारि ॥१०३॥
गौर स्याम छबि प्रगट निहारै। ब्रजजन मति गति रति उर धारै ॥१०४॥
बिसरै सुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आव्रत मन घिरै ॥१०५॥
बिन रजपरस सरसता कित है। रज मिलि रहै पाइ पति इत है ॥१०६॥
हिय मैँ बास करौ ब्रजभूमि। तनहूँ रहौ तहाँ ही भूमि ॥१०७॥
यह ब्रजरज ही मेरो धन है। आँखिन ब्रजरज ही सौँ पन है ॥१०८॥
डीठि जोति या रज सौँ लहै। चाह्यौ करै सदा सुख यहै ॥१०९॥
यह रज चाहि मोहि जो सूझै। मेरोई मन सो सुख बूझै ॥११०॥
मोहन-चरन - धरनि दिखरावै। यातैँ मोकूँ यह रज भावै ॥१११॥
मोहन-दरस हियो अभिलाखै। रज कौँ परस दृग निरज राखै ॥११२॥

८९–नट–नव (वही)। ९०–सबको–सबके (वृंदा०)। ९१–हीँ–है। ९३–कलोलै–किलोलै। १०५–आव्रत–आवृत (वृंदा०)।

[९२] आसार=वृष्टि। [९६] लड़कि=ललककर। [१०५] निधि=समुद्र। आव्रत=आवर्त, भँवर।

या रज की हौं बलि बलि जाऊँ। या रज ही रज ह्वै रलि जाऊँ ॥११३॥
लै या रजहि कहा धौं करौं। प्रानन के संपुट लै धरौं ॥११४॥
यह रज जैसी लागति प्यारी। ब्रजजीवनि जानत जिय-ज्यारी ॥११५॥
अब तौ ब्रजरज लै सिर धरिहौं। रज की सरन चरन अनुसरिहौं ॥११६॥
जब गुपाल आवत गोचारैं। गोपी याही रजहि निहारैं ॥११७॥
या रज मैं या ब्रज को चंद। उदै होत आनंद अमंद ॥११८॥
या रज रंजित स्याम उज्यारे। नीके लगत दृगन के तारे ॥११९॥
रज-रगमगे जगमगे मोहन। बिहसत गोपबधुन के गोहन ॥१२०॥
यह रज देखि जियत ब्रजबाला। पहले रज पाछे नँदलाला ॥१२१॥
या रज सौं अब आन बनी है। मति गति रति या रज हिसनी है ॥१२२॥
यह ब्रजरज ब्रजमोहन-मुख सौं। जसु पौंछति ऑचरु लै सुख सौं ॥१२३॥
या रज की पदवी अति दूरि। यह रज रसिकनि जीवनिमूरि ॥१२४॥
यह ब्रजरज ब्रह्मादिक जाचत। या रज सौं बड़भागी राचत ॥१२५॥
या रज मैं रसपुंज समोयौ। या रज मैं परमारथ मोयौ ॥१२६॥
यह ब्रजरज तव आछी लागै। जब समझै ब्रज के अनुरागै ॥१२७॥
यह रज परसि जगै अनुराग। यह रज दरसि जगै बड़भाग ॥१२८॥
यह ब्रजरज प्राननि रस पोषै। यह रज लागि छुड़ावत दोषै ॥१२९॥
यह ब्रजरज मजन को मंजन। यह रज परमांजन को अंजन ॥१३०॥
वस्तु-बूझ बिन सूझ न रज की। यह रज सिरभूषन सिव अज की ॥१३१॥
या ब्रजरज की महिमा बाँकी। रज साँची गोपीजन-पाँ की ॥१३२॥
या रज रँगे चरन-अभिसार। दृगनि लगावत रसिक उदार ॥१३३॥
यह रज पीत वसन सौं पौंछत। सीस छ्वाय फिर उरसि अँगोछत ॥१३४॥
ब्रजरज कथा कहाँ लौं कहियै। या रज की उपमा कौं यहियै ॥१३५॥

११५—ज्यारी—आरी (वृंदा०)। १२०—गोहन—जोहन (वृंदा०)। १२५—बड़भागी—दरभागी (लंदन)। १२२—रज—रस (लंदन)।

[११२] निरज=रजोहीन, निर्मल, रजोगुण से रहित। [११३] रलि०=मिल जाऊँ। [११५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१२०] रगमगे=रंजित, युक्त। गोहन=साथ। [१२३] जसु=यशोदा। [१३२] पाँ=पैर। [१३४] उरसि=उर में।

आसबास या रज मैं राखौं। या रज तैं रज ही अभिलाषौं ॥१३६॥
रज ही सेऊँ रजहि अराधौं। ब्रजरज ही नित साधन साधौं ॥१३७॥
सिद्ध भएं रज मिलौं मिलै जौ। सुख परसौं ब्रजरजधानी कौ ॥१३८॥
ब्रजरज कृस्नकृपा करि पूरन। ब्रजरज बिरहबिथा हित-चूरन ॥१३९॥
ब्रजरज परसि मिटै भ्रम ब्याधि। ब्रजरज हरै हिये की आधि ॥१४०॥
को समझै ब्रजरज - अधिकारै। सीस वहै जो रज यह धारै ॥१४१॥
ब्रजरज निज सुरूप दरसावै। तौ रज की गति कछु कहि आवै ॥१४२॥
रज दरसै तौ सब कछु दरसै। रज परसे. बिन प्रेम न परसै ॥१४३॥
ब्रजरज को आसरो लीजियै। लोकलाज सिर धूरि दीजियै ॥१४४॥
रजपन बँधि जगफद छूटियै। रजहि पाय रसरासि लूटियै ॥१४५॥
यह ब्रजरज दुर्लभ है महा। या रज कौं पाएँ ही लहा ॥१४६॥
रज ह्वै रहै मिलै तव रज सो। निरखै निज समाज सुख सज सो ॥१४७॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज एक। रज ही सौं साँची पन - टेक ॥१४८॥
ब्रजरज जीवन ब्रजरज आन। ब्रजरज ही सोभा सनमान ॥१४९॥
ब्रजरज बिन जाँचौं नहिं आन। ब्रजमोहन ! ब्रजरज दै दान ॥१५०॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज दरसै। ब्रजरज बिन चित और न परसै ॥१५१॥
ब्रजरज परसन कौं मन तरसै। ब्रजरज-रस-प्रसाद ज्यौ सरसै ॥१५२॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज भजियै। ब्रजरज सैंति सबै कछु तजियै ॥१५३॥
ब्रजरज अगम अगोचर अति है। देखत भूली सी रज - रति है ॥१५४॥
ब्रजरज राजस मन मैं आएँ। ब्रजरस - परस सवादहि पाएँ ॥१५५॥
रंक परमपद होत जहाँ लौं। फीके परत मिठास तहाँ लौं ॥१५६॥
ब्रजरज हो मेरी उपासना। ब्रजरज बसौं सदा सुबासना ॥१५७॥
ब्रजरज बिन कछु और आस ना। रज-सेवन स्रुतिसार सासना ॥१५८॥

१४६–इसके वाद लंदन की प्रति मैं ये पक्तियाँ हैं–यह ब्रजरज यह ब्रजरस अहा। या ब्रजरज की कहियै कहा।

[१३६] आस०=आशा का निवास। [१४०] आधि=मानसिक क्लेश। [१४६] लहा=लाभ। [१४७] सज=सजावट। [१५२] ज्यौ=जी। [१५३] सैंति=संचित करके। [१५८] सासना=आदेश

ब्रजरज - महिमा रसना बकौं। जदपि बरनि कछुवै नहिँ सकौं ॥१५९॥
तदपि रेनु-मादक गुन छकै। बकि बकि जकि जकि तनक न थकै ॥१६०॥
ब्रजरज कौं अभिलाष बढ़्यौ है। रसना ब्रजरज-सुजस पढ़्यौ है ॥१६१॥
ब्रजरज मैं रसपुंज धर्‍यौ है। श्रीहरि हूं को हियो हर्‍यौ है ॥१६२॥
यह ब्रजभूमि सदा रँगभोई। महा अपूरब रसनि समोई ॥१६३॥
या ब्रजरज मैं निधि लै गोई। या अंजन बिन लखै न कोई ॥१६४॥
श्रीललिता तप साधति याकौं। ललचि ललचि आराधति याकौं ॥१६५॥
नंदसून - पद - लालन - लोभै। रमा रसिकिनी पावति छोभै ॥१६६॥
यह रज यह रस याही सोहै। या रज की उपमा कौं को है ॥१६७॥
यह रज गंधवती सब ऊपर। क्रीड़त रसिकराय या भूपर ॥१६८॥
या ब्रजलीला विधि हू मोह्यौ। कछु अद्भुत प्रभाव जब जोह्यौ ॥१६९॥
हरि-सुरूपमय सब ब्रज देख्यौ। रजउतकरप बिचारि बिसेख्यौ ॥१७०॥
श्रीरसना-अंकित लखि भूमि। रह्यौ माधुरी महिमा घूमि ॥१७१॥
जाचत नंदलाल पद छ्वै कै। या रज कौं इत कौं कछु ह्वै कै ॥१७२॥
पै रज अज कौं मिलै अजौं न। और कहौ धौं पावै कौन ॥१७३॥
श्रीगोपीपद - कमल - पराग। यह रज रसिकजननि को भाग ॥१७४॥
दुर्लभ या रज को अधिकार। जानत एकै नंदकुमार ॥१७५॥
गोपी-पद - प्रसाद रज लहियै। निगमागम मैं प्रगट सु कहियै ॥१७६॥
या रज को साधन इह एकै। मिलै न किये उपाय अनेकै ॥१७७॥
अति रति विना न परसै धूरि। यह ब्रजरज सबकौं अति दूरि ॥१७८॥
प्रबल प्रेम गति ब्रजजन लही। सो रति पूरि रही ब्रजमही ॥१७९॥
इनकी अनुग भावना गहै। काहू विधि इनको ह्वै रहै ॥१८०॥
सहज होय या रज-पहिचानि। परै सहज ब्रजजन की बानि ॥१८१॥
या रज विना न भावै आन। जगै हियैं ब्रजरज-अभिमान ॥१८२॥

१६५—श्रीललिता—श्रीललना (लंदन)। १६८—रज-ब्र ज। १७७—एकै—एक (वही)। १७८—रति—रज (वृंदा०) यह—या (लंदन)। १८०—काहू—काऊ (वृंदा०)।

[१६४] निधि=खजाना। गोई=छिपाई हुई। [१६६] सून=पुत्र। छोभै=उद्वेग। [१७१] श्रीरसना=राधिका की करधनी।

सहज करै रज अंगीकार। यह रज तब पावै निरधार ॥१८३॥
या रज सौं नातो जिय जोरै। और सबन सौं सब विधि तोरै ॥१८४॥
या रज को प्रसाद जब पावै। तब सब कछू सहज नहि भावै ॥१८५॥
ब्रजमोहन को यह ब्रज धाम। निपटै दुरथौ परम अभिराम ॥१८६॥
श्रीब्रजराज - बास जौ बसै। ब्रजजन-भाव-लोभ मन गसै ॥१८७॥
तौ या सुख-सवाद कौं पावै। निधरक ललना - लाल लड़ावै ॥१८८॥
आनँदघन - रस भीज्यौ रहै। ब्रजबन-लीला-निधि अवगहै ॥१८९॥
छिनछिन भावतरंग बिसेषै। देखि देखि छबि थकै निमेषै ॥१९०॥
महामधुर रसपान छकै मन। बिबस दसा अति रोमांचित तन ॥१९१॥
घूमि झूमि बन - बीथिनि डोलै। मौन धरैं मन ही मन बोलै ॥१९२॥
औरै दसा दिपै रँगभीनो। नेह-गाँस कसकै अति झीनो ॥१९३॥
होय सिथिल गति सबै ओर तैं। ब्यौरि सकै नहिं साँझ भोर तैं ॥१९४॥
मुरली-धुनि स्रवननि मैं रमै। चकित थकित मति की गति गमै ॥१९५॥
बिबस दसा-गति कही न परई। दरस-प्यास नैननि जल भरई ॥१९६॥
चटक चोंप चेटक चित चढ़ई। नाम रूप गुन अनुछिनु बढई ॥१९७॥
हा राधा हा कृस्न पुकारै। वेसम्हार ह्वै तिन्हैं सम्हारै ॥१९८॥
ब्रजबन ठौर ठौर लखि माहै। तरु-बेलिनि हरि-राधा जोहै ॥१९९॥
दंपति - रस - संपति हिय भरै। पूरन पन की टेक न टरै ॥२००॥
फुरै सदा ब्रजमोहन केलि। उझिलै हियो महारस झेलि ॥२०१॥
बिहरै बिबस सदा ब्रजबन मैं। दरस-परस-रस-आरति मन मैं ॥२०२॥
जीवन एक जुगल - रस जाकैं। मन मैं और ठौर नहिं ताकैं ॥२०३॥
जमुना-तीर बैठि मुख धोवै। हँसि हँसि परै बिकल चित रोवै ॥२०४॥
उनमद भयौ फिरै मदमातो। कबहुँ न होय लगन तैं हातो ॥२०५॥
बैठैं चलैं एक जक जागै। मति गति सुरति भावरस पागै ॥२०६॥

१८५–जब–तब (वही)। २०५–हातो–आतो (वही)।

[१८८] ललना०=राधा-कृष्ण। [१८९] निधि=समुद्र। अवगहै=थहाए। [१९२] गाँस=किसी हथियार की नोक। झीनी=पतली, महीन, सूक्ष्म। [२०२] आरति=लालसा। [२०५] हातो=दूर। [२०६] जक=धुन।

कब ह्वैहै ऐसी गति हाहा। जीवन-जनम-सफलता-लाहा ॥२०७॥
या रस बिन छिन रह्यौ न परिहै। नैननि नीर एकरस ढरिहै ॥२०८॥
बूझैं मुख बोलौ न आइहै। रोम रोम अभिलाष छाइहै ॥२०९॥
निसिदिन याही विधि बिताइहौं। चित नितलीला-रस हिताइहौं ॥२१०॥
गुननि गाय आँखिन जल ढरिहै। तन ब्रजभूमि घूमि गिरि परिहै ॥२११॥
ब्रजरज लोटि बिकल ह्वै जैहौं। बडी बेर तन की सुधि पैहौं ॥२१२॥
रजहि पाय मिलि रजहि रहौं जब। सो सवाद सुख कहै कौन तब ॥२१३॥
श्रीगुरु-पद - प्रसाद रज पाई। रज-महिमा रज-परसैं गाई ॥२१४॥
रोम रोम रमि रही रजै है। प्राननि पैठि रह्यौ जु ब्रजै है ॥२१५॥
ब्रजरज-टेक टरति क्यौं मन तैं। प्रान पकि रहे पूरन पन तैं ॥२१६॥
निबहै टेक एक रज - बल तैं। दृग आगैं ब्रज बैठैं चलतैं ॥२१७॥
सोवत जागत ब्रज ही देखौं। ब्रजमोहन - लीला अवरेखौं ॥२१८॥
ब्रज ही लागि परयौ मनमोहन। बिसरत नाहिं रसिक ब्रजमोहन ॥२१९॥
राधा के मन मैं मन रहै। ब्रजमोहन यौं गोहन गहै ॥२२०॥

२०७–कप०–कबहुँ ह्वैहै (वृ दा०)।

[२०८] ढरिहै=टपकेगा। [२१०] हिताइहौं=रुचि उत्पन्न करूँगा। [२१८] अवरेखौं=विचार करूँ।

कृष्णकौमुदी

दोहा

स्याम - रूप आनंदघन, अभिनव मधुर किसोर ।
परम रसिक गोपी-रमन, राधा - बदन - चकोर ॥ १ ॥

मुरली - नाद - बिनोद - रत, सुघरराय रसलीन ।
मोहन महा कहा कहौं, अनुछिनु निपट नवीन ॥ २ ॥

गोपराज - कुल को कलस, पूरन परम रसाल ।
ब्रजलोचन - रोचन रुचिर, गोपबेप गोपाल ॥ ३ ॥

मोरचंद्रिका सिर धरैं, गरैं गुंज की माल ।
धातु - चित्र कटि पीतपट, मोहन - मदन गुपाल ॥ ४ ॥

प्रेम-अवधि लीला - मगन, नटवर नित नवरंग ।
केलिकला - पूरन - कुसल, अद्भुत अतुल अनंग ॥ ५ ॥

दिन दूलह लोनो ललित, सब गुन रूपनिधान ।
सुहृद सुमिल नागर नवल, अनुपम सुखद सुजान ॥ ६ ॥

ब्रजनायक ब्रज - प्रेमनिधि, ब्रजभूपन ब्रजप्रान ।
ब्रजमंडन ब्रजहितकरन, गिरिधर ब्रजबलवान ॥ ७ ॥

ब्रजमंगल ब्रजकौतुक, ब्रजबासी ब्रजचंद ।
ब्रजविनोद ब्रजराजसुत, ब्रजजन - आनँदकद ॥ ८ ॥

अति कमनीय किसोर बपु, गोपीनाथ उदार ।
कमलनैन क्रीडानिपुन, कान्हर गोपकुमार ॥ ९ ॥

कुजबिहारी कृस्न कवि, कोबिद कृपानिकेत ।
मधुर मनोहर मेघद्युति, महामुदित सुखहेत ॥ १० ॥

कामकेलि क्रीड़ा कुसल, कलानाथ रसवंत ।
गोबरधनवासी सदा, गोप - कामिनी - कंत ॥ ११ ॥

[२] सुघर=चतुर । [३] रोचन=रुचनेवाले । [४] धातु०=मिट्टी से अंगों पर छापा लगाए । [१०] हेत=हेतु, कारण ।

चतुरसिरोमनि अति चपल, परम धीर गंभीर ।
सदासुखी सोभासदन, कोमल अमल सरीर ॥ १२ ॥
जगत - उजागर साँवरो, अचरज-लीला-खानि ।
दान - केलि - कोलाहली, रसलोभी रसदानि ॥ १३ ॥
महालील मायी महा, महापुरुष मतिमान ।
महारसिक महिमा महा, मानी परम प्रधान ॥ १४ ॥
वृंदावनबासी सदा, अभिरुचि - धीरसमीर ।
कुंजरमन कंदर्पजित, बिहरत जमुनातीर ॥ १५ ॥
गोचारी गोरज - धरन, ब्रजजन - उत्सव - रूप ।
गोपीवल्लभ गोपधन, गोपकिसोर अनूप ॥ १६ ॥
रासबिलासी रसिकबर, चिंतामनि चैतन्य ।
चटुल चतुर चुंबक चपल, उद्धत अद्भुत धन्य ॥ १७ ॥
मानसरोवर - वास - वस, केलिकला - कलहंस ।
वट - भंडीर - निवास नित, राधारसिक प्रसंस ॥ १८ ॥
राधारंगी रस - अवधि, सरल त्रिभंगी स्याम ।
रतिवर्धन रतिपति - जयी, रामानुज अभिराम ॥ १९ ॥
राधाजीवन विपुल धन, राधा - सखा - सुरूप ।
राधा - रसलंपट सदा, राधारसिक अनूप ॥ २० ॥
राधा जीवन स्याम कौं, राधा - जीवन स्याम ।
गौर स्याम एकत सदा, बसत विदित ब्रजधाम ॥ २१ ॥
राधा - जागर - जग्य-रत, पूरन परम सनेह ।
कुंजकुटीर कदंब - तर, कृतीमान कृतगेह ॥ २२ ॥

२२-कृती०-कृतमानी (लंदन) ।

[१४] महालील=महान् लीला करनेवाले । मायी=मायावी । [१५] धीर०=एक कुंज । [१८] भंडीर=भांडीर वन, बरगद का वन । [१९] रति०=कामदेव के जेता । रामानुज=बलराम के छोटे भाई । [२२] जागर=जागरण ।

सदा गोपसीमंतनो, सेवित नायकराज ।
खरिक खोरि गिरबर गहन, अमित अभंग समाज ॥ २३ ॥
नित नवीन सिगाररुचि, रसिक छैल ब्रजचंद ।
सनमुख ही सोभित सदा लहियत लाभ अमंद ॥ २४ ॥
आनँदघन उनयौ रहैं. ब्रजजन - जीवनमूल ।
दच्छिन सुभ लच्छिन भरयौ, सबकौं हित-अनुकूल ॥ २५ ॥
कृस्नचद आनंदघन, अद्भुत अमल अमंद ।
जसुदा - प्राचीदिस - उदै, भाग अपूरब नंद ॥ २६ ॥
अति सुगध अभिराम तन, पहिरैं नव बनमाल ।
ब्रजमोहन गोहन लगे, मन - दृग मधुकर - जाल ॥ २७ ॥
अति चटकीलो लटक सौं, मुकट छबीलो माथ ।
आनँदघन मुख - माधुरी, रस बरसै इक साथ ॥ २८ ॥
भाल-भाग बड़भाग-निधि, रुचिर सु कुंकम खौरि ।
दृगबिलास मृदु हास लखि, डग पहार-ढिग पौरि ॥ २९ ॥
भाल भौंह दृग नासिका, मृदुल कपोल सुठौन ।
साँवल छबि मधुमै अधर, देखि रहि सकै कौन ॥ ३० ॥
स्याम सरूप अनूप अति, सकै कौन अवगाहि ।
चाहि ब्रजबधू चकि रहैं, राधा - भाग सराहि ॥ ३१ ॥
लहलहानि - जोबन उदै, ब्रजमोहन अँगअंग ।
महा रूपसागर उमगि, उठति अमोघ तरंग ॥ ३२ ॥
मनिकुंडल अति भा-खुलनि, डुलनि सुललित कपोल ।
रूप - गहर - लहरानि मैं, मनमथ - मीन कलोल ॥ ३३ ॥
मुरली फबि अधरानि मैं, अति मादक धुनि पूरि ।
तान - बान संधानहीं, धरम मरम भे चूरि ॥ ३४ ॥

३४—मरम—परम (वृंदा०) ।

[२३] सीमतनी=पत्नी । [३१] अवगाहना=थहाना । [३३] भा=चमक ।

छुटत छबीली चंद्रिका, हँसनि लसनि बहु भाँति ।
कौंध चौंध अँखियनि भरै, दसन रँगीली पाँति ॥ ३५ ॥

सहज चीकनी घूँघरी, छलनि छलति गुर ग्यान ।
अजौं करति उरझनि मनौ, लगी कनौंती कान ॥ ३६ ॥

स्रवन - सुभगता हेरि कै, टरत न लोभी नैन ।
कहत लगी सुखदैन सौं, बिन बानी हित - बैन ॥ ३७ ॥

रुचिर चिबुक लोनी ललित, मृदुल मनोहर गोल ।
क्यौं निकसत मन गाड़ परि, उकतिन कसत अडोल ॥ ३८ ॥

स्याम - रूप अंजन सरस, राधा नैन - सिँगार ।
वदन-कमल-मधुपान-अलि, उरमंडन-हिति हार ॥ ३९ ॥

रसिक पपीहापन गहैँ, राधा आनँदकंद ।
चाँपत चौंप चकोर की, बदन देखि ब्रजचंद ॥ ४० ॥

ब्रज - बनिता आनंदघन, मुरली - गरज रसाल ।
रस-ताननि झर लायकै, रीझनि करत निहाल ॥ ४१ ॥

अति सुकंठ कौस्तुभ धरैँ, गरैँ सीपसुत - दाम ।
स्वच्छ वच्छ - सोभा लखैँ, विवस होत ब्रजवाम ॥ ४२ ॥

सुढर अंस पीवर रुचिर, परम ललित भुज-बेलि ।
अंगद रसरंगद धरैँ, वलित कलित रसकेलि ॥ ४३ ॥

पानि प्रेमपल्लव रुचिर, कर तरु अरुन रसाल ।
सरस परस - सुख लेति हैँ, भागभरी ब्रजबाल ॥ ४४ ॥

३५–हँसनि–दसनि (लंदन)। ३६–मनौ०–मतौ लागि (लंदन)। ३८–उकति–उकसि (लंदन)। ३९–मंडन०–मंडन हिनिहार (वृंदा०)। ४२–धरैँ–परैँ। धाम–धाम (लंदन)। ४३–कलित–फलित (वृंदा०)। ४४–बाल–माल (वृंदा०)।

[३६] कनौंती=बाली। [३८] गाड़=गड्ढा। उकति=उक्ति, वाणी। [४२] सीप०=मोती की माला। [४३] अंस=कंधा। पीवर=पुष्ट। अंगद=बाहु पर का एक गहना, बिजायट।

उदर-मधुरिमा क्यौं कहौं, दृगनि बिलोकनि भूष ।
नाभि रोमराजी रुचिर, पूरित प्रेमपियूष ॥ ४५ ॥
कटिप्रदेस बरनौं कहा, कहिवे कौं कछु नाँहि ।
रतिबिलास बरसै सदा, मन भिजवै रस माँहि ॥ ४६ ॥
रूप-सलोने स्याम को, क्यौं करि सकौं बखान ।
महा मधुर रसस्वाद-सुख, नहिं समात अनुमान ॥ ४७ ॥

चौपाई

जानु जंघ रसढरे सुभायनि । चायनि दृग न्यौछावर पायनि ॥४८॥
चरन - माधुरी अति रमसार । राधा के मन को व्यौहार ॥४९॥
इनके उनके मन की बात । ये जानैं ज्यौं इन्हैं बिहात ॥५०॥
सबनि जिवावत हिलि मिलि जीवत । ब्रजबन बसि लीलारस पीवत ॥५१॥
गाहत गहन गैल अधरात । कछु बसि रहत चलत उठि प्रात ॥५२॥
लोकलाज ब्रजरीति निबाहत । मन मतवारे बन बन गाहत ॥५३॥
परम प्रेम - परिपूरन दंपति । राधा - मोहन रसना - संपति ॥५४॥
ब्रज इकरंग स्याम-रँग रच्यौ । सब नचाय या आगैं नच्यौ ॥५५॥
रसिया रसिकराय रसस्वामी । रसिकसिरोमनि नायक नामी ॥५६॥

दोहा

नटवर स्यामकिसोर तन, चरचित नव पाटीर ।
महा मनोहर मधुरिमा, गुनगरिमा गंभीर ॥ ५७ ॥
सदा ललित लीला-मगन, गिरधर गोपीनाथ ।
बृंदावन आनंदघन, प्रिय समाज लै साथ ॥ ५८ ॥
वेनुनाद - सुखस्वादमय, अद्भुत परमानंद ।
पूरन प्रेम कुतूहली, कृस्नचंद रसकंद ॥ ५९ ॥
सरस गीत कल-पद-भरी, मुरली अधर रसाल ।
गोपबधू - मन - बसकरन, मधुर त्रिभंगी लाल ॥ ६० ॥

६०–पद–मद (बृंदा०) ।

[४५] भूष=भूपित करती है । राजी=पंक्ति । [५७] पाटीर=चंदन ।

मोहन मादक रूप लखि, छके रहत ब्रज लोग ।
अपने अपने भाव सौं, चहत भावतो भोग ॥ ६१ ॥

जमुना-तीर बिसद पुलिन, विहरत नित नव रंग ।
निरखत नख-ससि-कौमुदी, मोहित अमित अनंग ॥ ६२ ॥

रमनीरमन महारसिक, मदमाते दृग लोल ।
रसलंपट लावन्यनिधि, अतुलित अतन कलोल ॥ ६३ ॥

अचरजमूरति अमितद्युति, चकचौंधी लखि होति ।
ब्रजवन व्यापि रही सदा, बदन-अपूरब-ज्योति ॥ ६४ ॥

पगु होति मन - नैन-गति, देखति सहज सिंगार ।
ब्रजजन-प्रान-अधार नित, सुख - सुंदरता - सार ॥ ६५ ॥

नई चौंप नित ही रहै, सरस चाह रसरीति ।
निपट चटपटी सौं भरी, ब्रजमंडल की प्रीति ॥ ६६ ॥

स्याम - रूप आनंदघन, बरसत सुरस अमोघ ।
पीवत जीवत एकरस, ब्रजजन चातक-ओघ ॥ ६७ ॥

सघन कलपतरबर-तरैं, सोभित स्याम त्रिभंग ।
उर उदार बनदाम लखि, उरझत लोचन - भृंग ॥ ६८ ॥

सजल स्याम अभिराम अति, आनँदघन रस-ऐन ।
भिजवत रिझवत हँसि चितै, गोपीजन-मन-नैन ॥ ६९ ॥

निसदिन देखत हूँ बढ़ै, सबके हिय अभिलाष ।
मोहन मधुर किसोर पै. मदन वारियै लाख ॥ ७० ॥

नहिं अघात अचवत अमी, ब्रजजन जीवन-रूप ।
गोपी-नैन - चकोर की, पूरन प्यास अनूप ॥ ७१ ॥

बढ्यौ रहत ब्रजनाथ सौं, ब्रजबासिनि को भाव ।
मोहन हिय हू चौगुनो, मिलि खेलन को चाव ॥ ७२ ॥

७१—नहिं—नाहिं (वही) । ७०—बढ़ै—चढ़ै (लंदन) ।

[६३] अतन=काम । [६७] ओव=समूह । [६८] बनदाम=वनमाला ।

सुख-समाज चुहलैं रहैं, ब्रजवन गिरि चहुँ ओर ।
नव किसोर आनंदघन, ब्रजजन माते मोर ॥ ७३ ॥
मधुर केलि - कादंबरी - छके साँवरे छैल ।
सर - सरिता-पनघटनि मैं, घूमत घेरत गैल ॥ ७४ ॥
अटक भटक चोखनि करत, अरत ढरत तक लाय ।
नवल सनेही साँवरो, हिय हरि लेत सुभाय ॥ ७५ ॥
आनँदघन घमड़यौ रहत, ब्रजवन गैल मँझार ।
सबको जीवन साँवरो, रसनिधि नंदकुमार ॥ ७६ ॥
दिन - दूलह ब्रजचंद के चरन सुमगल - मूल ।
जमुनातट बृंदाबिपिन, बिहरत रुचि - अनुकूल ॥ ७७ ॥
नखचंद्रावलि - चंद्रिका, दृग - चकोर - सुखदैन ।
चरन-कमल अद्भुत अमल, प्रफुलित आनँद-ऐन ॥ ७८ ॥
कुंज - धरनि - मंडन मृदुल, मजुल चिह्न-समेत ।
रसिकसिरोमनि-पद-कमल, बिरह-ताप हरि लेत ॥ ७९ ॥
चरन चारु ब्रजचंद के, बृंदाबिपिन - बिहार ।
बदन करि जासौं सदा, गोपीपद - रज - सार ॥ ८० ॥
एक प्रान मन एक ही, एक बैस इक सार
रसचूडामनि गाइयै, राधा - नंदकुमार ॥ ८१ ॥
ब्रज - बृंदावन - रस सदा, रसना करौं बखान ।
गोपी अरु गोपाल को, लीला - आसव पान ॥ ८२ ॥
ब्रजनटवर गोपाल - गुन, गनत गनत न अघाति ।
अति सुछद रसना-नटी, सुख बिलसति दिनराति ॥ ८३ ॥
कृस्नकौमुदी नाम यह, मोहन मधुर प्रबंध ।
सरस भाव - कुमुदावली, प्रफुलित परम सुगंध ॥ ८४ ॥

---

[७४] कादंबरी=शराब ।

धामचमत्कार

चौपाई

व्रजबन पूरि रह्यौ सुख सदा। कृस्न - ललित - लीला - संपदा ॥१॥
व्रजबन को समीप है ऐसैं। बनवारी बिहरन हित जैसैं ॥२॥
रमन - भूमि को रूप अनूप। राजत रसिकमुकटमनि भूप ॥३॥
लीला - कलित स्याम गंभीर। मधुर किसोर महारस - धीर ॥४॥
अमित ओज मधुरिम-भर बढ़ै। व्रजबन बिहरत चौंपनि चढ़ै ॥५॥
अति अगाध रससागर व्रजबन। नित बरसत प्यासनि आनँदघन ॥६॥
अचरजमय व्रजबन की ठौरैं। बुधि बिचार हेरत ही बौरैं ॥७॥
व्रजबन देखन के दृग औरै। रचना रुचिर ठौर ही ठौरै ॥८॥
परमानंद - रूप व्रजबन है। जहाँ प्रवेस करत नहिं मन है ॥९॥
परम तत्व को सार समोय। व्रजबन - रज लै राख्यौ मोय ॥१०॥
व्रजबन थिर चर को आभास। निरवधि-रसनिरजास-बिलास ॥११॥
सिव बिरंचि सनकादिक सेस। जाचत व्रजबन - रज को लेस ॥१२॥
महिमा अमित बिचारत चकैं। समझि सुमिरि मन ही मैं छकैं ॥१३॥
हरि-परिकर व्रजजन को भाग। समझि सराहत भरि अनुराग ॥१४॥
गोपवेस व्रजराजकुमार। जिन सँग मिलि नित करत बिहार ॥१५॥
यह समाज व्रजबन मैं लसै। नित्य किसोर - केलि रसमसै ॥१६॥
वस्तुग्यान बिन ध्यान न आवै। व्रजस्वरूप को धौं लखि पावै ॥१७॥
सब तें अगम अगोचर व्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस ॥१८॥
व्रज सुदेस व्रजराजा नंद। जसुदानंदन गोकुलचंद ॥१९॥
महामोद व्रज सरस विनोद। परिपूरन बिलास चहुँ कोद ॥२०॥
आनँद - उदय एक सो जहाँ। नित्यानंद बिराजत तहाँ ॥२१॥
धाम - माधुरी अतुल अभूत। जानत है संकर अवधूत ॥२२॥

२—बिहरन०—बिहरत नहिं (वृंदा०)। ७—बौरैं—औरैं (वही)।
१६—बन—जन (लदन)।

[५] भर=भराव। [११] निरजास=निचोड़। [१४] परिकर=निकट के संग, पार्षद। [२०] कोद=ओर

गोपेसुर है निरखत सोई। कृपा करै तौ समझै कोई ॥२३॥
अगम पदारथ कैसैं लहियै। ब्रजबन को सुरूप क्यौं कहियै ॥२४॥
लीला ललित सु क्यौं मन आवै। अधिकारिनहूँ अधिक घुमावै ॥२५॥
ब्रजवन बिहरत मदन गुपाल। सँग सोहत निज परिकर जाल ॥२६॥
ब्रजबन के प्रदेस बहुरंग। नित नित लीला ललित अभंग ॥२७॥
गाँव गाँव के नाँव अनेक। बरनत है वाराह जु एक ॥२८॥
यातैं यह ठिक जान्यौ परै। अपनो विभौ आप विस्तरै ॥२९॥
ब्रज की मही मनोहर महा। याकी महिमा कहियै कहा ॥३०॥
सोभा को कछु ओर न पैयै। अति अद्भुत जित ही जित जैयै ॥३१॥
ब्रज की बनक न बरनत बनै। दरसि परै तौ जानत मनै ॥३२॥
अचिरज अति गति कहियै कैसैं। निगम नेति कहि बरनत ऐसैं ॥३३॥
तरबर सरबर गिरिबर नदी। सोभानिधि ब्रज की चौहदी ॥३४॥
देखत सहज स्याम दरसावै। ब्रज की सोभा ब्रज ही पावै ॥३५॥
सब रितु सुखद सुहायो लागत। ब्रज बसि ब्रजमोहन-हित पागत ॥३६॥
ब्रज बिहरत गिरधर कौतकी। निरखत फिरत लगाएँ टकी ॥३७॥
अपने ब्रज मैं ब्रज को नायक। बिलसै सुख सबकौं सुखदायक ॥३८॥
ब्रज मैं सुखसमूह नित रहै। ब्रजजीवन को जीवन यहै ॥३९॥
यह ब्रज क्यौं न बिराजै ऐसो। नितनायक ब्रजमोहन-जैसो ॥४०॥
ब्रजबन निज दरपन है कियौ। निरखत स्याम सिरावत हियौ ॥४१॥
कृस्नचंद को यह ब्रज देखौ। मेरे नैन भाग अब लेखौ ॥४२॥
ब्रजबासी गोपाल गोपसुत। ब्रज सुधाम अद्भुत लीलाजुत ॥४३॥
ब्रजसुरूप कछु मन मैं आयौ। सो हठ के ब्रजनाथ कहायौ ॥४४॥
नातरु कहौ कहै कोउ कहा। या ब्रज अचरज-बानक महा ॥४५॥
ब्रज को चेटक रूप अपारै। मेरी डीठि निहारि न हारै ॥४६॥
या ब्रजबन के गैल-गरथारे। देखत लागत खरे पियारे ॥४७॥

२३—तौ-जो (वृंदा०)। ३६—लागत-लागौ (लंदन)। ४६—न हारै—निहारै (लंदन)।

[२५] घुमावै=चक्कर में डालती है। [२९] ठिक=निश्चय। [३७] टकी=टकटकी। [४७] खरे=अत्यत।

ब्रजमोहनहि दिखावत देखौ। ऐसे ब्रज सौं मेरो लेखौ ॥४८॥
धन्य धन्य या ब्रज के वासी। मंगलनिधि गोपाल-उपासी ॥४९॥
या ब्रज मैं नित मंगलचार। धन्य धन्य ब्रज को ब्यौहार ॥५०॥
कहा कहौं या ब्रज को चैन। देखत फूलत भूलत नैन ॥५१॥
ब्रजविनोद गहमह नित रहै। देखत बनै कहा कोउ कहै ॥५२॥
ब्रज मैं प्रेमपुंज नित छायौ। यह सरूप ब्रज को दरसायौ ॥५३॥
ब्रजवल्लभ ब्रजमोहन स्याम। ब्रजजीवन अभिराम सुनाम ॥५४॥
ब्रज की संपति परति न बरनी। निरखत कान्हकुवँर-हिय-हरनी ॥५५॥
ब्रजनरेस ब्रजराज बिराजै। जस-निसान निसिबासर बाजै ॥५६॥
मोकौं यह ब्रज लागत प्यारो। दीसत दीसै स्याम उज्यारो ॥५७॥
दिपत स्यामदुति या ब्रज अहा। ब्रजदरसन ही लोचन-लहा ॥५८॥
या ब्रज की सब सौंज अनूप। पूरन सदा अपूरब रूप ॥५९॥
को समझै ब्रजरस को भेद। जानै पै न बखानै बेद ॥६०॥
हियैं रह्यौ धरि भरि ब्रजहेत। नेति नेति कहि कछु कहि देत ॥६१॥
ब्रज-छवि-छटा कहूँ जौ दरसै। हियैं परम आनँदघन बरसै ॥६२॥
ब्रजचरित्र है अति ही चित्र। बरनत बानी परम पवित्र ॥६३॥
रसकदंब-चूड़ामनि स्याम। जिनको मोहन यह ब्रजधाम ॥६४॥
या ब्रज सौं यह ब्रज ही आहि। ब्रज की पटतर दीजै काहि ॥६५॥
ब्रजमंडन के यह ब्रज एक। बसत सदा गहि ब्रज की टेक ॥६६॥
सुभग सीवँ ब्रज चरन-कमल की। कहा कहौं गति सुजस अमल की ॥६७॥
ब्रज-बृंदावन की बलि जैयै। ब्रज-बृंदावन-लीला गैयै ॥६८॥
ब्रजदेविन की कृपा मनैयै। याही तैं यह ब्रजरज पैयै ॥६९॥
ब्रज-बृंदावन सौं हित-पन है। नित ही बरसत आनँदघन है ॥७०॥

६९-मनै-गैं (वृंदा०)।

[५२] गहमह=आनंद की धूम। [५६] निसान=नगाड़ा। [५९] सौंज=सामग्री [६३] चित्र=विचित्र। ६४] कदंब=समूह। [६५] पटतर=उपमा।

प्रियाप्रसाद

चौपाई

राधा राधा राधा कहौं। कहि कहि राधा राधा लहौं॥ १॥
राधा जानौं राधा मानौं। मन राधा-रस ही मैं सानौं॥ २॥
राधा! जीवन राधा प्रान। राधा ही राधा गुनगान॥ ३॥
राधा बृंदावन की रानी। राधा ही मेरी ठकुरानी॥ ४॥
राधा व्रजजीवन की ज्यारी। राधा प्राननाथ की प्यारी॥ ५॥
राधा राधा राधा एक। सर्बोपर राधा-हित-टेक॥ ६॥
राधा अतुल रूप-गुन-भरी। व्रजबनिता-कदंब-मंजरी॥ ७॥
राधा मदन गुपालहि भावै। मुरली मैं राधा-गुन गावै॥ ८॥
राधा-रस-प्रसाद की साधा। रसिकराय कैं राधा राधा॥ ९॥
या राधा कौं हौं आराधौं। राधा ही राधा रट साधौं॥१०॥
राधा बचन मौन हूँ राधा। राधा राधा राधा राधा॥११॥
सोएँ राधा जागें राधा। रातिद्यौस राधा ही राधा॥१२॥
राधा हेरौं राधा सुनौं। राधा समझौं राधा गुनौं॥१३॥
राधा मेरी स्वामिनि साँची। थिर चित ह्वै राधा-हित नाँची॥१४॥
राधा जु कछु कहै सो करौं। महल-टहल टकोर अनुसरौं॥१५॥
राध राधा गीत सुनाऊँ। राधा-आगे राग जमाऊँ॥१६॥
राधा कौं बहु भाँति रिझाऊँ। तीखी बातनि चोख हँसाऊँ॥१७॥
राधा की चटकीली चेरी। चित ही चढ़ी रहति नित नेरी॥१८॥
राधा रुचिहि लियेई रहौं। बिहरत गृहबन गोहन गहौं॥१९॥
रूप-उज्यारी राधा देखौं। भागन को सुख कहा बिसेखौं॥२०॥
राधा सब ही भाँति लडाऊँ। राधा रीझैं राधा पाऊँ॥२१॥
राधा सौं कछु कहौं कहानी। परम रसीली अति मनमानी॥२२॥

१५—टकोर—को रस (वृ दा०)। १६—सुनाऊँ—न गाऊँ (वही)।

[५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१५] टकोर=डंके की चोट अथवा बुलाहट। [१७] चोख=अत्यंत। [१८] नेरी=निकट।

चाँपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा के पाऊँ ॥२३॥
चरन छुआय जगाए जगौं। बहुरि औंघि नित पाँयनि लगौं ॥२४॥
राधा धर्‌यौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ ॥२५॥
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं ॥२६॥
राधा को सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दै हौं हूँ सुख पाऊँ ॥२७॥
राधा-ढिग जब स्याम निहारौं। समय-उचित सुख-टहल बिचारौं ॥२८॥
राधा - पिय पै बिजना ढोरौं। स्रमजल सुखऊँ मन रस बोरौं ॥२९॥
पियमै ह्वै प्यारी - हित पालौं। ललना - लाल परस्पर लालौं ॥३०॥
राधा - मोहन एकै दोऊ। नैन प्रान मन प्रेम - समोऊ ॥३१॥
राधा-हिलग कहत नहिं आवै। मोहन ही राधा रुचि पावै ॥३२॥
राधा-मोहन मोहन-राधा। हिलनि मिलनि बिहरनि बिन बाधा ॥३३॥
राधा प्रेम - रसामृत - सरसी। केलि-कमल-कुल-सुषमा दरसी ॥३४॥
राधा - मन मैं मन दै रहौं। राधा के मन की सब लहौं ॥३५॥
राधा को स्वभाव पहचानौं। राधा की रुचि रचना ठानौं ॥३६॥
राधा मन को मोसौं बोलै। गुपत गाँस अपनी रुचि खोलै ॥३७॥
हौं राधा की राधा मेरी। कीरति की घरजाई चेरी ॥३८॥
राधा की मनभावति लौंड़ी। राधा के आनंदनि औंड़ी ॥३९॥
राधा - चीर उतारन पाऊँ। भाग - बड़ाई कहा जनाऊँ ॥४०॥
राधा मो कर पाय भवावै। भागभरी महावरौ द्यावै ॥४१॥
राधा कौं हौंसनि हौं प्यारी। जातैं तनकौ करति न न्यारी ॥४२॥
लालबिहारी हूँ सौं ऐंडनि। राधा के गुमान को पैंडनि ॥४३॥
उमगि भरौं हित ढरौं अंग सौं। करौं टहल रसमसी रंग सौं ॥४४॥
अड़ दाव को काम परै जब। बिन बहुगुनी सँवारै को तब ॥४५॥
मेरो सुख हौं ही भर देखौं। राधा को सुख अंतर लेखौं ॥४६॥
लखौं सुख जब जब मुख देखौं। राधा को सुख कहा बिसेखौं ॥४७॥

३२-गनि-गति (लंदन)। ३४-कुल-कुलि। ४०-जनाऊँ-गनाऊँ (लंदन)।

[२४] औंघि=ऊँघकर। [२९] बिजना=व्यजन, पंखा। ढोरौं=झलूँ। स्रमजल=पसीना। [३८] घरजाई=घर में उत्पन्न। पारंपरिक। [३९] औंड़ी=बढ़ी, उमड़ी।

राधा को सुख मेरैं सुख है। मदन गुपाल निहारै मुख है ॥४८॥
चेरी पै अभिमान-भरी हौं। ठकुरायनि या भाँति करी हौं ॥४९॥
राधा की बलिहार भई हौं। राधा यौं अपनाय लई हौं ॥५०॥
राधा बिन कछु और न सूझौं। सुरझि सुरझि अभिलाष उरूझौं ॥५१॥
राधा आँखिन आगैं रहै। राधा मन को मारग गहै ॥५२॥
रोम रोम राधा की ब्यापनि। रसिकजीवनी राधा-जापनि ॥५३॥
राधा रटि सोई ह्वै जाऊँ। तब पाऊँ राधा को गाऊँ ॥५४॥
राधा बरसाने की जाई। ह्वै सॅंकेत नंदीसुर आई ॥५५॥
राधा की हौं कहौं कहा लौं। ब्रजबन राधामई जहाँ लौं ॥५६॥
राधा के हित बंसी बाजै। राधा रागभरे सुर साजै ॥५७॥
राधा बंसी की ठकुरायनि। सुर-पाँवड़े बिछावति चायनि ॥५८॥
नाँम गाँम सब राधा मेरैं। राधा ही के बसौं बसेरैं ॥५९॥
सो राधा न स्याम बिन रहै। मेरे मन मैं राधा यहै ॥६०॥
या राधा की महा अगम गति। प्रेमपुज मतिवती परम रति ॥६१॥
या राधा को प्रेम कहै को। या राधा को नेम गहै को ॥६२॥
राधा रमन रमन हू राधा। एकमेक ह्वै रहे अबाधा ॥६३॥
मिलन बिछोह कछु न सुधि परैं। अचिरज-रीति राधिका धरैं ॥६४॥
या राधा को रस अपरस है। रसमूरति को परम परस है ॥६५॥

दोहा

कहिबो सुनिबो समझिबो, राधा ही को होय।
राधा के हित की कथा, भूलि सुमरिहै सोय ॥ ६६ ॥

राधा अकथ कथा कहौं, यह कहिवे की नाहिं।
राधा के जिय की दसा, प्रीतम के हिय माहिं ॥ ६७ ॥

५५—नंदीसुर—नंदी वन (वृंदा०)। ५७—सुर—सुख (लंदन)। ६४—परैं—परे (वृंदा०)। ६५—परम—मरम (लदन)।

[६३] अबाधा=निरवधि, वेरोक्टोक। [६५] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।

ब्रजमोहन आनंदघन, बृंदाबन रसधाम।
अभिलाषनि बरसत रहै, राधा-हित अभिराम॥ ६८॥
मधुर केलिरस - झेलि सौं, रसना स्वाद - सुरूप।
सुफल सुबानी बेलि कों, राधा नाम अनूप॥ ६९॥
मेरे मन दृग रीझि की, राधा ही कौं बूझि।
राधा के मन रीझि की, मोहि बूझि अरु सूझि॥ ७०॥
राधा मेरे प्रान है, राधा - प्रान गुपाल।
साँस - कंठ धारे रहौं, राधा - मोहन - माल॥ ७१॥
आनँदघन बरसत सदा, राधा - जीवन स्याम।
उज्वल रसमै गौरता, प्रेम - अवधि अभिराम॥ ७२॥
दोऊ मिलि एकै भए, ललित रँगीली जोट।
जमुना-तट निरखौं सदा, तरु बेलिनि की ओट॥ ७३॥
निपट लटपटे अटपटे, भरे चटपटी चौंप।
राधा मोद - पयोद - रस, प्रगट केलि-कुल-कौंप॥ ७४॥
ब्रजमोहन - उर-अवनि मैं, राधा - सुपद - बिहार।
रोम रोम आनंदघन, भीजे रसिक उदार॥ ७५॥
राधाहित आनंदघन, मुरली गरज रसाल।
राधा ही के रसभरे, मोहन मदन गुपाल॥ ७६॥
राधा के आनंद को, मनमोहन - मन साखि।
राधा को अभिलाष जो, राधा - पिय अभिलाषि॥ ७७॥
राधा रसिक - सँजीवनी, राधाजीवन लाल।
राधामोहनमै सबै, ब्रजबन बेलि तमाल॥ ७८॥
राधा मेरी संपदा, जिय की जीवन - मूल।
राधा राधा रट सदा, रोम - रोम - अनुकूल॥ ७९॥
राधा - मोहन - मुख लगी, मुरली ह्वै दिनराति।
राधा ही राधा बजै, अति मोहन धुनि जाति॥ ८०॥

७२-मै-मिलि (लंदन)। ७८-बेलि-केलि (वृंदा०)।

[७१] साँस०=श्वास के कंठ में। [७४] कौंप=कोंपल।

राधा रास - सिरोमनी, राधा केलि - कुलीन।
राधा सकल कला - भरी रसमूरति हितलीन ॥ ८१ ॥
जो कछु है सो राधिका, मो कछु और न चाह।
राधा - पद - पन - पैज को, राधा - हाथ निवाह ॥ ८२ ॥
राधा सब ठाँ सब समै, रहति बहुगुनी संग।
तान रमन - गुनगान की लै बरसावति रंग ॥ ८३ ॥
राधा अचल सुहाग के, ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी, रिझवति राधा - मीत ॥ ८४ ॥
राधा चाहनि चाह सौं, राधा चाहनि चाह।
राधा ही रससिंधु मैं, राधा राधा थाहि ॥ ८५ ॥
राधा मो दृग पूतरी, भई स्याम लखि स्याम।
राधा राधारमन को, अनुपम रूप ललाम ॥ ८६ ॥
राधा पिय-प्यासनि भरी, आनँदघन रसरासि।
स्याम - रँगमगी सगमगी, राधा रही प्रकासि ॥ ८७ ॥
राधा राधा नाम को, रसनैं महा सवाद।
या प्रबंध को नाम हूँ, पायौ प्रियाप्रसाद ॥ ८८ ॥
प्रियाप्रसाद प्रबंध कौं, पाय सबादहि लेत।
नित हित सहित सनेह च्वै, रसना इह सुख देत ॥ ८९ ॥
राधा मगल - मालती, सरस मधुव्रत स्याम।
जमुना - तट राजत सदा, रसिक-सँजीवनि - धाम ॥ ९० ॥

८८—हूँ—हौं (वृंदा०)। ८९—च्वै—है (लंदन)।

[८३] बहुगुनी=कवि का सखी नाम [८५] चाहनि०=देखने की इच्छा। [८७] रँगमगी=अनुरक्त। सगमगी=मिली।

वृंदावनमुद्रा

चौपाई

राधा को बृंदावन गाऊँ। गाय गाय बृंदावन पाऊँ ॥ १ ॥
बृंदावन-छबि कहत न आवै। सो कैसैं कहि कोउ गावै ॥ २ ॥
कैसी राधा कैसो वन है। जामैं ब्रजमोहन को मन है ॥ ३ ॥
हरि-राधा वन मिलि रस सने। तन मन बन एकै रस बने ॥ ४ ॥
वनविहार-महिमा क्यौं फुरै। बिना फुरैं वन देखत दुरै ॥ ५ ॥
देखत भूली को यह रूप। क्यौं बन देखत बनै अनूप ॥ ६ ॥
जिन मोहन सब ही जग मोह्यौ। ताको मन राधा-गुन पोह्यौ ॥ ७ ॥
दुहुँनि एक बृंदावन ऐन। राखत पुतरिनि लौं धरि नैन ॥ ८ ॥
नित ही दंपति-हित लहलह्यौ। रोम रोम तिनके रमि रह्यौ ॥ ९ ॥
अब सोई जौ दरस्यौ चाहै। तौ रसना फिरि क्यौं न उमाहै ॥१०॥
गुन अनंत लै वानी दरसै। बृंदाबन आनँदघन बरसै ॥११॥
रसना पन-चातकी भई है। बृंदावन-गुन-गोभ-छई है ॥१२॥
जमुना तरल तरंगनि सरसै। हित-बतरानि प्रीति-रस परसै ॥१३॥
जमुना ही मिलि कथा सुनाऊँ। याही के प्रसाद गुन गाऊँ ॥१४॥
मिली तरंगनि वातैं करै। यातैं रसना गुन बिस्तरै ॥१५॥
तीरभूमि बनि रह्यौ सदा वन। जै जमुना जै जै बृंदावन ॥१६॥
बृंदाबन-छबि जमुना जानै। रसना जमुना परसि बखानै ॥१७॥
कृपा-तरंगनि सौं रससानी। या विधि सरस भई है बानी ॥१८॥
श्रीबृंदाबन जमुना-कूल। सो अनुकूल कृपाधन-मूल ॥१९॥
राधा-हरि बृंदावन भाँति। हिलि मिलि भई एक ही काँति ॥२०॥
अद्भुत छबि सौं ओपित लसै। गौर-स्याम-संगम रसमसै ॥२१॥

दोहा

गौर स्याम वन ह्वै रह्यौ, गौर स्याम कैं रूप।
गौर स्याम बानी भई, बरनत बनक अनूप ॥ २२ ॥

[७] गुन=गुण; सूत। [१२] गोभ=अंकुर। [२१] रसमसै=सरस होता है। [२२] बनक=सजधज।

चौपाई

लता ललित रसबलित सुतरबर । महा मधुर पूरन सुख सरवर ॥२३॥
रोमांचित श्रीबपु लौं रहै । पवन-गवन परिमल महमहै ॥२४॥
केलि - सदन बन - केलि-सरूप । सुख-सिंघासन सब सुख - भूप ॥२५॥
जुगल - अंग जे रंग बिराजैं । ते बन दल फल फूलनि आँजैं ॥२६॥
बर बिनोद पगि जगमग दिपै । उघरि उघरि आभा मैं छिपै ॥२७॥
रसमय सुखमय धामी धाम । निपट अलौकिक जग अभिराम ॥२८॥
रचना रुचिर सुठौर ठौर की । राधा पिय गुन रूप मौर की ॥२९॥
प्रेम-रँगमगी अवनि चहौं चख । महा अलख अभिलाष लहौं लख ॥३०॥
बृंदाबन बृंदाबन रटौं । रसना हित - चिंतामनि जटौं ॥३१॥
केलि - संपदा रसहि बखानौं । मौन धरैं अनूप गुन गानौं ॥३२॥
यह बृंदाबन यह जमुना - तट । सदा रहत सोभा को संघट ॥३३॥
ये द्रुम ये वेली अलवेली । हरि-राधा - रसरंगनि झेली ॥३४॥
यह कुसुमावलि यह फल-झूमनि । ये बिहंग यह अलिगन घूमनि ॥३५॥
यह पराग-घमड़नि सुख सरसै । नव मकरंद सु आनँद बरसै ॥३६॥
महकि मोद चहुँ कोद रह्यौ है । महा मधुरिमा-निधि उमह्यौ है ॥३७॥
यह दिन यह रजनी कछु औरै । लीला ललित ठौर हीं ठौरै ॥३८॥
छिन ही छिन बन-महिमा मौरै । समझि समझि मति की मति बौरै ॥३९॥
आनँद अमित सघन बन छायौ । पूरन प्रेम - बितान तनायौ ॥४०॥
नित नवीन रसकेलि-सदन है । बन गुन बरनत जुगल बदन है ॥४१।
रास-बिलास विबिध रसमडित । सोभित श्री बनराज अखंडित ॥४२॥
जब जैसो चहियै तब तैसो । बन्यौ रहत बृंदाबन ऐसो ॥४३॥
नित राधा-पिय को हित पोषै । सुचि रुचि सहज सकल विधि तोषै ४४
गुपत प्रगट गति कही न परई । अति अगाध महिमा बन धरई ॥४५॥
परिकर पुंज कुंज परिपूरन । पुलिन मंजु चिंतामनि चूरन ॥४६॥

३२–रसहि–दरसि (लंदन) ।

[२६] आँजैं=(नेत्रों में) अंजन की भाँति लगाते हैं। वे रंग बन के दल आदि में छाए रहते हैं। [३१] जटौं=जटित करूँ ।

अकथ अगम्य अलौकिक सोहै। को है जो बन दूखनि जोहै ॥४७॥
दृग रसना बन-रस-जस-लायक। दैहै बन उदार सुखदायक ॥४८॥
सोई लखि या रसहि भाखिहै। चाखि चाखि अभिलाषि राखिहै ॥४९॥
मोकौं सदा सरन यह बन है। राधाजीवन - जीवन - धन है ॥५०॥
बसौ निरंतर आँखिन आगै। पल पल जोति अपूरब जागै ॥५१॥
बन मेरो हौं वृंदाबन को। बन - रखवारो है मन-पन को ॥५२॥
आनँदघन वृंदाबन बसै। महामधुर रसधारा रसै ॥५३॥

कबित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम - नैन पहचानहीं।
राधिका - दरस को सुदेस आदरस यही,
चाह्योई करत जब जब जैसो जानहीं।
ऐसे रंगमूरति बसे हैँ एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं।
जमुना कैं तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैंई बखानहीं ॥ ५४ ॥

स्याम यामैं बसे यह बसै स्याम-हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै।
यही वृंदाबन देखौ प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन की डीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै।
नैन बैन मन सौं समोय राख्यौ वड़भागी,
तिन ही की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरजधाम मोहि ऐसैं दीसि परयौ,
दीसत न काहूं बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥ ५५ ॥

५३-बसै-बसौ (वही)। ५४-यही-याहि (वृंदा०)। हैं-हौं (लंदन)। ५५-बैन०-मन साँवरे को मोहि।

[५४] गोभा=अंकुर। दरस=दर्शन। सुदेस=सुंदर। आदरस=दर्पण। [५५] ईठि=इष्ट, प्रिय।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदाबन कहौ कैसैं करि दीसई ।
दीसत दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरयौ मति हरैं हरि हरि बिसे बीसई ।
परैं तें परैं है भयौ हाय यहै बृंदाबन,
राचैं रज जाँचैं ईसहू से बकसीसई ।
ताहि दौरें जात पाय लियौ है सवनि सूधौ,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ॥ ५६ ॥

बृंदावन-माधुरी अचंभे सौं भरी है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै ।
अंग रंग-संग-एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधा रानी अवरेखियै ।
सुबन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदी-कूल,
आनँद को घन रसमूरति विसेखियै ।
देखत दुरयौ सो अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा ही पै परस-गुन पेखियै ॥ ५७ ॥

बृंदाबन पाइबे को गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहूँ गए तें रस-पारस क्यौं पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकें,
सुभर भरयौ लै तौ लौं उर न वसाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा-चरन-रज आँखिनि अँजाइयै ।
निगम विसूरि थाकें पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥ ५८ ॥

५७–ह्वै–है (बृ दा०) । ५८–लै–है (वही) ।

[५६] हरयौ=हराभरा । बिसे०=बीसो बिस्वा, पूर्णतया । बकसीस=प्रसाद । परीसई=स्पर्श करे । [५८] भानुजा=राधिका ।

व्रजस्वरूप

चौपाई

व्रज को सुख-सुरूप कछु कहौं। कहि कहि परमानंदहि लहौं ॥१॥
बसत स्याम अभिराम जहाँ हैं। सब सुख सेवक सदा तहाँ हैं ॥२॥
परम प्रेमपूरन व्रजदेस। व्रजरज बंदत सेस महेस ॥३॥
व्रज के लोग महा वड़भागी। सुंदर स्याम सहज लौ लागी ॥४॥
जीवन को फल व्रजजन देखैं। देखैं कान्हैं मानत लेखैं ॥५॥
कँवलनैन व्रजलोचन-तारो। नंद-जसोदा-बारो प्यारो ॥६॥
थिर चर रह्यौ कृस्न उजियारो। गिरिधर या व्रज को रखवारो ॥७॥
धनि यह व्रज धनि ये व्रजबासी। कृस्नचंद्र-चंद्रिका-प्रकासी ॥८॥
या व्रज नित हित-उत्सव रहै। याकी उपमा कौं कछु न है ॥९॥
कहौं कहा धौं व्रज को मोद। बरसत नित आनंद-पयोद ॥१०॥
मुरली-नाद मोहि सब राखै। पुरवत सुख-सवाद अभिलाषै ॥११॥
गोपी गोप गाय रस-पगे। मन अरु प्रान कान्ह सौं लगे ॥१२॥
व्रज-मोहन देखेई जियैं। नैननि रूप-सुधा भरि पियैं ॥१३॥
यह सुरूप सुख समझत येई। इनहि स्याम सुंदर सुख देई ॥१४॥
स्याम-संग के रंग निहारैं। रीझि रीझि सर्वसु लै वारैं ॥१५॥
व्रजसमाज देखैं बनि आवै। कहि कोऊ किहि भाँति बतावै ॥१६॥
जो सुख सबनि अगोचर आहि। कैसैं बरनि बतैयै ताहि ॥१७॥
व्रजछबि देखन के दृग औरै। परमानंद ठौर ही ठौरै ॥१८॥
जिनको व्रज जो ये दिखरावैं। तौ ये नैन दृस्टि-बल पावैं ॥१९॥
निरवधि आनँदमय व्रजधाम। निवसत सदा स्याम अभिराम ॥२०॥
परिकर प्रेमपुञ्ज सँग सदा। विलसत लीला-सुख-संपदा ॥२१॥
व्रज विनोद-सागर रससार। अति अगाध अति अगम अपार ॥२२॥
कहियै कहा महारुचि रवनी। कवनी निपट नंद-व्रज-अवनी ॥२३॥

३—बंदत-वंदित (वृ दा०)। ११—पुरवत—पुरवन (वही)। १८—कै—कौं (वही)। २२—रससार—संसार (लदन)।

[२३] कवनी=(कमनीय) सुंदर।

दृगनि देखि अद्भुत दुति दीसै। ब्रज - बसुमती रती ब्रजईसै ॥२४॥
नँद नंदीसुर नीकैं बसैं। गाँव गाँत्र गोपनि गन लसैं ॥२५॥
सब ही सौं सब ही हित नातैं। मन मिलि बंधुन तन कै हातैं ॥२६॥
प्रेम-तंत करि जंत्रित अंतर। अंतर - रहित सुतंत्र निरंतर ॥२७॥
गोधन ठाट कहाँ लौं कहियै। धन अरु धान अलेखैं लहियै ॥२८॥
बास-निकट ही खरिक सुहाए। बिसद बिलास परम छबि छाए ॥२९॥
बगर गरथारैं गली पुनीत। घर घर मंगल - मंडित गीत ॥३०॥
देखत बनै बनै बरनै न। ब्रज दरसैं तेई बर नैन ॥३१॥
ब्रजमोहन जीवन सब जी के। पूरन करत मनोरथ ही के ॥३२॥
ग्वालबाल-कोलाहल जित तित। नित उतसव मोहन-जोहन-हित ॥३३॥
सबै ओर सोभा सुखसाज। जय ब्रजमंडन जय ब्रजराज ॥३४॥
जित जैयै तित नित सुख पैयै। देखत देखत मन न अघैयै ॥३५॥
अति उतंग ओपित चौपारैं। ललित चौहटे बनत निहारैं ॥३६॥
ब्रजमोहन बिहरत रहठान। ग्वैंडे निकसि चुहल चौगान ॥३७॥
चहूँ ओर सुभ सुदर तरबर। ढिंग ही लसत साँवरे सरवर ॥३८॥
अमल अपूरब दरपन कहा। ब्रजमोहन - छबि जोहन महा ॥३९॥
घाट पनघटनि खेलनि खोरनि। पैरनि दृगनि रूपरस - बोरनि ॥४०॥
रितुरितु सुखनि सहज ही बिलसत। सदा एकरस लसत सु हुलसत ॥४१॥
जसुदानंदन - जस ब्रज छायौ। तातैं लागत परम सुहायौ। ४२॥
जब लखियै तब तब मन भायौ। ब्रज भीजन चौमासो आयौ ॥४३॥
आनँदनिधि ब्रजमोहन - धाम। बन्यौ रहत ज्यौं चाहत स्याम ॥४४॥
बारस मास जहाँ चौमासौ। हित-किसान कैं कहूँ न साँसौ ॥४५॥

२६–कै–कौ (लंदन)। २८–धान–धाम (वृंदा०)। ३२–करत०–करन मनोहर (वृंदा०)। ३७–बिहरत–बिहरन (लंदन)। ४०–रस–सर (लंदन)। ४४–आनँद०–आनँद ब्रजमय (लंदन)।

[२४] रती=अनुरक्त। [२५] नंदीसुर=नंदगाँव। [२६] हातै=दूर। [२७] तंत=तंत्र। [३६] चौपार=चौपाल, गाँवों में घर के बाहर की बैठक। [४५] बारस=(द्वादश) बारह।

उघरि उघरि बरसै आनँदघन । या रस भीजे राजत ब्रजजन ॥४६॥
घमड़ि स्याम घन झरहि लगावै । ब्रज की छवि देखेँ बनि आवै ॥४७॥
हरियारा नित ही हरि-प्यारो । ब्रज-उजियारो ब्रज उजियारो ॥४८॥
बरहे हरे भरे सर जित तित । हित-फुहार की झमक रहति नित ॥४९॥
जुहीँ सुहीँ सुख गुहीँ खिली हैँ । लता ललित तरु उमगि मिली हैँ ॥५०॥
झूमि अँध्यारी दै घन घोरनि । ब्रज बोलै बन वारी मोरनि ॥५१॥
व्यापि रहति झाई झिंकार । जित तित माचति प्रेम - पुकार ॥५२॥
दिन अधराति परत नहिँ पायौ । ब्रज आनँदघन भीज भिजायौ ॥५३॥
निपट कौँवरी काँवरि खोही । ब्रज - उजियारे पै अति सोही ॥५४॥
सिथिल कसूँभी पाग छबीली । अलबेले की बनक रँगीली ॥५५॥
सखा संग अलबेल अनेक । हरि-हित धरि धरि अपनी टेक ॥५६॥
टरत न कहूँ कान्ह तजि पलकौ । कही न परति हिये की ललकौ ॥५७॥
बन मैँ मन मैँ विहरत डोलै । हित के चायनि गायनि बोलै ॥५८॥
सघन कदम-तर बूँद बरावत । छतना छबि पावत कछु गावत ॥५९॥
बन व्यापक मुरली की टेर । आवति ब्रजवासिनि औसेर ॥६०॥
कान रमैँ ब्रज सोभित सदा । ब्रज बरसत सब सुख संपदा ॥६१॥
गिरि गोधन हरियारो रहै । चौमासो नित वासो गहै ॥६२॥
झूमे रहत गिरि - सिखर बादर । बोलत मोर पाँति भरि आदर ॥६३॥
नव घनस्याम चंद्रिका धरैँ । अपनो भाग निहारयौ करैँ ॥६४॥
गुंजमाल तन धातु विचित्र । तैसेइ बने ठने सब मित्र ॥६५॥
निकसि जात जिनकौँ चित चाहत । ब्रजमोहन ब्रजबन अवगाहत ॥६६॥

४६–जन–वन (कवित्त) । ५०–सुख–हित (लंदन) । ५४–काँवरी–कमरि (वहीं) । ६०–आवति–शोभति (लंदन) । ६२–हरियारो–हरि धारो । नित–जित (लंदन) ।

[४९] बरहे=नाले । [५४] काँवरी=कमली । खोही=घोघी । [५५] कसूँभी=पीली । पाग=पगड़ी । [५८] बोलै=बुलाते हैं । [५९] छतना=पत्तों का बना छाता । [६०] औसेर=व्यग्रता । [६२] नित०=नित्यवास सदा चौमासा में रहता है । [६५] धातु=मिट्टी ।

ठौर ठौर की सोभा नई। व्रज की बानिक अचरजमई ॥६७॥
बकुल सकुल कदंब मिलि फूले। सौरभ-बिबस पलट अलि भूले ॥६८॥
स्याम - सुअंग सुगध समोई। व्रजबन-बासित नित हित-भोई ॥६९॥
महकत व्रजबन सोह जु महा। व्रजबन को सुख कहियत कहा ॥७०॥
नित ही चौंपभरे बनवारी। व्रजजीवन बनराजबिहारी ॥७१॥
जमुना - कूल कदंबनि मूल। निर्जन ठौर केलि - अनुकूल ॥७२॥
सुथरी ठौर फूल - दल फैल। जहँ रुचि सौं बैठत व्रज छैल ॥७३॥
सुकृत-पुज-फल बैठि निहारत। राधारमन नाम - गुन धारत ॥७४॥
कहौ परति क्यौं इनकी आरति। बृंदाबन बन मौन पुकारति ॥७५॥
चनक मूँद खग मृग सब चकैं। मदन गुपाल केलि-रस छकैं ॥७६॥
व्रजस्वरूप देखत व्रजलोचन। व्रजबन रुचिरोचन दुखमोचन ॥७७॥
नित व्रज बसत लसत व्रजनागर। यह व्रज अद्भुत रस को सागर ॥७८॥
कृस्नचंद - हित बाढ्यौ रहै। व्रजमोहन जू को व्रज यहै ॥७९॥
यह व्रज यह व्रज यह व्रज मोहि। सूझि परयौ व्रज की रज टोहि ॥८०॥
व्रजबन स्यामस्वरूपहि सूझै। बिन रज लहैं न कोऊ बूझै ॥८१॥
व्रजस्वरूप अति निगम-अगम है। रजहि मिले तैं मिलत सुगम है ॥८२॥
अंजन यहै सूझ हू यहै। व्रजरज - सरन गहै रज रहै ॥८३॥
व्रजरज - सरन गहैं रज रहौ। व्रजमोहन-लीला - निधि लहौ ॥८४॥
मगन रहौं लीला - सुख चहौं। व्रजरस व्रजमोहन सौं कहौं ॥८५॥
नित नित चौंप नई चित मेरैं। या व्रज की सुख - संपति हेरैं ॥८६॥
लीला ललित नित नयो चाव। अब कछु ऐसो सहज सुभाव ॥८७॥
नित व्रजमोहन-केलि निहारौं। पाय पाय प्रानन हौं वारौं ॥८८॥
नित गोचरन नित गोदोहन। नित नव रंग रसिक व्रजमोहन ॥८९॥

६८—सकुल—सकल (वही)। बिवस०—लपट बिवस अति (वही)। ६९—समोई—समोय। ७०—कहियत—कहिये (वही)। ७२—निर्जन—निझनक (वही)। ७७—रोचन—रोचत। ८१—स्वरूप-रूप ही (वही)।

[७६] चनक०=खुलना और बंद होना। [८३] रज=राजत्व, महत्त्व।

दान-केलि नित आदित-पूजन। नित कोलाहल नित ब्रज ऊजन ॥९०॥
नित त्यौहार बार ब्रजजन कैँ। नित रस भीजैँ सुंदर घन कैँ ॥९१॥
खरिक खोरि ब्रज बाग गरथारे। कहा कहौँ लागत अति प्यारे ॥९२॥
निकसत लसत साँवरो छैल। रोकत मन-नैननि की गैल ॥९३॥
अटक-भटक की भैँट अटपटी। हितकनौड़ चित चाह-चटपटी ॥९४॥
ब्रज घर घर गोपिन के गीत। मधुर खरे रसढरे पुनीत ॥९५॥
कान्ह-कथा सोवत अरु जागत। सोवनि जागनि अचिरज पागत ॥९६॥
ब्रज गोपालमई ह्वै रह्यौ। ब्रजसरूप कछु परत न कह्यौ ॥९७॥
सो जानै जो यह ब्रज निरखै। करै पान आनँदघन तिरखै ॥९८॥
कछु ब्रज कछु रस कछु ब्रजरूप। जु कछु सु सब कछु परम अनूप ॥९९॥
ब्रजरस पियत पियत ही जियौँ। जियत जियत ब्रजरस हीं पियौँ ॥१००॥
मोकौँ यह ब्रज सदा सहाय। मन दृग बंछित लियौ दुहाय ॥१०१॥
ब्रजरस पियत पियत न अघाऊँ। बहकि एक ब्रजरस बरराऊँ ॥१०२॥
रात द्यौस एकै ब्रज दीसै। ब्रजरस परसि नवाऊँ सीसै ॥१०३॥
ब्रजगोरिन की हिलग हिय बसी। मतिगति अति ब्रजरति गुनगसी ॥१०४॥
ब्रजस्वरूप बरनै ब्रजवानी। और कौन को बुद्धि अयानी ॥१०५॥
ब्रजभापा रसनै अपनावै। तौ ब्रजकथा तथा कहि आवै ॥१०६॥
ब्रजरस उफनि बढ़ै हिय-सोत। रसना ह्वै ह्वै प्रगटित होत ॥१०७॥
चढ़ै रंग ब्रजरस को बातहि। तब पावै ब्रजरस की घातहि ।१०८।
चित चढ़ि रहै चुहल ब्रजजन की। ह्वै जु रही ऐसी गति मन की ॥१०९॥
या ब्रज ही सौँ बान बन्यौ है। ब्रजजीवन रसरीति-सन्यौ है ॥११०॥
ब्रजमोहन ब्रजबधू-विलास। नितपूजव्रत ब्रजबसि मो आस ॥१११॥

९०—ऊजन—ऊतन (वृंदा०)। ९१—बार—हम (लंदन)। ९५—ढरे—करे (वही)। ९७—मई०—नई है (लंदन)। ९८—तरखै—वरखै (वृंदा०)। १००—सुहाय—सुहाउ (वृंदा०)। १०५—ब्रजवानी—बरवानी (वृंदा०)। १०८—ब्रजरस—मा रन (लंदन)। १०९—चढ़ि—चाढ़ (वही)।

[९०] ऊजन=धूम। [१०२] बरराऊँ=बकूँ (सोने समय स्वप्न देखकर बकना बरराना है)। [११०] बान=सजधज।

ब्रज बसि ब्रजबासिन की आस। सुफल भयौ मेरो ब्रजवास ॥११२॥
हौँ या ब्रज अरु यह ब्रज मेरो। सुवस लह्यो ब्रजवास बसेरो ॥११३॥
आनँदघन ब्रजरस-पन पक्यौ। ब्रजमोहन मादक-गुन छक्यौ ॥११४॥
नित ही ब्रजरस की रट लागी। रसना आनँदघन-पन पागी ॥११५॥
ब्रजरस अमल खरे तैँ खरौ। मो विन और गरैँ जिन परौ ॥११६॥
ब्रजरस अब तौ गरैँ परयौ है। रस ही लै रसरूप ऊरयो है ॥११७॥
ब्रजरस ही हिय-बीच भरयौ है। रसना ह्वै अपढार ढरयो है ॥११८॥
ब्रजमोहन ब्रज की ये बातैँ। को समझै अरु कहिये कातैँ ॥११९॥
कहै कहावै आपै सुनै। अपने गुन मो रसना गुनै ॥१२०॥
ब्रजमोहन ब्रजरस की बात। कहत सुनत रसिया न अघात ॥१२१॥
ब्रजरस ब्रजरस ही सब रस है। ब्रजरस आनँदघन-सरवस है ॥१२२॥



११२–सुफल–सफल (वही)। ११४–मादक–रस ही मैं (वही)।

[११८] अपढार=आपसे आप ढलना।

गोकुलचरित्र

चौपाई

गोकुल में रस रमड़्यौ रहै। आनँदघन जहँ घमड़्यौ रहै ॥ १ ॥
गोकुल की छबि कबि क्यौं कहै। गो जब लौं गोकुल नहि गहै ॥ २ ॥
महा मधुर रस रसना पगै। गोकुल क गुन गुन मैं खगै ॥ ३ ॥
जगै जोति गोकुल को मन मैं। डीठ घिरि फबै रूपरमन मैं ॥ ४ ॥
गोकुल को सुरूप तब दरसै। रोम रोम बानी रस बरसै ॥ ५ ॥
सो गोकुल गोकुल को मूल। नंद - जसोमति - हित-अनुकूल ॥ ६ ॥
जगमगात गोपिन के ऐन। गोकुल को सुख बरनि बनै न ॥ ७ ॥
घर घर कृस्न बिराजत सदा। लियँ ललित अपनी संपदा ॥ ८ ॥
हित-बितान घर घर पर तने। गोपो गोप लसैं सुख - सने ॥ ९ ॥
कान्हरूप - रस दिनदिन पियैं। प्यासे रहैं महा रुचि हियैं ॥१०॥
या गोकुल के रू· । गरथारे। बिहरैं गोकुलचंद पियारे ॥११॥
चहल पहल चौंपनि सौं डोलनि। चोखभरी बोलनि सुकलोलनि ॥१२॥
रस की रमड़ कछु न कहि आवै। गोकुल - सुख देख्यौई भावै ॥१३॥
नवल वधू गोकुल की मुनो। परखैं लाल खिलारी गुनी ॥१४॥
पनघट खरिक ताकरस छाकै। अद्भुत-फल सवाद फल पाकै ॥१५॥
डीठि प्रान राखे जु समोय। बरनै को जु मिलैं सुख होय ॥१६॥
बन सहेट गोचारन - समैं। बानक रचि सु कहूँ तित गमैं ॥१७॥
बनबिलास द्रुम - बेली घनी। ललित वलित रसमय सुखसनी ॥१८॥
या बिधि की अनेक बिधि हेटैं। छैला छैल को पैठै पेटैं ॥१९॥
सबसौं सबकी साध पुजावै. पूरन गोकुलचंद कहावै ॥२०॥
बन तैं गाइनि पाले आवनि। एक डीठिऊ तनरस प्यावनि ॥२१॥
दोहन - समै कामना दुहै। जैसी जासौं चित की जु है ॥२२॥

[२] गो=वाणी। [३] खगै=लीन होती है। [१४] मुनी=राय-मुनी, लाल पक्षी की मादा। [१७] कहूँ = कदाचित्। तित=वहाँ। [१९] हेटैं = सहेट-स्थान।

रूपरासि रसपोखे अंग। फूलमाल उर बरसै रंग ॥२३॥
सुठि सूछम केसरी लपेटा। रौंत भरथौ चित-चौंप चपेटा ॥२४॥
चिकने केस घूँघरे घनैं। बिमल कपोलनि आलैं बनैं ॥२५॥
छबि की छटा छलनि कैं छूटै। बिन ही छलनि नैन-मन लूटै ॥२६॥
भौंह भेद की भरी असैठी। सूघे लखैं जाति हिय पैठी। २७॥
नैन मैन की सैन सँजोए। मिलैं डीठि उर होत न जोए ॥२८॥
घिरी घेरई रहनि यात लै। करै अनसुनी सकल बात लै ॥२९॥
गिरिबन कुंज खरिक अरु वाखरि। हित-मतंग पै परि पन-पाखरि ॥३०॥
जब ज्यौ जहाँ जीविका लहै। जिय मिलाय न्यारे मिलि रहै ॥३१॥
क्यौं कोऊ यह सुख अनुमानैं। गोकुल बसैं रसैं अति गानैं ॥३२॥
सबको जीवन नंदकिसोर। सब रस रूप दियै निसि भोर ॥३३॥
सब अभिलाष-कलपतरु मोहन। अद्भुत लता लहलहै गोहन ॥३४॥
फल दै फल चाखै अभिलाषै। अद्भुत तरु- वेलो-रस - राखै ॥३५॥
सब अचरज है अचरज मानैं। अद्भुत रस के वस हम जानैं। ३६॥
यह गोकुल-हित नित ब्यौहार। मंगल मोद सदा त्यौहार ॥३७॥
गोकुल दरसै सदा रसीलो। आनँदघन उमंग - वरसीलो ॥३८॥
मचियै रहै चुहल चायनि की। गुपत प्रगट अपअप भायनि की ॥३९॥
भूमि-भाग महिमा को बरनै। मन दै देखि कहत है चरनै ॥४०॥

---

[२४] सुठि=सुंदर। सूछम=पतला महीन । लपेटा=पगड़ी । रौंत=ठकुराई। [२५] आलैं=गीले या स्थान में। [२६] छलनि = छल्लों से। [३०] पाखरी = झूल । [४०] चरनै = पद को, कविता को।

प्रेमपहेली

चौपाई

मोहन इत ह्वै निकसे आय । हौं ठाढ़ी अपने जु सुभाय ॥ १ ॥
डीठि डीठि मिलि भयौ मिलाप । ढुरि घुरि मिली आप ही आप ॥ २ ॥
फूलि भूलि वेऊ अरु हौं हूँ । रहे लोभ लगि डर अरु गौं हूँ ॥ ३ ॥
उनकी वे जानैं क्यौं कहियै । पै अपनो मन कहूँ न लहियै ॥ ४ ॥
बहुत पर्चा अपनो सो ऐंचि । हँसि चितवनि लै गई सु खैंचि ॥ ५ ॥
दुरी रहति क्यौं हित की गोभा । देखै स्याम - सुधानिधि सोभा ॥ ६ ॥
उघरि परैगी गैल गरथारै । वात नेह की साँझ सवारै ॥ ७ ॥
दैया चंद लिये तैं कैसैं । जियरा जानत वींध्यौ जैसैं ॥ ८ ॥
उत उतहूँ कछु गहो गहनि है । कहि कैसैं रहि सकै रहनि है ॥ ९ ॥
भोर साँझ इत ही ह्वै आवै । गायनि लै चायनि सरसावै ॥१०॥
टेरत सखै सुनावत मोही । कहा करौं तव बूझति तोही ॥११॥

---

[३] गौं = घात । [५] पर्चा = परेशान हुई । [६] गोभा = अंकुर, प्राकट्य, अभिव्यक्ति ।

रसनायश

चौपाई

रसना तेरी बलि बलि जाऊँ। सुमिरै स्याम-सुधानिधि-नाऊँ ॥ १ ॥
रसना रस की अवधि सुजान। निसदिन करै कृस्न-गुनगान ॥ २ ॥
रसना तेरो भलो सुभाव। जानै हरिचरितन को चाव ॥ ३ ॥
रसना है तू ही बड़भागी। मधुसूदन-गुन सौं अनुरागी ॥ ४ ॥
रसना तु ही सकल रसरानी। हरि भजि सफल करी तैं वानी ॥ ५ ॥
रसना तु ही सवादहि जानै। ब्रजमोहन के चरित बखानै ॥ ६ ॥
रसना तो सी तु ही न दूजी। नित ब्रजजीवन-रस पी तू जी ॥ ७ ॥
रसना को तेरो जस भाखै। नित ब्रजवधू-रसासव चाखै ॥ ८ ॥
रसना तैं ही सौभग पायौ। नाकैं जसुमति-लाल लड़ायौ ॥ ९ ॥
रसना तो सी तु ही सभागी। नित राधा राधा रट लागी ॥१०॥
रसना तू मोकौं अति भावै। दंपति-बिसद-विहारहि गावै ॥११॥
रसना तू ही रसवति पूरी। ब्रजवन-कथा सजीवन-मूरी ॥१२॥
रसना तु ही मनोरथ-वेली। हरि-राधा-रसरंगनि झेली ॥१३॥
रसना तू रस-रतन-मंजूषा। खुली लसै विलसै निसि ऊषा ॥१४॥
रसना तु ही रसामृत-सरसी। हरिगुन-अमल-कमल-रुचि दरसी ॥१५॥
रसना हित-चिंतामनि-माला। हरिगुन-गूँथित परम रसाला ॥१६॥
रसना तू सब सुख की स्वामिनि। रची रहति हरि सौं दिनजामिनि ॥१७॥
रसना तू सुखदायनि मेरी। नित हित-हरि-नामावलि फेरी ॥१८॥
रसना सोवत जागत जागी। कृस्न कृस्न रटना रुचि पागी ॥१९॥
रसना प्रेमनेम-हित-जन्या। राधाधवहिं सुमिरि भई धन्या ॥२०॥
रसना बदन-सदन की सोभा। कृस्न-मयंक-चंद्रिकनि लोभा ॥२१॥
रसना रसिकराय सौं बीधी। भली भाँति गुनगन गसि गीधी ॥२२॥

[१४] ऊषा = प्रभात, दिन। [२२] गसि = बँधकर। गीधी = परच गई है।

रसना मेरो जनम सुधारयौ । ब्रजपतितनय-नाम-पन धारयौ ॥२३॥
रसना हरि-बिनोद - हित-मैना । पन - पिंजर बोलति रस-बैना ॥२४॥
रसना तू अनुरागनि पाछी । गोबिंद-गुनगन गरिमा साछी ॥२५॥
रसना सदा रसमसी राजै । रसानिधान सौं अति रति साजै ॥२६॥
रसना तू नित ही हित सरसै । मधुर किसोर-नाम सुख परसै ॥२७॥
रसना यह रस पियत न अरसै । चातक-रुचि आनँदघन बरसै ॥२८॥

---

[२५] पाछी = पाँखें या पक्षी । [२८] अरसै = आलस्य करे ।

गोकुलविनोद

नंद - गोकुल बरनि बानो बिसद जोति - निवास ।
जहाँ नित्यानंदघन अद्भुत अखंड विलास ।। १ ।।
स्याम रुचि सुचि सरस सीतल तरनितनया-कूल ।
डहडहे तरु सघन सुंदर लसत सुषमा - मूल ।। २ ।।
ललित कुसुमित फलित बलित बिसाल वेलि तमाल ।
परसि नीर समीर विलुलित भ्रमित मधुकरजाल ।। ३ ।।
अति सुदेस सुगंधमय दीपित सुपेसल भूमि ।
पुहप-पुंजनि हरषि बरखत रहत तरु घन झूमि ।। ४ ।।
मुदित केकी कुल कुलाहल करत रहत अनूप ।
सकल रितु सुख सब समय जहँ अमित उत्सव-रूप ।। ५ ।।
जगमगत मंगलनिकर - ओपित अमल आवास ।
चैन चरितनि चुहल चहुँदिस परम प्रेम - हुलास ।। ६ ।।
मलय-द्रुम-छबि फबि रही सुभ सुखद द्वारहि द्वार ।
अगरबासित बगर नित ही मोद-सौरभ - सार ।। ७ ।।
नंद - मंदिर कांत कौतुक बनि रह्यौ भरि भाव ।
मनहु मधिनायक बिराजत अति अभूत जराव ।। ८ ।।
रुचिर वदनमाल राजति मनि जलजदल नूत ।
सदा मंगलचार नूतन वर विनोद अभूत ।। ९ ।।
लसत विलसत रहत नित गोपाल लाल अनूप ।
नंद-जसुमति - प्रान व्रजजन - नैन - उत्सव-रूप ।।१०।।
गोप - गोपी - वृंद गोधन महा गहमह मोद ।
परम रसमय गान धुनि नित कृस्नचरित-विनोद ।।११।।

६–हुलास–उलास (वृंदा०) ।

[४] पेसल = मनोहर । [७] मलय = चदन । बगर = घर । मोद = गंधः हर्ष । [८] नायक = माला में बीचोंबीच का बड़ा गहना पदिक । [९] वंदन० = वंदनवार । नूत = नवीन ।

खरिक बिसद बिसाल अगनित रुचिर-रचना-ऐन।
कलपतरु बिचबिच बिराजत धैन - हित सुखदैन ॥१२॥
सरस गोदोहन तहाँ गोबिंदलीला - धाम।
प्रात संध्या केलि-कोलाहल परम अभिराम ॥१३॥
नित्य गोचारन मनोहर सुभग जमुना - तीर।
वेनुवादन - माधुरी आभीरनंदन - भीर ॥१४॥
अखिल-सुख-सुषमा - सदन बिहरत सदा बलबीर।
परम कौतुकरूप स्यामसरीर गुनगंभीर ॥१५॥
पुलिन वन गिरिकुंज क्रीड़ा अतुल आनँदरासि।
सदनमोहन परम सोहन अंगरंगनि भासि ॥१६॥
सुहृद सखिनि समाज को सुख देखि बिथकित नैन।
बनविहार अनेक विधि के अमित अचरज-ऐन ॥१७॥
बिधि-सिवादिक भूलि सुमिरत सम्हरि मतिगति साधि।
पचत नित चित रचत हित तित अमित रस आराधि ॥१८॥
सो सहज ब्रजजननि की जीवनि निरखि निसिभोर।
भूमि-भागनि वरनि वंदत निरखि नंदकिसोर ॥१९॥
नित नई लीला ललित बिधि करत नंदकुमार।
नर अमर खग मृग बिमोहन अति रसामृतसार ॥२०॥
रसिक नटवर भेस परम सुदेस रूप अपार।
ब्रजवधू आनंदघन - लीला-सरस - आसार ॥२१॥
मंजु मुरली - गुंज अति सुखपुंज गरज रसाल।
चातकी गोपी - स्रवन - पुट पूरि होति निहाल ॥२२॥
परम रम्य अनूप वृंदारन्य सुखद प्रदेस।
रास-रसागर तरंगित लखि सरद राकेस ॥२३॥

१३–केलि०–कल कुलाहल परम अति (वृंदा०)। १४-वादन–मादन (लंदन)। १८-भूलि भूमि (वृंदा०)। १९–भूमि-भूरि (लंदन)।

[१२] धैन=धेनु। [२१] आसार=वृष्टि। [२३] राकेस=पूर्णिमा का चंद्रमा।

ललित अति रसबलित तरुन तमाल कंचन-वेलि।
राधिका-हरि-भाव भरि सूचत सदा नव केलि ॥२४॥
फूल फल दल मूल रस-अनुकूल सम सब काल।
कृस्नमय आदरस बन घन दिपत जोतिनि जाल ॥२५॥
तहँ निरंतर नंदनंदन करत बिबिध बिनोद।
ब्रजतरुनि-रसतृषित-हित नित बरसि प्रेम-पयोद ॥२६॥
गान अद्भुत तान बर वधान निर्त सुदेस।
सरस अभिनय-निपुनतामय भरि अतुल आवेस। २७॥
इहि बिहार बिनोद प्रमुदित सदा गोपीनाथ।
रसिक राधारवन लीनैं जुवतिजूथनि साथ ॥२८॥
परम गहवर रुचिर सुचि रुचि-पुंज मंजुल कुंज।
नव - प्रसून - पराग - मंडित सरस मधुकर-गुंज ॥२९॥
माधवीदल - रचित पेसल बिसद अद्भुत सैन।
तहँ निवेसित स्याम स्यामा परसपर सुखदैन ॥३०॥
अमित आनँद उमग की गति कहि सकै मति कौन।
तिन कृपा तैं होत अनुभव गहति बानी मौन ॥३१॥
अमित अंगनि ओप अनुपम महारूप - प्रकास।
करौ नित हित-सहित है मो नैन-मन मैं वास ॥३२॥
सहचिरिन के बृंद सँग लै लसत जमुना - तीर।
अति सुखद जलकेलि-हित तिहि उचित सजि सजि चीर ॥३३॥
चीकने मेचक रुचिर मुंचित सुकुंचित केस।
निसि रसाल सु छबि रही फबि पीक अंजन-लेस ॥३४॥
घूमरे लोचननि की गति अति सिथिल मद छाकि।
जलकनी बरुनी-अनी पर लखि रहत चित चाकि ॥३५॥

[२६] निर्त = नृत्य। सुदेस = सुंदर। [२९] गहवर = गुप्त स्थान। [३०] निवेसित = स्थित। [३४] मेचक = काले। मुंचित = मुक्त, खुले। कुंचित = टेढ़े। [३५] घूमरे = मतवाले।

अधर निसि बीरी-रचनि की खुलि रही रुचि-रेख ।
दसन-छत अनुरागसूचक उरसि नख - उल्लेख ॥३६॥
गंड रद - मुद्रावली कर मुकरमुद्रा देखि ।
लाज लालस भरनि दृग हिय सुख-समय अवरेखि ॥३७॥
सरस परिमल लपट झपटनि भृंग तजत न पास ।
सुहृद अति ढिग ह्वै निवारति मानि मन मैं त्रास ॥३८॥
लाल की लंपट - दसा देखत लसति भ्रुव भंग ।
मंद मुसकनि - संग उपजति चाह अमृत-तरंग ॥३९॥
प्रानसम सहचरि विसाखा नरम बचननि बोलि ।
भावना नवबधू - मुख तैं देति घूँघट खोलि ॥४०॥
मंजु मंजुल कुंज ढिग ही तरनितनया - घाट ।
पुरट मनि मरकतनि की तति तहाँ मंजन-ठाट ॥४१॥
बहुत विधि जलकेलि के सुख लेत देत सुजान ।
रूप - जोबन - मद-छके मिलि करत मादक-पान ॥४२॥
मानसर सुभ थान तिहिं ढिग नव तमालनि पाँति ।
चढ़ि सतेसनि बढ़ि महा रुचि करत सुख बहु भाँति ॥४३॥
कमल-कुन्न-मंडलनि मधि सधि साधि राखत नाव ।
माधुरी के धाम दंपति रचत रुचिर बनाव ॥४४॥
मलित मींचनि दृगविमोचनि मुख मरोचनि फैलि ।
झीन पट तन लपट अनुपम निरखि छाकत छैल ॥४५॥
कबहुँ पैरन चुभक लै लै दूरि लौं ढुरि जात ।
अति तृपित रस प्यास रसनिधि नैकहू न अघात ॥४६॥

३७—मुकर—सुकर (लंदन) । ४०—देति—देखि (वृंदा०) । ४१—ठाट—बाट (वृंदा०) । ४६—रसनिधि—सरनिधि (वृंदा०) ।

[३६] दसन० = दंतक्षत । उरसि=छाती पर । [३७] गंड०=कनपटी । रद० = दाँतों की गोल छाप । मुकर = दर्पण । [४०] सहचरि = सखी । नरम = (नर्म) परिहास । [४१] पुरट = सोना । तति = पंक्ति । मंजन = मार्जन, स्नान । [४३] सतेस = फुरती, शीघ्रता । [४६] चुभक=डुबकी ।

तीर मनि-चौकान पै छबिभीर लीने साथ।
आनि ठाढ़े होत सब मिलि बसन टपकत पाथ ॥४७॥
नख-चरन-मदअंतिका-रुचिरचनि जानत नैन।
रचति मति नति ठनति मनसा लेति चुंबन चैन ॥४८॥
पलटि पट संजमत केसनि मृदुल अग अंगोछि।
वारियै मनिमुकर-आभा-ओघ पट पद पाछि ॥४९॥
चद्रमल्ली-पुंज की नव कुंज बिहरत आय।
जहाँ बृंदा अति भली बिधि रची बनक बनाय ॥५०॥
पदकमय मडल मनोहर मृदुल आसन आजि।
रूपरासि किसोर दोऊ दिपत बैठ बिराजि ॥५१॥
बरन बरन दुकूल अति सुखमूल सजत सवारि।
जलज-भूषन भावते जगमगे अंगनि धारि ॥५२॥
सरस सोधे बहुत बिधि के रचत बेलिन चोंप।
पहिरि पहिरावत परस्पर उपजि मनसिज कोंप ॥५३॥
बिबिध मेवा मधुर लोने धरे उर अभिलापि।
कुंदबेली हितनवेली प्रति सराहत चाखि ॥५४॥
बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल।
बदन बिच बिच बचन-रसमै लसत जोतिनि जाल ॥५५॥
ललित रागिनि तान की धुनि रचि रहे रिझवार।
स्रवनपुट सहचरिनि के पूरत महा रसधार ॥५६॥
बीनबादन-स्वाद परम प्रवीन ललिता सग।
उपज मन की लेति मनु है सरस बरसति रंग ॥५७॥

४७–चौकान–चौकीन (लदन)। ४६–ओघ–ओप (वही)। ५३–परस्पर–परापर (लंदन)। ५५–बीरा–बीरी (वही)। ५७–है–दै (वही)।

[४७] चौका=वर्गाकार चौकोर पत्थर। पाथ=जल। [४८] मदअंतिका=मदयंतिका, माल्लका, वेला। नति=विनय। [४९] संजमत=एकत्र करते, बटोरते हुए। ओघ=समूह, बाढ़। [५०] मल्ली=वेला। वृंदा=राधा। [५१] पदक=पैर के चिह्न। आजि=बिछाकर। [५५] अदन=खाना।

मुरलिका मधि स्यामसुंदर रचत सुर - विस्तार।
नादरस - सागर तरंगित होत बारंबार ॥५८॥
रीझहू रीझति बिवस ह्वै लखि रसिक रिझवार।
द्रुमलता अरु वर बिहंगम लहत पुलक अपार ॥५९॥
पवन गवन थकै सरित जल महा मोहन नाद।
सरस्वती भूली अपुनपौ कहै कौन सवाद ॥६०॥
समय बिथकित चकित चेतन रही नाहि सम्हार।
धन्य बृंदारन्य रम्य अगम्य बिसद बिहार ॥६१॥
एकरस दंपति मुदित नवकेलि कैँ आधार।
घमड़ि सुर-रस रमड़ि नित आनंदघन - आसार ॥६२॥
काहि सुधि निसि भोर की इहिँ केलि- आसव-पान।
आपनैँ गुनरूप को नित करत हैँ मिलि गान ॥६३॥
ये कलाधर प्रेम के तजि नैन अतुल अखंड।
बनबिनोद - प्रसाद सौँ पावन अखिल ब्रह्मंड ॥६४॥

———

५८—तरंगित—तरंगनि (वृंदा०)। ६४—बन—घन (वृंदा०)।
[६२] रमड़ि = बरसकर। आसार = वृष्टि।

व्रजप्रसाद

चौपाई

नंदगाँव बरसानैं बसौं। सोभा निरखौं हरषौं लसौं॥ १॥
दुहूँ घरनि की चारयौं ओर। गावत फिरौं साँझ अरु भोर॥ २॥
मोहन-राधा-मंगल-गीत। अति मनभावन परम पुनीत॥ ३॥
सुख सोहिले मनाऊँ सदा। या व्रज यह आनंद संपदा॥ ४॥
जसुमति नंद कीर्ति वृषभान। व्रज पालत लालत निज प्रान॥ ५॥
इनके घरनि सदा त्यौहार। नित नित व्रज मैं हित-व्यौहार॥ ६॥
यह सुख देखि जियौं हँसि खेलि। बरनौं व्रजमंडन की केलि॥ ७॥
धन्य धन्य मेरो बड़भाग। या व्रज सौं सरस्यौ अनुराग॥ ८॥
या व्रज को सुख हौं हीं जानौं। या व्रज बसि जस-रसहि बखानौं॥ ९॥
हौं व्रज को व्रज मेरो नित ही। पाल्यौ पोख्यौ इनके हित ही॥१०॥
व्रज के खरिक खोरि नित देखौं। भागनिकाई लेखैं लेखौं॥११॥
व्रजबासिन को निज परिवार। मन-आँखिन सुख देत अपार॥१२॥
व्रज की साँज महा सुखदाई। सहज माधुरी कही न जाई॥१३॥
गोधन खरिक खेत अरु क्यार। गोरस दहल नाज अरु न्यार॥१४॥
सुखी सदा व्रजपति कैं राज। सिद्ध करत मनचीते काज॥१५॥
रसभीज्यौ व्रज रंग स्याम कैं। मंगल गहमह धाम धाम कैं॥१६॥
व्रजसंपति मो नैननि दीसै। या व्रज कौं नित देत असीसै।१७॥
यह व्रज सुबस बसौ ऐसैं ही। या व्रज बसौं रसौं जैसैं ही॥१८॥
बन बरहे व्रज के नित हरे। ग्वारनि गायनि के हित भरे॥१९॥
बिहरत मोहन मदन गुपाल। कदम पसैहू ताल रसाल॥२०॥

१५–चीते–चिंत (वृंदा०)।

[४] सोहिले = मंगल। [१४] खरिक = गोचरभूमि । क्यार = केदार, क्यारी। दहल = कुंड। नाज = अनाज, धान्य। न्यार = (नियार) भुस आदि। [१९] बरहे = नाले। [२०] पसैहू = कोई पेड़। रसाल = आम।

छाँह छाँह चायनि भरि बैठति । बन के सघन सदन मैं पैठति ॥२१॥
बहुत भाँति के सुखनि सकेलति । किलकति मुलकति बिहरति खेलति ॥२२॥
नैनन के तारे ब्रजमोहन । सदा बिराजौ सोहन जोहन ॥२३॥
सरस सरोवर जमुना - तीर । बिहरत सदा कान्ह बलबीर ॥२४॥
जित तित ही नित सुखनि समाज । धन्य धन्य ब्रजपति को राज ॥२५॥
मोद बिनोद गाँव गाँवनि है । नित नित ब्रजमोहन आवनि है ॥२६॥
गोधन - सिखर खरेई रहैं । फूलि फैलि गोधन को चहैं ॥२७॥
ऐसे ब्रज कों देखत रहौं । ब्रज की सोभा कैसैं कहौं ॥२८॥
यह ब्रज दरसै जगत - उज्यारो । अति प्यारो ब्रजलोचन-तारो ॥२९॥
रोम रोम सींचे ब्रजरस मैं । ब्रज बसि बिबस फिरौं ब्रज बसि मैं ॥३०॥
ब्रजबीथिन ब्रजबागनि फिरौं । छकौं थकौं ब्रज हेरौं हिरौं ॥३१॥
यह ब्रज मोकों अति ही भावै । जित तित मोहन मोहि दिखावै ॥३२॥
ब्रज की सेट सहेट सुहाई । रह्यौ सदा आनँदघन छाई ॥३३॥
भजिभजि रहत कान्ह ब्रजबासा । मा मन आँखिन के सुखरासा ॥३४॥
सबै ठौर ब्रज स्याममई है । मन नैननि यह सहज भई है ॥३५॥
ब्रज मैं मोहन माद नयौ है । ब्रज मो कौं सुखदैन भयौ है ॥३६॥
यह ब्रज भरै भाव सौं मोहि । ब्रजमोहन की मूरति जोहि ॥३७॥
ब्रज-जीवन - ब्रज जीवन मेरो । रस-प्यावन रस - पोवन मेरो ॥३८॥
बसिबे को सुख ब्रज मैं बसै । यह ब्रज मेरी आँखिनि लसै ॥३९॥
जा कछु चैन होत ब्रज हेरैं । लहत सु मोहन बसि मन मेरैं ॥४०॥
ब्रजके चरित कहत नहिं आवैं सो मन लोचन चाहि सिरावैं ॥४१॥
भूरि भाग मेरे ब्रज बसि कै । सरस्यौ हित ब्रजरूप दरास क ॥४२॥
ब्रजनायक ब्रजराज - दुलारो । रूपरासि ब्रज को उजियारो ॥४३॥
लीलामगन मोहिं ब्रज दरसै । नेह - मेह मोहीं पै बरसै ॥४४॥

३२-मोहँ-मोह (लंदन) ।

[२१] छाँह० = छाया भी छाया में चाव से बैठती है । मुलकति = प्रसन्न होती है । [२७] गोधन = गोवर्धन पर्वत । गोधन = गायों का झुंड । [३१] हिरौं = खो जाऊँ ।

ब्रजरस मैँ भीज्यौ ब्रजनायक। ब्रज मैँ मोहि महा सुखदायक ॥४५॥
जित जैयै तित मोहन पैयै। ब्रज बसि ब्रज को उदौ मनैयै ॥४६॥
ब्रज को भाग भावतो मोहन। सफल करत नित नित मो जोहन ॥४७॥
स्यामरूप आनंदनि भरथौ। मोहि दीसि या ब्रज मैँ परथौ ॥४८॥
यह ब्रज मोहन यह ब्रजमोहन। दुहूँ एक से लागत सोहन ॥४९॥
ब्रज को बिभौ देखि मन फूलै। यह ब्रज मोकौँ हित-अनुकूलै ॥५०॥
मो मन भीज्यौ ब्रजबिनोद है। चहूँ कोद आनँदपयोद है ॥५१॥
यह ब्रज नित सुखसिंधु कलोलै। ब्रज को चंद सदा ब्रज डोलै ॥५२॥
आँखिन को सुख ब्रज-दरसन है। आनँदघन बरसन सरसन है ॥५३॥
अहोभाग या ब्रज कौँ लखौँ। ब्रज की सीँव न कबहूँ नखौँ ॥५४॥
ब्रज को बास बस्यौ मन-नैननि। याको रस बरसत है बैननि ॥५५॥
कहा, कहौँ या ब्रज की बात। ब्रजमोहन लखि बैन सिरात ॥५६॥
ठौर ठौर ब्रजमोहन लखियै। महा रूपमाधुरी परखियै ॥५७॥
या ब्रज सौँ हित-चित को नातो। ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस-माँतो ॥५८॥
सजल स्यामघन ब्रज ब्रजमोहन। मन अरु नैन भावतो दोहन ॥५९॥
ब्रज को बास कछु लागत प्यारो। लखि ब्रजमोहन होत न न्यारो ॥६०॥
ब्रज दरसै दरसै ब्रजमोहन। लग्यौ रहत मन-लोचन गोहन ॥६१॥
बिहरौँ ब्रज की गलियनि गलियनि। मानत मनमोहन की रलियनि ॥६२॥
ब्रज बसि भोर साँझ यौँ बितऊँ। ब्रजमोहन के कौतुक चितऊँ ॥६३॥
ब्रज को सुख-सवाद मन पोषै। ब्रज मोकौँ सब ही बिधि तोषै ॥६४॥
यह ब्रज मेरो मंगल - ऐन। ब्रज मंगल - स्वरूप मन-नैन ॥६५॥
ब्रज मैँ दिपै स्याम की जोति। मो दृग जगमग जगमग होति ॥६६॥
ब्रज के सुखै कहि सकै कौन। देखत रहौँ कहौँ गहि मौन ॥६७॥
ब्रज अपनो रस उफनि बहावै। नातरु कहूँ कहत क्यौँ आवै ॥६८॥
कहा कहा ब्रजसुख की कहियै। देखत देखत देखत रहियै ॥६९॥
ब्रज को नाम लेत हिय हेत। ब्रजहि चाहि चित चेत अचेत ॥७०॥
कछु कहि परै कहा ब्रजरीति। ब्रज पूरन ब्रजमोहन - प्रीति ॥७१॥

[५४] सीँवँ=सीमा। नखौँ=लाँघूँ। [६२] रलियनि=क्रीड़ा।

ब्रजमोहन - सनेह ब्रज भोयौ । ब्रजमोहन ब्रज-मोह - समोयौ ॥७२॥
निपट लटपटे ब्रज अरु मोहन । निरखत ब्रजहि अटपटे जोहन ॥७३॥
जैसो यह ब्रज लागत नीको । तैसो ही सरूप ब्रज ही को ॥७४॥
अहो अहो ब्रज अरु ब्रजनायक । ललित किसोर परम सुखदायक ॥७५॥
ब्रज मैं मोहन - मुरली बजै । ब्रजगोरिनि - समाज सुख सजै ॥७६॥
गैल घाट ब्रज के रसमसे । ब्रजमोहन की लीला लसे ॥७७॥
ब्रजसनेह सौं सानि करयौ है । यह ब्रज लै ब्रज माहिँ धरयौ है ॥७८॥
या ब्रज सो यह ब्रज ही आहि । यह ब्रज चाहि और सुधि काहि ॥७९॥
ब्रजकिसोर ब्रजमोहन स्याम । ब्रजजीवन ब्रजनायक नाम ॥८०॥
ब्रज मैं करत खेल मनभाए । ठौर ठौर आनँदघन छाए ॥८१॥
यह ब्रज आँखिन आगैँ रहै । सूझै बूझै यह ब्रज यहै ॥८२॥
यह ब्रज एक गहि रह्यौ मन कौँ । ब्रज ही पालै पूरन पन कौँ । ८३॥
अति उदार ब्रजराजकुमार । नित या ब्रज सरसत सुखसार ॥८४॥
चलत भोर गायनि लै बन कौँ । पालत ब्रजबन के हित-पन कौँ । ८५॥
ब्रजवन बरसि आपने रसै । ब्रजमोहन आनँदघन लसै ॥८६॥
या ब्रज की हौँ बलि बलि जावँ । धनि ब्रज धनि ब्रज मोहन नावँ ॥८७॥
यह ब्रज देखि नैन - मन मोहै । या ब्रज की पटतर ब्रज सोहै ॥८८॥
ब्रज अनूप ब्रजमोहन - रूप । आँखिन बस्यौ सरूप अनूप ॥८९॥
देखि जियौँ ब्रज - सुंदरताई । स्यामरूप - सुषमा ब्रज छाई ॥९०॥
यह ब्रज मोहिं मोहनै दरसै । दरसि दरसि हौँसनि हिय सरसै । ९१॥
यह ब्रज अचिरज-रस सौँ भरयौ । चखि भरि मैँ प्यासनि ही धरयौ ॥९२॥
मोहन ब्रज को मोहन रूप । देखत बनै सरूप अनूप ॥९३॥
सींचे दृगनि सुरस के सोतन । उझलि परयौ ब्रज को रस मो तन ॥९४॥
ब्रजसरूप नैननि मैँ छायौ । ब्रजमोहन मोहन ब्रज पायौ ॥९५॥
ब्रज को ब्रज मो नैननि जोहै । मोहन ब्रज मोही को मोहै ॥९६॥

७३–जोहन–मोहन (वृंदा०) । ७७–घाट–घटा (वही) । ७८–करयौ–कढ़यौ (वृंदा०) । ८०–जीवन–मोहन (वंदन) । ८६– ब्रज–वन (वृंदा०) ।

[७३] लटपटे = एक में लिपटे । [९४] सोत = स्रोत । तन = ओर ।

ब्रज को सुख ब्रजमोहन सजै। ब्रज मैं सुजस - दुंदुभी बजै ॥९७॥
ब्रज-जुवराज सदा सुख भोगै। को समझै ब्रजबिरह - सँजोगै ॥९८॥
बिछुरि मिलन मिलि बिछुरन ब्रजरस। या ब्रज मैं पूरन अचिरज-रस॥९९॥
ब्रजानंद ब्रज पूरन महा। या ब्रज को सुख कहियै कहा ॥१००॥
यह ब्रज देखि- देखि ही रहियै। मौन कहावै तौ कछु कहियै ॥१०१॥
अकथ कथा है या ब्रजरस की। बिबस करत ब्रजरस पावस की ॥१०२॥
ब्रज के बसै बसै ब्रज हियैं। बढ़त प्यास ब्रजरस ही पियैं ॥१०३॥
यह ब्रज परम प्रेम - फुलवारि। ब्रज बसि नवरँग स्याम निहारि ॥१०४॥
भए नैन ब्रजचंद - चकोर। निरखत रहत साँझ अरु भोर ॥१०५॥
यह ब्रज महामोद को मूल। या ब्रज भरी भावती फूल ॥१०६॥
लग्यौ रहत ब्रजरस को चसको। ऐसो है चसको ब्रजरस को ॥१०७॥
रससरूप ब्रजमोहन स्याम। आँखिनि बसे रहत ब्रजधाम ॥१०८॥
सोवत जागत ही ब्रज दरसै। ब्रजमोहन आनँदघन बरसै ॥१०९॥
ब्रज ब्रजमोहन अति रससनै। दोऊ आहिं एक ही बनै ॥११०॥
मोहिं सदा देखत ही भावै। ब्रजमोहन ब्रज सुनि दरसावै ॥१११॥
अहो अहो ब्रजरस की रीति। अहो अहो ब्रजबास-प्रतीति ॥११२॥
अहो अहो ब्रज को अनुराग। अहो अहो ब्रज को सौभाग ॥११३॥
अहो अहो ब्रज को सब लोग। नित नित मोहन-रस को भोग ॥११४॥
अहो अहो ब्रज को ब्यौहार। नित ही ब्रज मोहन त्यौहार ॥११५॥
अहो अहो ब्रज अहो अहो है। ब्रजमोहनहि मोहि अति सोहै ॥११६॥
यह ब्रज देखि सिराने लोचन। यह ब्रज निरखि थराने लोचन। ११७॥
ब्रजसरूप सौं डीठि खची है। महामोद की रचनि मची है ॥११८॥
जैसो यह ब्रज लागत प्यारो। जानत ब्रजलोचन को तारो ॥११९॥
ब्रजमोहन ब्रज है मेरे धन। ब्रजमोहन ब्रज सौं मेरो पन ॥१२०॥
ब्रज-सुख-सोभा मन-दृग बसै। ब्रजमोहन-सुरूप-विधि लसै ॥१२१॥
ब्रज को वास निरंतर रहै। ब्रजमोहन - लीलारस वहै ॥१२२॥

११४–मोहन-सोहन (लंदन)। १२०–ब्रज सौं–मन को (वृ दा०)।
१२२–वहै–यहै (लंदन)।

[१०६] फूल = प्रसन्नता। [१२२] वहै=प्रवाहित हो।

ब्रज आनँदघन उनयौ दरसै । झूमि झूमि मोहन रस बरसै ॥१२३॥
भरयौ पपीहा चौंपनि सोहै । ब्रजरस ब्रजमोहन-मन मोहै ॥१२४॥
रसप्यासनि वरसै या ब्रज मैं । ब्रज समोय राख्यौ अचरज मैं ॥१२५॥
जै जै ब्रज जै जै ब्रजनायक । जै जै ब्रजसमाज-सुखदायक ॥१२६॥
ब्रज है वस्यौ बैन अरु मौनैं । मन ब्रज बसौ थम्यौ तजि गौनैं ॥१२७॥
इकरस इक जस ब्रज को गह्यौ । ब्रजजीवन-रस-ब्रज बसि लह्यौ । १२८॥
रसना ब्रजरस नीकैं चाख्यौ । सोधि साधि हियरा भरि राख्यौ ॥१२९॥
ब्रज बसि ब्रजरस वढ़यौ हुलास । सफल भयौ मेरो ब्रजबास ॥१३०॥
यह ब्रजबास न कबहूँ छूटै । ब्रजसरबसु दै दै मन लूटै ॥१३१॥
अब तौ ब्रज मन-मोहन लग्यौ । ब्रजमोहन - लीलारस-पग्यौ ॥१३२॥
मन तन ब्रज ह्वौ व्यापक भयौ । अंतर सबै दूरि भजि गयौ ॥१३३॥
ब्रजप्रसाद तन मन कौं मिल्यौ । उझिलि उझिलि ब्रजरस मैं झिल्यौ॥१३४॥
मन तन मिलि ब्रजरस के वसैं । याही तैं नित ही ब्रज बसै ॥१३५॥
जितहिं रहै तित ब्रज मैं रहै । याको मरम न कोऊ लहै ॥१३६॥
ब्रजमोहन अंतर मैं पैठि । निज ब्रजसहित वसै तन पैठि ॥१३७॥
तन मन एकमेक ब्रज - रंग । ब्रजमोहन ब्रज एकै संग ॥१३८॥
ब्रज को बास निरंतर आहि । यह ब्रजबास मिलै धौं काहि ॥१३९॥
ब्रजप्रसाद ब्रजबासहि पायौ । ब्रजरस यौं तन मनहि समायौ ॥१४०॥
या तन मन मैं ब्रज ही वसै । कौन लहै या तन - मन-दसै ॥१४१॥
तन-अभिमानी मरम न पावै । ब्रजानंद-रस मनहि न भावै ॥१४२॥
ब्रजप्रसाद-रस मन तन-न्यारौ । ब्रजरसमय तन मनहि बिचारौ ॥१४३॥
ब्रजप्रसाद - रस रसना भिदै । पावै भेद भरम सब छिदै ॥१४४॥
ब्रजप्रसाद - रस स्वादहि लहै । रस ही परस-सवादहि कहै ॥१४५॥
ब्रजप्रसाद - रस-महिमा भूरि । निगमागमनि बताई दूरि ॥१४६॥
ब्रजप्रसाद - रस चेटक महा । जो पावै सो गावै अहा ॥१४७॥
धन्य धन्य यह ब्रजप्रसाद-रस । रसिक-मुकुटमनि सरस कृपावस ॥१४८॥

१३१—सरबसु—रसबसु (वृंदा०)। १३७—पैठि—बैठि (लदन)।
[१३५] बसैं=बस में । बसै=बसता है ।

प्रान पलैं या ब्रजप्रसाद तैं। गिरा रसवती या सवाद तैं ॥१४९॥
ब्रजप्रसाद रसस्वाद प्रवंध। महा मनोहर मधुर सुगंध ॥१५०॥
ब्रजप्रसाद रस-रसिकनि संगति। पैयै परम प्रेम - पन-पंगति ॥१५१॥
ब्रजप्रसाद ब्रज रसिया दियौ। रोम रोम रसमै इन कियौ ॥१५२॥
ब्रजप्रसाद ब्रजरस - उदगार। रसिक-सजीवन प्रान-अधार ॥१५३॥
ब्रजप्रसाद को पायौ पारस। नित ही गुन गाऊँ तजि आरस ॥१५४॥
ब्रजप्रसाद को पूरन भाग। लह्यौ कह्यौ उर भरि अनुराग ॥१५५॥
भजी भूख पै तृपति न तनकौ। कहा कहौं जाँचत सुक सनकौ ॥१५६॥
ब्रजप्रसाद-महिमा मन दीजै। पाय पाय जीजै रस पीजै ॥१५७॥
ब्रजप्रसाद पायौ अनयास। पाय पाय बाढ्यौ बिसवास ॥१५८॥
ब्रजप्रसाद तैं सब दुख टरे। तन मन परमानँद-रस-भरे ॥१५९॥
ब्रजप्रसाद को पूरन पोप। रसवस लह्यौ प्रान-परितोप ॥१६०॥

———

१५१—रस—सुख (लंदन)। १५३—रस को ब्रजरस (वृ दा०)।

मुरलिका-मोद

चौपाई

सोहन की मुरली बन बाजी। मादक अधरनि आय बिराजी ॥१॥
धुनि सुनि छाकनि छाय रही है। प्राननि मिलि मँडराय रही है ॥२॥
सुर की भरनि धीर कौं रितवै। बिषम पीर हियरा पै बितवै ॥३॥
सुंदर मुसकौहैं मुख सोहै। तान-कटाछन मरमहि पोहै ॥४॥
पूरनि मैं मुख-सुषमा पूरै। चेटक चटक चौंप चित चूरै ॥५॥
रुचिर अग्ररुचि दसन अधर दबि। सो जानै जिन जोही यह छबि ॥६॥
भौंह भाल नासिका निकाई। अँगुरिनि नचन संग अधिकाई ॥७॥
नाद रूप के रूप रयौ है। एकमेक ह्वै प्रगट भयौ है ॥८॥
सुघरसिरोमनि राग रच्यौ है। मुरली सौं अनुराग मच्यौ है ॥९॥
बन-बेलिनि धुनि पूरि रही है। जमुना-गति क्यौं परति कही है ॥१०॥
दुहुँ तट सुरनि पाटि यौं राख्यौ। थकी छकी सु कौन रस चाख्यौ ॥११॥
पुहप-पुंज कुंजनि झर लाग्यौ। धुनि-बस द्रवीभूत गुन जाग्यौ ॥१२॥
टग लगाय खग-रूप निहारैं। स्रवन-नैन-फल संग बिचारैं ॥१३॥
थिर चर कैं अंतर धुनि ब्यापी। विषम रागिनी कान्ह अलापी ॥१४॥
सब सुख भाग निकट ह्वै पावैं। हम घर घिरी उदेगनि छावैं ॥१५॥
अब ऐसी गति आनि बनी है। कानन सालति सुरनि अनी है ॥१६॥
बिन बाजेहू बजति रातदिन। कौन भाँति की गहनि गही इन ॥१७॥
घायल प्रान घूमि घुरि मूझै। सुर सामुही घरनि घिरि जूझै ॥१८॥
बिष की लहरि सुरनि सँग सरसै। तीखी ताननि सरसै बरसै ॥१९॥
मुरली कित को बैर बिसाह्यौ। कियौ बिधाता याको चाह्यौ ॥२०॥
जगै आप अरु हमैं जगावै। ताती धुनि उर आग लगावै ॥२१॥
क्यौं ब्रजबसै कौन विधि जीवै। बिष सो नाद अमृत लौं पीवै ॥२२॥
बिसवासी कान्हा बस याकै। कछु न विचारत या रस छाकै ॥२३॥
याही सौं अनुराग बढ्यौ है। को जानै इन कहा पढ्यौ है ॥२४॥
जगमोहनहू मोहि लियौ है। रुकै बहुरि कौन को हियौ है ॥२५॥

११-यौं-यँ (नदन)।

[१३] टग=टकटकी। [१८] मूझै=मूर्छित होता है।

अधरनि तेँन होति छिन न्यारी । ब्रजजोवनहीँ जिय की ब्यारी ॥२६॥
पूरन प्रेम प्रगट पन पालै । घरघाली औरनि घर घालै ॥२७॥
जु कछु करै सु याहि सब छाजै । निधरक भई रैनदिन गाजै ॥२८॥
धनि सुबंस जिहिँ प्रगट भई है । सब सुखरासि सकेलि लई है ॥२९॥
याके पाय पूजिबे लायक । रच्यौ रहत जान्यौँ ब्रजनायक ॥३०॥
कौन काज गुनरूप हमारो । जौ परसै नहिँ प्राननि प्यारो ॥३१॥
परस रहौ दरसहू न पैयै । कौन भाँति यह जीव जिवैयै ॥३२॥
निकसि न सकत रहत घर घेरी । जरि किनि जाहु लाज की बेरी ॥३३॥
अब सब त्यागि लागिहैँ गोहन । अंक भरैँ निसक ब्रजमोहन ॥३४॥
कोऊ कहा हमारो करिहै । उर मैँ अरयौ भावतो हरि है ॥३५॥
जिन बजाय बुधि सुधि सब हरी । प्रेम परनि ताही सोँ परी ॥३६॥
सब कछु जाहु रहौ पन पिय को । मुरलीधर जीवन या जिय को ॥३७॥
अब तौ सुरसवाद - सोहिली । जोन्हरूप ब्रजचंदहि मिली ॥३८॥
कौन सकै करि न्यारी हमैँ । अपने रमन रग मिलि रमैँ ॥३९॥
एक संग सुख लहि लहि जियैँ । आँखिन भरि सुरूप-रस पियैँ ॥४०॥
वसी सखी मिलाप रचावै । नाचै मिलि जो नाच नचावै ॥४१॥
सरस रास बृंदाबन माँही । जमुना - तीर कलपतरु - छाँही ॥४२॥
आछी भाँति लेहि रस अपनो । धुनि सुनि जगी टरयौ डर सपनो ॥४३॥
मुरलीधर चिर जियौ प्रानधन । नित सरसैँ बरसैँ आनँदघन ॥४४॥
मुरली - सुर धुरवा-रस भरे । काननि छ्वै प्राननि पर ढरे ॥४५॥
हित-झर लग्यौ निरतर ऐसैँ । अतर सह्यौ परत अब कैसैँ ॥४६॥
पिय सुजान बंसी सुर - जान । चढ़ि बढि मिलो करैँ रसपान ॥४७॥
ढिग तैँ टरैँ न पूरन पन की । भई चातकी आनँदघन की ॥४८॥
श्रीबृंदाबन श्रीजमुना - तट । जुगल घाट सब विधि सुख-संवट ॥४९॥
गोप मास श्रीकृस्न पच्छ सुचि । सबत्सर अठानवै अति रुचि ॥५०॥
मुरली-सुर-सुख कहत न आवै । सो जानै जो सुनि गुनि गावै ॥५१॥

———

३६—परनि०—परमता तिहि सोँ (बृंदा०) । ४५—छ्वै—ह्वै (लदन) ।

[३३] बेरी=बेड़ी, बंधन । [३८] सोहिली=शोभित ।

मनोरथमंजरी

राग विहागरो] [इकताल मूलताल

राधामदन गुपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध-फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ॥ १ ॥
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सो तिन पर बगराऊँ ॥ २ ॥
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झबा मुकतान को झालरैं झुलाऊँ ॥ ३ ॥
सूची-गुन गस गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ॥ ४ ॥
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधौ साधि कै सुख-बिबस बसाऊँ ॥ ५ ॥
मनि-चौकी ढिग राखि कै हित-सौंज सजाऊँ ।
रुचित उचित मधुपान के भाजननि भराऊँ ॥ ६ ॥
मनि-चपकनि रचि राखि कै रुचि-रंग बढ़ाऊँ ।
महल-टहल बहु भाँति की हित-सहित सधाऊँ ॥ ७ ॥
लाल विहारिनि कौं तहाँ रसरीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाष पुजाऊँ ॥ ८ ॥
उमग लाज-छवि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या विधि निज करतूति को नीकैं फल पाऊँ ॥ ९ ॥
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसैं कहौं उठि बाहिर आऊँ ॥१०॥

२–भाय–भाव (लंदन) ‌। ७–'लंदन' में नहीं है ।

[३] पाट=रेशम । झबा=झब्बा, गुच्छा । [४] सूची=सूई । [६] सौंज=सामग्री । रुचित=रुचिकर [८] तलप=सेज ।

द्वार-झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।
टेरि लेहिं तब लाड़िलो-हित हुलसि सिहाऊँ ॥११॥
कछू कहैं लगि कान सो सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपत्ति सखी मनमाँझ दुराऊँ ॥१२॥
नैन-सैन जोबन-छको लखि भाग मनाऊँ ।
पान-पात्र मादक-रसैं रुचतो भरि प्याऊँ ॥१३॥
आपुस की रसमसनि कों क्यौं बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ॥१४॥
जुगल बदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल झेल अनुराग की मतिछकनि छकाऊँ ॥१५॥
बीरी सरस सुगधमै रुचि जानि खवाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कों सकुचनि पहिराऊँ ॥१६॥
औसर उसरि चल्यौ चहौं कछु उकति उठाऊँ ।
आँचरु ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ ॥१७॥
मोहिं भुज भरैं छकनि सों जिय समझि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसबाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ॥१८॥
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ ।
महामोद मानैं भटू ज्यौं ज्यौं अनखाऊँ ॥१९॥
अकथ कथा हित-रीति की हौं कहा चलाऊँ ।
हौं जानौं कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ॥२०॥

१२–कछू–कछु जु (वृं दा०)। १५–मद–मन (वृं दा०)। १६–खवाऊँ–पचाऊँ (लंदन)। १७–उसरि–ऊसर (लंदन)। छुटाऊँ–छुदाऊँ (वही)।

[११] जवनिका=परदा। छुटकाऊँ=डाल दूँ, खोल दूँ, खींच दूँ। [१३] रुचतो=रुचनेवाला। [१४] रसमसनि=प्रेमपूर्वक मिलना। [१७] उसरि०= उठकर चलना चाहूँ। उकति=उक्ति, बात।

भाजि इकौसी ह्वै रहौं कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सींचनि प्रान की नाहीं अरु हाँऊँ ॥२१॥
मानि बधाई चाव सौं मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपनी ठौर हौं मृदु बीन बजाऊँ ॥२२॥
केलि - रसमसे मिथुन कौं सुख - नींद अनाऊँ ।
या बिधि मनभायो करौं जगि रैनि बिताऊँ ॥२३॥
बड़े भोर अनुराग सौं भैरवी जमाऊँ ।
अति रति - मतवारेनि कौं नव प्रात जताऊँ ॥२४॥
फिरि फिरि पट तानैं तऊ बहुरयौं अहुराऊँ ।
निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ लगाऊँ ॥२५॥
आरस - भरी जभानि पै चुटकीनि चिताऊँ ।
अलक - तिलक - सेवा - समै आरसी दिखाऊँ ॥२६॥
बनैं ठनैं लाड़िलेनि कौं आँगन पधराऊँ ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरी चटकाऊँ ॥२७॥
निरखि डगमगी डगनि कौं भुज गहि सम्हराऊँ ।
नित नूतन रसरीति की चित चौंप बढ़ाऊँ ॥२८॥
तिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रसाऊँ ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौं कहा मिलाऊँ ॥२९॥
सहज रँगीलो जोट कौं जिय - बीच बसाऊँ ।
चित - चातक आनँदघनै रस - परस रमाऊँ ॥३०॥

२१–इकौसी–कुकौसी (वृंदा०)। २४–प्रात–वात (वही)। ३०–सहज–सरस (वृंदा०)।

[२१] इकौसी=ओट और एकांत मैं। कनसुवौ०=टोह लूँ, छिपकर बातें सुनूँ। हाँऊँ=हाँ भी। [२३] अनाऊँ=बुलाऊँ, लाऊँ। [२५] अहुराऊँ=हटा दूँ, खींच दूँ। [२६] चिताऊँ=चैतन्य करूँ। अलक०=केश सँवारने और तिलक लगाने के समय। आरसी=दर्पण। [२७] बनैं०=सँवारकर, सजाकर। अँगुरी०=उँगली चटकाऊँ। [२९] रसाऊँ=आनंदित करूँ।

व्रजव्यवहार

चौपाई

नंदराय को व्रज अति सोहै। नित नित व्रजमोहन-मन मोहै ॥ १ ॥
प्रेमपग्यो जगमग्यो बिराजै। सुख-समाज साजत व्रजराजै ॥ २ ॥
मोद-बिनोदनि भर्यो महा है। यासों यही समान कहा है ॥ ३ ॥
घरघर चुहल चैन की रहई। जित तित गोधन की गहमहई ॥ ४ ॥
नगर गरथारिन की छबि देखैं। जीवन जनम मानियत लेखैं ॥ ५ ॥
खेल्यो करत कान्ह जिन गलियनि। जसुमति-ललन आपनी रलियनि ॥६॥
सबको जीवन सब दृग - तारो। जसुमति - बारो जगत-उजारो ॥ ७ ॥
मैया को सुख कहत न आवै। कमलनयन लखि नैन सिरावै ॥ ८ ॥
बहुत खेल खेलत रुचि-रंगनि। निरखि सिहाति समाति न अंगनि ॥९॥
सरस सपूती भागभरी है। सबसु खनिधि सु लिलार धरी है ॥१०॥
गोपकुवाँर स्याम के संगी। घुमड़े रहत नेह - नवरंगी ॥११॥
ललित लला लौं सबै लडावति। जसुमति-हित-गति कहति न आवति ॥
सबकी बाखरि सब मिलि खेलत। ठौर ठौर सुखरासि सकेलत ॥१३॥
नंदराय के घर सुख जैसो। व्रज की बाखरि बाखरि तैसो ॥१४॥
पूरन परमनेह सों भोयौ। व्रजजीवनि व्रज सुखनि समोयौ ॥१५॥
गैयन लै बन चलत भोर जब। महाप्रेम की चुहल मचत तब ॥१६॥
जित की ओर चलत व्रजमोहन। मन-दृग तित उठि लागत गोहन ॥१७॥
प्रेम सरक सबके उर सलै। व्रजमोहन बन कौं जब चलै ॥१८॥
ग्वैंड़ै घेरि करत इकठौरी। बहुरँग धैन धूमरी धौंरी ॥१९॥
जित तित ग्वार छबीले निकसत। मोहन त्यौं निहारि हँसि बिकसत ॥२०॥
हिलनि मिलनि मोहन सखान की। लखत बनै नाहिन बखान की ॥२१॥
या बिधि सकिलि होत इकठौरैं। गोचारन बन बिहरनि बौरैं ॥२२॥
मिलवति गाय आय नव बाला। निरखति मनहिं मिलै नँदलाला ॥२३॥

[४] गहमहई = धूमधड़क्का। [६] रलियनि = क्रीड़ा। [९] सिहाति = प्रशंसा करती है। [१३] बाखरि = घर। [१८] सरक = वेदना।

वन घन ओट चोट हिय माँहीँ । फिरि घर जैबे कौँ मन माहीँ ॥२४॥
मिस ही विरमि करति लगि बातनि । गोरी भोरी भरी सुभाँतिनि ॥२५॥
सौँपति गायनि चौकसि कियेँ । छिन छिन चितै चितै मुख जिय ॥२६॥
सोचति हियेँ द्यौस की बितवनि । कहत न बनत चलै फिरि चितवनि ॥२७॥
टहलन गाय टहलि चित जात । कहा कहौँ ब्रज - हित की बात ॥२८॥

दोहा

ब्रजमोहनमै ह्वै रह्यौ, ब्रजबन जेतिक आहि ।
सबकी मति गति साँवरो, और कछू सुधि काहि ॥२९॥

चौपाई

बन पैठत गैयन सँग मोहन । सखा साथ सब ही बिधि सोहन ॥३०॥
बरहे सघन सदा सुखदायक । हरे सजल हरि-गोधन-लायक ॥३१॥
वन विनोद विहरत वनवासी । बन घन मचत कोलाहल भारी ॥३२॥
आप अपनी रुचि सौँ रुचि सानत । कान्ह कहत सोई मिलि मानत ॥३३॥
इक मन इक तन बनबन डोलत । गावत रीझत किलकत बोलत ॥३४॥
ब्रज के लोग महा बड़भागी । सदा स्यामघन सौँ लौ लागी ॥३५॥
ब्रज मैँ बसत सुरति वन वन मैँ । सबको भाव सबन के मन मैँ ॥३६॥

दोहा

उरझ अनोखी प्रेम की, ब्रजमोहन कैँ चाव ।
सब ब्रज मैँ उफनात हैँ, ब्रजमोहन के भाव ॥३७॥

चौपाई

बन कौँ चलत कलेऊ करिकै । कछुक पिछौरिनि छीँकनि धरिकै ॥३८॥
पहरक बीति गएँ बन गएँ । छाक चलो वन मैँ मन दएँ ॥३९॥
ब्रजजननी को हित क्यौँ कहियै । सब ब्रज व्यापि रह्यौ नित वहियै ॥४०॥
पठवति छाक कोवँरी बार । उत तैँ चलति दूध की धार ॥४१॥

[३१] बरहे=नाले । [३८] पिछौरिनि=दुपट्टों में । छींकनि=छींकों में लटकाकर । [३९] छाक=कलेवा । [४१] पठवति बार=भेजते समय । छाक०=कोमल कलेवा । धार=धारा ।

बिंजन विबिध सजोए छाकनि । कही न परति मोह की छाकनि ॥४२॥
जसुमति रोहिनि को हिय-हेत । स्याम राम ब्रज-सिसुनि समेत ॥४३॥
घरघर ब्रजप्रेम को एक रस । अपने अपने भाव-चाव - वस ॥४४॥
जित तित छकिहारी जुरि चलीँ । लगति रवाँनी ब्रज की गली ॥४५॥
सीसनि धरैँ छाक की डरियनि । तकति गुपाल-भूख की बरियनि ॥४६॥
चोँपनि जरी चमक सोँ चलैँ । ललन-दरस कौँ दृग कलमलैँ ॥४७॥
कानन कै मुरली-धुनि सोधति । ठीक पारि तित ही कोँ ओधति ॥४८॥
यकहि गुपालहि गैल पुकारति । उमगी परति प्रेम की आरति ॥४९॥
उत तेँ सुनि गुपाल की टेरनि । द्रुम चढ़ि हेरि पीत पट फेरनि ॥५०॥
मधुमंगलहिँ पठावनि सोहैँ । जाकैँ छाक ताकहीँ गोहैँ ॥५१॥
लेत दौरि सिरन तेँ उतारि । भोग-साँज हित रहत निहारि ॥५२॥
गिरि की सिलनि ढाक के पातन । बिंजन विविध सवाद अघात न ॥५३॥
मैयनि को हित छैयनि पालै । बन की केलि रुचत नंदलालै ॥५४॥
छकिहारी धावति लै छाकनि । बदन देखि डारति दृग-थाकनि ॥५५॥
बहुरि बहुरि छकिहारिनि आवति । जेँवन-सुख जननीनि जतावति ॥५६॥
भोजन-सुख सुनि महा सिहानि । सहज मोह मैयन की वानि ॥५७॥
यह नित ब्रजहित को ब्योहार । ब्रज मगल विनोद त्योहार ॥५८॥
कछु दिन रहैँ बगदि ब्रज-आवनि । ब्रज पर आनँदघन-बरसावनि ॥५९॥
नट गोपाल-भेष सब सजैँ । वैन सृंग दल आछैँ वजैँ ॥६०॥
गोधन धूरि धूँधरी महा । आवनि को सुख कहियै कहा ॥६१॥
चढि ओबरिनि बिलोकति गोपी । वासर-बिरह - चटक सोँ ओपी ॥६२॥

[४२] बिंजन=व्यंजन । छाकनि=कलेवा । छाकनि=तृप्ति । राम=बलराम । [४५] छकिहारी=छाक ले जानेवाली । रवाँनी=सुंदर । [४६] डरियनि=डाली । बरियनि=समय, वेला । [४८] कानन० = कानोँ से मुरली की ध्वनि की आहट लेतीँ हैँ । ठीक०=निश्चय कर लेने पर कि इधर से ही ध्वनि आ रही है उधर ही को चल पड़ती है । [५४] छैयनि=बच्चोँ को । [५७] सिहानि=लालसा । वानि=टेव, आदत । [५९] दिन०=दिन रहते । बगदि=पलटकर लौटकर । [६२] ओबरी=छोटा घर ।

रज-रँगमगे छबीले मोहन । आवत गावत गोधन गोहन ॥६३॥
उमँगि प्रेमनिधि - गोधन-ठाट । सोहत पूरन है ब्रज - बाट ॥६४॥
मंद मंद गति सौं ब्रजचंद । दृगनि सिरावत आनँदकंद ॥६५॥
दृग मिलि भैंट भावती होति । रज तैं बढ़ति दीठि हित-जोति ॥६६॥
खुलि खुलि मिलि घूँघट-पट टारि । चौंपनि भरति पलक अँकवारि ॥६७॥
हिय भरि नेहदसा-पन-पगी । आरति जोति चहूँ दिसि जगी ॥६८॥
पैठत पौरि दौरि जसु माय ; रोम रोम की लेति बलाय ॥६९॥
मोदभरी आरती उतारति । पानी वारि पियति जिय पारति ॥७०॥
वदन चूमि आँचर रज पोंछति । तपत नीर पग धोय अँगोछति ॥७१॥
हँसि बैठति लै ललहिं गोद मैं । फूली अँग न समाति मोद मैं ॥७२॥
मधुर कौर कछु सुकर खवावति । ब्रजजीवनहिं ज्याय ज्यौ ज्यावति॥७३॥
गोदोहन-सुख कहत न बनै । मन की खरक खरिक-रस सनै ।७४॥
दुहनि दुहावनि जो रस दुहै । इन ब्रज-खरिकनि हो मैं सु है ॥७५॥
मधुर किसोर कमलदल-लोचन । सब ही विधि सबकी रुचि रोचन ॥७६॥

दोहा

अतुल रूप-गुन-माधुरी, क्यौं मन नैन अघात ।
लगे रहत दिनरात यौं, ब्रज बसि याही घात ॥७७॥

प्रेम-वनिज-व्यौहार की, लगी रहत ब्रज पैंठ ।
निपट सुधाई मैं दुरी, ब्रजवासिन की ऐंठ ॥७८॥

आनँदघन ब्रज की कथा, कहियै कहा बखानि ।
मगन होत मन वचन हूं, परम प्रेम पहचानि ।७९॥

चौपाई

निस के सुख-समाज की बातैं । कहिबे मैं नहिं आवति घातैं ॥८०॥
नवरंगी गिरिधर सुखदाई । ब्रज बसि ब्यापी प्रेम लगाई ॥८१॥

[७३] सुकर=स्वकर, अपने हाथ से । [७४] खरक=खटक, चिंता । खरिक=पशुओं के बाँधने का स्थान । [७८] वनिज=वाणिज्य । पैंठ=हाट । सुधाई=साधापन; सरल ता । ऐंठ=वक्रता, बाँकपन ।

सो ब्रज प्रेम चहूँ बिधि देखौ। ब्रजबासिन ही सौं यह लेखौ ॥८२॥
ब्रज को ईस नंद बडभागी। जाको सुजस-जोति जग जागी ॥८३॥
जसुदा-कूँख भागनिधि-खानि। प्रगट्यौ कृस्न-रतन सुखदानि ॥८४॥
ब्रज-जराव मधि नायक सोहै। लीला ललित भाँति मन मोहै ॥८५॥
कबहुँक रसनिधान गिरधारी। गिरि-घटिया की सैल बिचारी ॥८६॥
ब्रज गोरिनि की आवनि गैल। ताकी रसिक साँवरे छैल ॥८७॥
मतु करि सखनि साँझ समझायौ। बड़े भोर को ठिकु ठहरायौ ॥८८॥
मुरली - धुनि संकेत सुनाय। जित तित तेँ सब लए बुलाय ॥८९॥
निकरो लै गाधन गिरि - घाँई। बने सबै मनमोहन दाँई ॥९०॥
खेलत चले भले यौं त्यागे। ब्रजजन-छवि निहारि अनुरागे ॥९१॥
महा कौतुकी कान्ह किसोर। हेरत हँसत जात सब ओर ॥९२॥
भागनि भरी हरी ब्रजभूमि। देखत फिरत स्याम घन झूमि ॥९३॥
बिहरत बिहरत गिरितट आए। दान लैन अभिलाषनि छाए ॥९४॥
गैयाँ बगरि चरन बन लागीं। मोहन-मुरली - धुनि अनुरागीं ॥९५॥
सुरति स्यामसुंदर मैं जिनकी। तिनहिं चरत हूँ यह गति इनकी ॥९६॥
कौन कौन की हिलगनि कहियै। ब्रज की लगनि देखि चकि रहियै॥९७॥
गिरि चढि कान्ह निहारत गायनि। भरे दानलीला-रस-चायनि ॥९८॥
सुबल सुबाहु तोष मधुमंगल। सुदर सुखद चतुर हित-उज्जल ॥९९॥
इनहिं आदि सहचर बहुतेरे। रहत नदनदन नित नेरे ॥१००॥
ब्रजमोहन तन मन सँग डोलत। प्रीति-कथानि परसपर बोलत ॥१०१॥
ब्रजदेवी देवी - पूजन - हित। गिरि-घटियाँ ह्वै निकसति हैं नित ॥१०२॥
दानीराय कान्ह की सैननि। समझि समझि हिय पावति चैननि १०३
पैंछर पाय आय गिरि छैंड़ी। धरि रहे ललित लकुटियनि बैंडी ॥१०४॥
घटिया घेरि जगाति लगाई। नंदलाल की अज्ञा पाई ॥१०५॥
बचन-चोख रसवाद बढावत। गाल बजावन गावत भावत ॥१०६॥
कान्ह किसोर एक ढिग ठाढ़े। महारूप गुन जोबन बाढ़े ॥१०७॥

[८४] भाग०=भाग्य के खजाने की खान । [८५] नायक=मणिक । [९०] घाँई=ओर । दाँई=दाहिनी ओर । [१०४] पैंछर०=पीछे पीछे । बैंड़ी=छेड़छाड़ की । [१०५] जगाति०=कर लेने का ठाट ठट लिया ।

चपल चखन ब्रज-तरुनी ताकत। दान-केलि-कौतुक-रस छाकत ॥१०८॥
झटकत झगरत गोरस मिस कौं। बोलत प्रखर बचन हँसि रिस कौं॥ १०९॥
छली छैल की घात अनेक। ब्रजनायक सब लायक एक ॥११०॥
कुंज - पुंज गह्वर गिरि-कंदर। बिहरत सुंदर रसिक-पुरंदर ॥१११॥
दान केलि कोलाहल माचत। लूटत दह्यौ ग्वाल मिलि नाचत ॥११२॥
फैलि परत गोरस-रस-झगरो। निबरत नाहिँ नेह नित अगरो। ११३॥
अनमिल बचन-रचन मन मिले। खिले बदन आनँद-रस-झिले ॥११४॥
बहुत भाँति विलसत ब्रजमोहन। सफल करत ब्रजजन-मन जोहन॥११५॥
ब्रजरस - भेद न कोई पावै। वेदौ नेति नेति करि गावै ॥११६॥
प्रबल प्रेम निज ब्रज विस्तरयौ। दीसत दृगनि दूरि लै धरयौ ॥११७॥
सरस केलि को सकै निहारि। बड़भागिनि गोकुल की नारि ॥११८॥
सब तजि भजति एक नँदनंदन। रसिकसिरोमनि सब जगबंदन ॥११९॥
सिव-अज लीला देखत मोहन। रस-उतकरस चरन-रज दोहन ॥१२०॥
सबको अगम सुगम सो इत है। जातेँ प्रबल प्रेम ब्रज नित है ॥१२१॥
तातेँ ब्रजजन - कृपा मनैयै। चरन-रैन बल इनके पैयै ॥१२२॥

दोहा

ब्रज को प्रेम प्रचंड अति, अमल अखंड अपार।
सुरनर मुनि बरनत सदा, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२३॥
ब्रजबासिन की अमल गति, समझि सकै नहिँ कोइ।
नंदराय कैँ बास बसि, जो ब्रजबासी होइ ॥१२४॥
यह लीला निरखै तबै, अचरज प्रेम बिकार।
जा-रस बस विह्वल सदा, रसिया नंदकुमार ॥१२५॥
सर्वोपर ब्रज की कथा, महा मधुर स्रुतिसार।
कृस्नचंद के हित भरयौ, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२६॥
अजित जात अपबस किये, प्रबल प्रेम कैँ फंद।
ब्रज ब्यापक लखियत सदा, पूरन परमानंद ॥१२७॥
ब्रजजन जीवन प्यास कैँ, ब्रजमोहन ब्रजप्रान।
निसिदिन ब्रजलीला - मगन, पूरन प्रेमनिधान ॥१२८॥

जहाँ तहाँ मचियै रहै, सुख-समाज की भीर ।
मुरलीनाद - सवाद - बस, रसिक छैल बलवीर ॥१२९॥
धनि धनि रसना रसवती, बरनति व्रज-रसरीति ।
मोहन ही के गुनहिं तैं, किये आपबस जीति ॥१३०॥

चौपाई

अपने गुननि बँधे रिझवार । पूरन प्रेमी नंदकुमार ॥१३१॥
लीला-रस लै रसना सानत । मो मुख ह्वै निज गुननि बखानत ॥१३२॥
सुनि सुनि रीझत रसिक उदार । व्रजव्यौहार रसामृत - सार ॥१३३॥
ऐसो कौन कहि सकै यह रस । व्रजमोहन की एक कृपा-बस ॥१३४॥
मन अरु बचन कृपाबस होय । मतिगति व्रज-रति रहै समोय ॥१३५॥
तब कछु उमगि उघरि यौं परै । रसहीं कैं बस रस विस्तरै ॥१३६॥
महा मनोहर व्रजव्यौहार । व्रजजीवन की कृपा-अधार ॥१३७॥
मोहन व्रजव्यौहार बखान्यौ । हियैं पैठि रसना पै आन्यौ ॥१३८॥
अपनो रससवाद - सुख लेत । या विधि मोहिं महासुख देत ॥१३९॥
नातरु अकथ कथा को कहै । मन अरु भेद-वचन क्यौं लहै ॥१४०॥
व्रजरस कहत सुनत अधिकार । दियौ कृपा करि नंदकुमार ॥१४१॥
तातैं कछु वरन्यौ व्रजप्रेम । रसना गह्यौ रसकथा - नेम ॥१४२॥
व्रजमोहन बहु व्रजव्यौहार । कहा कहौं रसरासि अपार ॥१४३॥
व्रज बसि व्रजमोहन-रस गाऊँ । व्रजमोहनहिं सुनाय रिझाऊँ ॥१४४॥
व्रजव्यौहार - मगन हो रहौं । व्रजजन ही की गति मति लहौं ॥१४५॥

दोहा

जीवन व्रजव्यौहार है, व्रजजीवन ही प्रान ।
कहौं सुनौं समझौं सदा, व्रजव्यौहार प्रधान ॥१४६॥
जो सुख व्रजव्यौहार को, सो कछु कहत बनै न ।
अरु रसना की यह कथा, बिना कहैं नहिं चैन ॥१४७॥

चौपाई

कहि कहि थकित होति फिरि कहै । या रस रसना को जस यहै ॥१४८॥
व्रजव्यौहार भाग है मेरो । व्रजै आस व्रजबास बसेरो ॥१४९॥

ब्रज मैं सोऊँ ब्रज मैं जागौं। निसि दिन ब्रज ही के रस पागौं ॥१५०॥
ब्रजव्यौहार देखि ही जियौं। ब्रजजीवन-लीला-रस पियौं ॥१५१॥
ब्रजरस थकि ब्रजबीथिन डोलौं। मौन धरैं मनहीं मन बोलौं ॥१५२॥
ब्रजबन-सोभा चकित निहारौं। ब्रजरस-पान प्रान-पन पारौं ॥१५३॥
ब्रजव्यौहार परम धन लह्यौ। ब्रजरस पूरि नैन ह्वै रह्यौ ॥१५४॥
परम प्रेमनिधि ब्रजव्यौहार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥१५५॥
ब्रजमंडल आनँदघन बरसै। लीला ललित प्रेम-रस सरसै ॥१५६॥
लहलहात ब्रज तरु बनवेलि। महामधुर लीला-रसकेलि ॥१५७॥
मुरली-गरज रंग-रस-भरी। ब्रजबन व्यापि लगावति झरी ॥१५८॥
ब्रजतिय-हिय-सरवर रसभरे। लाज-पाज तजि उमगनि ढरे ॥१५९॥
प्रबल प्रेमद्रव उझिलि बह्यौ है। ब्रजबन यह रस पूरि रह्यौ है ॥१६०॥
चातक-ब्रतहिं धरैं सँग डोलैं। महाभाव रुचि आनि कलोलैं ॥१६१॥
त्रिभुवनमई मुकुटमनि गोपी। लोकलाज-मरजादा लोपी ॥१६२॥
पदवी परम प्रेमनिधि पाई। इनकी महिमा वेदनि गाई ॥१६३॥
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई। आनँदघन पूरन पन छाई ॥१६४॥
गोपिनि की गति कहति न आवै। गोपीनाथ-सनाथ कहावै ॥१६५॥
जाकी माया जगत नचावै। सो नटनायक इन्हैं रिझावै ॥१६६॥
तनमय भई रहति निसिवासर। प्रेम-प्रिया को धौं इनकी सर ॥१६७॥
सरबोपरि गोपिन को प्रेम। जिनसौं नंदसूनु को नेम ॥१६८॥
निरिनि रहत ब्रजमंडन जिनके। हरि-हित-सहित मनोरथ इनके ॥१६९॥
परमानंद-कंद की प्यारी। कबहूँ कहूँ होति नहिं न्यारी ॥१७०॥
निरवधि प्रेम-परस नहिं सकैं। उद्धवादि चरननि रज तकैं ॥१७१॥
इनके गुन मुरलीधर गावत। परम प्रेम रसपुंज बढ़ावत ॥१७२॥
रसिकराय चूड़ामनि स्वामी। गोपीवल्लभ नायक नामी ॥१७३॥
ब्रजबन सरस बिनोद मगन मन। निपट किसोर स्यामसुंदर घन ॥१७४॥
सुखनिधान के सुखहिं सम्हारति। जीतति अजित अपनपौ हारति ॥१७५॥
इनकी प्रेम-सगाई जैसी। देखी सुनी न कितहीं ऐसी ॥१७६॥

[१५९] पाज=बाँध। [१६०] द्रव=रस। [१६९] निरिनि=निकट।

तन मन बचन कृस्नहीं सौं रति। कृस्न परमपति ही जिनकी गति ॥१७७॥
जो रसराज प्रगट इन कियौ। सो जानंत हरि ही को हियौ ॥१७८॥
ब्रज को सहज प्रेम रससागर। नित नित मगन रहत ब्रजनागर ॥१७९॥
ब्रजबन-केलि सदा अवगाहत। परम प्रेम-पन-पैज निवाहत ॥१८०॥
नित नवरंग रसिक नँदलाल। .... ॥१८१॥
नित बिलास नित रास रचावैं। परम प्रेम की चुहल मचावैं ॥१८२॥
हरिमुख - चंद - चकोरी गोपी। अतुल प्रेम की सीवाँ गोपी ॥१८३॥
या ब्रज की लीला अचिरजनिधि। बिधिहूँ लखी नहीं याकी बिधि ॥१८४॥
मोहन महा परम रसमूली। सब काहू कौं देखत भूली ॥१८५॥
ब्रज नित प्रेम-महोदधि गाजै। पूरन गोकुलचंद बिराजै ॥१८६॥
अद्भुत अमित अखंड कलाधर। गोपी - मनरंजन सुंदर वर ॥१८७॥
दुख-तमहरन अपूरब नीको। निसिदिन उदित भावतो जी को ॥१८८॥
दृग - तारन कौं जोति बढावै। प्रेम-गगन सुइंदु बिरुदावै ॥१८९॥
सुजस-चंद्रिका फैलि रही है। सुख-सोभा क्यौं परति कही है ॥१९०॥
लीला-अमी-किरिनि हित पोखै। मेटत बिरहताप - दुख-दोखै ॥१९१॥
मित्र-मंडली - मध्य उजागर। सब दिसि उदै करत गुन-आगर ॥१९२॥
निहक्लंक आनंद - स्वरूप। जै जै जै ब्रजचंद अनूप ॥१९३॥
याहि देखि ब्रजजन सब जियैं। महामधुर मूरति मधु पियैं ॥१९४॥
महाभाग या ब्रज के लोग। करत कृस्नलीला - रस - भोग ॥१९५॥
यह ब्रज सदा प्रेमरस - मंडित। बिहरत नित्यानंद अखंडित ॥१९६॥
रसना सो जो यह रस चाखै। छिनछिन नवसवाद अभिलाषै ॥१९७॥
या ब्रज को अमोघ अनुराग। जे बरनैं तेई बड़भाग ॥१९८॥
ब्रजरस परम परैं तैं परैं। अनुरागी याको ब्रत धरैं ॥१९९॥
तेई दृग जे ब्रजरज आँजैं। ब्रजरस परसि परसि मन माँजैं ॥२००॥
ब्रजव्यौहार सहज रँग राँचै। यह सुख पाय पाय फिरि जाँचै ॥२०१॥
ब्रजव्यौहार बिचारैं बनै। कहत न आवत जानत मनै ॥२०२॥
यह नित नित ब्रज को व्यौहार। ब्रजमोहन-हित नित त्यौहार ॥२०३॥
भई चोप नित ही चित बढ़ै। छिन छिन रंग चौगुनो चढ़ै ॥२०४॥

नित बिहार नित नवल सिँगार । नित सँकेत नित नित अभिसार ॥२०५॥
नित सँदेस नित मिलन-उपाव । नित नित चाव नित नयो दाव ॥२०६॥
नित सँजोग नित मिलन-चटपटी । परम प्रीति की रीति अटपटी ॥२०७॥
नित प्यासे नित ही रस पीवत । नित ब्रजजीवन देखेँ जीवत ॥२०८॥
ब्रजब्यौहार ब्रज बसेँ दरसै । नित नित नयो नयो सुख सरसै ॥२०९॥
नित नित चित हित की गति परसै । नित ब्रजजीवन इनहीँ बरसै ॥२१०॥
ब्रजरस पियेँ लगै सब सीठो । या ब्रज महामधुर रस मीठो ॥२११॥
ब्रजब्यौहार मोहिँ अति भायौ । रुचि रुचि रसना ब्रजरस गायौ ॥२१२॥
ब्रजरस को सवाद अति आहि । ज्यौँ ही रीझन कहियै काहि ॥२१३॥
को है या रस को अधिकारी । अपरस प्रीति-रीति गति न्यारी ॥२१४॥
औरै दृग जे ब्रजहिँ निहारैँ । औरै मन ब्रज को ब्रत धारैँ ॥२१५॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज एक । मोँ हिय ब्रजरस ही की टेक ॥२१६॥
कहौँ सुनौँ ब्रज ही की बात । ब्रज बसि लखौँ साँझ परभात ॥२१७॥
ब्रज ही सोँ प्राननि को नातो । ब्रज बिहरौँ मोहनरस-मातो ॥२१८॥
ब्रज के टूक माँगि ज्यौ ज्याऊँ । ब्रज-सरवर-जल प्राननि प्याऊँ ॥२१९॥
ब्रज के द्रुम बेली लखि रहौँ । जड़ता गहि तिनसोँ गति कहौँ ॥२२०॥
ब्रजमोहन - लीलारस लहौँ । गोपकुँवर के कौतुक चहौँ ॥२२१॥

दोहा

ब्रजनायक नेही नवल, बिलसत ब्रज निज धाम ।
प्रेम-अवधि नव ब्रजबधू, मधुर केलि अभिराम ॥२२२॥
यह ब्रजरस - संपति सदा, मेरेँ सरबस मूल ।
बृंदावन आनंदघन, राजत जमुना - कूल ॥२२३॥
ठौर ठौर ब्रज बिपिन की, नैननि रही समाय ।
नित दरसत बरसत लसत, आनँद-अंबुद छाय ॥२२४॥
प्रेमसरोवर अमल वर, ढिग कदंब - तरु - पाँति ।
भानुकुँवरि - बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥२२५॥
सोभा-झर लाग्यो रहै, झूमि सघन तरु बेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥२२६॥

सब रितु-हित सोभित, सरस करियै कहा वखान ।
कीरनिलली अलीनि मिलि, खेलनि की रहठान ॥२२७॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखें वनै वनाव ॥२२८॥
वरन वरन नव पाट के, झूला झुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥२२९॥
जूथ-जूथ-सँग झूलई, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचरज-रूप निहारि ॥२३०॥
मचि झुरमट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप-झलानि की, वदन भरे अति फूल ॥२३१॥
भूषन वसन सरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
सोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि वरसति रंग ॥२३२॥

चौपाई

भीतर बाहिर तुमहीं तुमहीं । अँखियाँ देखन कौं अति उमहीं ॥२३३॥
खुलैं मुँदैं ब्रजलोचन-तारे । मोहन मधुर स्याम उजियारे ॥२३४॥
दुरौ कहा अब उघरि परे हौ । ढके रहौ बहु गुननि भरे हौ ॥२३५॥
चेटक चटक रूप चित चोरत । देखत देखत ही मन भोरत ॥२३६॥
कौन भाँति की खगनि खगे हौ । जित तित लोचन-संग लगे हौ ॥२३७॥

———

२३१–मचि–चिच (वृंदा०) । २३२–सरूप–सुरूप । सोहन–मोहन (वही) । मिलाइए पृष्ठ २१५ पर के प्रेमसरोवर' से ।

गिरिगाथा

दोहा

श्रीकरतल - रस - परस सब, भीज्यौ दरस अनूप।
गिरिनायक वंदन करौं, सेवा उत्सव - रूप ॥ १ ॥
ललक पुलकमय बिपुल वपु, हरिमंदिर हिय जास।
जगमगात जगमनि सदा, लीला बिसद बिकास ॥ २ ॥

चौपाई

गिरि गोबरधन-छवि कछु बरनौं। पाऊँ नाम अरथ गुन सरनौं ॥ ३ ॥
मन पाऊँ तब रसना आनौं। गोबरधन बर लहि गुन गानौं ॥ ४ ॥
नगमनिमयी सिखर सुचि सोहै। चकित नैन लीला-सुख जोहै ॥ ५ ॥
सोहै जोहै हरिहिय मोहै। को है अब याको सर को है ॥ ६ ॥
निर्झर-निचय अचय रस सरसै। गोबरधन आनँदरस बरसै ॥ ७ ॥
द्रुम-प्रकार-रचना क्यौं कहियै। चहत चेतना जड़ ह्वै रहियै ॥ ८ ॥
केलि थकी अति भली अनूठी। निपट इकौंसी प्रेम अँगूठी ॥ ९ ॥
विविधि समय सुख साँज भरी हैं। गिरिधर-हित गिरिराज भरी हैं ॥१०॥
जियँ रहै मोहन - मन हाथ। हरि कर धरैं न्याय गिरिनाथ ॥११॥
प्रेमसिंहासन परम उतंग। व्रज-जुवराज करत जहँ रंग ॥१२॥
विविधि अपूरव केलि-रससमसे। लसैं स्याम अभिराम नित बसे ॥१३॥
रूप भूप वैभव जगमग अति। चँवर सिंगार-सार बरही-तति ॥१४॥
बरन बरन विहग रँग-भोए। वचन-रचन-सुख-स्वाद-समोए ॥१५॥
पुहुप - वृस्टि वाटिका सुहाई। विटप बेलि अभिलाषनि छाई ॥१६॥
निज पद-बिहरन परस-प्रसाद। लहत सदा गिरिराज सवाद ॥१७॥
इहि प्रसाद हरिदास-निकट बर। धनि धनि गिरिवर धनि गिरिवरधर ॥

[२] जास=जिसका। [४] बर=वरदान। गानौं=गाऊँ। [५] जोहै=देखता है। [६] को है=कौन है। सर=समानता। को=के लिए। [७] निचय=समूह। अचय=पंक्ति। [९] इकौंसी=एकांत। [१४] बरही=मोर। तति=पंक्ति।

गिरि को हृदय मृदुल अति देखौ। पघिलति सिल पद-परस विसेखौ ॥१९॥
कठिन बात गिरिप्रेम-नेम की। मूरति ब्रजजन-कुसल-छेम की ॥२०॥
दान-केलि-रस - भाजन हियौ। भानुकुँअरि-हित मारग कियौ ॥२१॥
दानिराय को अति रसदायक। गोरस है सो रस गिरिनायक ॥२२॥
प्रिय सख-सखी-समाजहि साजै। सर्बोपरि गिरिराज बिराजै ॥२३॥
निरवधि रस को पारस पावै। गिरि की गरिमा गनत न आवै ॥२४॥
दल फल जल हरि परिकर पोषै। सब रितु सुखनि साजि परितोषै ॥२५॥
कंदर मंदिर [अति] रुचि राखै। रसिक-पुरंदर हित अभिलाखै ॥२६॥
दीपजाल मनिमाल जगावै। नेहप्रकास - दसाहिं दिखावै ॥२७॥
हरिराधा-हित हरष-भरयौ है। केलि-कलानि सकेलि करयौ है ॥२८॥
हरि को हितू न ऐसो दूजौ। यातैं या गिरि के पद पूजौ ॥२९॥
पूजै याहि मनोरथ पूजै। गिरिबर चरन-दृगनि कछु छूजै ॥३०॥
गोपकुमारनि को अति प्यारो। गायनि देत चाय सौं चारो ॥३१॥
तटी-भूमि गोधन की माला। सिखर खरौ ब्रजपति को लाला ॥३२॥
सुकृत-पुंज-फल गिरि ही पायौ। दीसत यौं निज सीस चढ़ायौ ॥३३॥
अति उन्नत गिरि-भाग-निकाई। गिरिधर वेनु बजाय दिखाई ॥३४॥
मुरली - टेर व्यापि गिरि रहै। धुनि सुनि सरस रूप-सुख लहै ॥३५॥
द्रवीभूत गुन प्रगटै जबहीं। जडता होति सहायक तबहीं ॥३६॥
गिरिबर - प्रेम गिरिधरै जानैं। गिरा बखानौं निज अनुमानैं ॥३७॥
महालील गोपाल गोपसुत। गोधन बसत ग्वार-गोधन-जुत ॥३८॥
गिरि को गुपत मतो को पावै। हरि-राधादिन हृदय दुरावै ॥३९॥
पुजवत साध सबै विधि साधै। हित अराधि रिझवै हरि-राधै ॥४०॥
सेवारीति - महंत महामुनि। गिरि-महिमा कवि कौन सकै गुनि ॥४१॥
गिरा-बेलि गिरिगाथा फल है। परम मधुर रस भरयौ अमल है ॥४२॥
सीस धराधर - ईसहिं नाऊँ। जुगल - केलि-चिंतामनि पाऊँ ॥४३॥

[२४] पारस=उत्तम पदार्थ। [२६] कदर=कदरा। [३०] पूजै=पूजने से। पूजै=पूर्ण होती है। [३८] महालील=महर्लील, महालीला करनेवाले। गोधन=गोवर्धन। गोधन=गायों का झुंड। [४३] धराधर=पवत।

गिरि की सरनहि गिरिहौँ नितहीँ। होत फिरौँ न्यौछावर इतहीँ ॥४४॥
गिरि को मोँहि भरोसो भारी। ढिग गिरि रहैँ ढरैँ गिरिधारी ॥४५॥
अति लघु मति गिरि गरिमा महा। रहि न सकौँ अरु बरनौँ कहा ॥४६॥
गिरि कैं गरव गनत नहिँ काहू। गिरिबरधर-पन - पैज-निबाहू ॥४७॥
गिरि की कृपा गिरिधरैँ परसौँ। गिरि-गुन गनौँ सुनौँ गिरि दरसौँ ॥४८॥
आस बास या गिरि मैँ रहौं। दृग गिरिबरधर सुदरस लहौं ॥४९॥
गोबरधन मंगल को आलै। ब्रजबासिन को हित नित पालै ॥५०॥
ब्रजधर - मंडन सदा सहायक। गिरि-महिमा बरनी ब्रजनायक ॥५१॥
गिरिवर धरि गिरिबरधर सोहैँ। ब्रजलीला लखि ब्रजजन मोहैँ ॥५२॥
गिरि को हित गिरिबरधर करै। गिरिधर-हित गिरिबर बिस्तरै ॥५३॥
गिरा मौन मैँ गिरिधर गहौं। गिरि की कृपा गिरिधरै लहौँ ॥५४॥

दोहा

श्रीगोवरधन नाम गुन, सो रस ताको भाग।
महामधुर रसरासि कौँ, पायौ पूरन पाग ॥५५॥
सुख-समाज गिरिराज को, रह्यौ दृगनि दरसाय।
मन तन रस भीजे लसौ, आनँदघन बरसाय ॥५६॥

पदावली

भैरव] (१) [मूलताल

मंगलनिधि ब्रजराजकिसोर, मंगल ब्रज मैं चारयौं ओर ।
मंगल घर अरु बाहिर मंगल सुख निरखत मंगल निसि भोर ।
मंगल अरसाने दृग राजत अधर मंगल रुचि रच्यौ तँमोर ।
आनँदघन सबही विधि मंगल स्रवननि मंगल मुरली-घोर ॥

भैरव] (२) [चौताला

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारे है हो हरि हाथ ।
तुमही कौं तुमतैं जाँचत हौं देहु दया करि नाथ सब सुख साथ ।
गाय गाय ज्यौं त्यौं जीवत हौं रावरे बिसद बिरुद गुन-गाथ ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन मीन-दीन-पन पाथ ॥

तथा] (३)

अपार गुनग्राम हौ कहा गाऊँ ।
तीरहि गएँ थकित मतिगति होति, तुमलौं कहौ धौं हौं क्यौं करि आऊँ ।
अमित चरित की तरल तरंगनि बिसमय बूडि न टिक ठहराऊँ ।
है उपाव आनँदघन मो हित बोहित सुदृढ़ कृपा जौ पाऊँ ॥

भैरव] (४) [इकताल

गोपाल तुम्हरेई गुन गाऊँ ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ ।
टरत न मोहन मूरति हिय तैं देखि देखि सुख पाऊँ ।
आनँदघन हौ बरसौ सरसौ प्रान-पपीहा ज्याऊँ ॥

भैरव] (५) [चलती इकताल

तुम्हारी सौँ मोहि तुम बिना कछू न भावै ।
सोचनहीं निसि तारे गनति हौं ए सपनौहूँ न आवै ।

२-दीन०-दीपन (सतना) । ४-तुम्हरेई-तेरेई (सतना) । बरसौ०-बरसि सरैयै (वही) । ज्याऊँ-जिवाऊँ (लंदन) ।

[१] तँमोर=तांबूल । घोर=ध्वनि । [२] पाथ=जल ।

हियरे बीच रहौ न लहौं गति कोऊ कहा जनावै ।
प्रान - पपीहनि आनँदघन दैया कौन जिवावै ॥

तथा] (६)

अनु रे मेरी प्रीति लगी हो ।
कल न परति है घरि पल छिन विन देखेँ प्यारे ।
कठिन कठिन बीतत दिन गिनत रैनि तारे ।
कव ह्वैहौ संमुख मनमोहन उजियारे ।
कहा कहियै पिय तुमसौँ बसत हिय मँझारे ।
आनँदघन चातक - जन क्यौँऽब यौँ बिसारे ॥

भैरव] (७) [चौताला

मुरलिया तिहारो आछी ताननि रचना करै ।
बाँके बाँके भेदनि अँजाइ मन हरै, को धीरज धरै ।
सुखविलास देख्यौई भावै बहुभाँति अभिलाष भरै ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन लाएँइ रहति झरै ॥

बिभास] (८) [चौताला

अब यह पारी परनि लागी हो, लाल किनि जानि जान देहु घर अपनै ।
तुम्हहिं कहा सोच धुर को यहै ढंग मौँहि परै जिय कपनै ।
आनँदघन ढरैं न भरन जो तौ देई देवा जपनै पुजापे थपनै ॥

तथा] (९)

जागौ जागौ हो निसि के मतवारे,
भोर भयौ लागे बोलन सुक - सारौ है चहचारौ ।
गुरुजन-सोच नहीँ तनकौ जिय कौन सुभाव तिहारौ ।

६–अनु–आनु (मतना) । हो–है (वही) । क्यौँ०–क्यौँ बथ्यौं (वही) ।
९–चहचारौ–चहचारे (मतना) । मोहि०–मो जिय है (वही) ।

[८] धुर को=अधिक । भरम=भेद । देई=देवी । पुजापे=पूजा की सामग्री ।
[९] सारौ=सारिका, मैना । चहचारौ=चहल-पहल । भरम=भेद ।

ब्रज के लोग सहज ही चवाई मोहि यहै डर भारौ ।
आनँदघन तुम छाय रहे रुचि, काहे कौं भरम उघारौ ॥

बिभास] (१०) [इकताला

रही निसि पाछिली घरी चारि ।
सुरत-रँगमगे जगे पगे रस लगे भरन अँकवारि ।
निपट अटपटी चाह-चटपटो नाहिन सकत सम्हारि ।
आनँदघन अभिलापनि छाए बातैं कहत उघारि ॥

रामकली] (११) [झपताल

मदनगुपाल की बाँसुरी बाजै ।
राग अनुराग-सागर तरंगित कियौ मधुर रसकंद ब्रजचंद-मुख राजै ।
मानमोचन महा रोचक रसाल धुनि मादक मनोज उनमाद उपराजै ।
सुनि रहि सकै गहि सकै धीर कौन तिय बिबस नहिँ
होइ तजि गुरु-लोक-लाजै ।
प्रान-चातकनि के तोपपन तोप-हित जीवन-अधार आनँदघन गाजै ॥

रामकली] (१२) [चौताला

को पावै पीर हमारे मन की ।
स्यामसुंदर तितहीँ नितहीँ बसौ गति कहा दीन दृगन की ।
निपटहीँ निपट निठुरता सीखे बलिहारी या पन की ।
प्रान-पपीहनि कैं लगियै रहै आसा आनँदघन की ॥

बिभास] (१३) [चंपकताल

कैसैँ धीरज रहै हाथ हमैँ मुरली-धुनि बौरावै हो ।
काननि पूरि महामादक रस प्यावै मनहिं घुमावै हो ।
ताननि बान चलावै भावै बैरिनि मारि जिवावै हो ।
आनँदघन प्यासनि बरसावै बरहै उघरि भिजावै हो ॥

१०—पगे०—परसपर (सतना)। अँकवारि—इकवारि (लदन)।

[११] कंद=मूल। [१२] पावै=समझे। [१३] घुमावै=चक्कर मेँ डालती है।

एमनि] (१४) [मूलताल

मेरी आली री मौँहि सुनत बँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनकौ तेरी सौँ ।
चकित होति मुख जोति जगमगत मनु तौ रहत जाइ बन उन पै
घर मैँ परी रहति गुरुजन-घेराघेरी सौँ ।
कैसेँ करियै भरियै कौ लौँ कुल की कानि जँजर जेरी सौँ ।
आनँदघन रसपियन जियन कौँ प्रान-पपीहा तरफरात है उर-झेरी सौँ ॥

टोड़ी] (१५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन बिराजैँ ।
सिथिल भए रस भोइ रसमसे निरखि कोकनद लाजैँ ।
झपकि परतिं पलकैँ आरस-बस बस कै खुलति खिलति मो काजैँ ।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन उनए अति सुख साजैँ ॥

रामकली] (१६) [चौताला

बरजि री बरजि दै अनोखे छैल कौँ मेरे द्वार मुरली न आनि बजावै ।
हौं सुनि सिथिल इत घर मैँ उत बाहिर सब लोग चवाव चलावै ।
जिय की हिलग जीव जो जानै तौ इन बातनि कहि कहा पावै ।
चातुर है आतुर आनँदघन छाइ पराए प्रान - पपीहा तावै ॥

केदारो] (१७) [एकताल

रासमंडल मैँ नाचत दोऊ तकट धिकट धिधिकट
धिलांग थेई थेई ततथेई ।
होड़ाहोड़ी भेद भँजावत तत धुक धुक कत कथुंगातक
थुंगाधिधि लकट थेई ।

१४–जँजर–जेजर (वृंदा०) । रस०–रसपान करन (मतना) । १६–इत–होत (मतना, वृंदा०) । चवाव–चवाइ (लंदन) ।

[१४] जँजर०=(जर्जर) पुरानी, शक्तिहीन । जेरी=रस्सी । उरझेरी=हृदय की व्याकुलता । [१६] छाइ०=अन्यत्र छाकर । तावै=संतप्त करता है । [१७] तकटधि०=बोल हैं ।

हाव भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पियहि परम सुख देई।
आनँदघन रस रंग पपीहा रीझ रीझ आँकौ भरि लेई॥

मलार] (१८) [इकताल

तान-सुर तार सौं जमाई है मोहन मुरली मैं मलार।
प्यारी के गावत अद्भुत रंग उपजत भेदनि तरंग बाढ़त
अंग अंग अनंग-सुख-समुद्र अपार।
दृग-विलास सुख-बिकास भौंहनि मधुर हास भास
पाननि रंजित अधर दसन बिथुरे बार सिंगार-सार।
आनँदघन रस आसार भीजत रीझत उदार
आपुस मैं होत मालती-माल मरकत-हार॥

कल्यान सुद्ध] (१९) [मूलताल

पहिरी चुनि चौंपनि सौं सौंधें सँवारी सारी सूही।
भाग सुहाग अनुराग रंग की ओप बढी जु कछू ही।
गोरे बदन पर अलक झलक आछी उर बर माला जाही जूही।
आनँदघन पिय कैं रस भीजी रीझनि भरत भटू-ही॥

हमीर] (२०) [मूलताल

व्रजमोहन की प्यारी तेरो भाग बडो।
मुरली मैं तेरे गुन गावत जाकी धुनि मोहे जंगम जड़ो।
तेरे लाड़ की कहा कहियै जाहि लाडत लालन अलकलड़ौ।
आनँदघन पै तो हित चातक सौतिन कैं यह साल गड़ो॥

१८—जमाई—वजाई (सतना), रचाई (वृंदा०)। मैं—ने (लंदन)। २०—लालन—लाड्न (सतना, वृंदा०)। यह—हियैं (वहीं)।

आँकौ=गोद, अँकवार। [१८] तार=ऊँचे स्वर में। भास=भासित होता है। मालती अर्थात् राधा। मरकत=पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण। [१९] सूही=लाल। ही=थी। जाही=जाती, चमेली। जूही=यूथिका। ही=हृदय। [२०] अलकलड़ौ=दुलारा।

भैरो] (२१) [एकताला चलतौ

आए जु आए भोर, भलैं ही ।
रसिक रँगीले छबीले मया करि सब निसि जागे
दृग अनुरागे पागे - रंग - तँबोर ।
बैठौ बलि हौं बिजन डुलावत स्रमित भए नए कुसल किसोर ।
आनँदघन रस बरसे कित हूँ छाए हौ इहि ओर ॥

कर्नाटकी कनरी ख्याल] (२२) [सूलताल

अब मेरी तुमसौं पुकार है हो,
ब्रजमोहन प्रान - अधार पुकार है हो ।
कान खोलि किनि सुनियै हा हा सुंदर सुखद सुजान उदार ।
दरस दुखारे नैन बिचारे तरसत बरसत साँझ सवार ।
दीन पपीहन के आनँदघन आनि लीजियै बेगि सम्हार ॥

सोरठि] (२३) [इकताला

राज म्हानै औलू आवै ।
ऊभी ऊभी थारी बाट उडीकाँ थाँ विन बिरहा अधिक सतावै ।
म्हाँसी थाँके घड़ीँ टहलनी भँवर कमल - फुल-बास लुभावै ।
प्रान - पपीहाँ रा आनँदघन थे निरमोही क्यूँ न बसावै ॥

परज] (२४) [इकताला

वैरनि म्हाँरी वाँसली हे वीरा घड़ाँ दिन पाड़ै छै ।
भला घराँ रा माँनसाँ नै काँनाँ लागि विगाड़ै छै ।

२१–कुसल–जुगुल (सतना) । २३–औलू–औल (वृंदा०) । फुल-री (सतना, वृंदा०) । क्यूँ–स्यौं (सतना) ।

[२१] तँबोर=तांबूल । बिजन=(व्यजन) पंखा । [२३] राज=प्रिय । औलू=विरह की स्मृति । ऊभी०=खड़ी खड़ी । उडीकाँ=प्रतीक्षा करती हूँ । थाँ०=आपके बिना । म्हाँसी०=मेरे ऐसी आपके बहुत सी सेविकाएँ हैं । क्यूँ०=किसी प्रकार वश नहीं चलता । [२४] दिन०=दिन पारती है, बुरे दिन कर देती है । माँनसाँ=मनुष्यों को ।

काँई करॉ न क्यौं बस चालै घर वेढ्यॉ नै ताडै छै ।
केड़े पड़ी रहै आनँदघन छाँनी बात उघाड़ै छै ॥

अड़ाना] (२५) [मूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-वसहि जू परे जू कान पियारे ;
अनमिलता लै मिलौ सुमिल से ये रँग ढँग नित नित जु तिहारे ।
मोहमढ़ो बतियान गढ़त हौ सुघर साँच कै साँचैं ढारे ।
आनँदघन अचरज-झर लावौ उनएहूँ पै निपट उघारे ॥

ललित] (२६) [मूलताल

सब जग कान कान ही दीसै अब मेरी स्याम-रँग-रँगी दीठि ।
रूप-उज्यारो सनमुख डोलै लाज दै रही पीठि ।
कैसो घूँघट कहति कौन सौं करौं क्योंऽब सुनि सुघर बसीठि ।
उघरि परी आनँदघन घमँडनि ऊतर दाजै नाठि ॥

केदारो] (२७) [मूलताल

लालन लीजै जु फिरि लीजै वहै तान केदारे की मुरली मैं हाहा ।
ललिता लेति बीन मैं चौंपनि हौं हूँ कछु मुख लै दिखराऊँ
कौन सरबरै आहा ।
या करि यौं गुन गाइ लेत हौं छकनि छबीली धुनि को लाहा ।
रीझ लाज आनँदघन घमँडनि कियौ रास तें रस-चौमासो
लियौ हियौ भरि नाहा ॥

विहागरो] (२८) [झपताल

आज प्यारी पिय के मिलन की राति है ।
खुलि खिलि सुभ सरस समय संजोगिनी रंग भरि अग न समाति है ।

२७–या करि–पाकरि (वृंदा०), थाकरि (लदन) । २८–खुलि–कली (वृंदा०) । सरस–सरद (सतना, वृंदा०) । अंग न–अनंग (वृंदा०) ।

काँई=क्या । वेढ्याँनै=घिरे हुए को । केड़े०=पीछे पड़ी रहती है । छानी०=ढकी बात प्रकट कर देती है । [२५] मैन=मदन, काम । कान=कान्ह, कृष्ण । झर=वृष्टि । उनए०=छाए रहने पर भी अत्यंत उद्घाटित । [२६] सुघर=चतुर । बसीठि=दूती । नीठि=कठिनाई से । [२७] सरबरै=उपमा ।

बहु विधि बिलास रस रास - सुख स्रम - पगे - जगमगे
जुगल बर संगम हितात्ति है।
आनँदघन घमँड केलि-संपति रमँड प्रीति रसमसनि सरसाति है॥

रामकली] (२९) [मूलताल

रास करि करि सब घर आईं।
भाईं साँवरे प्रीतम लाड़ लड़ाईं, अनेक भाँति अभिलाष पुजाईं।
मनहीं मन मैं करति बधाईं, लीला ललित जहाँ की तहाँ पाईं।
कौन सकै कहि भाग बड़ाईं, सुक सनकादिक बेदनि गाईं।
अतुल प्रेम को रास रचाईं, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाईं।
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाईं, आनँदघन रसरंगनि छाईं॥

रामकली] (३०) [चंपक

हौं झूठो तुम साँचे अहो हरि मोहूँ करौ किनि साँचौ।
तिहारी सुदृस्टि सदा चाहत हौं जौ न पड़ै भ्रम खाँचौ।
जग जजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहु नाचौ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै लगै नहीं दुःख - आँचौ॥

गंधार] (३१)

आसा तुम्हैं जौ लागि रहै।
कृपापियूष-पोष सौं तोषित अति लहलहनि लहै।
हौ जिहि तुम अवलंब कलपतरु सौभग-बेलि बहै।
चढ़ि गुन बिटपनि लवढ़ि बढ़ै नित कितहूँ सिथिल न है।
मन - थाँवरे बिराजौ थिर ह्वै तिहिं रस रासि यहै।
फूलै फलै निरंतर माधव सोभा कौन कहै।
बिसद बिसाल बितान आन तैं सिमिटनि फैलि गहै।
झूमि झूमि झालरैं छबीली सीतल सौरभ हैं।
चरन-मूल अनुकूल रोपियै या विधि चित्त चहै।
निहचैं वारि दीजियैं चहुँ दिस चिंता-झर न दहै।

[२८] स्रम=स्वेद। हितात्ति०=प्रेम करती है। रसमसनि=लगन, सरसता।
[३०] खाँचौ=रेखा, बाधा। [३१] बितान=चँदोवा। आन=टेक।

जिय की ताप हरौ आनँदघन करुन जानि उमहै।
जीवन-धाम पाइ कै तुमसे क्यौं दुख-घाम सहै॥

विहागरो] (३२)

रावलि मैं आनंद महा है।
कीरति कन्या जनी जसवती निज भागनि को लह्यौ लहा है।
जसुमति करति बधाई चायनि मन ही मन हित कह्यौ कहा है।
आनँदघन अभिलाष-लता पर रस-बरसनि की उमह अहा है॥

रामकली] (३३)

आँखिनि गही अति अनखानि।
पीठि दै मो तन तरकि तोरी तिनक लौं कानि।
ह्वै गई औरै किधौं द्वै चचलनि वह बानि।
मनै सपनैहू कहूँ तनकौ नहीं पहचानि।
निरखि स्यामसुजान-छबि जकि थकि छकीं मुसकानि।
ललक-बस तजि पलक रस अँचवति बिसारि अघानि।
तब न कछु समुझीं सहज रुचि रीझ की अररानि।
अब दुसह घाती महा बिरहा बिच परयौ आनि।
कौन सौं कहियै दसा सहियै सबै सुखदानि।
मौन ह्वै रहियै हियैं दहियै दहकि अकुलानि।
प्रान मन गति मति सुरति सौंपे सबै पर-पानि।
दैन कौं दुःख ये निगाड़ी लै रहीं रहठानि।
बसति ब्रज औरौ अँख्यारी रूप-जोबन-खानि।
द्वैज ससि हौं ही करी बिन काज इन दुखियानि।
जरतिं पुनि जल ढरतिं धरतिं न धीर पीर पिरानि।
दरस-अंजन लखि लहैं आनँदघन सियरानि॥

[३२] रावलि=राधा का ममाना। कीरति=राधा की माता। [३३] तिनक=तिनका। कानि=मर्यादा। अघानि=तृप्ति। अररानि=टूट पड़ना। पानि=हाथ में। रहठानि=वासस्थल। अँख्यारी=आँखोंवाली। द्वैज०=द्वितीया का चद्रमा जिसे सब देखते हैं।

हमीर] (३४) [चलती चरचरी

ये आनंदकंद बंदि लै हरिचरन ।
परम सुख की सींव दुख - समूह - दरन ।
सिव विधि मुनि नारदादि रहत सदा सरन ।
मोद - पयोद रस - निवास प्यास - हरन ॥

नट] (३५) [चंपक

ऐसैं ही ऐसैं जात दिन बीते ।
स्यामसुँदर देखैँ बिन भटकत डोलत लोचन रीते ।
विरहा प्रबल हराइ हाइ हो नेम-धरम सब ही इन जीते ।
आनँदघन कब बरसैं दरसैं जु होहिँ चित-चातक चीते ॥

नट] (३६) [चंपक

अवधि टरी न आए व्रजनाथ ।
कौन हमारो सुरति करावै मनहूँ रह्यौ रमि साथ ।
पंथ निहारत डीठि मंद परी रसना थकी गुन - गाथ ।
आनँदघन अब यह जिय आवति मारि फेरियै माथ ॥

तया] (३७)

हमारी सुरति कब धौँ तुम लैहौ ।
अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ ।
आनंदघन पिय चातक कूक - थकैँ पछितायोई पैहौ ॥

सारंग] (३८) [मूलताल

अब मेरो तुमसौँ लग्यौ है सनेहरा ।
व्रजमोहन प्राननि प्यारे दृग - तारे रूप - उज्यारे ।
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा ।

३८—अब-अनि (सतना, वृंदा०) ।

[३५] रीते=खाली । चीते=चैतन्य । [३६] मारि०=मारपीट कर इस सिर को उधर से फेर लूँ । [३७] कहा०=क्या करोगे । पछिता-योई०=पछताना ही हाथ लगेगा । [३८] छेहरा=विरह । मेहरा=वृष्टि ।

उघरि उघरि अब वरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा ।
आनँदघन दिन दूलह तुमहूँ बाँधौ जू पन - सेहरा ॥

खेमनि] (३९) [मूलताल

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय ।
बिपम बियोग जरावै जियरा सह्यौ न जाय ।
निपट अधीर पीर-बस हियरा गह्यौ न जाय ।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख कह्यौ जाय ॥

गौरी तिरवन] (४०) [चंपकताल

कब ह्वैहो हो नैननि के पाहुने मो हिय है लौ लागी ।
अँसुवनि जल सौं पखारि पायँ हौंहूँ ह्वैहौंगी सभागी ।
मन मेरो मँडरात रात दिन बनि अभिलाष विकल वैरागी ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन है पुकार पन - पागी ॥

गौरी] (४१) [मूलताल

मेरी तुम्हरी लगनि अनसह न सहि सकैं वाम ।
राई लौन भरौं तिन आँखिनि जिनहिं न देख्यौ भावे यह धन-धाम ।
मोहिं तुम्हैं धुर को सँजोग - सुख थिर चिर रहौ अस्ट जाम ।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित तेई दुहेली दहौ दुख-धाम ॥

विभास] (४२) [चौताला

निपट निपुन लाल उज्यारे आए हौ इत उत झाँकत ।
दुरत न क्यौं हूँ रँगरैनि उघारत अपने मो बहुतै ढाँकत ।
चोरी करि चपरावत सौंहनि काहे कौं इतनो फाँफट फाँकत ।
आनँदघन पिय नागर आगर और गँवेली जु सबनि एक लग हाँकत ॥

पूरबी] (४३) [चरचरीताल

निपट निठुर तिहारी बानि दैया तुम यौं ही करी पहिचानि ।
ब्रजमोहन पै मोहे कहूँ न कहा जानौ अकुलानि ।

४१—दुहेली—डही लौं (लंदन) ।

दिन०=प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा । पन०=पन का मुकुट । [४१] अनसह=असह्य । धुर को=अत्यंत । दुहेली=अभागिन । [४२] चपरावत=बहकाते हो । फाँफट०=कूड़ा-करकट फाँकते हो, झूठी बातें करते हो ।

हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची बिधिना यह आनि ।
आनँदघन ह्वै प्यासनि मारत प्रान - पपोहनि जानि ॥

परज कलिंगरा] (४४) [चरचरी

असाँनूँ चेटक लाइ गया की कराँ कुछ होर न सुझदा ।
साँवला सोहन मोहन गभरू इत वल आइ गया ।
चम्मड पई वलाइ विरह दी कित्थे हाइ गया ।
मुरली - तान सुनाइ आनँदघन बाण चलाइ गया ॥

सारंग] (४५) [चौताला

चंचल नैननि री मन मोह्यौ ।
मोहन मो तन जब हँसि हँसि जोह्यौ ।
अनियारी कजरारी कोरनि ह्वै छ्वै जियरा पोह्यौ ।
अब तनकौ धीरज न लगत हाथ अपनो सो मैं बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन चितवनि मिलाय चित - चातक हित हाइ
कित बिछोह-दुख दोह्यौ ॥

मालव] (४६) [मूलताल

दैया कैसैं भरिहौंगी, पिय को इक गावं बिछोह दुख ।
सासु ननँद की डाटनि तनकौ मनहिं न धरिहौंगी
अपनो भायौ करिहौंगी ।
बीथिनि नगर चवाइ चलि चूके कातैं डरिहौंगी ।
अति व्याकुल कौ लौं तरफरि तरफरिहौंगी ।
आनदघन हित प्रान-पपीहा अब तौ गोहन परिहौंगी ॥

ललित ख्याल] (४७) [मूलताल

मैं अपनो प्यारो अंजन करिहौं ।
साँवरो रूप अनूप उज्यारो पलकनि आँखौं भरिहौं ।
कैसैं देखन दैहौं काहू अपनियाँ डाठि इकौसैं धरिहौं ।
आनँदघन मिलि जीव जिवैहौं अति रसरंगनि ररिहौं ॥

[४४] होर=और, माग । गभरू=प्रिय । वल=ओर । चम्मड०=शरीर में बिरह की बला लगाकर । [४७] इकौसैं=एकांत में, अलग ।

आलव] (४८) [मूलताल

बन तें ब्रजमोहन आवन की बेर भई है ।
गोधन-धूरि धूँधरी देखैं आँखिन जोति नई है ।
मुरली-धुनि सुनि प्रान जगे हैं बिरह-व्यथा टरि दूरि गई है ।
आनँदघन पिय आगम उलही उर अभिलाष-जई है ॥

बिभास ख्याल] (४९) [चरचरीताल

आई है उनींदी तू सुनि राधे पिय के सँग सब निसि की जागी ।
झपि झपि आवत नैना तेरे ढुरि ढुरि आनँदघन-गर लागी रस-पागी ।
आगैं आव बलैया लैहौं अंगनि रंगनि की रुचि रागी ।
धुकि रहि री हौं बिजन डुलावौं जिय की जीवनि प्रान-सभागी ॥

सारँग] (५०) [चौताला

गोकुल घर घर कान्ह-कहानी ।
कहि कहि सुनि बितवत निसि दिन प्रीति न परत बखानी ।
मोहन रस पीवतहीं जीवत चाह त्रिपा छिन छिन सरसानी ।
ब्रजजन - पन - पूरन आनँदघन जीवन - धन सुखदानी ॥

पूरबी] (५१) [चरचरीताल

मेरो मन मेरैं हाथ नहीं कहा करौं री बीर ।
ब्रजमोहन के बिछुरन की निपट अनोखी पीर ।
कैसैं दुराऊँ हे सखी नैननि भरि आवत नीर ।
आनँदघन पिय के दरसे बिन प्रान-पपीहा अधीर ॥

जेत कल्यान] (५२) [मूलताल

मोसौं अनबोलैं क्यौं बन पिय के प्राननि की
प्यारी हाहा किन बेग मनै ।

४८—गोधन—गोपन (लदन) । सुनि०—सुनियत अति नियरे (सतना) । टरि—दुरि (वही) । ४९—झपि०-घुरि घुरि (सतना) । धुकि—झपि । प्रान—जान (वही) । ५१—सखी०—धीरज धरिहौं (संग्रह) । देखैं०—ब्रजमोहन जानी (वही) ।

[४८] गोधन=गाय । जई=अंकुर । [५१] बीर=हे सखी । [५२] मनै=मान जा, रूठना त्याग दे ।

मेरी सीख समझ री राधे सोच हियैं अपनै ।
मेरो चातक ह्वै जाचत रस दै आनंदघनै ॥

सारंग] (५३)

हाइ हाइ दिन बीति चले ।
अब ब्रजनाथ साथ बिन सजनी दौं हराइयै जीति चलैं ।
उनहूँ कौं समझाइ सुनावै छाँडि प्रीति की नीति चले ।
उघरि बिसास कियौ आनँदघन तब क्यौं दै परितीति चले ॥

राग बिहागरो] (५४) [इकताला

राधा - मदन गोपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ।
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सौं तिन पर बगराऊँ ।
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन भवा मुकतान की झालरैं झुलाऊँ ।
सूची - गुन गस गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम - ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ।
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधो साधि कै सुख-बिबस बसाऊँ ।
मनि-चौकी ढिग राखि कै हित-साँज सजाऊँ ।
रुचित उचित मधु - पान के भाजननि भराऊँ ।
लालबिहारिनि कौं तहाँ रस - रीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाप पुजाऊँ ।
उमँग लाज - छवि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या विधि निज करतूति को नीकैं फल पाऊँ ।
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसें कहौं उठि बाहिर आऊँ ।
द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।

[५४] मिलाइए पृष्ठ ३१२ पर की 'मनोरथमंजरी' मे ।

टेरि लेहिँ तब लाड़िलो - हित हुलसि सिहाऊँ ।
कछू कहैँ लगि कान सौँ सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपत्ति सखी मन माँझ दुराऊँ ।
नैन - सैन जोबन - छकी लखि भाग मनाऊँ ।
पान - पात्र मादक - रसैँ रुचतो भरि प्याऊँ ।
आपुस को रसमसनि कौँ क्यौँ बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौँ समझौँ बहराऊँ ।
जुगल वदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल झेल अनुराग की मति छकनि छकाऊँ ।
बीरी सरस सुगंधमै रुचि जानि पचाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौँ सकुचनि पहिराऊँ ।
औसर उसरि चल्यौ चहौँ कछु उकति उठाऊँ ।
गैरी] आँचरु ऐँचि रहैँ प्रिया हौँ कछुक छुटाऊँ ।
मोहिँ भुज भरैँ छकनि सौँ जिय समझि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसवाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ।
परम चतुर रसरीति मैँ हौँ हितू कहाऊँ ।
महा मोद मानैँ भटू ज्यौँ ज्यौँ अनखाऊँ ।
अकथ कथा हित-रीति की हौँ कहा चलाऊँ ।
हौँ जानौँ कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ।
भाजि इकौसी ह्वै रहौँ कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सीँचनि प्रान की नाहीँ अरु हाँऊँ ।
मानि वधाई चाव सौँ मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपनी ठौर हौँ मृदु बीन बजाऊँ ।
केलि - रसमसे मिथुन कौँ सुख-नीँद अनाऊँ ।
या विधि मनभायो करौँ जगि रैनि बिताऊँ ।
बड़े भोर अनुराग सौँ भैरवी जमाऊँ ।
अति रति-मतवारेनि कौँ नव प्रात जताऊँ ।
फिरि फिरि पट तानैँ तऊ बहुरयौ अहुराऊँ ।

निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ।
आरस-भरी जँभानि पै चुटकीनि चिताऊँ।
अलक-तिलक-सेवा-समय आरसी दिखाऊँ।
बनै ठनै लाड़िलेनि कौं आँगन पधराऊँ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरो चटकाऊँ।
निरखि डगमगी डगनि कौं भुज गहि सम्हराऊँ।
नित नूतन रसरीति की चित चौंप बढ़ाऊँ।
तिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रसाऊँ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौं कहा मिलाऊँ।
सहज रँगीली जोट कौं जिय-बीच बसाऊँ।
चित-चातक-आनँदघनै रस-परस रमाऊँ॥

बिलावल] (५५)

मन मैलो न होइ सो कीजै।
हा सुरसरि हरि-सुरस-रूपिनी गुन-गरिमा महिमा सु
सरनागतहि परमगति-दायिनि दीन-मलीन-हीन-सुधि लीजै।
आनँदघन-हित बरस दरस पद-परस प्रबोध-प्रसादहि दीजै॥

ख्याल भैरो] (५६) [मूलताल

जियरा मैं क्यौं समझाऊँ।
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाहा।
ठौर न पावै उठि उठि धावै गहि गहि ल्याऊँ।
फिरि मुरझावै दैया री यह पीर निगोड़ी निपट सतावै कहाँ दुराऊँ।
मेरे मन की कोई न जानै जैसैं हौं दिन रैनि बिताऊँ।
प्रान-पपीहनि की यह बेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ॥

ललित ख्याल] (५७) [मूलताल

अब तौ परि गयो नैननि चसकौ, अरी ब्रजमोहन-दरस-तरस कौ।
मनहूँ संग लग्यौ उठि उनके रह्यौ नहीं मो बस कौ।
मति गति सिथिल भई देखतहीं हियरा धरधर धसकौ।
आनँदघन पिय कान धरैं जौ प्रान-पपीहनि ससकौ॥

[५७] तरस=तरसना। धसकौ=धड़कन। ससकौ=सिसक।

सारंग] (५८) [चौताल

नीके रहौ जू प्रानपति तुम तिहारी लागो हमहिं बलाइ ।
कोटि कोटि जुग रोम रोम सुख अगनित फलहु फलाइ ।
बिधिना की सुदृस्टि नित नितहीं रिपुदल डारो दलमलाइ ।
आनँदघन बरसत हितु बनिकै कुसल-कथाहि चलाइ ॥

गौरी] (५९) [मूलताल

कान्ह कान्ह रट लागी मेरी रसना क ।
जब तें बन गवनें बनवारी तब तें ये अँखियाँ औसेरनि
इक टक उतही झाँकें ।
मुरली-धुनि सुनिबे की साधनि प्रान बसेरो काननि घाँकें ।
वे आनँदघन इत चित-चातक को जानै कित कौं छावैं
अरु कित ह्वै आवैं मारग सूधैं वाँकें ॥

गौरी] (६०) [चपकताल

तनक सी मुरलिया पै बड़ो अचरज नाद ।
जाहि सुनत सीठे लागत मीठे सब स्वाद ।
ये गुन क्यौं न होहिं री सजनी लहति सदा हरिमुख-प्रसाद ।
आनँदघन सब ब्रज रस बरसति सरसति प्रेम - प्रमाद ॥

सुद्ध कल्यान] (६१) [चौताला

चटक कठतारनि की अति नीकी लटक सौं नाचै
मटक - भरयौ मौंहन ।
कर-चरन-न्यास अभिनय - प्रकास मुख सुख - बिलास
मन उरझै घुघरारी भौंहन ।
प्यारी उघटति कंठ किलक आछी दसन - चिलक
आछी पिय के जौंहन ।
आनँदघन रस रंग-घमंड सौं ललिता मृदंग बजावति
परन भरनि सी परति आवे गौंहन ॥

६१–भौंहन–सोहन (सतना) । किलक–तिलक (लंदन) ।

[५९] औसेर=व्यग्रता । घाँ=ओर ।

कानरो] (६२) [चौताला

कौन हठ परी है हौं न जानौं प्रानप्यारो कब को हा हा करत।
तेरो ज्यौं तनकौ कठोर कबहूँ न पायौ दैया अब किनि ढरत।
हौंहूँ फिरि तोसौं न बोलिहौं मो बिन कहा धौं काज न सरत।
आनँदघन अरु तोसो निठुर सौं पपीहा प्यासनि मरत
यह दुख क्यौं हूँ सह्यौ न परत॥

अड़ान] (६३) [मूलताल

कान्ह तिहारी मुरली मैं कछु टोना है हो।
खग मृग मोहित होत वहै गति हमहीं कौं ना है हो।
ताननि बाननि भिदै न कैसैं जाको जीव रिझोना है हो।
आनँदघन रस-प्यासनि बरसति बस यासौं ना है हो॥

हमीर] (६४) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन मृदु मूरति गढ़ी।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति जागि जड़ी।
जौं लौं दुराय सकी तौ लौं निबही अब न दुरति बनी कठिन बड़ी।
आनँदघन घमँडन उघरति तू हितू तातैं तोसौं कहति यह निपट अड़ी॥

एमनि विहाग ख्याल] (६५) [चलती ताल

सुहागिनि राधा रानी।
स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारो जाकैं बस अभिमानी।
सोभा को सिर छत्र विराजै बृंदाबन रजधानी।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी॥

६२–अब०–अबकैं न (सतना), अब क्यौं न (वृंदा०)। काज–काम (लंदन)।
६३–होत–होय (लंदन)। ६५–दुलारो–लाड़िलो (सतना, वृंदा०)।

[६१] झंतार=करताल, एक बाजा। न्यास=रखना। अभिनय=नाट्य। किलक=ध्वनि। चिलक=चमक। परन=मृदंग आदि बाजों के बोल के खंड। [६२] हा हा=दीनता-सूचक अव्यय। [६३] रिझोना=रीझनेवाला। [६४] पावै=समझे। जागि=जागरण अर्थात् अधिक। रति०=प्रेमाधिक्य से युक्त।

नट] (६६) [मूलताल

मोहि लियौ मन मेरो मोहन बनवारी कहा करौं मोहिं कछू न सुहाइ।
सोचति हौं दिन-रजनी सजनी हा हा बताइ कहा धौं करौं उपाइ।
सास-ननद की त्रासनि साँसनि भरि न सकौं जिय कलमलाइ।
आनँदघन बिन प्रान-पपीहा तरफत हैं कहा बनो है हाइ॥

धनासिरी] (६७) [मूलताल

तुम तन मोरी लगनि लगी है तुम बिन रहिल न जाइ रे।
घरी पल महिंकाँ जुग से बीतैं बेगि सम्हारौ आइ रे।
बिरहा महिंकाँ अधिक सतावै कछु न बसावै हाइ रे।
प्रान - पपीहा तरफत हैं आनँदघन होहु सहाइ रे॥

सारग] (६८) [चंपक ताल

मोहन मुरलिया बजी है, हौं कहा करिहौं मोरी दैया।
मनहिं घुमावै मति बौरावै री बैरहि लेन सजी है।
लाज-लपेटी कहाँ लौं रहियै धुनि धीरज की करति धजी है।
आनँदघन रस त्रासनि प्यासनि अब कोऊ अबला न जीहै॥

सारंग] (६९) [चौताला

बंसी बजै ब्रजमोहन की बन महियाँ।
स्यामसुंदर जमुना-तट बिहरत सघन कदम की छहियाँ।
मादक नाद सवाद महा छके घूमत खग मृग नग जहँ तहियाँ।
आनँदघनहिं निरखि सुरबनिता अभिलाषनि भीजी
भूलि पतिनि गरबहियाँ॥

बिहागरो] (७०) [मूलताल

जैहौं जैहौं री हरि पिय पै जैहौं मोहिं भिदी है मुरली-तान।
रोकी रहति कौन कों अब हौं कहति पुकारें खोलि कान।
घूमत मन अपनें बस नाहीं लग्यौ है बिषम अति बिरह-बान।
प्रान-पपीहा पलैं तबहीं जब आनँदघन को करैं रस पान॥

६७-रहिल-रह्यौ (सतना, वृंदा०)। ६८-मति-तन (सतना, वृंदा०)। अब-अकि (सतना)।

[६७] महिंकाँ=मुझे। धजी=धज्जी, टुकड़ा। [६९] खग०=पशु-पक्षी और पर्वत।

विभास] (७१) [चौताला

बरनि मेरी रसना ब्रजमोहन की रसकेलि ।
अद्‌भुत सुख-सवाद को सार धरै किनि सौंति सकेलि ।
मधुर विनोद सदा फल जामैं फलित ललित अभिलाष-बेलि ।
आनँदघन - गुन-रूप - चातकी गसि नीकैं खुलि खेलि ॥

आसावरी] (७२) [चौताला

सुनहु कान्ह ब्रजबासी तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी ।
तुमहीं सौं मन लागि रह्यौ अब सब तें भयौ है उदासी ।
ऐसी भाँति मरियत भरियत नित एक गाँव बसि भए प्रबासी ।
प्रान - पपीहनि के आनँदघन दैया निपट बिसासी ॥

टोड़ी] (७३) [चौताला

हरिचरननि की रज आँखिनि आँजौं मोहि यहै
अभिलाष रहै नित ।
कहा धौं पाऊँ कहा जतन बनाऊँ पाँख बिना तरफौं इत ।
को पावै यह पीर अटपटी चाह चटपटी चूर करै चित ।
पवन वीर तेरे पाय परति हौं आनँदघन पिय तन न
ढरकि जाहु हा हा करि हित ॥

रामकली] (७४) [चंपकताल

तिहारे कौन कौन गुन गाऊँ ।
इन अपने अनेक औगुन पै तुमहिं दयालै पाऊँ ।
सबही विधि सुधि लेत देत सुख हौं अचेत बिसराऊँ ।
आनँदघन उदार मृदु मूरति कृपा भरोसे छाऊँ ॥

सारंग] (७५) [मूलताल

मनमोहन की बँसुरिया, बँसुरिया बाजै बिरह-भरी ।
सुनि व्याकुल प्रान होत हमारे रह्यौ न परत घर एक घरी ।

७१–किनि०–कित सवै (सतना) । गुन–रस (वही) । ७२–बिसासी–बिसवासी (लंदन) ।

[७१] सौंति=संचित करके । गसि=कसकर । [७२] भरियत=दिन भरती हैं । बिसासी=विश्वासघाती ।

कैसैँ कैसैँ कुल-लाजनि बहियै कान्ह कुवँर सौँ वसाति न री।
आनँदघन नित उमड़ि घुमड़ि कै हम ही पै लाएँ रहत झरी॥

तथा] (७६)

तुमहि निरखि जौ प्राननि वारौँ।
तौ पुनि उनहूँ पै वारनि कौँ कहौ कृपानिधि कहा विचारौँ।
सफल होइ सौँतनि सब दिन की एकै बेर विरह दुख टारौँ।
सकृतै सुकृति-जनम-जस जीतौ तिनके कृतहि समझि हरि हारौँ।
इहिँ अभिलाष लाख लाखनि बिधि प्राननाथ गहि मौन पुकारौँ।
सुचित उचित आवै सो कीजै आनँदघन चातक-व्रत धारौँ॥

तथा] (७७)

भरोसैँ जीवौ आनि रह्यौ।
बनिहै कृपा कियैँ हौँ हो हरि मैँ निरधार कह्यौ।
जिहिँ तिहिँ भाँति रूप-गुन-धामहिँ कथत जनम निबह्यौ।
त्यौँ अब तिनके मरम-परस कौँ सूछम समय लह्यौ।
प्रान तनक सनमुख ह्वै यह पन दृगनि गह्यौ।
हा हा हा फिरि हा हा सुखनिधि बिरम न जात सह्यौ।
नंदकुमार उदार चतुरमनि विषम वियोग दह्यौ।
आनँदघन ढरि सुरस सीँचियै चित-चातक उमह्यौ॥

तथा] (७८)

इते ढके अरु उघरे केते।
कैसैँ कै कहि सकौँ रावरे मनमोहन अगनित गुन जेते।
निकट दूरि लहि परत नहीँ कछु आनँदघन रस-मगन संचेते।
हाइ हाइ बिसवासी बालम कबहूँ तौ आँखिन सुख देते॥

सारग] (७९) [चौताला

वंदौँ तिहारे चरन-सरसीरुह।
सिव-विधि-हृदय-सिंघासन-मंडन चिंताहरन कामदुह।

[७७] सौँतनि=संचय। सकृतै=एक बार मैँ ही। [७८] बिरम=बिलंब। [७९] कामदुह=कामधेनु।

कालिंदी कैं कूल केलिवस बिहरत बृंदाबिपिन कुंज-कुह ।
आनँदघन मन नैन प्रान मधि बसहु कृपा-गुन गन-गुह ॥

रामकली] (८०) [चौताला

सुमिरि मन हरिपद साँचौ रे ।
झूठँ राचि बृथा कित धावै डगमग खाँचौ रे ।
सुथरो सुथिर जहाँ नहिँ पहुँचत माया नाँचौ रे ।
कृपा-गुनहिँ गहि क्यौँ न, ज्यौँ न लागै भ्रम लाँचौ रे ।
अति अखंड आनँदघन दरसैँ फुरति न आँचौ रे ।
तिहि रस सरसि होत किन कबहूँ जड़ रोमाँचौ रे ॥

सारंग] (८१) [चौताला

सब कछु पहिलैँ ई दान कियौ हरि अब हौँ अनचाहनिहौँ चाहौँ ।
एक तुम्हैँ तुमहीँ तैँ जाचौँ हौँ इहिँ जोग कहा हौँ ।
कृपानाथ कोमल उदार नित बिसद बिरुद अवगाहौँ ।
सुरस पपीहा ह्वै आनँदघन तिहिँ बल पनहिँ निबाहौँ ॥

राग भैरव] (८२)

राधा हरि करत ललित केलि वेलि-कुंज मैँ ।
आनँद - उन्मद रँगे अनंग - रंग - पुंज मैँ ।
अंग अंग लपटि निपट रसबस लटपटत री ।
सुरत-समर-बीर-धीर रुपि न तनक हटत री ।
चौंपनि सौँ लुभि चुभि तन बिविध घात सहत हैँ ।
अति सुमार मार - सार वारपार बहत हैँ ।
कवचनि तैँ उमगि निकसि निकसि भिरत हैँ ।
कलित दलित बिगलित कच गिरि उठि उठि गिरत हैँ ।
आनँदघन अद्भुत छबि दंपति - नखसिख फबी ।
रुचिरन रँगमगी धरनि जैँ - जुत बृंदाटवी ॥

कुह=अँधेरे में । गुह=गुहे, गुंफित । [८०] खाँचौ=बोझ । लाँचौ=दोष, धिक्कार । [८२] मार०=काम के शस्त्र । वार०=आरपार हो जाते हैँ ।

भैरव] (८३) [चौताला

कब सरस करिहौ या नीरस मन कौं, थौं।
दरसैहौ निज रूप अनूपम बरसि कटाछ सघन कौं।
तचनि रचनि अरु नचनि बहुत बिधि तिनतैं बचि
खचिहै तुम तन कौं।
जीवन-धन उदार आनँदघन जाचत चातक-पन कौं॥

सारग] (८४) [चौताला

कौन जानै री या मुरलिया मैं कहा भेद बजै।
तनक भनक स्रवननि मैं परतहीं मनु न रहत ठौर
लोक-वेद-कुल-कानि तजै।
तन की सब सुधि भूलि जाइ कोऊ कैसैं लाज के साज सजै।
हा हा करि पायनि परि को आनँदघन पियहि नैंक बरजै॥

गौरी] (८५) [इकताला

हमारी सुरति करौ ब्रजनाथ।
तुम बिन हम अब निपट दुखारी जैसैं मीन बिन पाथ।
निसि दिन गाइ गाइ जीवति हैं सबरेई गुन - गाथ।
आनँदघन रस बरसि पोषियै प्रानपपीहा साथ॥

रामकली] (८६) [मूलताल

अब कछु बाधा नाहिं रही।
मदन गुपाल मिले सुखदायक साधा सबै लही।
रोम रोम अति हरष भयौ है जीवन सफल सही।
आनँदघन या रस की संपति कैसैं परति कही॥

रामकली] (८७) [चलती इकताल

मैं स्याम दरस पायौ, भयौ अब सब बिधि मनभायौ।
बहुत दिन तैं लगी हुती आसा जिय गाढ़ी।
....।
सुंदर बदन सुखसदन की उपमा नहिं दूजी।

[८३] तन=ओर। [८५] पाथ=जल।

प्यासे नैन प्राननि की साधा सब पूजी।
महा मोहन मधुर मूरति सुख-समूह सरसै।
मुलकि चाहनि मो पर अनुराग-रंग बरसै।
दृस्टि-मिलनि अंतर-खिलनि अंग अंग छाई।
देखि सखी मो तन आनँदघन - सरसाई॥

रामकली] (८८) [झपताल

नंदनंदन - चरन बंदन करौं हौं।
राधिका-नव-उरज-राग-रंजित ललित अति
रस - वलित क्यौं कमल सरबरौं हौं।
रुचिर दच्छिन सुअँगुठा - मूल कूल क्रम
जौ चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं।
अरध पद लौं सुभग तरजनी - संधि तें
सूछम सुरेख कुंचित चित धरौं हौं।
मध्यमा - तरें मंजु कंज सपताक धुज
दृग-अलि तहीं हिय कहत फरहरौं हौं।
छिगुनी-तरें चारु अंकुस कुलिस लसत
मन-गज गरब-गिरि थकनि अनुसरौं हौं।
मंगल सदन चारि साथिये इन तरें
जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं।
तिन मधि बन्यौ अस्टकोन सब सिधि-भौन
दाहिने चल वाम करि भव तरौं हौं।
वाम अभिराम अँगुठा-मूल संख सुभ
मध्यमा - तरें नभ निहारि न टरौं हौं।
तिन द्वै तरें धनुप-पनिच चित चढ़ि रह्यौ
तातर सु गोपदन नैक विसरौं हौं।

८८—सदन-रलस (वृंदा०) ८८०—घट चँवर सुधासर (नतना)।
[८८] सम्यरौं=उपमा दूँ। कूल=पास। क्रम=क्रमशः। कुंचित=टेढ़ी।

तिहिँ तर त्रिकोन घट चारि सव रेसधाम
अरध बिधु मीन दुति किहिँ पटतरौँ हौँ।
कहन कौँ बाम पै दाहिनो मोहिँ नित
हित चित लगाइ रुचि पानि पकरौँ हौँ।
उदित ससि सरद के कोटि नख-पाँति पर
वारि भुवन - चकोरनि दुख दरौँ हौँ।
सुढर गुलफनि पीठि तकि डीठि थकि रही
मनसा रढति पूतरिनिहीँ अरौँ हौँ।
बृंदा बिपिन अवनि सीस - आभरन जुग
गति कलाधर रास - रसिक उचरौँ हौँ।
विहरत सुजान प्यारी - सहित जमुन-तट
प्रानपट आनँदघन बिस्तरौँ हौँ॥

तथा] (८९)

राधिका - चरन वंदन करि बखानौँ।
पाइ जिन बल नदनदनहिँ हाथ करि
चैन भरि नैन मधि देहुँ थिर थानौँ।
बाम अँगुठा मूल जव चक्र जगमगत
हिय हरित-करन दल - दुख-दलन जानौँ।
अरध पद लौँ ललित तरजनी - संधि तेँ
सूछम सुरेख अनिमेष उर आनौँ।
मध्यमातर - कमल धुज अमल दुति जमल
मन - मधुप सुखसदन प्रान - धन मानौँ।
तिन तर पुहपलता लहलहति महमहति
हित फलित ललित चित-थावरैँ ठानौँ।
छवि-घनी छिगुनी निकट करी - वसकरन
इतर मदमत्त मन करखन प्रमानौँ।

थकनि=रुकना। साथिये=स्वस्तिक। बल = सहारे। वाम०=संसार को बायाँ करके, संसार से विमुख होकर। पनिच=प्रत्यंचा, धनुष की डोर। [८९] जमल=दोनौँ (कमल और ध्वज)। थावरैँ=थाले मैँ। करी०=हाथी को वश

पुनि चक्रतर रुचिर बलय अरु छत्र - छबि
कबि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं ।
अरुन एड़ी उदित अरध बिधु मुदित लखि
पिय चख - चकोर जुग चौंप चित सानौं ।
यौं सुमिरि बाम पद केलि - लीला - रसद
अति बिसद मति तिहिं प्रसाद पहिचानौं ।
दुतिय एड़ी मकर कामधुज स्याम तन
रति - समर - समय फरहरनि गुन गानौं ।
तापर मनोरथ सुरथ अरु बिलास गिरि
तिनि इतै उतै गदा सकति करि ध्यानौं ।
अँगुठा सुमूल सुभ संख सोभित महा
सारदा - ओज-हित चित-बिधि बिधानौं ।
पिय - जिय - निवास बँदी छिगुनियाँ तरैं
तातर सुकुंडल निरखि लजत भानौं ।
रासमंडल - रसिक बरदान देव बिमान
निधि - पोत चित चाहत लुभानौं ।
मनसा - सिंघासन सुदेस आनंदघन
तापर बिराजि सुचि रुचि बनक बानौं ॥

(९०)

रसिक राधारमन रमत रसरास रचि ।
सरद - रजनी उदित चंद लखि मुदित मन
अगनित आभीर-बनिता-संग रंग सचि ।
रूप - लावन्य गुन - माधुरी अमित अति
मति तोम-रोम-रचना कहि न सकति पचि ।
जोरि कर मंजु मंडल मनोहर गतिन
नव जतिन जव-सहित लसत सब सुमिल नचि ।

में फरनेवाला अंकुश । रसद=रसदायक । सकति=शक्ति, बरछी । बँदी=
बिंदु । सुदेस=सुंदर । [९०] आभीर=गोप । तोम=समूह । जति=यति,

गान कल तान परिमान बंधान जुत
हरत हिय कहत सुर सुद्ध संक्रमन जचि।
मानत न तृपति पुनि पुनि स्रवन - पुट पूरि भूरि
जीवनमूरि घुरि तृपित प्रान अचि।
सुखिर आनंदघन जंत्र संचरित रव-संकुलित
सुर चकित थकित चित तुमुल मचि।
तरुनि तिनकी तिहिं अतन-तमक-चमक-बस
द्रवित हिय होति अभिलाष आरति नित नचि।
आनँद-पयोद सु विनोद-आसार-बल मधुर
रसनिधि तरंगनि विराजत उगचि।
ह्वै मकर-मीन मन-नैन या मधि पगहु लगहु
उखिल अखिल एक इहिं परचि॥

कानरो] (९१)

हरि भजि लै मन मेरे भाई।
हरि भजि निरमल भए विकारी अब तेरी हू बारी आई।
बाद-सवाद-बस पच्यौ तच्यौ तू तहाँ न तनकौ तृपा सिराई।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि लहि असेप सुख-सीतलताई॥

केदारो] (९२) [झपताल

कृस्न-गुन गाइ लै रे मन गाइ लै, ऐसैं रसना लड़ाइ लै।
सकल स्त्रुति - सार अबिकारकारी महा मंगल सुधाहि अँचाइ लै।
जीवन-अधार धारन करि सुधरि भलैं अंतर निरंतर बसाइ लै।
चातक-निचय - चौंप-विवस ह्वै एकरस आनँदघनहिं बरसाइ लै॥

तथा] (९३) [चंपक

हरि नाम लै रे लै रे लै मन हा हा।
जीवन जनम सफल ताको यह लाहा।

विराम। जव=तीव्रता। पुट=दोना। घुरि=लीन होकर। अचि=आचमन करके। सुखिर=खोल। अतन०=काम का आवेश। आसार=वृष्टि। उगचि=बढ़कर। उखिल=अजनबी, अपरिचित।

सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदनि गाहा ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहनि प्यावैगो कब आहा ॥

विलावल] (९४)

गृह-सुख साध्यौ नव-बिधि सेयौ देखौ हरि मो जोग नयौ ।
इत तैं गयौ न उत लौं पहुँच्यौ बीच बीच हीं भरमि छयौ ।
लखियौ जू रिझवार रसिकमनि अब तौ तुम हित भाँड भयौ ।
हँसौ लसौ बरसौ आनँदघन जीवन जस है उनयौ ॥

(९५)

अब तुम तब तुम जब तब तुमहीँ तुम बिन कब हौं हौ तुम हौं ।
यह दुरि उघरनि कहौ कहाँ तैं सीखे तुम्हैं तुम्हरी सौं ।
आपु बीच परि नाँव और धरि करत अटपटी बातनि कौं ।
आनँदघन सुजान दृग-तारे लखी न परति अनोखी गौं ॥

सारंग] (९६) [चौताला

पुरान पुरुष परमेसुर, ग्याँन दाता बिग्याँन बिधाता
मोहू पै ढरियै परम गुर ।
अपार हौ अति दीन हौं बिचारि लेहु उर ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन होत आए हौ धुराधुर ॥

तथा] (९७)

एक गाँव कैं बास बसियत है हो पै और सब लेखैं बिदेस ।
कौन कौन भाँति जिय समझाऊँ पाऊँ नहिं धीरज को लेस ।
आनँदघन सुजान ह्व सुरति बिसारि दई दैया मरियत याही अँदेस ॥

तथा] (९८)

अहो प्यारे किते गई तिहारी वह ढरकौंहीं बानि ।
पहली चौंप चाड़ सुधि करि देखौ परेखौ यहै अबै सब छाँडी पहिचानि ।
मृग पारधी की गति कहा कीनी नाद-रस प्याइ बान मारधौ तानि ।
आनँदघन पन राखि प्रान तजि सनमुखहीं रह्यौ बड़ोई लाभ बड़ी हानि ॥

[९४] भाँड०=अप्रतिष्ठा हुई । [९५] हौ तुम०=तुम हो तो मैं हूँ । सौं=सपथ । गौं=घात । [९६] धुराधुर=आधार । [९८] पारधी=ब्याध ।

तथा]
(९९)

बालम गँवन कियौ सो भलैंई कियौ पै क्यौं गए दै अनकही।
मरति जरति निसिद्यौस परेखैं जु मन की मन ही मैं रही।
ऐसी तुम्हैं जौ बनी हो बिसासी तौ वस कौन हम मौन गही।
भूलैं भाइ सुधि लीजौ कबहूं कहूँ आनँदघन बिनती यही ॥

तथा]
(१००)

डोलति घर आँगन बिलखी सु न बोलति पिय कैं विरह भई पीरी।
पल पल तपत उसासनि औसति जाति गात परि सीरी।
इत उत चितवति निसिदिन औधि - आस - टग लगि रही री।
आनँदघन पिय कैं मिलन आतुर यातें चाहति होन भँभीरी ॥

तथा]
(१०१)

तुमसौं बिनती करियै हो किहि भाँति जाहि तुम मानौ सो
मोहि देहु गुपाल बताइ।
ढरनि छबीली अपनी ओर ताही त्यौं तकत दिन राति बिहाइ।
चित चातक की प्यास भरे सुदरस रस-बरसौ आइ महा
आनँदघन छाइ ॥

तथा]
(१०२)

अब तू दै री द्दग अंजन।
कब की हौं आई हित विनती करि पठाई अरबरान है हैं मनरंजन।
अलप ततो गुन तलप रचल पीत पट सौं पौंछि पौंछि नवदल कंजन।
आनँदघन सुजान रसनायक कोटि - मदन - मद - गंजन ॥

(१०३)

लगौंहैं मनहीं औरै होत।
हैं जलचर विचरत अनेक पै अमिल मीन-गति-गोत।
जत अनंत उलूक आदि दै देखत चंद - उदोत।
कछुक चोर की चौंप न्यारियै अनल सुधा को सोत।

[९९] अनकही=मौन। परेखैं=पछतावे मैं। [१००] भँभीरी=एक पतिंगा, जुलाहा। [१०२] अरबरान=व्यग्रता। तलप=सेज। [१०३] जत=जंतु।

जहाँ जगमगत प्रेम - दिवाकर तहाँ नेस खद्योत।
आनँद्घन रस तृषित पपीहनि कहूँ अमी तेँ ओत॥

(१०४)

मोँहि भरोसो है हरि - हित को।
जाहि सुमिरि बिसरै चित-चिंता सुभदायक नित नित को।
ता कर सौँपि लोक-परलोकहि तज्यौँ सोच उत इत को।
विधि निषेध जंजार निवेर्यौं अब धौँ साँसौ कित को।
तित को जगनि जानि सुख सोऊँ बढ़ौ आसरो जित को।
बृथा नीँद उखनीँद मचाऊँ सो रखवारो बित को।
सदा दयाल सुभाव सँभारौ सागर कृपा अमित को।
आनँद्घन चातक-मन पूरन भयौ भावतो चित को॥

पूरिया] (१०५) [मूलताल

तूँ नैक दरसन दै रे दै निरमोही नैन तपत हैँ आज।
कहा करौँ कछु वस न चलत मेरो वैरिनि भई यह लाज।
तन मन की सुधि भूलि जाति सब तनक सुनत बन बंसी-बाज।
आनँद्घन इन प्रान-पपीहनि रटना हीँ सौँ काज॥

हमीर] (१०६) [चंपक

तेरी सूरति देखिवे कौँ मेरे लालची नैन भए।
तरसत वरसत रहत रैन दिन ऐसी चाह छए।
एहो कान्ह तैँ कहा कीनी जु दिखाइयौ न दीनी अए।
आनँद्घन ये प्रान-पपीहा भरोसे ही रटए॥

बिहागरो] (१०७) [चंपक

हरि-मुख देखन की सु माई मेरी अँखियनि बानि परी।
लोकलाज सौँ काज कहा रह्यो अब यह जानि परी।
गुरजन-सिख सुनि सुनिवे की उर अरसानि परी।
आनँद्घन इनसौँ प्रान-पपीहनि हिलगनि आनि परी॥

अमी=अमृत। ओत=चैन, आराम। [१०४] साँसौ=संशय, संदेह। उन-नीँद=उनीँदी नीँद, उचटी नीँद। बित=धन।

एमन] (१०८) [चौताला

सकुचनि सौंहैं निहारि न सकियै।
लालन सनमुखहू बड़भागिनि गुरजन-डाँट निसकियै।
ओट भएँ मुरझानि होत सब अंग सिथिल ह्वै थकियै।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहनि लगियै रहति टक जकियै॥

बिभास] (१०९) [चंपक ताल

तुम देखौ री मुरलिया ताननि रंग करै।
सुनी अनसुनी कैसैं कीजियै सुधि बुधि तुरत हरै।
प्राननि पैठि पैठि निकसति ऐसी को जो धीर धरै।
बिरह-ताप मेटति आनँदघन बस करि रसहि ढरै॥

तथा] (११०)

मोहि जगाइ जगाइ जागै री वाके जिय की न जानियै बात।
इक टक नैन लगाइ लखै हौं लजाइ रहौं नकबानी भई इहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिनिहीं जु होत प्रभात।
अति गति कहि न परति आनँदघन इत आवत उत जात॥

विभास] (१११) [मूलताल

चितवनि अरसीली बोलनि सु रसीली डोलनि ढीली ढीली।
पिय समीप निसि-सुख की झलक मुख बिथुरी अलक अरु लगी
ललित कपोलनि पीक-लीक छबीली।
अँग अँगरानि जँभानि जानि झुकि मरगजी सारी अति सु बसीली।
मुकुर देखि अवरेखि मनहि मन आनदघन कछु भौंहनि होति हसीली॥

तथा] (११२)

मन उरझे सुरझन नहिं क्यौं हूँ चलत भवन पग पडत पिछौंडे।
इक आरस-सिथलानि और अकुलानि बडी यातैं ठठुकि
ठठुकि फिरि फिरि चितवत हित-बानि-कनौंडे।

[१०८] डाँट०=फटकार से नहीं डरती। जकियै=धुन ही। [१११]
मरगजी=मैली, सलवट पड़ी। बसीली=सुगंधि०। अवरेखि=विचार कर।

पुनि ढिग आइ अंग भरि भेंटत मगन होत अति रति-रस औंडे।
बिछुरत रहत न बनति आनँदघन सुधि आवत जब गुरजन भौंडे॥

विभास] (११३) [चौताला

तेरी वलाय लीजै बार बार तोहि कीजै आँखिनि पुतरी।
कान ह्वै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी।
वारौं सिंगार आज की छबि पै हा हा न जाहि कहूँ इत उत री।
आनँदघन हौं ही देखौं न देखौं पै रहि न सकौं अद्‌भुत री॥

तथा] (११४)

सब रैनि जगाई री प्रानेसुर यातैं दृगनि ललाई छाई।
अंगनि आरसताई लेत जँभाई लागत मोँहि सुहाई।
अंतर की रस-सरसाई नीकैं देति दिखाई काच-घटा की रँगहाई।
रोमरोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरखि सु उलही है हरख-हरथाई॥

तथा] (११५)

ए तेरी आँखिनि मैं अनखानि भरी अरु बोलनि हूँ लै ओखौ।
मेरेइ नैन स्रवनन ह्वै ह्वै उपजावति प्राननि पोखौ।
मोहि तऊ नीकी लागति ज्यौं ज्यौं होति रूखी रचि रोपौ।
आनँदघन सनेह-चिकनाहट पै दुरत नहीं अति चोखौ॥

तथा] (११६)

रस की बतियाँ करिकरि रैन बिताई री प्यारी दृगनि अरुनई भई आछी।
अति सुख लूट मची पिय सौं मिलि काहै कौं मोतैं दुराव करति
तेरे अंग अंग देखियत साछी।
आनन ओप अनूप वढ़ी त्रिभुवन तरुनीनि करति पाछी।
आनँदघन जान रसिक रसबस ह्वै तू नखसिख अति नीकी विधि काछी॥

तथा] (११७)

तैं रस-बस करि लीनौं री प्रानप्यारो न्यारो नेकौ होन न चाहत।
तोही सौं हिय जिय हिलगनि घरीघरी पलपल छिनछिन जु उमाहत।

[११२] औंडे=गंभीर, गहरा। भौंडे=भद्दे। [११४] रँग०=रंगीनी। हरयाई=हरियाली। [११५] ओखौ=टेढ़ापन। चोख=तीखापन। [११६] साछी=साक्षी। पाछी=पीछे। काछी= ठाट ठटा।

घर आँगन वन बीथिनि जित तित तेरोइ रूप दृगनि अवगाहत।
धनि धनि भाग सुहाग राग आनँदघन सब ब्रज सु सराहत॥

विभास] (११८) [इकताल

साँवरे संग रंग रैनि-रस बिलसी कहति नैन बैननि बनाइ।
अधर अरुनई नई भई कछु मुख सुख-ओप बढी सुभाइ।
अँग अँगरात जँभाति जाति झुकि लडकि लडकि बोलति लजाइ।
आनँदघन प्राननि प्यारी या छवि की मोहिं लागौ बलाइ॥

विभास] (११९) [झपताल

रसमसे नैन अरसौंहैं ललौंहैं सिथलौंहैं।
झपकौंहैं मृदु हँसौंहैं सौंहैं जौंहैं कछु लजौंहैं
मन मैंहैं घूँघट मैं तिरछौंहैं लसौंहैं।
सुभाव चपलौंहैं कौंहैं उमगौंहैं सनेह चिकनौंहैं
अनखौंहैं लड़ौंहैं।
कटाछ बरसौंहैं सुसील दरसौंहैं आनँदघन प्राननि बसौंहैं॥

विभास] (१२०) [चौताला

मैं तुमसों केतियौ बार कही पै तुम तनकौ नाहिं गही।
ब्रज को लाग सहज ही चवाई इत उत ढुके लेत हैं सोध यही।
तुमहि न सोच कछू काहू को लाज निदरि नित ही निवही।
आनँदघन जिय सौं जिय मिल्यौ तो अब कहा कसरि रही॥

(१२१)

जिनके मन सुविचार परे।
गुरपद - परम - पुनीत - प्रसादहि पाइ प्रेम आनंद भरे।
जग तैं बिरल विवेक-देस बसि देखन कौं तित रहत ररे।
खान पान परिधान आन विधि अनासक्त ह्वै करम करें।
साधारन सुभ असुभ न जानत नित निहचय रचि सोच टरे।
सावधान अति विरह - बावरे मिलि सुरूप इहिं ढार ढरे।
अमल अनूप बिदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति विचरे।

[१२१] ररे=रटते रहते हैं।

तिनके पद पावन की रज मैं अखिल लोक - उपकार धरे ।
कृस्न-रसासव छन्निस पान तैं घूरन पूरन काम खरे ।
तत्वबोध की वलक छलक बस ढकी गाँस व्यौरनि उघरे ।
कव धौं मिलैं हाइ हमहूँ वे संत - कलपतरु कृपा - फरे ।
सोभामूल फूल - सुख वरसत सरसत छाया हरे हरे ।
सुभ सीतल सुदृस्टि धारावलि सींचैंगे उरदाह - बरे ।
आनँदघन अमोघ रस-दायक प्रान रहत अभिलाष-अरे ॥

(१२२)

अब तौ वह गह मोहि बतैयै ।
जिहिं गह गहे परौ पुरुषोत्तम हाहा कब लौं छलनि सतैयै ।
दुरि कित रहे उघरि नाचे पै या बिधि दीनहि कहा दतैयै ।
करि किन लेहु आपनो संगी बहुरंगी लखि लजहु ततैयै ।
अवसर गएँ कौन जन स्वारथ ढीठ्यौ दै जदुनाथ जतैयै ।
आनँदघन जग सुजस छाइ कै पतित पपीहैं निपट न तैयै ॥

सारंग] (१२३) [चौताला

कैसी नीकी सीरी सरूप पन जमुना तीन तन वारी ।
तहाँ वैठि मधु पियत जियत अधरनि सौं मिलै रसिक राधा छके वनवारी।
अति रसमगन उछट नहिं मानत कबहुँ होति हाहा मनवारी ।
दंपति चौंर केलि आनँदघन भाँतिनि अन अन वारी ॥

तथा] (१२४)

अनखनि सूधियौ न वोलै ।
ढीलियै डगनि डरति जोवन - छटा कढ़ि पै टेढ़ी डोलै ।
मेरेई मुख मोहूँ सौं दुरावति ऐसी प्रकृति कित पाई अहो लै ।
आनँदघन की रमँडनि घमँडनि उघरति सब अंगनि
पानिप ओप अतोलैं ॥

घूरन=घूर्णित, मत्त । गाँस=द्वेष । व्यौरनि=विवेचन । उघरे=प्रकट होने पर ।
[१२२] गह=पकड़ । दतैयै=डटे रहने को विवश करते हो । ततैयै=चालाक को ।
न तैयै=तपाओ मत । [१२३] उछट=उचाट । अन=अन्य या अनु=बारंबार ।

तथा] (१२५)

ये नीके नीके सगुन भए।
लालन नियरे सुनि हियरे तें सब दुख दूरि गए।
उरज उमँगि सरकत बँद तरकत फरकत आगम अंग अए।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन सब रस लैं उनए ॥

बिभास ख्याल] (१२६) [चलती

प्यारे तिहारे मिलिवे की औसेर, लागियै रहति मो जिय मैं।
तरसत नैंन रैंनि दिन बरसत दरसत जग अँधेर।
कीजै कृपा लीजै जिवाइ दीजै दरसन इक बेर।
व्याकुल महा कहा करौं क्यौं भरौं परी बिरह कैं घेर।
प्रान-जीवनधन आनँदघन पिय सुनहु कान दै टेर ॥

तथा] (१२७)

निमाँनियाँ तुझ विना असी हुइयाँ।
दरस दिखावीं आनि जिवावीं नातर एवी मुइयाँ ॥

भैरो] (१२८) [झप

विरुदै सुमिरि वेसम्हारनि सम्हारौ।
अकारन करुना, कहा करनी निहारौ।
सुकृती-कुल ह्वै मिलौं तुमहि तौ कहौ या विधि कृपानिधि पलै पन तिहारौ।
सकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रवल मतवारौ।
ताप आतप तलफि बिलखि मुरझात जननाथ आनँदघन कौन हित धारौ ॥

राग विभास] (१२९) [चौताला

डगमगे चरन धरत हैं दोऊ आरस-बस निसि जागे।
कुंज भवन तें उठे भोर ही परम सुरति-रस-पागे।
बिथुरे चिहुर जगमगे आनन गरबहियाँ दियैं अति नीके लागे।
तन मन आनँदघन घमँडनि लखि लोचन भए हैं सभागे ॥

१२७–हुइयाँ–कुइयाँ (मतना)।

[१२७] निमाँनियाँ=अमानी। [१२९] चिहुर=केश।

बिभास] (१३०) [चौताला

कछू रह्यौ अंजन फैल्यौ ती कौ कहूँ कहूँ लगी है कपोलनि पीकौ।
हौं वारी फिरि वारी राधे या बानक पै सुखदायक मो जी कौ।
छूटे चिकुर कंचुकि-बँद टूटे अधर दसन छत है अबही कौ।
भाग सुहाग घमँड आनँदघन बरसत सरसत पोष पपीहा पी कौ॥

राग देशकार] (१३१) [चौताला

बलिहारी हो कान्ह न पाई परति अटपटी बानि।
मन और मुख और ठौर ठौर ठानत डोलत पहिचानि।
ब्रजराजा के कुलमंडन हौ तुमहि कौन की है हो लाज कानि।
आनँदघन पिय रस-प्यासनि हमहूँ सौं करत आनि सरसानि॥

कानरी बिलावल ख्याल] (१३२ [मूलताल

सालूवाली मुरलीवाला तैंडा यार है।
घरी घरी आवँदा घुम्मर पावँदा बिसर गया घर-बार है।
तुझ वल तकदा रहि नहीं सकदा लग्ग नवेला प्यार है।
मिहिर नजर मुडि वेखनी से ये आनँदघन दिलदार है॥

सोरठ] (१३३) [चौताल

मेरी बानो मैं बनवारी बसौ, एक मुखी करि गुन गसौ।
असद अलाप अलपौ ना होइ सिथलताई तजि नीकैं कसौ।
मुरली-सुर सौं समोइ लीजियै ज्यौं गावै राधिका-सुरस-जसौ।
आनँदघन हित सरसौ बरसौ रोइ कहत हौं कहा धौं हसौ॥

पूरिया कल्यान] (१३४) [चपक

गोवरधन धरिवौ खेल कियौ हो।
नंद महर के कुँवर कन्हैया कठिन बात कैसें कहि आवै
बहुविधि रस लै दियौ हो।
इंद्र बापुरो खरौ खिसायौ निज ब्रज नीकैं राखि लियौ हो।
बरस सरसि अचरज आनँदघन सींच्यौ हितनि हियौ हो॥

[१३०] ती=स्त्री. राधा। अबही०=टटका। [१३२] सालू=लाल कपड़ा। तैंडा=तेरा। घुम्मर०=चक्कर काटता है। बार=द्वार। वल=ओर। मिहिर=कृपा। मुडि०=मुड़कर देखना।

रामकली] (१३५) [चंपकताल

गाइ लै री रसना गुन गुपाल के।
गोपीनाथ गोबिंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिबरधर रसाल के।
राधारमन रसिक रससागर नागर नवल सुनयन बिसाल के।
आनँदघन ब्रजजन - जीवनधन परम - प्रीति - पन - पाल के॥

गौरी ख्याल] (१३६) [मूलताल

तुमहीँ हो हरि गति मेरी।
सबै ठौर सब भाँति सब समय पति मेरी।
तुमहीँ मैँ तुमतेँ निहचल रहौ मति मेरी।
आनँदघन चातक लौँ राखौ रति मेरी॥

कनरी ख्याल] (१३७) [मूलताल

सलोने स्याम सौँ मन लाग्यौ री।
गनत नहीँ कुलकानि ननकहूँ अब ऐसो अनुराग्यौ री।
छिन पल कल न धरत बिन देखेँ उनहीँ के पन पाग्यौ री।
आनँदघन हित भयौ है पपीहा और सबै कछु त्यागो री॥

कानरी दरबारी (१३८) [चौताला

जमुना सरस सिँगार हिये मैँ बाढ़त तेरो रूप निहारि।
तरल तरंगनि अति रति रंगनि भेँटत स्यामहि सहस भुजानि पसारि।
मंजन करत कान्ह मनरंजन पै परत परम प्रीति पन पारि।
नवघनमै आनँदघन घमँडनि अदभुत रस - बढ़वारि॥

राग हमीर] (१३९) [चपकताल

मोरचंद्रिका मोहि चाहि रहे हौँ हूँ वाहि निहारौँ।
चकित डीठि करि लेत मेरियौ घूँघट केसैँ सुधारौँ।
ब्रजमोहन की नई तरुनई रंग भरी छवि पै कहा वारौँ।
रीझ रमँड आनँदघन घमँडनि प्रान - पपीहनि पारौँ॥

१३७–पन–रस (सतना)। भयौ है–प्रान (वृंदा०)।

राग बिभास] (१४०) [इकताला

लाग्यौ जी अब तौ मन तुमसौं कैसैं हूँ करि होत न हातौ ।
सुनहु कान्ह अँखियनि के तारे निपट कठिन है नेह को नातौ ।
मोहन मूरति देखि लुभानौ उमहत नहीं और की घाँतौ ।
आनँदघन कुलकानि - संखला डारी तोरि महा मदमातौ ॥

गंधार] (१४१)

जसुमति लालहि नेहु लड़ाइ ।
करौ क्यौं न यौं सफल भली बिधि जीवन सो धन पाइ ।
यह सुख सोभा अरु यह औसर भल्यौ बन्यौ है आइ ।
गोपराज के बास बसौ मन जौ लौं कछू बसाइ ।
स्याम सजीवन ब्रजजन - जीवन रहत एकरस छाइ ।
हिलनि मिलनि बोलनि डोलनि खेलनि अप अपनै भाइ ।
यह जमुना यह रमन भूमि छबि देखन को है दाइ ।
रची विधाता अति रसरैनी रंग चढ़ै तो चाइ ।
रस-चसकौ जौ परै जीव कौं जियै ज्याइ गुन गाइ ।
प्रान - पपीहनि पोपि पालियै आनँदघन बरसाइ ॥

राग बिभास] (१४२) [चौताला

अरी चलिचलि उठि चलियै घर कौं चली निसि ये तौ मचलि परे हैं।
इन बातनि कबहूँ न अघाने ये धुर के रसलोभी रसिक छैल
अति छल-बलनि भरे हैं ।
चोरी मैं चोचँद सठताई चतुर कहाइ निसंक खरे हैं ।
फूँकि फूँकि पाय धरि ब्रज बसियत ये आनँदघन छाइ छाइ उघरे हैं ॥

एमनि बिहा] (१४३) [चलती इकताला

घरी मैं कैसैं भरौं कहा करौं प्यारे ब्रजचंद बिना ।
रैनि अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीं एकौ छिना ।
क्यों हूँ क्यौं हूँ होत सवारौ बाट निहारौं सबै दिना ।
आनँदघन पिय भूलेहूँ लई प्रान-पपीहनि की सुधि ना ॥

[१४०] संखला=(शृंखला) कड़ी । [१४२] धुर के = अत्यंत ।

बिलावल] (१४४) [इकताला

प्रान सनेही साँवरे सुधि दीजै हाहा ।
एक तिहारे आसरे लगि जीजै हाहा ।
जो जिय भावै भावते सो कीजै हाहा ।
रैनि दिना अँसुवानि सौं उर भीजै हाहा ।
बिरह तचैं सियरो परै तन छीजै हाहा ।
मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हाहा ।
जित तित हित अनहित भजै क्यौं धीजै हाहा ।
ज्यौं तरसत प्यासनि भरयौ रस पीजै हाहा ।
आनँदघन छाए कहाँ वे बीजै हाहा ॥

बिभास] (१४५) [मूलताल

ऐसैं और कौन दुलरावै, राधा मोहन कौं जैसैं जैसैं हौं गाऊँ ।
हिय उमंग अनुराग रंग रागनि तरंग सौं रीझनि भीजि भिजाऊँ ।
एक बरन मैं जुगल - बरन बर बरनि वरनि वानी वर पाऊँ ।
रोम रोम सुख संपति लहि आनँदघन बरसाऊँ ॥

पंचम ख्याल] (१४६) [मूल

मेरो कह्यौ सुनि लै री राधे हाहा मान न कै री राधे ।
ब्रजमोहन अँखिया को तारो तो बिन व्याकुल है री राधे ।
बिनती करि करि मोहिं पठायौ बहुत भाँति सौं नै री राधे ।
आनँदघन पिय तृषित पपीहा रिस तजि कै रस दै री राधे ॥

(१४७)

आरति करत वियोगी नैन ।
मोहन मूरति देखैंहूँ बिन देखत हैं दिन रैन ।
हिय-जिय-दसा सनेह-सँजोई जगमगाति जगि मैन ।
आनँदघन पन-पले पपीहा लै वारत सुख-चैन ॥

[१४४] नहिं थीजै=स्थिर नहीं होता । धीजै=धैर्य धरे । बीजै=(विद्युत्) बिजली ।

अड़ानो] (१४८) [मूलताल

क्यौँ जू कान्ह कहौ तिहारी चितवनि मैं कौन ठगौरी ।
चाहतहीँ चित जात बिबस ह्वै लागि रहति हित-ढौरी ।
कैसैँ अपुनपौ साधि राखियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी ।
लाजौ रीझ भीजि आनँदघन मिल्यौ चहति भरि कौरी ।

भैरव ख्याल] (१४९) [चलती इकताल

मेरी अँखियनि के आगैँ रहियै प्यारे ।
सहि न सकैँ अंतर करि राखौंगी तारे ।
हित की गति को बूझै तुम बिन और न सूझै रूप-उज्यारे
ब्रजमोहन मतवारे ।
आनँदघन जीवनधन तुमहीँ सौँ लाग्यौ मन बिन
देखे छिन छिन रहैँ प्रान दुखारे ।
तनक दया गहौ हाहा तुमहीँ कहौ कैसैँ कै बितवैँ ये बिरही बिचारे ।

दोहा] (१५०)

पनघट जौ जैयै न तौ, करै ननदिया सोर ।
घट पट सुधि भूलै तबै, देखैँ कान्ह किसोर ॥

रामकली] (१५१) [मूलताल

ए जू स्याम रसीले रंगनि रँगीले अनत जाइ रति मानी ।
अपनो सो बहुतै दुराव करि आए मोहन बात रहति क्यौँ छानी ।
नैन बैन अति सिथिल लगे न चित चैन चौँप चितवनि पहिचानी ।
आनँदघन उनए गरजे बरसे सरसे हम जानी है जू जानी ॥

बिभास] (१५२) [कपोतताल

राग रागनी के नीके नीके भेद मोहन मुरली मैं बजावै ।
सुनि सुनि सजनी जिय तैँ गुरजन की लाज भजावै ।

१४८—लाजौ—लाजौँ (मतना, वृंदा०) ।

[१४८] ढौरी=धुन । कौरी=(क्रोड़) गोद । [१५१] छानी=ढकी, छिपी ।

भाल भौंह नैन अधर मुख सुखमा कछु कहत न आवै देखि भावै।
सानिन के त्यौंनार न्यौरि आनँदघन छावै रस बरसावै रीझ भिजावै॥

बिभास] (१५३) [मूलताल

रंगमहल मैं अति रति-पागे राधा - मोहन जागे हैं।
लाखनि अभिलापनि सौं भोए भोर भएँ उर लागे हैं॥

(१५४)

गुन गावंत मन और न आवै।
ऐसी करौ रसीले मोहन प्रेम-उरझ परि सुरझ न पावै।
थकै छकै रसबिबस निरंतर नीरसता तजि तनक न धावै।
आनँदघन पन पोपि पालियै चातक भयौ एक रट लावै॥

सोहनी ख्याल] (१५५) [मूलताल

कोई है निसैयँ साँनूँ कान्ह मिलावै।
सौंहँणी सूरति नूँ अख्याँ तपदाँ आनँदघन मुख आणि विखावै॥

रागनी ललित ख्याल] (१५६) [मूलताल

मेरो मन मोहन सौं सान्यौ ए सलोनी मूरति जब तैं हेरी।
अब तौ जानि परी घर बाहिर उघरि इघरि बरसे री।
आनँदघन कहा करैंगी सास ननदिया रहति न इनकी घेरी॥

भैरव राग] (१५७) [मूलताल

सुखदाई मुख दै दै सुख ही दीजै।
ब्रजमोहन अँखियनि तारे मन भाई सोई कीजै हो जस लीजै।
मन बस करि यौं सुरति बिसारी इन बातनि अब क्यौं करि जीजै।
प्रान - पपीहनि कैं आसा नित आनँदघन रस पीजै॥

सारग] (१५८) [चौताला

तू लाड़िली री तोहि लाड़त लाड़ौ लाड़नि।
अलबेली अँखियनि रसभीजी चितवनि चाड़नि उलघति आड़ेनि।

१५६–बरसे री–बरसत (लंदन)। इनकी–एक (वही)।

[१५२] त्यौंनार = ढंग।

[१५५] विखावै=दिखाए। [१५८] लाड़ौ=प्यार भी। आड़=ओट, सीमा।

तेरी निकाई पै मति बिकाई हँसनि जगति जोति जब कपोल-गाड़नि।
आनँदघन पिय-हित नित झर करि छाड़ि दई छिन छाड़नि॥

हमीर] (१५९) [मूलताल

प्रिय मूरति देखन कौं नैन तरसत हैं।
मोहन-मुख-लालसा उनए उघरि उघरि बरसत हैं।
लोकलाज-त्यौं तनकौ न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन हित चातक चौंपनि पल पल सरसत हैं॥

हमीर] (१६०) [चंपकताल

लाल उजियारे नैननि के तारे हमारे आइ क्यौं न सुधि लेत।
तब सब बिधि सुख दै दै बिसासी अब ऐसैं दुख देत।
मन तैं तनकौ न टरत परेखौ जु कहा भयौ वह हेत।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन सुरस भरौ पन-खेत॥

(१६१)

हरि सब काज सुधारे मेरे।
दूरि दूरि लौं मन फिरि आयौ गहि पाए अति नेरे।
सोवत जगत चलत जितहीं तित लेत रहत हैं फेरे।
आनँदघन प्राननि के संगी मोहन मूरति हेरे॥

(१६२)

प्रेम तौ गोपिनि ही को भाग।
जिनके नंद-सूनु सौं साँचो रच्यौ राग अनुराग।
कहियै कहा निकाई मन की जो कछु लागी लाग।
सर्वसु विसरि विसरि सुधि साधी महामोह की जाग।
ब्रजमोहन की महा मोहनी अनुपम अचल सुहाग।
आनँदघन रस झेलि झालरीं नव वृंदावन बाग॥

एमनि] (१६३) [इकताला

मोहिं विरहा करै नकवानी।
कैसैं रहौं कासौं कहौं जिय की बिथा न ढुरै अँखियनि को पानी।

गाड़=गड्ढा।

नये नेह राचे ब्रजमोहन हम सौं परी पहिचानि पुरानी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहनि अपनी पैज हठानी ॥

सारंग] (१६४)

गोपाल भरोसैं सोइयै ।
जागि जागि भ्रम भूलि सोच मैं क्यौं यह अवसर खोइयै ।
जो कछु उन्हैं सुहाइ सोई भई होति है होइयै ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि परम प्रेम-रस भोइयै ॥

सारंग] (१६५) [चौताला

जमुना तरंगनि बाढी सुनि सुनि मोहन-मुरली-नाद ।
स्याम-रची हित-मचनि मची भाँवर भरति रहै पूरन प्रेम-सवाद ।
रसिकराय के अमित-रस-भरी केलि-सदन-वन की मरजाद ।
आनँदघन घमँडनि जाकै तीर आभीर-तरुनि-भीर महामद उन्माद ॥

गांधार] (१६६) [चंपक

जहाँ जहाँ गुन रूप के बिना न पाइयत तहाँ तहाँ तुम ही हौ सवादी ।
तिनही तिन सौं बाँधि बाँधि मन ऐंचि खचि लेत जानै महा रसवादी ।
मोहि कहा दोष आप गुन भरे अनबादी हौ अनादी ।
आनँदघन घमँडत गरजत बरसत सरसत रस मोहन मुर-
लिया के नित नादी ॥

राग बिहाग ख्याल] (१६७) [मूलताल

लई कन्हैया ने हौं घेरि ।
खोरि साँकरी माँझ सँझौखैं आइ गयौ कितहूँ तैं हेरि ।
कौरी भरि उर धरी औचकाँ अकली काहि सुनाऊँ टेरि ।
आनँदघन घुरि सराबोर करि पठई घर लौं निपट लथेरि ॥

१६७—हौं—हो (सतना) । उर—औ (सतना), और (वृंदा०) ।

[१६३] पैज०=प्रतिज्ञा का हठ हो रहा है, प्रतिज्ञा पर डटे हैं । [१६५] मरजाद=(मर्यादा) सीमा । [१६७] सँझौखैं=सायम् होते ही । कौरी=(क्रोड़) गोद ।

पूरिया] (१६८) [चंपक

हिय तेँ न हाते होत पल एकौ ।
फिरि ताकी सुधि लेत क्यौँ न पिय बिलग न मानौ कहे कौ ।
हियौ कठिन कियौ ब्रजमोहन ह्वै टरत न गहि लाड़लो टेकौ ।
आनँदघन हौ एक हमारैँ चातक तुमहिँ अनेकौ ॥

एमनि] (१६९) [चौताला

वारी हौँ वारि डारी आछी बनक यै नंद के कुँवर कन्हैया ।
कोटि काम हूँ तेँ अभिराम मधुर सलौनी स्याम मूरति
आँखिनि जोति जगैया ।
स्रवननि सुधा पिवाय जिवावत मोहन मुरली-तान सुनैया ।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन नित ही रस - बरसैया ॥

नट] (१७०) [मूलताल

गई लगाय चटपटी पिय के चित कौँ ।
घूँघट मैँ मुसिकाँहीँ अँखियनि तेँ जु जतायौ हित कौँ ।
भाँवरि भरत रहत मनमोहन चौँपनि ही नित इत कौँ ।
आनँदघनहि पपीहा करि तब अब तरसावति कित कौँ ॥

केदारो] (१७१) [मूलताल

मितवा रे तुमी सन मोरा लागोलो नेह कैसैँ छूटै ।
आनँदघन पिय प्रानपपीहा आस लागि जीवत है यह तौ तोरैँऊँ न टूटै ॥

ख्याल केदारो] (१७२) [चलती चरचरी

कैसैँ भरौँ तुम बिना अब मोहि कठिन कठिन बीतत पल-छिनवाँ ।
तुमरे देखन की औसेर लगी रहै बलमाँ निसि-दिनवाँ ॥

ललित ख्याल] (१७३) [मूलताल

मोरा मनवाँ है तुमी सन लागोलो,
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे प्राननि प्यारे ।
ब्रजमोहन पिय तुम्हरे कारनवाँ अरे बलि सगरो रैन जागोलो ॥

१६९—मधुर—ललित (सतना) । मोहन—मधुर (वही) । १७१—लागो-लो०—लागी लगन (सतना) । १७२—तुमरे—तिहारे (वही) । १७३—ब्रज०—स्यामसुंदर (लंदन) ।

[१६८] हाते=दूर ।

रामकली ख्याल] (१७४) [चरचरी

तुम्हैं काहू की कछू कहा अजू भए कान्ह कठोर महा।
नेह कनावड़ नैंक नहीं कहूँ अपनी गौं के अहा।
बसि करि देत बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नये लहा।
आनदघन पिय प्रान - पपीहनि की गति कौन हहा॥

गधार ख्याल] (१७५) [मूलताल

आँवो साँवलरा मैंडी जान।
वेखण कारण अख्यीं तपदीं रत्त - दिहाड़े तैंडा ध्यान।
मुरली सुनाइ सॉनूं चेटक लाया सोहन सजन सुजान।
प्रान - पपीहों दे आनँदघन वंदी हॉ कुरवान॥

एमन विहाग ख्याल] (१७६) [चरचरी

साँवला दिलजान मैंडा है।
प्रान - पपीहों दा आनँदघन सोहन सजन सुजान॥

एमन] (१७७) [मूलताल

सभना नाल तैंडा नेह नवेलरा।
साडरे प्रान-पपीहों दा आनँदघन प्यारिया लग्गा इश्क अकेलरा॥

परज] (१७८) [मूल

ढोलन वेखाँईं जीवानी।
नैन - पियाले भरि भरि सेये रत्त - दिहाड़े मैं पीवानी॥

राग मारू] (१७९) [आड़ चौताला

आज हमारैं आवैंला घनस्याम आनँदबधावरौ मनाइस्यॉं।
फूलाँ केस गुँदाइस्यॉं काजलरी रेख बनाइस्यॉं।
सौंधा भीनी कॉचली कसाइस्यॉं, मोत्यारा हार डुलाइस्यॉं।
आँगनरौ चंदन लिपाइस्यॉं गजमोत्यॉं चौक पुराइस्यॉं।
घीयाँ दीवला जगाइस्यॉं चित्रसारी ढोलीयौ बिछाइस्यॉं।
हँसि हँसि कंठ लगाइस्यॉं आनँदघन झड बरसाइस्यॉं॥

१७४—हहा—कहा (लंदन)।

विहागरो] (१८०)

क्यौं सुख दै दुख बहुरि देत हौ।
हरत हियो बस करत हँसनि मैं ब्रजमोहन फिरि सुधि न लेत हौ।
तुम्हैं कहा काहू को चिंता नित निधरक सब सुखसमेत हौ।
आनँदघन अचरज झर लावत अचै अचै चातकनि चेत हौ॥

मालकोस ख्याल] (१८१) [चरचरी

अरे हाँ रे तोरे दरसन काँ तरसै मोरा जिअरा घरी पल।
आनँदघन पिय छाइ रहे कहूँ कासौं कहौं यह बिथा न परै
परेखवाँ निसिदिन कल॥

सारंग] (१८२) [चौताला

लै अनबोली कब लौं रहैगी मोसौं हितू सौं अचगरी।
रिस तौ उनसौं मोसौं कहा अर आजु करति अगरी।
जौ ऐसो जानती तौ डुलतो न बेकाज हित के भरोसे ह्याँ लौं डगरी।
आनँदघन अभिलाषनि उनए चाहत ह्वैहैं मग रो॥

सारंग] (१८३) [इकताल

मैन-मद छाकी गुज़रिया मतवारे मोहन के संग लागी डोलै।
मुरली-नाद-सवाद रीझि रही घूमति झूमति उरझि उरझि मन खोलै।
वन - कुंजनि विहरत गजगमनी अति कमनी रवाँनी को लै।
आनँदघन-रस रूप-चातकी चोंपनि वाढ़ी उर अनुराग अतोलै॥

सारंग] (१८४) [चंपक

मोहन मूरति विसरै नहीँ, कैसैं मन बहरैयै।
जागि जागि लूटैं अँग भरे जोति जगमगे घूमि
झूमि रहै तहीं तहीँ।
भूले से दिन रैनि चितैयै सुनियै समझियै न गुरजन की कहीँ।
आनँदघन मँडराति रहै मुरली-धुनि काननि प्राननि
भिजवै माँगति उमहि मुहाँचहीँ॥

[१८२] अचगरी=शरारत। अगरी=अधिक। [१८४] मुहाँचहीँ=दर्शन।

षटराग] (१८५) [मूलताल

श्री गोपाल गोकुलविहारी वारी तिहारी आवनि निहारियै।
चरन-धरनि मैँ धरनि होति धनि कहा कहौँ फिरि कहा वारियै।
नखसिख ललित सलोनी मूरति नैन जुगल लालसा भारियै।
आनँदघन झर लगै लगौंहैँ प्रान-पपीहनि रुचि बिचारियै॥

आसावरी] (१८६) [चंपक रूप भेद ताल

बँसुरिया मैँ कहा बिष लै भरयौ निपट बिसासी स्याम।
जाकीताननि काननि परसत घूमत मन अस्ट जाम।
आन हाथ आन पाइ हूजियत कैसो धाम अरु कैसो काम।
आनँदघन रोम रोम छाइ हाइ ब्यापत बिरहा-घाम॥

सारंग] (१८७) [मूलताल

सनमुख चाहन कौँ चित चाहै लाज निगोर्डी रोकति आनि।
मोहन-रूप माधुरी पान करन को नैननि बानि।
घूँघट कानि करन त्यौँ सजनी उपजी जिय मैँ अति अरसानि।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि॥

लहचारी विहाग राग] (१८८) [मूलताल

राधा माधौ बिहरैँ बन मैँ।
हरी भरी कुंजनि जमुनातट फूले फूले मन मैँ।
मदन-केलि-सुख-पगे जगमगे जगी तरुनई तन मैँ।
अरस-परस तन बन परसत आनँदघन भीजे पन मैँ॥

भैरौ] (१८९) [इकताला

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन।
इतने पै घरहू मैँ जीवति ये अपराधी तजत न गोहन।
सब विधि तुम्हैँ सुखी चाहति हौँ स्याम सुजान सुभाय के सोहन।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय बिरह-बिछोहन॥

१८७—करन—करत (सतना)।

सावंत] (१९०) [इकताला

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रसबाद ।
रंग रहै सो करियै लालन भलौ न अति अनबाद ।
ब्रजमोहन जू गोहन छाँडौ गीधे बीधे सरस सवाद ।
आनँदघन हठ घसँडनि ढुरि घुरि घेरी हौं बन बाद ॥

एमन विहाग] (१९१) [चरचरी चलती

मुरली कौन रंग सौं बाजै ब्रजमोहन बनवारी की ।
जाकी धुनि सुनि बिकल होत हिय कुल की कानि लोकलाज लाजै ॥

केदारो] (१९२) [मूलताल

तुमसौं मेरी प्रीति लगी पै तिहारी कौन ढौर ।
साँची कहौ मनभावन हाहा कहा बनावत और ।
मोही से जौ औरनिहूँ सौं तौ मोहिय तिनहूँ की रौर ।
आनँदघन पिय अचरज-झूमनि रसिक-छैल-सिरमौर ॥

(१९३)

सबतैं न्यारो है हरि भैंटि ।
रे मन मद-विकार-भरयौ तू निखरि मैल कौं मैंटि ।
निज सरूप सौं सम्हारि छूटि लगि भूलनि भलैं भुलाव ।
औसर है हाहा जिनि हारै दाव दैन को दाव ।
चेतन तैं जड़ भयौ संग-वास अजहूँ तजत न संग ।
तन तैं निकसि विदेह देह धरि रचि आनँदघन रंग ॥

सारंग] (१९४) [चंपक

कान्ह कितेक दिननि तैं याही डगर डोलिबो लयौ है ।
तुहूँ देखियति जब तब ठाढ़ी ओट छटा की जाग्यौ नेह नयौ है ।
रूखी बतियनि दुरति कहाँ लौं मोहि कछूक जनाव भयौ है ।
दरसौं परसौं बरसौं सरसौं आनँदघन उनयौ है ॥

[१९०] अनबाद = फालतू बात । गीधे = परच गए । [१९२] ढौर = ढंग । रौर=हलाचल ।

नट] (१९५) [चंपक

ब्रजमोहन प्रानप्यारे मेरी अँखियनि हिलग परी ।
रोकी रहति न घूँघट पट की चौंप चटपटी खरी ।
बिन देखैं कल पलकौ नहीं धरैं लाएँ रहति झरी ।
आनँदघन पिय कितहूँ छाए इत की सुधि बिसरी ॥

(१९६)

जयति जयति नरसिंह प्रह्लाद आरतिहरन बत्सल बिपुल
बल बिनोदकारी ।
पूरन प्रताप अरितम-बिहंडन खंड खंडनि प्रचंड जस तुंडचारी ।
सर्बथा सर्बदा सुहृद सम सर्बत्र सम्यक सुतंत्र सामर्थिधारी ।
सत्यसंकल्प - संदोह संसर्ग संग्राम जृंभा असुरसंघहारी ।
अरुन अति तरुन ग्रीपम तरनि बरन वर सोचमोचन त्रिलोचन बिहारी ।
सुर सनक सुक स्वयंभू संभु संस्तुत महामंगलकरन अभय भारी ।
बंदन करौं कृपाधाम अभिराम पद भूभार टारन अटल मुरारी ।
तृषित जन दुखित परितोष पोपन भरन आनंदघन अखंडित खिलारी ॥

काफी राइसा] (१९७) [झपताल

गुन गाइ लै गोकुलानंद के ब्रजचंद सुखकंद सुछंद के ।
सकल रससार स्रुतिसार मोहन महा आधार सनक सुक सद के ।
संगल-मुकुटमनि मनोरथ-कलपतरु उदार अति अदभुत अमंद के ।
ललित लीला-बलित संपदा-संकुलित अतुल जय अमल जगवंद के ।
क्रीड़त सदा सुहृद - संग जमुनातीर लडिले जसोमति नंद के ।
कृपाधन - मूल आनंदघन अनुकूल हरन दुख - वृंद भ्रम-फंद के ॥

सारंग] (१९८) [चौताला

श्रीराधा - चरन करि मन ! मेरे वंदन ।
मोहन मधुप भर्यौ अभिलापनि सहित लेत मकरंदन ।

१९७—वृंद—द्वंद्व (सतना) ।

[१९६] तुंड = मुख । संदोह = समूह । [१९७] संद=सनंदन ।
[१९८] स्वनी०=राधा ।

बनअवनी रवनी-सिर-मंडन जगमगात दुति उदित अमंदन।
वेद पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन, गति स्वच्छंदन ॥

तथा] (१९९)

जब जब सुधि आवै मोहन बनवारी की तब
तब तन निकसि जाइ ।
डरी रहति परबस हौं घर मैं यासौं यौं न बसाइ ।
मुरली-भनक इते पै सतावै आन हाथ होत आन पाइ ।
बिरह-घाम व्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराइ ॥

होड़ी] (२००) [मूलताल

तूँ जब चाही री मुसिकौंहीं अँखियनि तब तैं उन मन मानी।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानी ।
प्रीति बढ़ै चित चौंप-रंग चढ़ै सो कीजै सुनि सुघर सयानी ।
आनँदघन पै तोसौं हित गति चातक तैं अधिकानी ॥

अड़ान] (२०१) [चरचरीताल

सारी सुरँग सुही चुहचुही निपट पहिरैं राधा गोरी ।
साँवरे-बरन-कोर कपोलनि हिलि मिलि झिलमिली खिली
झूलै जोवन-उमग-बोरी ।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बैंदी मधुर
अधर बीरी-रचनि उघरि करति चित की चोरी ।
आनँदघन पिय को हियौ नीवी - कसनि गसनि बस्यौ
लंक लचक संक अंक भरति दृगनि ओ री ॥

राग मलार] (२०२) [चौताला

कान्ह की बँसुरिया रंगनि बरसै ।
राग अमृत की नवल घटा घमँडी अनुरागहि सरसै ।
संकीर नानैं तेई चपला की चमकैं धुनि-व्यापनि धुरवा-गन दरसै ।

२०२–बँसुरिय'–मुरलिया (मतना) । राग–नाद । रसनि–रसमय (वही) ।

[१९९] डरी०=पड़ी रहती हूँ । [२०१] कोर=किनारा । [२०२]
संकीर = संकीर्ण ।

मोहन मादक मधुर कहा रसनै आनँदघन पिय के अधरनि परसै
याहि सुनि सुनि क्यौँ न हियरा तरसै ॥

आसावरी] (२०३) [चंपकताल

सगरी रैनि जागे री ये त्रियोगी नैन हरिमग हेरि ।
व्रजमोहन अवधि वढ़ि लुभाने पायौ कबहुँ न यौँ चैन ।
कहा करौँ मन क्यौँ हूँ न समझत तनहि दहत दुखदाई मैन ।
आनँदघन पिय चौँपनि छाए आए अजौँ उत तैँ न ॥

राग केदारो] (२०४)

मुरली मेरेई गुन गावै ।
सुनि री सखी स्यामसुदरि क्यौँ न महारस पावै ।
हौँ ही भई बाँसुरी उनकी याही तैँ अति भावै ।
अतुल प्रेम के भेदभाव को यौँ कहि कौन सुनावै ।
याकी अकथ कथा है हेली ह्याँ मति गतिहि घुमावै ।
फिरि आनँदघन पिय त्यौँ मेरेई प्रानपपीहनि तावै ॥

राग धनासिरी] (२०५) [चपकताल

नदनंद जिय मैँ बसैँ आखैँ देख्यौई चाहैँ ।
चौँप चटपटी की गति अतिहीँ अटपटी बिन बानो ये कराहैँ ।
दसा हौँ ही जानति जैसैँ बूडति उछरति प्रीति-परेखनि गहरे थाहैँ ।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि की सुधि भूले उनए कहूँ नए लाहैँ ॥

टोड़ी] (२०६) [चौताला

तेरी निकाई तोही दई है बिधाता राधे रूप रती भरिपूरि ।
रति रंभा सची रमा उमा आदिकनि के गरब टारे री चरननि चूरि ।
रसिक - मुकटमनि व्रजमोहन मनमानी जानी बखानी
वेदनि महिमा भूरि पदवी परम दूरि ।
आनँदघन के प्रान-पपीहनि रस-सपति-दैनी जिय की जीवन मूरि ॥

२०६–दूरि–पूरि (सतना) ।

सारंग] (२०७) [चौताला

तुम्हरे सुख सुखी कब ह्वैहै मन।
सकल ठाँव तैं छूटि एक तुमहीं सौं ठहरिहै पन।
व्रजमोहन याहू किन मोहौ रँगीले रिझवार व्रजजन के धन।
अपनो पपीहा परितोषौ पोषौ रसमय आनँदघन॥

देसी] (२०८) [मूलताल

मुरली मैं मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीलो छैल।
व्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ बरज्यौ न मानै अरैल।
प्रेम-लहर तन मनहि घुमावै नाद निगोड़ो निपट बिसैल।
रोम रोम आनँदघन घमँडनि बिरह-व्यथा की फैल॥

बिहागरो] (२०९) [चंपक

भावती बतियनि लगि लगि छतियनि लाग निपट रसबसे रसाल।
जोबन रूप अनँग - रँग - राते मदमाते करत रँगीले ख्याल।
छैल छबीले राधा मोहन प्रेमपगे जगमगे लाल।
आनँदघन रस-भीजे रीझे बिलसत हुलसत बाढ़ति चौंप बिसाल॥

कालिंगड़ा ख्याल] (२१०) [पंचम चरचरी

कान्हा बाँसुरी वजाइ रह्यौ, सुनि सुनि कैसैं करि जाइ रह्यौ।
मनमोहन मूरति आनि अरै, कुलकानि सखी तब कौन करै।
बन बेलिन मैं धुनि छाइ रहै, मति गति उत ही उरझाय रहै।
घनआनँद यौं उनयौ नित है, मेरे प्रान-पपीहनि सौं हित है॥

दोहा] (२११)

सुधि आएँ पिय मिलि खिलनि, यौं याही बन माँझ।
सरसौं सी फूलति सखी, देखत फूली साँझ॥

ऐमन बिहाग ख्याल] (२१२) [चरचरी

असी दिलजान ढोलन पाया, रब्बे कीता साडरे दिलदा भाया।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारा पपीहाँ दे घर आया॥

२०८—मनहि०—उरझावै (मतना)।

सारंग] (२१३)

क्यौं जमुना यौं कब लौं रहियै ।
तेरे तीर बिना या मन की पीर कहाँ निधरक ह्वै कहियै ।
ब्रजमोहन बिन यह तेरो तट औरै भयौ आय कै बहियै ।
तब तमाल-तर आनँदघन झर अब ऐसैं बियोग-झर दहियै ॥

रामकली ख्याल] (२१४) [चरचरी

निसदिन लागी है औसेर तुम्हरे दरस की ब्रजमोहन प्यारे ।
आनँदघन पिय कान करौ किनि प्रान - पपीहनि टेरे ॥

एमनि ख्याल] (२१५) [मूलताल

क्यौं मियाँ मैं तैंडी बँदी सानू भी निबाहि लैंवीं ।
दरस दिखावीं ना तरसावीं आनँदघन प्यारिआँ प्रान-
पपीहौं दी की आहि लैंवीं ॥

गौरी ख्याल] (२१६) [मूलताल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है ।
तुमहि लगे ब्रजमोहन कितहूँ अपनी अपनी गौं है ।
तुमहिं बहुत तुम एक हमारैं गति चकोर ससि लौं है ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैयै हिये परेखनि दौं है ॥

गौरी] (२१७) [झपताल

हरि - सरन तकतहीं मरन - भय भाजै ।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख-संपदा संतत बिराजै ।
धाम धामी और दास - सेवा - समय एक रस निरद्वंद दुंदुभि बाजै ।
देस अदभुत महाबिभव कहियै कहा आनँदघन घमँड
अमित छबि छाजै ॥

सारंग] (२१८) [चौताला

बंसी की धुनि सुनियत याही ओर आए नियरे कान्ह किसोर ।
नैना उतहीं लागि रहे गए गाय-चरावन भोर ।

२१६—तुमहिं०—छिन-पल कल न परत बिन देखें (सतना) ।

मन उन संग सदाई डोलत गिरि बन कुंज खरिक अरु खोर।
प्रान-पपीहा आनँदघन हित चौंपनि भए हैं चकोर॥

परज] (२१९) [इकताला

ब्रजमोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही।
सोवन देति न सोवति बैरिनि ऐसी टेक गही।
ताननि वाननि प्राननि बेधै निरदय निपट चही।
इतने पे धुनि सुनियै भावै गति नहिँ जाति कही।
मेरी सी गति मेरियै किधौँ औरनि हूँ की यही।
घर कँ घेर परी तरसति हौँ आनि बनी सु सही।
आनँदघन पिय बस करि राखे पूरन प्रीति - नही।
गरब-भरी गरजै सौ लेखैँ रस को रासि लही॥

राग धन्यासिरी] (२२०) [चौताला

ऐसैं ऐसैँ मुरली बजैबो कान्ह कहौ कब तैँ नाँध्यौ है।
तान किधौँ प्रान बेधि जिवावन बिषम वान साँध्यौ है।
अबला बिचारिनि के मन हरन-करन कौँ पन बाँध्यौ है।
आनँदघन उनए ही रहत तुमहूँ बस याकैँ अरु मदनौ मद आँध्यौ है॥

सोरठ] (२२१) [चंपकताल

उनींदो अँखियनि छबि फबी है।
चौपनि भई हैं जगार भावते संग संग मैँ झपकि झपकि
उघरति उघारो ही तचि तवनि आरस दबी है।
अधरराग-अनुरागीँ पागीँ इनकी उपमा बनति नवी है।
आनँदघन मिलि भामिनि दामिनि अति रस-ढरनि ढबी है॥

विभास] (२२२) [चौताला

तिहारी कौन टेव है प्यारे सदा तैँ ऐसैँ हीँ करि आए।
जानन नाहिँ पराई कनावड गाँ हीँ गाँ ललचाए।

[२१९] नही=नथ दी, गूँथ दी। सौ०=सौ प्रकार से। [२२१] जगार=जागरण। नवी=नवीन। ढबी०=ढली है।

इन बातनि मोहि भले नहिँ लागत अपनो सो बहुतै समुझाए ।
चोरी मैं बरजोरी कहत हौ आनँदघन पिय नई रसिकई छाए ॥

रागिनी देवगिरी] (२२३) [इकताला

राधा मोहन को यह नेह निपट नवेलो है नितहीँ ।
बिछुरि मिलत मिलि बिछुरि परत हैँ चाह-उमाह-गहे चितहीँ ।
नीकी जोट अनूप रूप गुन सुनी न कतहूँ देखी इतहीँ ।
आनँदघन रसरंगनि बरसत उनै उनै व्रजबन जित-तितहीँ ॥

टोड़ी] (२२४) [मूलताल

आली री तेरे अधरनि अंजन-रेख खुली है ।
नवल केलि रस-झेलि ललित लट बिमल कपोल झुली है ।
बस करि राखे रसिक बिबस ह्वै अतुल अतन कैं तेह तुली है ।
आनँदघन पिय रीझनि भीजे उर लगि खगि न डुली है ॥

सुद्ध] (२२५) [मूल

ततथेई ततथेई थेई ततथेई तत तेथेई तेथेई ताथुंगा थुंगा ततथेई थेई ।
उघटत रसिकराय नटनागर नव नागरि सुधंग सौँ लेई ।
तान गान बंधान मान संगीत रीति प्रमान अति जेई ।
आनँदघन पिय रीझ भीजि भुज भरि मनिमाल वारनै देई ॥

आसावरी] (२२६) [इकताला

मिहँदी राचनी लगि लसी है नवेली कैं हाथ ।
छुटे बार मुख ओप डहडही अलि गावत गुनगाथ ।
व्रजमोहन की नवल दुलहिया सोहति ललित सहेली साथ ।
आनँदघन पिय उमँगनि उनए भरत सुबल कौं बाथ ॥

पूरिया धन्यासिरी ख्याल] (२२७) [चलती चरचरी

हमैँ न बिसारि दीजै हो हा हा हा हो सनेही स्याम ।
जिय धरिबे कौं न ठौर कहूँ और तुम व्रजमोहन हौ बहु-
नायक सोच यह आठौं जाम ।

[२२४] अतन=काम । तेह=वेग, उमंग । खगि=धँसकर । [२२६]
राचनी=रचनेवाली । सुबल=एक सखा । बाथ=अँकवार ।

मन बावरो न क्यौं हूँ समझै पावै नहीँ तनकौ बिसराम ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहा आस लागि जीवत हैँ
निसिदिन रटत तिहारो नाम ॥

अड़ानो] (२२८) [मूलताल

स्याम घन तेरियै घाँ घुरि बरसै ।
उघरि उघरि मुरली-गरजनि मैँ सुर के धुरवा सरसै ।
रसड़्यौ रहत रैनिदिन राधे रसमूरति चातक लौँ तरसै ।
आनँदकंद नंदनंदन त्यौँ कौंधि कहूँ दै दरसै ॥

सारंग] (२२९) [चंपक

घमँडि रह्यौ री बन बेनुनाद कैधौँ मदन-दुहाई ।
सुनि बिथकित सरिता समीर पघिले पखान जड़ जंगम गति पलटाई ।
अबला बिचारिन कौँ कहाँ धीरज ऐसैँ कैसैँ आवति रहाई ।
आनँदघन मकरंद द्रवित द्रुम सारँग सरस बजाई ॥

सारंग] (२३०) [चौताला

जो सुख होत है इन अँखियनि ब्रजमोहन को मोहन मुख चाहि ।
सो एई जानति कै ज्यौ कैसैँ कै कहियै ताहि ।
अंग अंग की बनक ठनक लखि मैन मनहिँ डारत अवगाहि ।
इतने पै आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि कितहूँ की सुधि काहि ॥

अरगजापंचम] (२३१) [मूलताल

मैँ वारी मैँ वारी वारि जावाँ, वो वो वो ।
अरज असाडी सुनि ब्रजमोहन सोहन मुख विखलावाँ ।
तुझ बाजू असी खरी वो निमाँनी कीवाँ दिल परचावाँ ।
प्रान-पपीहे दे आनँदघन रिमि झिमि रिमि झिमि आवाँ ॥

[२३१] असाडी=हमारा । विखलावीं=दिखाइए । बाजू=पास । असी०=हम खड़ी हैं । कीवाँ=कैसे । आवीं=आइए ।

गंधार राग ख्याल] (२३२) [मूलताल

ब्रजमोहन सौँ प्रीति लगो है अब तौ मेरी ।
कहा करैगी सासु ननदिया रहति न इनकी घेरी,
आनँदघन रस चितवनि हेरी ॥

पंचम ख्याल] (२३३) [मूलताल

अब तौ जानी है जू जानी ब्रजमोहन सुखदानी ।
मेरी तिहारी लाग ननदिया दुरि कितहूँ पहिचानी ।
चौकस भई रहति है बैरिनि जौऽब निकसियै पानी ।
वाकैँ डर सूखति आनँदघन इत के भर नकवानी ॥

तथा राग] (२३४) [ताल

ए री रूप-अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
तेरे मिलिवे कौँ ब्रजमोहन बहुत जतन हैँ साधे ।
उनकैँ निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे ।
आनँदघन पिय चातक चौंपनि हा राधे आराधे ॥

धनासिरी] (२३५) [चपक

कौन पै गावत गनत बनै हो ।
गुन अनंत महिमा अनंत नित निगमौ अगम भनै हो ।
जो जाको अनुमान जानमनि मानत मोद मनै हो ।
चातक चौंप चटक त्यौँ चितैबो उचित आनदघनै हो ॥

ललित] (२३६) [मूलताल

रसिया को रस लै आई है, तेरी आँखिनि मैँ छक छाई है ।
अति रतिरँग-बढवार भए की मुख सुख-ओप सुहाई है ।
भूषन-वनक बनी कछु औरै अँग अँग नवल निकाई है ।
उघरि परी आनँदघन घमँडनि कैसैँ दुरति दुराई है ॥

विभास] (३३७) [इकताला

सुनौ ब्रजमोहन छैल सुजान निवाह इन वातनि क्यौँ होइ ।
जौ कबहूँ कछु मिस करि अइयै तुम न तजत सुख भोइ ।

२३३—भर—डर (सतना) ।

मोहि कहा मिलिबो नहि चहियै डारत हौ मन हठन घँघोइ ।
आनँदघन रसरासि बरसियै अति न भली है खोइ ॥

मलार] (२३८) [मूलताल

आयौ आयौ चौमासो आवन सीखे हैँ घन स्याम ।
मेरो ज्यौ उनहीँ सौँ लाग्यौ जिनको है ब्रजजीवन नाम ।
अवधि-आस लगि बहुत बचे हैँ तचे प्रबल अति बिरह-घाम ।
आनँदघन त्यौँ प्रान - पपीहा तकत आठहू जाम ॥

रामकली] (२३९) [झपताल

हरिचरित - सुरसरित - मज्जित सुबानी ।
महामोहन मधुररस - बलित ललित अति सुखद सुछंद
सुचि काव्य - कुल-रानी ।
बदन सोभासदन दरस महिमा बरस परस सर्बार्थदायक महत मानी ।
ब्रजतरुनि - रमन आनंदघन चातकी बिसद अदभुत
अखंडित जगत जानी ॥

गंधार] (२४०) [मूलताल

ऐसैँ आरती करौ ।
सुथिर थार हिय बिसद बीच लै प्रेम-प्रदीप धरौ ।
उज्जल दसा सनेह - सँजोई जोति जगाइ ढरौ ।
भाव-पुहप प्रतीति सौँ संजुत वारनि ओर अरौ ।
मोहन-मुख जगमगनि पानि पै निरखत हरष भरौ ।
आनँदघन उमाह आरति कौँ हरिहि बढाइ हरौ ॥

बिलावल] (२४१)

तुम्हैँ लियैँ हौँ कहाँ फिरौँ ।
ललित धीर बलि बीर जानमनि छिमासील अनखाइ भिरौँ ।
हौं जगदीस कोऊ पूजत माया की गति हेरि हिरौँ ।
असुचि असाध कामना-किंकर घिनि आवै इन आस घिरौँ ।

२३६—सोभा—सुषमा (सतना)। तरुनि—रमनि (वही)।

मन बुधि चित अहँकार एक तुम करहु कृपा कितहूँ न किरौं ।
आनँदघन पन पालि पोषियै पायनि पै गिरि धरनि गिरौं ॥

बिलावल] (२४२)

दुसह दुरासा दूरि करौ ।
अंतरजामी अजित कृपानिधि हारि परयौ हहरानि हरौ ।
अपनोई बिसवास दीजियै अधम-उधारन बिरुद भरौ ।
आनँदघन पन पालि पोषियै दीन पपीहा ओर ढरौ ॥

रागिनी रामकली] (२४३) [चंपक

भुरहरैं ही कान्ह कहौ कित भूले ।
रैनि-रसमसे नैन बिराजत मनहुँ कोकनद फूले ।
रुचिर अधर मसिरेख रही लसि अति रतिरस अनकूले ।
आनँदघन घुरि घमँडि सजल भए अलकनि धुरवा भूले ॥

धनासिरी] (२४४) [चंपक

हमारी इतनी बिनती चित धरियै ।
अपने दासनि के दासनि कौं काहू बिधि कछु करियै ।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहैं पोपि पालि लै भरियै ॥

कान्हरो] (२४५) [इकताल

अपनो ओर राखियै ऐसौ ।
यह मन मंद अमंद नंदसुत जानि बूझि जग भटकत जैसौ ।
सब दिसि तैं हरि हरयौ करौ हरि आसा लागि ढरि चलौ वैसो ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहै पालि पोषि राखौ पालौ पन वैसौ ॥

रामकली] (२४६) [चंपक

तिहारी आस लागि जग जीजै ।
अतिहीं अधम अनाथ कृपानिधि आप उचित सो कीजै ।
ऐसी कौन भेंट है माधव जो लै तुमकौं दीजै ।
दीन पपीहा तुम आनँदघन एक भरोसैं भीजै ॥

[२४१] न किरौं=कष्ट न सहूँ ।

बिलावल] (२४७)

माँगि मन ब्रजबासिन के टूक ।
तजि बिंजन-सवाद इत उत के यहै बिचार अचूक ।
प्रान राखि अभिलाषि स्याम कौं लोकलाज दै लूक ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहा ह्वै बन मैं करि कूक ॥

नट] (२४८) [चंपक

या मुरलिया कैसैं काम किये ।
हमारे हियरा काढ़ि लिये ताननि गुननि गाँस गस गसि
बिसवासी-हाथ दिये ।
निकसत नहीं भनक स्रवननि तैं नैन रहे भरि ये ।
आनँदघन रस - आसनि अब लौं चातक-प्रान जिये ॥

बिभास] (२४९) [चंपक

हरि मेरी सम्हारि ही सैं रहैं ।
बिछुरि बिछुरि हौं जात मिले मैं पैठैं भुज गहैं सु गहैं ।
कहा भयौ भूले से रहियत सो सचेत नित हैं ।
सोए जगैं जगैं ढिग बैठे मौनहू भेद कहैं ।
पूरन पन प्राननि के सगी सुख दै स्रम न लहैं ।
आनँदघन उदार जीवनधन अपनैं सील सहैं ॥

बिभास] (२५०) [इकताला

मेरी रसना लाड़िली भई, जसुदा के लालैं लड़ाइ लड़ाइ ।
लड़कि लड़कि बोलति सो लेखैं अति रसरंग-रई ।
कहि न सकति या सुख-सवाद कौं ऐसैं भोइ गई ।
आनँदघन हित चतुर चातकी नित चित चौंप नई ॥

२४७–रस०–दिसि त्रिपित (सतना)। २४९–सैं–मैं (सतना)। पैठैं–बढ़ै । भेद–घात । पूरन०–प्रान अधार सदा के संगी । जीवन०–जगजीवन (वही)। २५०–लड़कि०–लटकि लटकि उनहूँ सौं बोलति (सतना)।

मालकोस] (२५१) [चौताला

अंतर मैं बैठे कहा दुख देत निकसि क्यौं न
आवत अँखियन आगैं ।
ये दुखहाईं मुख देखन कौं जागि जागि अनुरागैं ।
इनकी दसा बनै गह नित देखैंई गहैं पल पल जल त्यागैं ।
आनँदघन पिय चातक चोंपनि प्यासभरी पन पागैं ॥

पूरिया कल्यान] (२५२) [कपोतताल

पन - पूरन प्रेमी प्रबीन पुनीत पुरुषोत्तम परमानंद ।
चीरहरन चिंतामनि चतुर चमतकारी अचरज - चरित सुछंद ।
मोहन मुरलीधर मंगल मुकटमनि महामधुर मूरति मदन कहा मंद,
अद्भुत अखंडित आनंदघन रसकंद ॥

रामकली] (२५३) [झूलताल

हो जी हो जी आया जी मन भाया ।
व्रजराजकुमार अमलाँ रा माता आया ।
म्हानैं तौ थारी औलू सतावै थे औठैं बिलमाया ।
अधराँ अंजन माथै अलतौ लाग्या छै खरा सुहाया ।
सघली रैनि आनँदघन बरस्या पगड़ै म्हाँ पर छाया ॥

रामकली] (२५४) [चंपक

तिहारो रस कौन बखानि सकै ।
रस ही रस जौ ढरै महा रस तौ मति छकनि छकै ।
रसबस ह्वै रसमसो रहै हिय रसना लागै सुजस-जकै ।
आनँदघन व्रज-बधू-भाव की घमँड निहारि थकै ॥

ललित] (२५५) [चरचरी ताल

नंदकुमार उदार सम्हार कीजै हो हमारी सम्हार ।
अंतरजामी सब सुख स्वामी तुमही लौं है पुकार ।

[२५३] अमलाँ०=नशे मैं मत्त । औलू=स्मृति । थे=आप । औठैं=वहाँ ।
अलतौ=महावर । सघली=सब । पगड़ै=प्रभात मैं ।

दीन हीन बलछीन जानि कै लागौ लाल गुहार ।
दीन - पपीहनि के आनँदघन जीवन - प्रान - अधार ॥

बिलावल] (२५६)

बँसुरिया सौति तैं अधिक दहै ।
बन घन लियैं फिरति मोहन कौं यह गति कौन कहै ।
देखन हूँ की चोर, कानि बस को ये सूल सहै ।
परी न रहन देति घर हू मैं साँसनि गनति रहै ।
चाहति कियौ कहा इतने पै कल पल एक न है ।
आनँदघन पिय बसौ किये पै बैठी बैर बहै ॥

सारंग] (२५७) [चौताला

लहकन लगी री बसंत-बयारि मन बनवारी त्यौं लग्यौ बहकन ।
जानौं न आगैं कहा करिहै जब लग है पलास-बन दहकन ।
मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै औरौ पुहप लागे बरन बरन महकन ।
आनँदघन पिय छाए तितहा इत कुहकि कुहकि लागी कोकिला गहकन ॥

श्री वृंदावनी सारंग] (२५८) [मूलताल

सुनहु सयाने स्याम तुमसौं कहति सरोतर ।
ऐसे ढीठ ढिग ढुकौ ताके होइ तिहारी गोतर ।
ये रसबाद भले न भावते करियै वही होइ जो होतर ।
आनँदघन पिय नई घमँड सौं देत दरबरयो डोलत अजौं अजोतर ॥

पूरबी] (२५९) [मूलताल

न जानौं कब आवैंगे हिय उमग्यौ है औसेरनि ।
साँझ परी सुनियत न अजौं वह कानन पिय टेरनि ।
मुरली बजाइ आइ मो द्वारैं नेहभरी अँखियनि हँसि हेरनि ।
आनँदघन अभिलाप घमँड की बाढी घेरनि डरमै कहाँ धौं उबेरनि ॥

२५६—दहै—चहै (सनना) ।

[२५७] मरक काढ़िहै=बदला लेगा । [२५८] सरोतर=साफ, स्पष्ट । गोतर=गोत्र की । होतर=होने योग्य । दरबरयो=त्रास । अजोतर=स्वच्छंद ।

हमीर] (२६०) [चंपक

उन्हैं कहा मेरी सी चटपटी है, कान्ह सदा के निखरके ।
वे रसलोभी आहिं पाहुने को जानै कै घर के ।
अपनी गौं उठि गौंहन लागत ब्रजछैल छबीले भरे अर के ।
आनँदघन कहूँ अवधिनि कौंधत कितहूँ वायदे झर के ॥

कान्हरो] (२६१) [चपक

सुख तौ एक नँदनंदन दुलराएँ ।
कौन कहि सकै होत हिये जो मोहन-मूरति आएँ ।
भूलि जाति सुधि हू की सब सुधि रूप-छटा दरसाएँ ।
आनँदघन रस प्रानपपीहा प्यासनि पियत अघाएँ ॥

भैरो ख्याल] (२६२) [चरचरी ताल

अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी आव रे जियज्यावन प्यारे ।
हिय उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे उज्यारे ।
जब तैं सुनी है मोहन मुरलिया तरफरात से प्रान बिचारे ।
दीन पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन रसरासि सुखारे ॥

बसंत] (२६३) [चौताला

बृंदाबन मधि मधु रितु आई अति छवि पाइ सुहाई ।
कुंज कुंज सुखपुंज मधुप - गुंज कोकिला - सुर की झाई ।
बिलसत हैं अपनी रुचि संपति दंपति कैं बिनोद अधिकाई ।
आनँदघन रस-रमँड घमँड सौं मुरली - तान बजाई ॥

बसंत] (२६४) [इकताला

प्रगटी है बसंत-गुन-गोभा आवौ री बन देखन जैयै ।
बरन बरन फूलनि के भूषन रचि रचि रुचि सौं राधा को सिंगार

२६०—छैल०—मोहन हैं भरे छरवर के (सतना)। वायदे—बात के (वही)।

[२६०] निखरके=बेखटके । अर=अड, हठ । वायदे=वादा । [२६३] झाई=प्रतिध्वनि । [२६४] गोभा=अकुर ।

गूँथि मालती-माल मनोहर ब्रजमोहन कौं लै पहिरैयै ।
आजु मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ैयै हिलमिलि आनँदघन बरसैयै ॥

हिंडोल] (२६५) [मूलताल

तू मन मानी है उनकैं तौ मन मान्यौ है मान ।
सो मन भायौ करति क्यौं न मिलि पिक-पुकार धरि कान,
रितुपति आयौ देत निसान ।
मदन सहायक सज्यौ संग ही लै कर तीखे तीखे बान ।
सैन रैन पराग धूँधरि लखि चलियै बेगि सुजान अकिले
आनँदघन पिय प्रान ॥

ख्याल हिंडोल] (२६६) [चलती

स्याम सौं रँगीलो राधा खेलैं बसंत बरसि सरसि दरस परस राग रंग।
गावति तान तरंग उमंगनि आनँदसदन बदन लसनि
भृकुटि लचनि मान संग ॥

ललित] (२६७) [मूलताल

छतियाँ दलमलै गुलाल अनोखो खेल सीख्यौ नँदलाल ।
कैसैं कै निकसियै गैल गरधारैं अचकाँ उचकि करै बनमाल ।
घात लगाएँ फिरै रैनि दिन फागुन लाग्यौ किधौं जँजाल ।
मोही सौं कहि कहा बैरु है औरौ बसति बहुत ब्रजबाल ।
मेरेई नगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै कासौं कहौं सखी ये हाल ॥

देवगिरी] (२६८) [मूलताल

गोकुल गरधारैं होरी खेलै रंगभीनो ब्रजमोहन छैल ।
नवल वधुनि कौं तकि तकि भिजवै रोकि रहत पनघट की गैल ।
उघरि उघारीं गारीं गावै तारी दै दै हँसत हँसैल ।
आनँदघन अपबस करि छाँडै जोबन-मातो निपट अरैल ॥

२६५-देत-देत (लंदन) । २६७-कैसे०-निकसि न सकियै (सतना) ।
नगी-भद्द (वही) ।
मनोज०=वसंतपंचमी । उस दिन कामदेव की भी पूजा होती है ।

रागनी धनासिरी] (२६९) [मूलताल

हो हो होरी हो हो होरी खेलत नीको रंग रह्यौ है ।
राधा - मोहन हिलनि - मिलनि - रस कैसैं परत कह्यौ है ।
नित यह फाग सुहाग-भाग नित अवसर लाहु लह्यौ है ।
आनँदघन ब्रजबन जमुना-तट सुखसागर उमह्यौ है ॥

अड़ानो] (२७०) [चंपक

झूलत फूल - डोल फूल - भरे दोऊ ;
राधा-मोहन गुन-रूप-रासि पटतर को नाहिन कोऊ ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन अति कुसुमित हुलासमय सोऊ ।
चैत-चंद सुखकंद चंद्रिकनि जगमग जगमग होऊ ।
महामोद-परिमल बिनोद-भर महकत मलय-समीर-समोऊ ।
मधुर गान कल तान आनँदघन थिर चर मनहिं बिलोऊ ॥

एमन] (२७१) [मूलताल

ऐंसौ होरी ऐसैं खेलौं उघरि उघरि ब्रजमोहन सौं मनमानी ।
परु की कसरि काढि सब नीकैं लेउँ भावतो दाव चाव सौं
अब मैं यह जिय ठानी ।
कानि कनौड़ कौन की सजनी भई बहुत दिन यौं नकवानी ।
आनँदघनहिं भिजाऊँ तौ हौं वेऊ भए फिरत रसदानी उनहूँ परिहै जानी ॥

एमन] (२७२) [इकताला

गुजरिया तू रँगराची मोहन कैं अनुराग ।
होरी मैं उनहूँ की तोसौं नीकी लागी लाग ।
छुटे बार मुख-ओप अनूठी जगमगि रह्यौ है सुहाग ।
आनँदघन चित चतुर चातकी पगी प्रेम-पन - पाग ॥

बिभास] (२७३) [इकताला

तिहारो कान्हर कौन सुभाव ।
मोही सौं जब तब खौरत हौ सब मिलि करैं चबाव ।

२७१–ऐंसौ–ऐसैं (सतना) । चाव–भयौ । हौं०–वृषभानुजा माँची (वही) ।

[२७१] ऐंसौ=इस वर्ष । परु=गत वर्ष ।

कहा भयौ जौ होरी आई तुम अटकरत अटपटो दाव ।
नयो खेल कितहूँ तैं सीखे हाँसी को सतिभाव ।
हँसी ठठोली छठैं छमाहैं तुम्हैं नित नयो बाढ़त चाव ।
आनँदघन कोऊ लखि पैहै हाहा टरि किनि जाव ॥

विभास ख्याल] (२७४) [चरचरी

तुम उनहीं सौं होरी खेलौ जिनसौं खेलि रहे हौ लाल लगाँहैं ।
नैन गुलाल भराएँ आए रस की रैनि जगाँहैं ।
इतने पै मो तन मुसिकत हौ धुर तैं निपट लजाँहैं ।
घर आएँ को वरजै बैठियै कै धरौ पायँ अगाँहैं ।
आनँदघन अब उघरि नचे हौ अपनी गौं बरसौंहैं ॥

ललित] (२७५) [मूलताल

आए नैन गुलाल भराएँ, होत कहा है डीठि दुराएँ ।
सौंधो - चोर - चतुरई ठानत, और गँवारि तिहारे भाएँ ।
अंतर की उघरनि सब इन है काच-घटी-रँग उपमा पाएँ ।
आनँदघन रसमसी घुरनि की अब लीजै तिन तोरि बलाएँ ॥

मालव] (२७६) [मूलताल

सब रंग होरी खेलौं तुम संग ।
मोहिं तुम्हैं बनि आई अब तौ मन मान्यौ है यह ढंग ।
गुरजन दुरजन कहा करैं निधरक भरि लपटैहौं अँग अंग ।
आनँदघन पिय भीजि भिजैहौं बरसैहौं गहि गहिरो रंग ॥

ललित] (२७७) [इकताला चलती

मटकि मटकि गारि गावै लटकि लटकि डफ बजावै ।
मनमोहन के मन की मोहनी छबि छकी छकावै ।
कंठ किलक दसन - चिलक स्रवन दृग सिरावै ।
अधरनि की लाली ललित लालै ललचावै ।

२७४-बरसौंहैं-भरसौंहैं (सतना) ।

[२७३] अटकरत=छेड़छाड़ करते हो । अटकरत=ताक लगा रहे हो । [२७४] धुर तैं=आरंभ से, पहले से । [२७५] सौंधो०=सुगंध चुरानेवाला चोर ।

छुटी अलक बदन - झलक रूप - छलक छावै ।
पानिप की ओप उमँड प्यासनि बरसावै ।
माल-डुलनि अँचरा - फुलनि अलबेली गति आवै ।
सौभग बर लंक - लचक संकहि उपजावै ।
अंग अंग रस - तरंग रंगनि सरसावै ।
आभा-उदधि रसिक छैल के नैन - मीन जिवावै ।
भँवर-भीर सहज तीर अति अधीर धावै ।
रसिया पिय भावना मैं बिबस चौंर ढरावै ।
सखि - समाज संग लिये चाँचरि मचावै ।
कुमुदिनी के मंडल ससि पटतर क्यौं पावै ।
भागभरी रागभरी फाग यौं मनावै ।
भीजि भीजि उमँगनि आनँदघनहि भिजावै ॥

सारंग] (२७८) [मूलताल

गोकुल गलिनि मच्यौ है खेल, बाढ़ी अति रँग-झुरमट झेल ।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोबन - छाक अलबेल ।
चौकस चपल चतुर ब्रजगोरीं आईं सजि अपअपने मेल ।
गारीं चोख ठठोलीं बोलीं रस की ठेलाठेल ।
चौंकनि चलनि भरनि अरु भाजनि उलटनि उसरि उमँग पगपेल ।
आनँदघन बरसत रुचि सरसत फैलि परी रस - रेल ॥

धनासिरी] (२७९) [इकताल

रसिक छैल नँदलाल खिलारी ओर के हम जाने ।
अब करि भए निपट ही टौंडिक आनत नहीं आँखि तर
काहू फागुन - मद - उमदाने ।
भँवर-भाव रस लेत फिरत हौ वीथिनि वगर रहत मँडराने ।
मसि मजीठ रंग रचे अधर दृग आनँदघन बरसाने,
तिहारे गुन नहिं परत बखाने ॥

२७६—टौंडिक—ढीठक (सतना) ।

[२७९] टौंडिक=शरारती ।

अलहिया बंगाली] (२८०) [मूलताल

नंदलला सौं खेलौं होरी ।
कैसैं दुरति सखी इहिं औसर उघरि परी हित-चोरी ।
रोकी रहति न सासु ननद की रस लैहौं बरजोरी ।
प्रान-जीवन आनँदघन पिय कौं गहि राखौं पन-डोरी ॥

विहागरो] (२८१) [इकताला

साँवरो होरी खेलै अपनी गोरी-संग ।
जमुना कैं तट सघन कुंज मैं भीनौ प्रेम-उमंग ।
चोवा-चित्र रचत चोली पै परसत लोने अंग ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसत अति रति-रंग ॥

पूरिया धनासिरी] (२८२) [इकताला

होरी खेलि आए खेलन मेरैं रसिक छैल खिलवार ।
नैन रसमसे बैन रसमसे रूप-छके रिझवार ।
हिय खरकत गुलाल किनि काढौ कै कहूँ भई भावती जगार ।
आनँदघन भुरहरैं उनए बरसत रस-बढ़वार ॥

ललित] (१८३) [मूलताल

ए मेरी ननदी री कहि कहा करौं ।
तेरे बीरन परदेस रमि रहे फागुन के दिन कैसैं भरौं ।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौं ।
आनँदघन मोही पै घमँड्यौ रीझि लाज सौं कौ लौं अरौं ॥

पंचम] (२८४) [इकताला

होरी खेलै छैल छबीलो मोहन साँवरो ।
रंग-रँगीलो रस-बरसीलो मोहि लियौ गोकुल गाँवरो ।
बरुनिनि न्यौं तरुनिनि हिय बेधत कँवलनैन नीको नाँवरो ।
आनँदघन बुरि भिजवै रिझवै सबही भाँतिन है जिय भाँवरो ॥

केदारो] (२८५) [इकताला

रंग-रँगीले सौं आज, होरी दाँव बन्यौ है ।
लाजौ उमँगि उमँगि खुलि खेली जग्यौ है मदन को राज ।

अंग अंग सुख रंग सौंज सजि सकिल्यौ है अभिलाष-समाज ।
चौंप चाह रीझनि भीजी आनँदघन भिजवन - काज ॥

धनासिरी] (२८६) [इकताला

कहूँ किनि होरी खेलौ रंग रहै मो संग ।
तिहारैं गुलाल खरक मो अँखियनि ब्रजमोहन नवरंग ।
जौ मन फगुवा दै तुम आए मैं पाए अभिलाष अभंग ।
सुघरि उघरि आनँदघन बरसे ढकत नहीं ये ढग ॥

सकरा] (२८७) [चरचरी

रस राखि होरी खेलौ खिलार जाने हौ जू उदार ।
आनँदघन उनए नए छैल अजू हठि होत फिरौ गरहार ॥

सहानो] (२८८) [इकताला

गुलाल - भरी तूँ आई है ।
अँचरा ह्वै रसमसी महा दलनि ढुरि ढुरि देत दिखाई है ।
ललित कपोलनि ओछेँऊँ पाछैं लाली लसति सुहाई है ।
आनँदघन रसकेलि - कलानिधि अँग अँग रँगनि भिजाई है ॥

धनासिरी] (२८९)

आनि बन्यौ होरी को दाव ।
बिधना रच्यौ रंगीलो अवसर बाढि रह्यौ हो चित मैं चाव ।
राधा-मोहन के हिय हिलगनि रचति हुती बहुरगनि भाव ।
सो सब सहज उघरि आई अब दवे चहूँघाँ चपरि चवाव ।
मचियै रहति चौंप की चाँचरि सरस खिलार सुदेस बनाव ।
बिलसौ लसौ हँसौ आनँदघन इनै उनै बरसौ रस-राव ॥

सावंत] (२९०) [इकताला

होरी के खेल तोही पै बनि आवै यह छरबर पैं छरई ।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चौंपनि मनभावन भरई नैंक न डरई ।

[२८६] फगुवा=फाग की भेंट, उपहार । [२८८] ओछैंऊँ=साफ कर देबे पर, पोंछ देने पर भी । [२८९] राव=ध्वनि ।

पहिलेई कौंधन भरति चखनि मैं चौंपनि फिरि जो मन भावै सो करई।
आनँदघनहि पपीहा करि राख्यौ राधे ऐसैं सौतिनि दरमरई॥

ऐमनि] (२९१) [इंकताला

गोपी ग्वाल गुपाल संग रंग होरी माची है।
झपट लपट कपट छोरि पट झटकनि गहि झकोरि लाज्यौ
सरस औसर लखि उघरि नाची है।
अप अपनी रीझ बूझ सब तन तकत हीँ सूझ अति रस
बढ़वारि सुख की सींव खाँची है।
स्यामसुंदर आनँदघन राधा कैँ रस भीजि रहे ब्रज बन
गिरि खोरि हित-सहेट साँची है॥

अड़ानो] (२९२) [चौताला

गावै होरी छैल ब्रजमोहन नवरंगी गितार तार सुर तान सौं।
नटवा निपट निपुन रासमंडल मैँ अभिनै - भेद बतावै,
गीत रीति परवान सौं।
राधा नवेली कैँ रँग भीनौ रँग मूरति रसिकमनि मन्मथ-
मान हनै नैन-बान सौं।
सहचरि चुहल चौंप ही चहूँ ओर आनँदघन तत बितत
सुखिर घन आछी आछी ठान सौं बाँकी परन उठान सौं॥

देसी बरारी] (२९३) [इकताला

मनभायौ त्यौहार मनायौ मान्यौ है भाग फागु लागैं हीँ।
उघरि नघरि खेलत रस झेलत रीझनि भीजि रहे आगैं हीँ।
सब रँग साज-समाज लियेँ ँग गावत रागनि अनुरागैं हीँ।
ब्रजजन जीवनधन आनँदघन राधा - मोहन - पन पागैं हीँ॥

हिंडोल] (२९४) [चौताला

आदि हिंडोल गायौ आदिनाथ हौं हूँ गावत पाछैं।
भक्तराज गुनरहित-गुनीसुर गंगामौलि महोत्सव-मूरति काछैं।

[२९२] गितार=एक बाजा। परवान=प्रमाण। तत०=नृत्य के भेद। परन=बोल।

गिरिजापति गिरिबासी चंदचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साछैं।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-गुनगान गरज दै राखौ निरंतर आछैं ॥

विभास] (२९५) [मूलताल

निपट निडर खिलार हो देखे होरी को खेल यह कौन ।
आनँदघन पिय झूमेई आवत बहियाँ पकरि हठि गरैं
लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन ।
कित कौं भोरहीं आई जमुना जल तुम घर तैं लै निकसे सौन ।
चतुर छैल ह्वै देत गँवारथौ देहदसा लखि लरैंगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन ॥

बिहागरो] (२९६) [इकताला

छैल साँवरिया खेलै रसहोरी अपनी गोरी राधा कैं साथ ।
सहचरि - भीर तीर जमुना कैं पहिरैं नव रँग चीर ।
केसू केसरि रंग कमोरीं झोरीं गुलाल अबीर ।
दाव चाव बहु भेद भाव सौं चाचरि चुहल मचाइ ।
चलति कटाछ सहित पिचकारी तन मन लागति जाइ ।
चित चकोर चौंपनि चितवत मुखचंदहि पलक बिसारि ।
भीजि रह्यौ अनुराग रंग मैं रीझनि सरबस वारि ।
कुंज केलि कौतुक नित नितहीं रची रहति यह फाग ।
गावत सरस कठ रसगारी झर लाग्यौ अनुराग ।
फगुवा देन लेन को जो सुख सो कहि सकत न बैन ।
आनँदघन रस रमँड घमँड सुख लेत पपीहा नैन ॥

ईमन] (२९७) [मूलताल

ज्यौं मैं खोले किवार त्यौं ही आनि लवढ़ि गौ गरैं ।
घरवारे को भेष बनाय आयौ लंगर ताक लगाय छैल सौं बोलि हरैं ।
ऐसैं होरी दाव लियौ है जैसैं पासे पैज परैं ।
आनँदघन ब्रजमोहन घुरि ढुरि भिजई खरैं खरैं ॥

[२९५] सौन=गुलाल। हौन=अपनापन। [२९७] लवढ़ि०=लिपट गया। पैज=प्रतिज्ञा, शर्त।

ख्याल ऐमन] (२९८) [चर्चरी

सुघर खिलार याकी बहियाँ क्यौं मरोरी ।
बहियाँ क्यौं मरोरी गिरिधर निधरक झकझोरी ।
नीठि निहोरैं खेलन निकसो आनँदघन तुम उनए बरजोरी ।
ए रहौ दैया कौन भाँति सौं खेलत होरी ॥

सारंग] (२९९) [इकताला

सब रंग होरी को तैं राख्यौ राधे सरस खिलार ।
निपट रँगमगी चितवनि तेरी निपट नयो रस चाख्यौ ।
मोहन पै मनमान्यौ फगुवा लियौ बहुत दिन को अभिलाख्यौ ।
आनँदघनहिं भिजै तू आई यह सुख परत न भाख्यौ ॥

बिभास] (३००) [इकताला

कन्हैया मोही सौं रसबाद रचै री, न्यौज लगौ यह फाग ।
अपनो सो हौं बहुत बचौं पै निपटै निडर वह कैसैं हूँ न बचै ।
छाँह न छुवावत ही कबहूँ वह बहुत दिना को लागि पचै ।
अब तौ होरी को मिस पायो कानि कौन की काहे न उघरि नचै ।
ताक लगावै ढूक्यौई आवै डोलत है निज लाज अचै ।
आवौ मिलि गहि गाढ़ैं भिजैयै आनँदघन कौं जैसैं नैक लचै ॥

सारंग] (३०१) [झप

पहिरि निकसे कान्ह केसरी बागौ ।
चारु चोवा-चित्र बाहुमूलनि खुले उमँगि भेंटनि प्रगट
करत जिय-लागौ ।
सवँरई सौं गुराई मिलैं छबि फबति सुनि समझि
भामिनी प्रीतिपन पागौ ।
आनँदघन घमँड आनि औसर बन्यौ दरस दीजै
सरस कीजियै फागौ ॥

[२९८] सुघर=चतुर । नीठि०=कठिनाई से और विनय करने पर । [३००] न्यौज०=दैवकार्य में लगे, समाप्त हो जाए । ही=थी । अचै=पीकर । नचै=दबे, नम्र हो । [३०१] बागौ=अंगा, जामा ।

हिंडोला] (३०२) [चौताला

नीकौ खुल्यौ री तेरैं भाल ए नव बाल गुलाल-टीकौ ।
राग-रचावन रंग-बढावन प्यारे लालन के जी कौ ।
भई है इकौसी-फाग कहूँ तैं हूँ फगुवा लियौ है लगाँहीँ ही कौ ।
आनँदघनहि सजल कियौ तैं दामिनि यह फाग
भाग है री राधे तो सी कौ ॥

हमीर] (३०३) [इकताला

आए बन तैं गोपाल जसोमति आरतौ उतारैं ।
राई नौन वारि वारि तिनुका तोरि डारैं ।
आँचर तैं उमगि उमगि चलति दूधधारैं ।
मोदमगन मैया मन छैया - छवि निहारैं ।
बदन चूमि हिय लगाइ मंदिर लै पधारैं ।
ताते जल पाय पखारि गोद मैं बैठारैं ।
मधुर मोदक जननी - कर कछुक मुख जु ढारैं ।
आनँदघन हित घमँडनि कहाँ लौं विचारैं ॥

सारंग] (३०४) [इकताला

चतुर खिलार खेल की हौंसनि भए फिरत हौ
हो निपट मायक से ।
ते औरै जे तुम रँग राचीँ तुमहूँ रचे तिन्हैं लायक से ।
मिस ही मिस ढिग ढूके आवत लै गुलाल कर जानि
परे हौ रसनायक से ।
आनँदघन अब उबरि रचे हौ नित ही रहत अब फागु नायक से ॥

धनासिरी] (३०५) [इकताला

होरी खेलिहौँ उमग्यौ है मो चित चाव ।
लाजहिं सौंति कहा करिहौँ अब खुलि खेलन को दाव ।
अपने मन की कसरि काढिहौँ को लौं करौं दुराव ।

[३०२] इकौसी=एकांत मैं। [३०३] छैया=बच्चा, शिशु। [३०५] सौंति=

इन फागुन हौं आज जिवाई मारत हुते चवाव।
तरसति ही दरस कौं परस कौं बिधना रच्यौ बनाव।
आनँदघन अबीर-घमँडनि मैं करिहौं कौंधि मिलाव॥

सारंग] (३०६) [इकताला

नई पाहुनी आई है तूँ अरु आई फागौ उफनाइ।
कालिह कान्ह की डीठि परी कहूँ आज भोर तैं इत मँडराइ।
बरजति ही निकसै जिनि पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाइ।
वा रसलोभी को हियरा हठि लै आई लावनिहि लगाइ।
अजहूँ बैठि रहै किनि घर मैं कित डोलति बिछियानि बजाइ।
मेरो क्यौं सुनि चलत ठौर तैं रसिक छैल छकि घूमै न्याइ।
भागनि बन्यौ आनि यह औसर जो कछु तेरैं हूँ चित चाइ।
दै चुकि होरी कैं सिर यह जस नीके आनँदघनहि भिजाइ॥

परज] (३०७) [चौताला

सुघरराइ ऐसैं कोऊ है गुलाल चलावत खेल
किधौं सति भाव।
भली भई याकी आँखिन परचो हो तौ बतबढ़ाव
रह्यौ जू तकत गँवेलो दाव।
रंग राखि रस राखि खेलियै जैसैं बढ़ै चित चौगुनो चाव।
आनँदघन घमँडनि मैं उघरे अपनो सो करति दुराव॥

सारंग] (३०८) [चौताला

यह बृंदावन यह जमुना-तीर यह सारंग राग।
यह भागभरी भूमि यह तरु-लता-भूमि यह बिहंग-
बड़भाग राधा मोहन को सुहाग बाग।
याकी लहलहनि याही मैं पाइयति भीज्यौ आनँदघन अनुराग।
नैननि कौ फल चाहिबो समझत स्यामा-स्याम सेवत हैं
करि नित ही जाग॥

कौंधि करके। ईं=थी। [३०६] लावनि=लावण्य, सौंदर्य।

सारंग] (३०९) [चौताला

सारंग पूरथौ री बनवारी बंसी मैं कैधौं वैर विसाह्यौ ।
धुनि की भिदनि हियौ पघरथौ जाइ हाइ बिसासी कहा करन है चाह्यौ ।
तीखीताननि चपल करै मति जियराहू ढुरि मिलन उमाह्यौ ।
आनँदघन रीझनि भिजवै सोचनि सुखवै ऐसें कौ लौं परिहै निबाह्यौ ॥

धनासिरी] (३१०) [चौताला

आँखिन सौं आँखि मिलाइ होरी खेलियै ।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक ह्वै रस झेलियै ।
अंजन आँजि मॉडि रोरी मुख हँसि गरबाहीं मेलियै ।
गहरु करन को दाव न राधे तू धुर की अलबेलियै ।
मोहनलाल तमाल बाल बर तू सुहाग नववेलियै ।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कों रस लै आजु अकेलियै ॥

धनासिरी] (३११) [मूलताल

हौं कहा करौं ही दैया फागुनवा आयौ ।
दिन चारिक तें बिरह निगुडवाँ कैसो मूड उठायौ ।
ब्रजमोहन भए निपट बिसासी यौं इन अवसर पायौ ।
औसेरनि औसति आनँदघन नव रंगनि झर लायौ ॥

सारंग] (३१२) [इकताला

मदमाती फागुन भोज की ।
छैल कान्ह कौं लाइ लगौंहीं गावत गारी चोज की ।
लोनो बदन रतौंहैं अधरनि फूलनि कहा सरोज की ।
मोहन भँवर भयौ सँग डोलत तकत गैल तिहिं खोज की ।
चित्रित डफ विचित्र कर सोहत गति मति हरन मनोज की ।
आनँदघन की घमॅड होति लखि उकसनि लसनि उरोज की ॥

[३१०] मरक=हौसला । [३११] निगुड़वाँ=निगोड़े ने । औसेर=प्रतीक्षा-जन्य व्यग्रता । औसति=व्याकुल होती हूँ ।

धनासिरी] (३१३)

लगै जौ चटक चौंप की चोट ।

तौ क्यौं सही परै प्रानन्नि के प्रानन्नि सौं पल ओट ।
पाथर तैं पोढ़े जड़ मेरे मनहीं की कछु खोट ।
तौ लौं कहा होइ नहिं जौ लौं कसकै लोटकपोट ।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि चेतनहूँ की टोट ।
चरन-धूरि व्रजगोरिन की जाचत है निलज निखोट ।
वृंदाबन - रस भिदै न याके कपट कुदेव अगोट ।
द्रुम-बेलिन लिखि फुरै सु कैसैं ललित रँगीली जोट ।
भरि दै री जमुना करुना करि इहिं रस आसा-वोट ।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चारिक छीँटनि छोंट ॥

नट] (३१४) [चौताला

उमहि उमहि रस बरसत राधा मोहन सोहन सबके जीवन-प्रान ।
नव घन दामिनि रीझनि भींजे पहिलेई पुनि रसभीज्यौ
फागुन पायौ नेही नवल समान ।
पैज-रूपनि दुहुँ ओर चौंप चुहल चाचरि सोर ढोल-ढनक
घोष मंगल सुनत सफल होत कान ।
आनँदघन सुखसमूह सुर भूले लखि कुतूहल छायौ केलि-बितान ॥

बिहागरो] (३१५) [इकताला

होरी खेलै राधा गोरी साँवरे प्रीतम संग चाँचरि चौंप रचाइ ।
जोबन जगी जगमगी सखिन मैं अति लोनी मीठी गारी दै
लालहि लेति लुभाइ ।
पानभरैं मुख बिथुरी अलकैं दुति मुख को पानिप कछु कह्यौ न जाइ ।
रीझनि भरि भिजए आनँदघन पिचकारीं रंग रह्यौ छैल कैं
छवि देखन को दाइ ॥

३१३–पोढ़े–खोटं (सतना) । गोरिन–खोरिन (लंदन) ।

[३१३] लोटक० = लोटपोट । अगोट = आधार । आसा० = आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान । कादंबिनि = मेघमाला ।

सहानो] (३१६) [इकताला

मोहन अब तौ रँगनि भरौंगी ।
मोसौं खौरि दौरि कित जैहौ देखौगे सु करौंगी ।
आजु रँगीलो दाव बन्यौ है काहू तैं न डरौंगी ।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौं या अर तैं न टरौंगी ॥

परज] (३१७) [इकताला

अटपटे पेचनि आए निपट लटपटे लाल ।
होरी को मिस पाइ दाइ रचि लीने फैंटि गुलाल ।
खेलति होइ री खेलियै तासौं लखे अनोखे ख्याल ।
आनँदघन बरजोरी उनए उरझि करत उरसाल ॥

ऐमन] (३१८) [इकताला

हौं उनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि मॉची रसहोरी है ।
भली भई फागु के दिननि मैं उघरि परी हितचोरी है ।
प्रीतिरीति गीतनि गावत ब्रज घरघर केसरि घोरी है ।
आनँदघन राधिका दामिनी जगत-उजागर जोरी है ॥

गंधार] (३१९) [इकताला

हो होरी खेलै अलबेलो नंद महर को ।
चंदमुखीं लखि बढ्यौ रूपनिधि रंग अनग लहर को ।
बोरत लै मन नैन सबनि के पूरन प्रेम-गहर को ।
गुपत प्रगट भिजवत आनँदघन रसिया आठ पहर को ॥

बिभास] (३२०) [इकताला

आजु कान्ह कुँवर की बरसि-गाँठि है आवौ री
मंगल गावौ सब वर नारि ।
ब्रजमोहन-मुख सुख-सोभानिधि भागनि को फल लेहु निहारि ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ जापै सरबसु दीजै वारि ।
आनँदघन चिर जियै लड़ैतो बिधि पै माँगति गोद पसारि ॥

रामकली] (३२१) [चंपकताल

नंद को आनंद कह्यौ न परै हो ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन प्रगटे को इहि सुकृत फरै हो ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कैं सोभित सुभग घरै हो ।
जसुमति जाकैं घरनि सपूती दीपति भवन भरै हो ।
भई बधाई-भोर सुहाई हेरत हियो हरै हो ।
बहुत भाँति चातक-जन गन पै आनँद मेघ झरै हो ॥

बिभास] (३२२) [इकताला

चरन तिहारे सब सुफलदायक ।
रमन-भूमि ब्रजमंडल-मंडन सुनहु साँवरे गोकुलनायक ।
रसबिलास-सपदा-स्वामी सुखनिधान सुमिरिबैं सु लायक ।
आनँदघन अमोघ रसमूरति सरनागत भयहरन सहायक ॥

राग अड़ानो] (३२३) [चरचरी चलती

सुहेलरा आजु नंद कैं आनंद ।
घर बाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेई बनै ब्रज बाढ़ी ओप अमंद ।
जसुदा की कूख सिरानी भई है सबके मन मानी प्रगटे
सुखदानी कुलमंडन ब्रजचंद ।
आनँदघन-घमँड तहाँ अदभुत छबि फबी जहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद ॥

सारंग] (३२४) [झपताल

मंझिलरा गहगहो गाजै बाजै बधाई ब्रजपति के घर ।
हरि जसुमति जन्यौ स्याम लोनो ललन अति मुदित नचत नारी नर ।
को कहि सकै भागनि को निकाई अदभुत मनोरथ-महीरुह लाग्यौ सुफर ।
पूरन करी आस-प्यास निज जननि की सबनि पर आनँदघन घन झर ॥

३२१—गान०—गाव (सतना) ।

धनासिरी] (३२५) [मूल

सुभ दिन आजु को सखी री जनमे मोहन स्याम ।
घरघर महा महोच्छौ ब्रज मैं पूरे मन के काम ।
नंद जसोमति अति बड़भागी सब बिधि रस-जस-धाम ।
आनँदघन बरस्यौ सरस्यौ हित जगजीवन अभिराम ॥

धनासिरी] (३२६) [मूल

मिलि चलहु बधाएँ जाहिँ कीरति कुँवरि जनी ।
सुख की रासि बिधाता दीनी आज भावतो बात बनी ।
देखौ री देखौ किनि सजनी दिसि दिसि बाढ़ी ओप घनी ।
गोकुलचंद - चंद्रिका प्रगटी अतुल प्रेमरस - रंग-सनी ।
बाजति अति गहगही बधाई चैन चुहल चहूँ ओर ठनी ।
गैल गरथारनि गहमह माची रावरि-छवि नहिँ परति गनी ॥
भागनि को परागनि को फल लेहिँ निरखि मुख पूरन
करहिँ आस अपनी ।
आनँदघन बरस्यौ इहिँ औसर धनि धनि धनि यह दिन-रजनी ॥

संकराभरन] (३२७) [मूल

सब ब्रज सुख समुद्र ह्वै बाढ़यौ प्रगटे गोकुलचंद सुछंद ।
गरजि उठ्यौ अमोघ मगल-धुनि दूरि गयौ दुख-द्वंद ।
हरषे द्रुम-वेलीँ नरनारीँ प्रेम-पियूप - मयूख अमंद ।
आनँदघन अनेक रस वरसत धन्य जसोदा-नंद ॥

रामकली] (३२८) [चंपकताल

नंदभवन की सोभा आज देखेई बनि आवै ।
कमलनैन सुखदैन प्रगट भए भाव - भेद को पावै ।
जो कुछ ब्रज को भाग उदै भयौ सो कहि कौन बतावै ।
आनँदघन अनेक रस बरसत सब जग मंगल गावै ॥

३२५—महा०—महामोद छवि (सतना)। ३२८—उदै—प्रगट (सतना)।

[३२६] रावरि—रावल, राधा का ममाना ।

रामकली ख्याल] (३२६) [मूलताल

आछी गति बाजै मंदिलरा स्यामसुंदर के जनम-समै ब्रजपति-घर।
आनँदघन की घमँड घोर चहुँ दिसि लाग्यौ है रस-झर ॥

धनासिरी] (३३०) [मूल

बरजत बरजत अँखियनि ब्रजमोहन - मुख चाह्यौ ।
धीरज धन दै हाथ परायैं बिरहा - बिषहि बिसाह्यौ ।
उनहिं कहा कहि दोष दीजियै इनहीं उरझनि नेम निबाह्यौ ।
मन गौहन लगाय आनँदघन तनहूँ बन लै गाह्यौ ॥

भैरव] (३३१) [चरचरी

गिरिधर आनँदकंद ।
ब्रजजन-लोचननि चंद रसमय आभा अमंद मंडित-गोपाल-बृंद ।
नित नित लीला सुछंद गिरिबन तनया-कलिंद सुंदर बदना-
रबिंद मुरली-धुनि मंद मंद ।
जयजुत गोकुलानंद बंदित सुर - अरि - निकंद महा मधुर
बय किसोर गोपबधू - हृदय-कंद ।
आनँदघन अदभुत अभिराम स्याम प्रेमधाम नाम रूप
जीवनधन धनि जसुदा धन्य नंद ॥

बिभास] (३३२) [चंपकताल

स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारे मेरी अँखियनि के तारे हैं ।
मोहन मुख देख्यौई भावै गुननिधि रूप-उज्यारे हैं ।
वेनु बजावत लटकत आवत मदगज गति पर वारे हैं ।
आनँदघन रस पीवत जीवत चातक - प्रान सुखारे हैं ॥

भैरव] (३३३) [चौताल

जगतारन करुनासिंधु मुरारि दीन असम्हारनि लेत सम्हारि ।
अधम - उधारन बहुबिधि सुखबिस्तारन स्वामी दयाल पन-
पूरन पालन ब्रत धारि ।

[३३०] गाह्यौ = थहाया, खोजता फिरा ।

अघ - बारन - कठीरव दारुन दुखदल - विदारन गुन
अपारन को सकत विचारि।
आनँदघन रसधारन सकल संतापनिवारन घमँडि विराजत
प्रान - पपीहनि पारि ॥

बिलावल] (३३४) [मूलताल

संकर गिरिजापति नंदीसुर चंद्रचूड गंगाधर।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय - हर।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर।
आनँदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित - वृंदावन - थर ॥

आसावरी] (३३५) [इकताला

धनि व्रज-आँगन जहाँ घुटुरुवनि ऐसो बालक डोलै हो।
धनि धनि रती जसोमति की जासौं लडकि तोतरैं बोलै हो।
मोहन स्याम सकल व्रजजीवन बालविनोद कलोलै हो।
आनँदघन हित घमँडि गोद मैं बैठ्यौ व्रजपति मो लै हो ॥

कान्हरो दरबारी] (३३६) [चौताला

बृंदावन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन।
मंजुलद्रुम - वेलिनि-दल-फल मैं दरसति राधा मूरति यह
सुख जानत जाके जोहन।
श्रीपद सरस परस नित हितमय अनुपम भागनिकाई गोहन।
दंपति चातक - जुगल आनँदघन करत मनोरथ - दोहन ॥

धनासिरी] (३३७) [झप

ऐसो को जो तिहारे गुन गाय जानै गाय जानै तुम्हैं रिझाय जानैं।
दीन रसना जौ कछु बखानै तौ कृपा के प्रसाद को पाय जानै।
कृस्न कमनीय कोविद करुन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानैं।
प्रान-चातकनि के आनँदघन सुनौ विरही विचारो बरराय जानैं ॥

३३६–अनुपम–अद्भुत (सतना)।

[३३३] बारन = हाथी। कठीरव = सिंह।

देव गंधार] (३३८) [मूल

तिहारो सुख जौ मन मैं आवै ।
तौ मेरे भागनि की महिमा को कबि बरनि बतावै ।
जमुनातट कुंजनि की सोभा लखि आनँदघन छावै ।
श्री बृंदाबन राधा मनोहर बसिबोई नित भावै ॥

आसावरी] (३३९) [चंपकताल

बिछुरिवे को दुख न जानत हैँ स्याम ।
बीच दियेँ हीँ मिले बिसासी ये कपटिन के काम ।
हम भोरी वेकाज बिकाई निज सरबस दै उलटे दाम ।
निधरक छाय रहे आनँदघन हम बिलखतिँ ये धाम ॥

(३४०)

सुख - सवाद स्यामहि सुमिरेँ सब ।
साँठे भए गए छुटि सहजै निज सुरूप रस-परस लस्यौ अब ।
नेह देह जगमगी ज्योतिमै भाव-भेद ढरि लगे ढार ढब ।
आयौ घमँडि महा आनँदघन उघरि परी अति अगम दसा दब ॥

टोड़ी] (३४१) [चौताला

साँचे सुरके विस्तार साँचे तार साँचियै साँचीताननि मुरली साँचत ।
भौँहैँ भंग त्यौरी तरंग-रंग संग-बिलासिनी के नीके नैना नीके नाचत ।
मन के हरन हैँ कान्ह सहज सखी तापै इते भेदपन क्यौँ बाँचत ।
आनँदघन पै वहुत गतिन सौँ मदन - आँच तउ आँचत ॥

सारंग] (३४२) [चौताला

गावत सुघरराय सारंग तीख चोखनि सौँ ।
निपट रसीली डाट लाग लेत ललित भाँतिन संपूरन सुख पोषनि सौँ ।
गुनीनि मुकटमनि कान्ह गितार अतुल कहत पोषो धुनि जोखनि सौँ ।
आनँदघन झर कदमतर कालिंदी-कूल नैन स्रवन प्रानन मन तोषनि सौँ ॥

३३९—जानत—जान (सतना) । ये—निज (संग्रह) ।

[३३८] राधा० = राधा के निवास से मनोहर ।

तथा] (३४३)

गोरी गोरो री अति गोरी जमुना तू क्यौं लागति स्याम ।
काचघटी लौं सुभर भरी रँग महामधुर रस बाहिर लसत ललाम ।
राधा ही को हिय अभिलाष घुमेरत भौंरनि ह्वै अभिराम ।
भानुकुँवरि आनँदघन कैं बल तोहि वढ़नि बाढ़ियै देखति अस्ट जाम ॥

रामकली] (३४४) [चंपक

देवी पूजि पूजि बर पायौ ।
चीरचोर चितचोर और को सरवसु दै अपनायौ ।
को समझै यह प्रेम नेम - गति पूरन पन दरसायौ ।
रसमय बचन - रचन आसा-बल उर आनँदघन छायौ ॥

मलार] (३४५) [चौताला

मोहन मूरति मेरी आँखिनि आगैं ई रहै ।
ज्यौं खोलौं मूदौं त्यौं त्यौं ही त्यौं ही दृस्टि गहै न बातो कहै ।
अरु आँकौं भरि भरि भेंटनि की अभिलाषनि बावरो हिय उमहै ।
आनँदघन पिय के संजोग-बियोगनि पापी जियरा दुखसूल सहै ॥

केदार मलार] (३४६) [चंपक

तुम्हैं को रिझाइ सकै हो वड़े रिझवार ।
रती साँच सौं रीझि रहत हौ सो मोहि भयौ है पहार ।
झूठैं सवाद हिल्यौ झूठो हिय तजि साँचो रससार ।
अब आनँदघन उमँडि घुमँडि कै करौ कृपा-आसार ॥

सारंग] (३४७) [इकताला

ब्रज के रूखनि लै दरसैयै ।
रमनभूमि-रज अंजन बन घन सोभा - सुख सरसैयै ।
जमुना - तीर भीर मनभाई प्रीति - रीति परसैयै ।
तचे बचे हैं प्रान-पपीहा आनँदघन बरसैयै ॥

ऐमनि ख्याल] (३४८) [मूलताल

मोरा मन बाँधिलौ है, तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा ।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबिमतवारे हँसि नैन चान
भरि साँधिलो है ॥

सूहो ख्याल] (३४९) [चलती

हमसौं परदेसी की प्रीति करी प्रीति करी कि अनीति करी ।
तब ब्रजमोहन आनँदघन छाए अब लागी है औसेर - झरी ॥

रागिनी देवगंधार] (३५०) [चौताला

ऐसी कौन पै मति है जो तिहारे गुनरूप - रसहि बखानै ।
सुनौ राधामोहन एक भरोसो है जू कृपा की अदभुत गति है
यहै सुनि सुनि बाढ़ी अभिलाषा अति है ।
बलि बलि जैयै कोमल सुभाव की जातैं पैयै निरंतर रति है ।
आनँदघन हौ सींचि हरी करौ आसा-बेली बार बार यही नति है ॥

हमीर] (३५१) [चंपकताल

अँखियनि लाग्यौई रहै देख्यौ धौं कौन घरी कौ ।
एक दिना अटक-भटक भई री भटू ता छिन तैं न मलोलो मिटै
मोही कौ न परइ भरोसो निरमोही कौ ।
नैन-सैन मैं बैन कहि गयौ अधखुले अधरनि प्यासो जी कौ ।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर ब्रजमोहन सब भाँतिनि है सब ही कौ ॥

परज ख्याल] (३५२) [चरचरी चलती ताल

हो सुदिन सनेहरा लग्यौ हो रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो।
उघरे भाग आनँदघन उमड्यौ हँसोली भौंहनि रसीले जोहन सौं हो॥

देव गंधार] (३५३) [चौताला

गन गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गरुए गावत हैं तिहारे ।
गाइ गाइ छकि छकि जकि थकि जीतत हैं जनम कहि हारे ।
सेस महेस निगम असेस गति पावत नाहिं विचारि विचारे ।
ब्रजमोहन आनँदघन हौ चित - चातक - पन - रखवारे ॥

भैरो] (३५४) [चौताला

हरौ मेरे हिय तैं यह दुखसूल, करौ किनि अब याकौं कछु सूल ।
जान न देहु कहूँ कबहूँ राखौ जू चरन - कमल के मूल ।

३५.३–जकि–जीभ (सतना) । जीतत–जीवत (वही) ।

अपनैंई गुन-गननि गसौ सुधि एक रहै और भरै भूल ।
रतिरस दीजै पपिहा कीजै आनँदघन है अनुकूल ॥

षटराग] (३५५) [चलती चरचरी

रसिक छैल नँदलाल मेरी अँखियनि वसे रहैं ।
हिय जिय भरि भोइ समोइ न्यारे नैंक न हैं ।
सोवत जागत रागत पागत लागत गौंहन गैल गहैं ।
मौनहूँ मैं सुनि सखी कछु सैननि वैन कहैं ।
आनँदघन घमँडि घमँडि उघरि सुख-सवाद लहैं ।
ब्रजमोहन बिसासी इते पै कियौ कहा चहैं ॥

टोड़ी] (३५६) [चपकताल

बजावै कान तीखी तान टोड़ी की ।
मुरली अधर धरैं सुंदर बदन मैनमद-घूमरे नैन केसरि-
खौरि छूटी अलकैं और मुरि परसनि री ठोड़ी की ।
अपनैंई मन रीझि, रीझि तहाँ ताहां सौं होड़ाहोड़ी को ।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन छबि देखि रीझि भीजि सुधि
काहि लाज निगोड़ी की ॥

सारंग] (३५७) [चौताला

बाँसुरिया सौं कछु न बसाइ ।
अपनो सो मन गाढ़ो करियै पैं ये उतहीं चलि जाइ ।
ताननि बाननि प्राननि वेधति वैरिनि इतने हूँ पै हिताइ ।
आनँदघन घर बैठैं भिजवति सोचनि सुखवति हाइ ॥

सारंग] (३५८) [चौताला

हिलगनि मन की निपट दुहेली ।
कासौं कहौं हौं ही जानति जैसैं निसिदिन भरति अकेली ।
लपटी रहति स्यामसुंदर सौं दीरघ आस-वेली ।
आनँदघन पिय अनत ऊनए औसनि परति न झेली ॥

३५६-अपनैंई-मन ही (सतना) ।

[३५७] हिताइ = प्रिय लगती है, रुचती है । [३५८] औसनि=ऊमस ।

रामकली] (३५९) [मूलताल

तिहारी पीर प्यारे तुमहूँ तैं अति प्यारी ।
पूरि रही है पिराँहैं हिय मैं होति न कबहूँ न्यारी ।
याको सुख दुख कहियै कैसैं अकथ कथा और रसना बिचारी ।
आनँदघन पिय याकी घमँडनि दुरति न जाति उघारी ॥

रामकली] (३६०) [चरचरी

ब्रजबासी कान्हा हो, हो कबहूँ तौ सुधि दीजै ।
लागी रहै औसेर घरी घरी खरी कठिन परी हरी हरी
जियरा क्यौं धीजै ।
दुसह परेखनि कैसैं मन समझैयै हाहा कहौ तुमहीं कहा कीजै ।
आनँदघन पिय अचरज-रस बरसौ कोऊ सूखै कोऊ भीजै ॥

वृंदावनी सारंग] (३६१) [इकताला

बंसी मोहन की फँदवारी ।
मदनमोहन गुपाल बजाइ हमारे प्रान - गरैं गहि डारी ।
घुटत अधीर पीर को पावै दरसन - आस - जिवारी ।
आनँदघन रस पियैं जियैं तौ ये बिरही ब्रतधारी ॥

देसी वरारी] (३६२)

मन लाग्यौ री बंसीवारे सौं, ब्रजमोहन छबि-मतवारे सौं ।
दृग - चकोर भए प्रान - पपीहा आनँदघन उजियारे सौं ॥

(३६३) [इकताला

दुपहरी जेठ की क्यौं कटिहै ।
ब्रजमोहन को नेह सखी री कुंदन भयौ निवटि है ।
कसि कसि बिरह-कसौटी सोधत फिरि गारैं कौं हटिहै ।
आनँदघन प्रिय प्रान-पपीहनि ज्याइ लेइ कहा घटिहै ॥

३६०–रस–झर (सतना) । ३६१–मोहन–मोह (लंदन) । ३६२–मतवारे–गाँतवारे (सतना) ।

[३६३] निवटि=शुद्ध होकर । गारैं=गलाने पर । कौ०=कौन हटेगा, फिर भी गलने को प्रस्तुत है ।

सारंग ख्याल] (३६४) [चरचरी चलती

न रहै मेरो मन बिन देखैं ब्रजमोहन उजियारे ।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान पपीहा निसिदिन रटत बिचारे ॥

बिहागरो] (३६५) [मूलताल

तुम सौं न नेह लगैयै ब्रजमोहन हौ विसासी ।
पावत नाहिं पराई वेदनि डोलत भँवर बिलासी ।
अपनी गौं ढुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी ।
आनँदघन पिय ह्वै बरसौंहैं राखत आसनि प्यासी ॥

सारंग] (३६६) [चौताला

प्रीतम याकी बयारि जब जब मो तन परसति ।
ता छिन प्राननि की गति कैसैं कहौं जो अरबरनि सरसति ।
ताप सीत दुख सुख को संगम देखि देखि मति अति ही थरसति ।
आनँदघन पिय मिलन-लालसा रोम रोम ह्वै बरसति ॥

तथा] (३६७)

जागि री जागि मति मेरी जागि लै जागि लै री ।
रसमूरति ब्रजमोहन सौं नीकैं पागि लै अनुरागि लै री ।
मति है तो कितहूँ मति उरझै बृंदाबन-द्रुम-वेलिनि मैं खागि लै री ।
आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि सुनि गुन रागि लै री ॥

ऐमनि] (३६८) [चपक

हँसि हँसि करैं बातैं रँगीले दोऊ मदमाते ।
गौर स्याम अभिराम अंग अंग हिय उमग बाढी गाढी
अति सरस परस ललचाते ।
नई तरुनई की ओप भई मुख-सुख समोइ पुलकाते ।
रीझि चौंप आनँदघन बरसत मिलत हार करि हाते ॥

३६५—आसनि—आपनि (सतना) ।

[३६६] थरसति=त्रस्त होती है । [३६७] मति = बुद्धि । मति=मत, नहीं । खागि०=तन्मय हो । [३६८] हाते=दूर ।

(३६९)

खंभाइची] [इकताला

मुरलीवाले ने असाडा दिल लीता नी ।
रत्त-दिहाडे किथाँई न लगदा की जानाँ क्या कीता नी ।
साँवली सूरति भाँभी अँक्खीँ डाढा चेटक दीता नी ।
आनँदघन बल होया पपीहा इसक-पियाला पीता नी ॥

(३७०)

ऐमनि] [चलती

सुरति लगी रहै बलमाँ ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय के बिन देखे कल न परै पल माँ ॥

(३७१)

सारंग] [चौताला

मुरली कुंजनि बाजि रही ।
ब्रजमोहन कौँ इकौसँ लैकै मुख-सुख साजि रही ।
हौँ ह्याँ झुरति चुरति घर घेरी साँसनि लाजि रही ।
आनँदघन बस करि गरबीली निसिदिन गाजि रही ॥

(३७२)

तथा]

राधे दै बृंदावन-बास ।
तेरो ह्वै मन पत्तहि परि रहै तनहूँ ताही पास ।
महामधुर रसकेलि-माधुरी फुरै हियैँ अनयास ।
हरीँ खरीँ सुखभरीँ निकुंजैँ नौ नौ रंग-बिकास ।
जमुना-तीर ललित वंसी-धुनि अद्भुत अमी-निवास ।
कृपा-रमँड घमँडनि आनँदघन वेगि पूरियै आस ॥

(३७३)

केदारो] [मूलताल

जब वह मलार मुरली मैँ गावै तव धुनि सुनि सिर धुनि रोऊँ ।
कहा करौँ हिय विकल जाय है विषम विथा कैसैँ गोऊँ ।
मुख-देखन-लालसा मरति हौँ रातिद्यौस या विधि खोऊँ ।
आनँदघन गुन सुमिरि सुमिरि कैं नखसिख विरहा-विष भोऊँ ॥

[३६९] असाडा=हमारा । रत्त०=रातदिन । भाँभी=घूमनेवाली । अँक्खीँ=आँखों में । डाढा=दृढ़, गहरा । चेटक=जादू । बल=ओर ।

तथा] (३७४)

बंसी बजाइ बजाइ हाइ ज्यौ तरसावै बिसवासी कान्हा ।
आनँदघन पै तीखीताननि बिष - बाननि लौं बरसावै ।
सदा संग सुख ही को दुखिया उरझि उरझि फिरि मुरलि बजावै ।
वाहि न पीर कछू याकी वह जित भावै तित ही धावै ॥

बिलावल] (३७५) [मुरली ताल

जमुना अपनो दरसन दै री, मोहि तेरियै आसा है री ।
नीको कूल बसाइ रसीली रसहि पिवाइ ज्याइ किनि लै री ।
धीरसमीर भीर-सुख-सोभा लसत बसत दंपति रसमै री ।
आनँदघन की घमंड निरंतर रहै जु यहै बिनती नित नै री ॥

तथा] (३७६)

तुमहिं रिझाऊँ हौं हूँ रीझौं ।
ऐसँ रीझौ खीजि कहत हौं रातिद्यौस इन सोचनि बीझौं ।
ब्रजमोहन हौ मोह कीजियै निगुनीयै गुन सुमिरि अरीझौं ।
आनँदघन पिय जिय बिचारियै उचित न औसि उदेगनि सीझौं ॥

तथा] (३७७)

छैल छबीले ब्रजमोहन रसीले ।
दच्छिनता-लच्छननि लसीले रजनि जगे लोचन अरसीले,
भावत आवत ढीले ढीले ।
मधुर किसोर चौंप-चटकीले चतुरसिरोमनि गुननि गसीले ।
नवजोबन-मधुपान-छकीले महामोहनी-मंत्रनि कीले ।
अंग अंग अति ही दरसीले सब बिधि प्रीति-रीति-सरसीले ।
आनँदघन घुरि ढुरत ससीले, प्रान-पपीहनि हित बरसीले ॥

[३७६] बीझौं=विद्ध हूँ । अरीझौं=उलझ जाऊँ, बँध जाऊँ । औसि= ऊमस सहकर । सीझौं=पकूँ, परेशान होऊँ । [३७७] दच्छिनता=दक्षिण नायक की विशेषता, अनेक नायिकाओं से प्रेम । कीले=मंत्र-प्रभाव से अवरुद्ध-गति । ससीले=शीलसपन्न ।

सारंग] (३७८) [चौताला

सरनागत - स्वामी सरबदयाल अंतरजामी ।
जित जित जहीँ जहीँ सँभारे तहीँ धाए कृपानिधि गरुड़गामी ।
मो सो न और अधमनि मैँ दूसरो कपटी कुटिल कामी, अति नामी ।
आनँदघन अघओघ-बहावन सुद्दस्टि-जिवावन बेद भरत हैँ मामी ॥

तथा] (३७९)

मोहिँ मेरे अंतरजामो भेंटे ।
तन-मन सुख-सीतलता बाढ़ी जनम-जनम - दुख मेटे ।
जगमोहन पै ब्रजमोहन ह्वै कृपाकंद परि फेटै ।
आनँदघन उदार चिंतामनि सुकृत - समूह - समेटे ॥

संकराभरन] (३८०) [चरचरी

तेरी गति - लैन की निकाई ।
नट नागरि पिय की मति देखि रीझि बिकाई ।
रूप जोबन गुन - गरिमा सबतेँ अधिकाई ।
आनँदघन सरस ताननि मुरलियौ छिकाई ॥

टोड़ी] (३८१) [चौताला

को पावै ये भेद जो गावै मेरो बैरागी जियरा ।
ब्रजमोहन के वियोग सँजोग भरयौ है हियरा ।
अँसुवनि जल सौँ अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौ घियरा ।
आनँदघन अवसेर - अँध्यारेँ दुसह-दसा को दियरा ॥

ऐमनि] (३८२) [चंपक ताल

हिँडोरैँ झूलनि को रस पायौ अंग-संग सुख लेत ।
गौर स्याम जोवन - माते सहि न सकत छिन छेत ।

३७८—सरनागत—सरनैगत (लंदन) । मामी—हामी (सतना) । ३८१—घियरा—पियरा (सतना) । ३८२—अंग—अंस (लंदन) । उमँडि०—रीझि रीझि (सतना) ।

[३७८] मामी भरना=स्वीकृति देना, समर्थन करना । [३८१] घियरा=घी । अवसेर०=प्रतीक्षा की पीड़ा के अंधकार मैँ दुस्सह दशा की बत्ती दीपक की भाँति जल रही है । [३८२] छेत=विच्छेद, वियोग ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूषननि समेत ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसत हैं हिय हेत ॥

अलहिया ख्याल] (३८३) [मूलताल

तोरे कारनुआँ का करौं मोरा जिय तरसै ।
आनँदघन पिय दरस औसेरनि अँसुअनि मेहा बरसै ॥

आसावरी ख्याल] (३८४) [चरचरीताल

न जानियै कौन भाँति मिलौ तिहारी भँवर की सी रीति ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर रसबाद हिलौ दई दै नई परतीति ॥

सारंग] (३८५) [चौताला

बनवारी बन बन बिहरत डोलत हैं आपने रंग ।
कहूँ चरावत गाइ कहूँ चढ़ि जाइ तरुनि बंसी-धुनि पूरत कहूँ
गावत ग्वारनि संग ।
ब्रजगोरिनि के नैन स्रवन मन गौहन लागेई रहत अभंग ।
नंद-जसोदा-प्रानजीवन आनँदघन ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥

सारंग] (३८६) [चौताला

कब लौं धीरज धरौं मोहिं उन विन अब न विहाय ।
निपट बिसासी निकसे मोहन बातनि मोह बढाय ।
उनके मन की कछु न समझि परै मेरो तौ लीनौ बौराय ।
अलप अवधि बदि बहुत रहे छाय ।
आनँदघन पिय प्रान - पपीहनि औसेरनि औसाय ॥

देवगिरि] (३८७) [चपक ताला

आइ सुधि लेहु सवेरी स्याम ।
औसर गएँ बहुरि कहा ऐहौ ब्रजजीवन धरि नाम ।
रही निपट मुरझाइ बिलखि वलि प्रबल बिरह के घाम ।
आनँदघन रस सींचि हरीं करौ वेलि विचारी बाम ॥

[३८७] सवेरी=शीघ्र ।

पूरिया धनासिरी] (३८८) [मूलताल

हम सौं तब कहि कहि वे बतियाँ ।
सुनहु प्रान सुखदैन परेखनि क्यौं जारत हौ छतियाँ ।
इत ऐसैं दिन पारि बिसासी उत बितवत सुख-रतियाँ ।
आनँदघन कितहूँ किनि बरसौ ये बरुनी वैलतियाँ ॥

पूरबी] (३८९) [इकताला

बाजै बन मधुर बैन सुनि न रह्यौ परत भवन ।
देखन कौं दृग दरबरात प्रान मिलन अरबरात सिथिल होति
अंगनि गतिमति तितहीं करति गवन ।
लोकलाज उरझि उरझि रहियै मन मुरझि मुरझि कासौं
कहियै परी जैसैं काम लागै तनहि तवन ।
रंगबरस दरस परस आनँदघन सरस होइ तरसि तरसि
कौ लौं कीजै जियरा बिरह-अनल हवन ॥

बिभास] (३९०) [चौताला

रसमसे नैननि आए हौ लागत निपट सुहाए हौ ।
कौन सींचत रतियाँ बस करि सब रैनि जगाए हौ ।
सूधैं चितवौ क्यौं [नीचे] चितवत हौ बिधना रसिक बनाए हौ ।
आनँदघन रस बरसि सिराए इतहूँ छाए हौ अजू बलि ।
भागनि पाए हौ ॥

बिलावल देवगिरी ख्याल] (३९१) [मूलताल

कहा करैगो कोई री मन ब्रजमोहन सौं मान्यौ री ।
लोभी लग्यौ तुरत उठि गोहन हाथ न आवत आन्यौ री ।
उघरि परी सौंधैं की सी चोरी सबनि मरम यह जान्यौ री ।
आनँदघन हित प्रानपपीहनि अति पूरन पन ठान्यौ री ॥

[३८८] वैलती=ओलती, ओरी । [३८९] दरबरात=छटपटाते हैं । अरबरात=हड़बड़ी कर रहे हैं । [३९१] उघरि०=सुगंध की चोरी की भाँति बात खुल गई ।

सारंग] (३९२) [मूलताल

बिसवासी हौ भए बातनि भोरि भोरि मन मेरौ ।
अनाकनी दै रहे हाइ अब कोऊ कितनौऊँ किनि टेरौ ।
ब्रजमोहन इन घातनि ही हिले मुरली-धुनि करि घेरा घेरौ ।
भूलेहूँ आनँदघन प्रान-पपीहनि त्यौं हेरौ ज्यौं फेरौ ॥

पूरिया] (३९३) [चौताला

साँचे सुरनि गावत मोहन राग-रंग-बिनानी ।
धुनि-प्रकास तैसो सुख - बिलास रस चुहल चटक सरसानी ।
ताननि की ब्यौरनि त्यौरनि रई, दसन-ज्योति मिलि होति रवानी ।
आनँदघन नैननि अरु स्रवननि चौंप बढ़ी मनमानी ॥

सारंग] (३९४) [चपक

जिन सौं दान लै ही लै रहे हो ते न होहिं यह ग्वारि सुनौ नए दानी ।
अलगे ही बतराव लगौंहैं छाँह छियैं हूँ अब ही परिहै जानी ।
खोरि साँकरी डगर सदा की आज कहूँ तैं अर लै ठानी ।
आनँदघन रसवाद करौ कित रसिक बिनानी गरज-प्यास पहिचानी ॥

बिभास ख्याल] (३९५) [मूलताल

आँवीं वो आँवीं वो आँवीं वो मैंडे कोल ।
तैंडे नाल जिंद लगो मुझ वो निमाणी दे मान गुमाणी
कदी तो हम हँस हँस बोल ।
साँवली सूरति पर घोल घोल घत्ती बंदी हाँ बिन मोल ।
प्रान - पपीहाँ दे आनँदघन दिल दी घुंडी खोल ॥

ऐमनि ख्याल] (३९६) [मूलताल

ऐसी करी हम सौं दैया क्यौं जू बनवारी ।
दरस दिखाय कै यौं तरसावत अटपटी बानि तिहारी ।
बातनि मोह बढ़ाइ बिसासी एक बेर सब सुरति बिसारी ।
प्रान-पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन हितकारी ॥

[३९३] बिनानी=जानकार, सुजान । ब्यौरनि=विस्तार । त्यौंर=ढंग । रई=लीन, युक्त । रवानी=प्रवाह की छटा । [३९५] मैंडे=मेरे यहाँ ।

आसावरी ख्याल] (३९७) [मूलताल

बसि करि करि क्यौं बिसारी प्यारे निसदिन
जियरा अति ही ब्याकुल रहत परेखैं ।
आनँदघन ह्वै बिरह तचावत वैसी करि ऐसी ठानी दैया किहि लेखैं ॥

पूरबी] (३९८) [चौताला

चटपटी लगाइ गए पिय मन कौं ठगी हौं बातनि मोह बढ़ाइ ।
भूलैं सुरत्यौ लई न बिसासी कासौं कहौं दुख हाइ ।
रसलोभी ललचाइ रहे कहूँ ब्रजमोहन हैं भँवर सुभाइ ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहनि निसदिन रटत बिहाइ ॥

मलार सुद्ध] (३९९) [इकताला

गौर-स्याम-धारनि को लहरिया झूलत लहरैं लेतु ।
पहिरयौ सरस चौंप सौं स्यामा उघरि परयौ हिय हेतु ।
उफनि उठयौ संगम-सुख-सागर लोने अंग दिखाई देतु ।
पिय मन मगन होत अभिलाषनि बँधत न धीरज-सेतु ।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझतु भीजतु चितु चेतु ।
छुटे चिहुर आनँदघन बरसतु भरत मनोरथ-खेतु ॥

सारंग] (४००)

जाको मन बाँसुरी हरयौ ।
सो निकसै न रागसागर तैं सुर कैं फेर परयौ ।
धुनि-मँडरानि कान प्राननि मैं इकलग बास करयौ ।
छकी रहति मति-गति मनोज-रति मादक भेद भरयौ ।
मुखससि रुचि-तरंग-बढ़वारनि बूड़नि संग तरयौ ।
लोकलाज मरजाद मेटिकै प्रेम उमंग ढरयौ ।
बिसरि गई सुधि बुधि सब दिसि की उर अभिलाष अरयौ ॥

तथा] (४०१)

सालति है मुरली की बाजनि ।
सुनि सुनि घुन्यौ जात हिय सोचनि घुरत सीस गुरजन को लाजनि ।

३९९–भरत–फरत (सतना) ।

स्रवन बीच मँडराति रातदिन जकि जकि बिसरि परति गृहकाजनि ।
झुकति सास ननदिया रुकति क्यौं ढुकति न चढ़ति पैज की पाजनि ।
ज्यौं तरफत स्यामसुँदर - छबि देखन कौं अभिलाष - समाजनि ।
आस लागि जीवत चातक लौं आनँदघन जीवनधन गाजनि ॥

ऐमनि] (४०२) [इकताला

कान्ह मो त्यौं चितयौ ललचाइ ।
मो दोहनी मुरि दई उनि लई भई नई पहिचानि, जानि
जिय खरकै खरिक-सुधि हाइ ।
मोहन मन-मोहन करि लीन्हौ आइ घरहिं पराए पाइ ।
पठई सराबोरि करि पल मैं आनँदघन रसभेद-भरी
बातनि घातनि बरसाइ ॥

भैरव] (४०३)

तरनितनूजा तोहिं तकौं ।
चंचलता तजि भजि नँदलालहिं मन करि तेरे तीर थकौं ।
धीरसमीर सुदेस ठाँव ठिक ठहरि भली बिधि पनहिं पकौं ।
सावकास ह्वै घनी घुटनि तैं बिसद पुलिन मँडराइ सकौं ।
सरस सिंगार अनूप स्याम को लखि चखि मादक रूप छकौं ।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं ।
उघरि परौं अनुराग उमँग मैं नाद-बिवस मरजाद ढकौं ।
नव ब्रजबधू - बिमोहन लीला लपटि एकटक टेक टकौं ।
एरी कुँवरि कलिदनंदिनी बिनती बिरचि बिचार चकौं ।
महिमा अमित कृपा आनँदघन चौंपनि चातक-जलप जकौं ॥

रामकली ख्याल] (४०४) [झूलताल

डगर न छाँडै मेरी लँगर कन्हैया ।
आनि अचानक घेरि लेत कैसैं बचौं अकिली हौं दैया ।

४०३—चखि—चकि (लंदन) ।

[४०१] पाज=बाँध । [४०३] सावकास=छूटकर ।

हौं सकुचौं वह ढीठ न मानै निडर निपट रसदान-लिवैया ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै ऐसैं गोकुल को है रहैया ॥

केदारो] (४०५)

राधारसन की बलि जावँ ।
सघन बृंदाबन मनोहर अति मधुर रस-ठावँ ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रही द्रुम-बेलि ।
महा अनुपम रूप - सोभा लहलहनि रस झेलि ।
आपु बन बन आप तनमय ह्वै रहत निसि-भोर ।
यह बनक याहीं बनै यहीं जोर याही जोर ।
देखि भूलत भूलि देखत अतुल अचरज-मूल ।
चाहि चौंधनि चौंधि चाहनि परसपर अनुकूल ।
नई रुचि नइयै रचनि छिन छिन नवल नित रीति ।
पन पलहु आनँदघन सौं चितहि-चातक जीति ॥

दरबारी कानरो ख्याल] (४०६) [चरचरी ताल

कौन देस बसायौ है निरमोही कान्ह हमारी
अँखियनि ऐसैं उजारि ।
आस बढ़ाइ उदास भए बिसवास कियौ घनआनँद प्रान-
पपोहनि प्यासनि मारि ॥

बिभास] (४०७) [चंपक ताल

तुमहिं रिझाइ रिझाइ रीझि हौं हूँ हरषौं सुनहु रसिक रिझवार ।
मोहन गुननि गाइ ब्रजमोहन तिनतैं तुम्हैं आकरषौं ।
मन दै मनहि समोइ लीजियै याकी घटी बढी कौ लौं परखौं ।
आनँदघन ढुरि ढुरि पन पोषौ जु रसहि निरंतर बरसौं ॥

अड़ानो] (४०८) [चौताला

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेई बगर नित आवै ।
मुरली मैं रसभेद - भरी बतियानि सुनाइ रिझावै ।
मन अरबरत दौरि देखन कौं सास ननद की त्रास तनु तावै ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहा तरफरात रहैं बीर पीर को पावै ॥

राग संकरा भरन] (४०९) [चरचरी

मंडल मधि लटकि लटकि नाचत पिय प्यारी ।
फैलि फबति काछनी लग लेति लहर सारी ।
पहुँचनि मुरि मंजुल कर कंज तरल तारी ।
रूप अजिर गरजति लखि चखन निमिष ढारी ।
सुखमय मुख मधुर हसनि दसन-दुति उज्यारी ।
सरद चंदकांति छटनि पाँति छेकि डारी ।
भृकुटि नचनि ग्रीव लचनि लंक लहक न्यारी ।
थेइ थेइ कहि कंठ-किलक पिय तिय जिय-ज्यारी ।
उरसि मुकतमाल हाल हेरत हियहारी ।
कंचुकि गुन-गसनि रसिक-लोचन फंदवारी ।
चाँप चुहल मचि सचि सुर करि अलापचारी ।
विरल राग रूप रचत स्रवन - मोदकारी ।
ससि-मयूख-रंजित बन रसनिधि-बढ़वारी ।
आनँदघन पलित फलित केलि-वेलि-वारी ॥

राम कानरो] (४१०) [-कताला

मोरमुकट वनमाल पीतपट कटितट छुद्रघंटिका
ए नूपुर बजाइ गति लेत मटक सौं ।
ललित हास मुख-सुख-प्रकास कुंडल-उजास दृग-भ्रुव-विलास
कर-चरन-न्यास भुज ग्रीव ढोरि मुरि चलत लटक सौं ।
आछी भाँति तान गावत बाँकी रीतिन सुर-ग्राम - ग्रास
गहि चोख चटक सौं ।
आनँदघन मन धीर बापुरो कैसैं ठहराय आय जहाँ पैठत
री यह रूप भूप सजि काम सुभट कटक सौं ॥

(४११)

आज बनि बनि व्रजबाल बाल मोहनलाल - संग रंग-
भरीं रासमंडल नाचति ;

[४१०] ग्राम=संगीत में स्वरों का सप्तक । ग्रास=संगीत-भेद

नई नई गति लेति लटकि ग्रीव-डुलनि भृकुटी-मटक मुख-बिलास
ललित हास होड़ाहोड़ी चोखनि चित चौंप-चुहल माचति।
तान गान मान के बंधान जे बिधान बिदित तेई तेई अति अति
अनुपम संगीत-रीति साँचति।
आनँदघन अदभुत छबि बरनै कौन कोबिद कबि रूप-गुन
लावन्य-माधुरी की लीक खाँचति॥

ऐमनि] (४१२) [इकताला

रासमंडल बनि नाचत राधा-मोहन रसमगन।
अँग अँग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन।
छिति पर सखी नछतजुत बिबुध सगन गगन ससि भरत लखि डग न।
आनँदघन कलतान गान सुनि को न लग्यौ डगमगन॥

रामकली] (४१३) [झपताल

पलक पट दै रही रोकि मनवाँ मैं।
जतननि वनाइ बरुनी सघन साँकरनि जटि निपट बिकट
करि अगम उर-धामैं।
हौं न जानौं कि यह नट छली छंद सौं कौन मग दुरि
निकसि मिलि गयौ स्यामैं।
उनहि कहि कौन विधि दोष आनँदघन बाँधि निज गाँठि
गथ लोह के दामैं॥

केदारो] (४१४) [मूल

मुदित मन नाचत री बनि रासमंडल मैं मधुर
मूरति पिय प्यारी।
नई नई गति अति ललित रसबलित लेत लटकि पद
पटकि मटक सौं चौंप-चटक-भरे भारी।
सहचरि-गन गावति कल ताननि डहडहे आनन पानन
रंजित मोहन धुनि कानन सुखकारी।
चहुँ कोद बाढ्यौ प्रमोद आनँदपयोद बरसत दंपति-
सोभा-संपति-बिसतारी॥

[४१२] गथ=पूँजी।

बिलावल] (४१५)

हरि - राधा रहगहनि मिले ।
कछु निसि रहैं चले उठि घर कौं मन-मदगज फिरि परत पिले ।
अंग अंग आरस-रस-बस झूमत महासुरत-सर-केलि हिले ।
गुरजन-भय अंकुस करि प्रेरित आनँदघन छलबलनि ठिले ॥

आसावरी] (४१६) [चौताला

वारे तुव दृग पर मृग वारे ये छविभारे सलज ढरारे ।
इनकी गति आगे मति हारे वे बन बन भ्रमित बिचारे ।
घूँघट घिरे हरत मोहन मन चंचल बिमल सहज कजरारे ।
आनँदघन अनुपम अनियारे चित चुभि लागत प्यारे ॥

पूरबी] (४१७) [चौताला

आँखैं तेरियै देखी बतकहीं ये सब काहू पै परति न लहीं ।
याही तैं खंजन मृग मीन कमल इनकी पटतर नहीं ।
सरल कुटिल मंथर अधीर सित असित सुछवि लै बिराजि रहीं ।
इनके गुनगन गनि को सकै जिन बिचित्र आनँदघन
पिय बस कीन्हे मिसहीं जब मुसकि चहीं ॥

सारंग] (४१८) [चंपक रूपक भेद

मान तौ तासौं करियै जासौं कियैं ठिकु ठहरै ।
घरिक माँझ मन मृदुल ढरकि फिरि परिहै सोच कैसैं वहरै ।
हाहा हित की बात मानि किनि भौंह - हँसनि - तरु
करि-कर जिनि झहरै ।
कागद-नाव जलधि को तरिबो आनँदघन गुन गहरै ॥

हमीर] (४१९) [चपक

बगर बगर तैं मोहनी जोहनी बाल दोहनी लै निकसीं
बिकसीं गाय - दुहावन ।
दिन प्यासी अँखियानि चकोरिनि स्यामसुँदर - मुख मृदु
मयूख पियूष प्यावन ज्यौं-ज्यावन ।

रसमूरति अँग अंगनि तिन ह्वै लपटि उरताप - सिरावन ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि कटाछ-धारनि सौं होत मनोरथ-सावन ॥

अलहिया] (४२०)

पुरानी परि गई पहिचानि, लगी तुम्हैं नेह नए की बानि ।
भौंर की भाँवरि भरत फिरत हौ रसलोभी तजि कानि ।
सौंहैं सौंहैं खात इते पर ग्वारि गँवेली जानि ।
नखसिख साँच के साँचे ढारे आनँदघन गुनखानि ॥

विभास धुरपद] (४२१) [चौताला

स्यामसुंदर की मुरली बाजै, सह सुरभेद सौं स्रवन सुनत
सुधि बुधि सब बिसरै रह्यौ न परत बिन देखैं ए री ।
हाहा परति हौं पाय उपाय बताय जिवाय लै ह्वैहौं बित बिन
हित सौं तेरी चेरी तो पर वारी फेरी ।
कासौं कहौं बिथा या जिय की कोऊ जानत नाहिन हिय की
मन ही मन मुरझाय रहति हौं तन परबस गुरजन की घेरी ।
आनँदघन पिय कौं जब देखौं तब ही जनम सफल करि लेखौं तुही
हितू तोही सौं इतनी बिनती मेरी ॥

टोड़ी] (४२२) [झपक

बजावै साँवरो बंसी जमुनातीर ठाढ़ो पनघट-भौंडूँ कैसैं गैयै ।
घट पट सँभार तजि निकट कौं धैयै मोहिनी धुनि सुनि लुभैयै ।
वाकी छबि हेरि तन सुरति बिसरैयै डगमगत पग डग भरनहूँ न पैयै ।
जोऽब आनँदघन उलटि घर ऐयै तौ निपट ही अटपटैयै ॥

जौनपुरी] (४२३) [मूलताल

हेली मोहिं ढौली लागी री हरिमूरति-हेरन की ।
बिसरति नाहिं बिसारेहू छबि हँसि हँसि दृग-फेरन की ।
मुरली-माँझ जमाय नाम वह गति हित सौं टेरन की ।
आनँदघन उठि गई आड़ अब सब गुरजन-घेरन की ॥

४२२-उलटि-नाँठि (सतना) ।

[४२२] भौंडूँ=टीला, कगारा । [४२३] ढौली=ढौरी, धुन ।

भैरो] (४२४) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैन कहत ये निसि जगिबे के चैन ।
भली करी भोरहीं भाग रागभरे हमैं आए सुख दैन ।
सौंहैं देखि न सकत दीठि-डर नखसिख बने नवल छबिऐन ।
आनँदघन प्रानन सींचत हौ बोलि अमीनिधि बैन ॥

रामकली] (४२५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन तिहारे हो लाल सुहावने लगे ।
सीतल कियौ हियौ जु दरस दियौ भावते भाग जगे हो ।
मेरियै डीठि और भई कै तुम आज अनूपम रूप पगे ।
अँग अँग रँग बरसत आनँदघन प्रानन आनि खगे ॥

बिलावल] (४२६) [मूलताल

मोहिं न करि रे नकवानी लंगर होति अबार जान दै
जान दै जमना पानी ।
कहा तेरैंई आयौ राज लाज तजि खोरत औरै काज
तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।
भरि भरि डगरि गईं साथिनि हौं कौन घरी की घिरी
हाय ऊतरु न आयहै पूछैंगीं जब ननद-जिठानी ।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहिचानी ।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि पत्याइ इहि
गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी ॥

परजदेसी] (४२७) [मूलताल

हेली साँवरो सलोनो कित जाय हाहा नेकु बताय ।
अब इहि गैल छैल छबि सौं मन लै गयौ संग लगाय ।
कहा नाँव कहा ठाँव न जानौं ठगी अचानक आय ।
चलत न पाय उपाय कछू नहीं क्यौं जैहौं घर हाय ।

[४२५] खगे=धँस गए । [४२६] खोरत=छेड़ते हो । ठलवारि=हँसी-ठट्ठा । घरबसे=उपपति ।

मुरलीवाले ने माइल कीती दारू - दरसन पावाँ ।
वेखेँ बाजू जिंद न रहदी किस बिध इस परचावाँ ।
बेमेहरा दी राह्याँ आनँदघन केँनूँ आखि सुनाँवाँ ॥

पूरवी] (४३७) [मूलताल

कालिंदी जमुना सूरतनया कृस्नतरंगिनी ।
सप्तसिंधु - भेदिनि जगतारिनि बृंदाबन - सुख - सोवाँ
पीतांबर - अंगिनी ।
मधुर केलि आनँदघन अनुराग - बिभंगिनी ।
यमानुजा त्रयताप - निवारिनि हरि-लीला - रस-रंगिनी ॥

मालव राग] (४३८) [मूलताल

बरजि रही री इन अँखियन कौँ पै ये असैँड नहिँ मानति ।
मोहन-मुखछबि - छाक छकि कुलकान्योँ ना उर आनति ।
उररि उररि अरराइ परति हैँ घूँघट-पटहि पटकि अरुझानी ।
आनँदघन हित चातक - चौँपनि रातिद्यौस ज्यौं छानति ॥

सारंग] (४३९) [चौताला

कहा सुख होत है जमुना के दरसन को ।
मधुर किसोर रूप रसरैनी चाहतहीँ मन-पटहिँ चढ़त
रँग चौँप-चटक सरन को ।
मुरली - तान कान मँडराइ रहति ऐसो गुन तरल
तरंगनि के परसन को ।
उमग - ओघ अमोघ वाढ़त आनँदपयोद बरसन को ॥

लग–गल (लदन) । गुंजे–गुज्झे (सतना), गुझे (वृंदा०) । माइल–घाइल (सतना) । रहदी–रोदी । राह्याँ–गल्लाँ (वहीं) ।

देखेँ०=बिना देखे प्राण नहीं रहते । बेमेहरा०=उस निर्दय के रंग-ढंग किसे पकड़ सुनाऊँ । [४३८] ज्यौं०=हृदय को बंधन में फसता रहती है । [४३९] सरन०=पूर्ण होने के लिए । ओघ=बाढ़ ।

रामकली] (४४०) [चौताला

जब तेँ तुम दई है दिखाई तब तेँ याको मन न रहाई ।
सब सुखदायक ब्रजनायक सुनौ बिकल भई है महाई ।
भँवर भए डोलत हौ जित तित नित नित लेत हौ नए लहाई ।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन पपीहनि गति कहाई ॥

ख्याल] (४४१) [मूलताल

तुम छाँडौ मेरी बहियाँ भोर भएँ रसवाद करन
कित आए मोसौँ हाहा जू ।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे उघरि उघरि अब इतहूँ
सरसे तहाँ जाहु जहाँ पायौ है रस-लाहा जू ॥

सारंग] (४४२) [चंपक ताल

स्याम मनोहर जमुना - तीर मुरली - धुनि पूर ।
व्यापि रहति मुरझाई जित तित निकट दूरि थिर-चर-
गति पलटति सब ही चित चूरै ।
को जानै इन कहा धौँ ठटी जू इते पै प्रबल है कह्यौ काम कूरै ।
आनँदघन की घमँडि रैनि दिन छिन न चैन मेरो ज्यौं
घिरि निपट विसूरै ॥

रागिनी देवगिरी] (४४३) [चपकताल

गागरि दै रे उचाइ लंगर अठिलात कहा अब ही जौं
कोऊ कितहूँ ते देखि पाइहै परिहै कठिन महा ।
या गोकुल को लोग चवाई करत फिरत है चही चहा ।
आनँदघन हठ घमँड छाड़ि दै पायनि परति हहा ॥

सारंग] (४४४) [मूलताल

हौँ तो रीझनिहीँ भिजई मोहन मुरली की मीठी मीठी तानन ।
भोइ रही निसिदिन हिय जिय धुनि कहा करौँ कल नाहिँ
कहूँ अब कछुवै सुहात आन न ।

[४४०] लहाई=लाभ ही ।

कासौं कहौं यह बिथा सजनी घूमि घूमि रहै बिरहा-बानन ।
आनँदघन बन घन रस बरसि बरसि तरसावत है प्यासे प्रानन ॥

सारग] (४४५) [झपताल

कृपा - कादंबिनी जमुना बिराजै ।
मोद-मूरति दरस प्रेमपूरित परस स्याम रस बिमल जस संपदा साजै ।
अद्भुत अनूप भूतल लसति बसति नित हेतमय नाम कँ लेत भ्रम भाजै ।
आनँदघन घमँडि तीर बिहरत रमडि ब्रजबधू बसकरन बंसिका गाजै ॥

रामकली] (४४६) [चंपक

महाराज ब्रजराज पूजि गिरिराज परम आनंदे ।
बल मोहन लै संग रंग सौं दहिने दै दै बंदे ।
गोपी - गोप - समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदे ।
आनँदघन गरजनि जै जै धुनि सुनि मघवा-मद मंदे ॥

परज (४४७) [मूलताल

जमुना जमुनाहीं रटिहौं हो ।
मधुर किसोर केलि चिंतामनि रसना लै जटिहौं हो ।
वृंदावन सौभग - सींवा की रुचिर पुलिन अटिहौं हो ।
आनँदघन कदंब - कुंजनि वट सुख - पुंजनि ठटिहौं हो ॥

रामकली] (४४८) [चंपकताल

वृंदावन वसि कान्ह आज नीके निसि बितई ।
किये मन भाए चैन ढीले सु रसीले बैन आरस-रँगीले
नैन इकटक प्रानप्यारी-छवि चितई हो ।
प्रगटी भागनिकाई राधा रूपनिधि पाई विलसे हो
सुखदाई अंक भरि भरि सब संक रितई ।
आनँदघन उदार परसत सोभासार करौं नितहीं विहार
मरगजैं हार प्रीत-रीत जितई हो ॥

४४५—मोद०—मोद-मंडित (सतना) ।

[४४६] मघवा=इंद्र । [४४७] अटिहौं=घूमूँगा । [४४८] रितई=खाली कर दी । मरगजैं=मसले हुए ।

कालिंगरा] (४४९) [इकताला

वारी हो वारि डारी हो आज की तिहारी या छवि पै ।
रसिक छैलबिहारी ऐसी न कहूँ निहारी कैसैं कही जाय काहू कवि पैं ।
जावक - तिलक भाल निपट लग्यौ रसाल तिन तोरि डारियैं
नवल नीकी फवि पैं ।
आनँदघन पिय रसीले लजीले नैन नवल कै उघारैं जात दवि पैं ॥

टोड़ी ख्याल] (४५०) [मूलताल

हेली हौं कैसैं कै जावँ जमुना-जल लँगर छैल ठाढ़ो
गैल माँझ करै बोली ठोली ।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयौ ही रहै कहि कहाँ रहौं
दैया ऐसैं अबोली ॥

एँमन] (४५१) [मूलताल

कैसैं कैसैं मन बहराऊँ, गहत गहत न रहत है ।
लोनो मुख सुखनिधि देखैं बिन आँखिनि कहा दिखाऊँ ।
सुनि सजनी राधा के रूसैं बिरह बिकल अपनपौ न पाऊँ ।
सरस परस आसा आनँदघन झरै भरोसैं छाऊँ ॥

मलार] (४५२) [मूलताल

आए आए री बादर अतिहीं सुहाए घुरि वरन वरन ।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाइ रहै सुर धुरवा से लागे हैं ढरन ।
जमुना - तीर कदब-तर ठाढ़े बनक ठनक उर अभिलाष भरन ।
आनँदघन रसरग - झरन कामताप - हरन ॥

सोरठ] (४५३) [चौताला

झूलिबो करति हरि-हिय के हिंडोरे हौंसनि राधे लाड़-गहेली ।
तैंहीं रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस को भाग-सुहाग - नवेली ।
हुलसि झुलावति बिजन ढुलावति रीझन भींजि चाह-सहेली ।
सावन मनभावन आनँदघन बरसावन सौं मिलि झुलियैं अलबेली ॥

४५१–रूसैं–बिछुरैं (सतना) । झरै–तेरे (लंदन,, मेरे (वृ दा०) ।

सारंग] (४५४) [इकताला

परै जौ ब्रजरज - परस - सवाद ।
ब्रजमोहन की चरन - धरन - छबि लोचन लैहैँ प्रसाद ।
प्रान पोष पावै पल पल मैँ मादन मुरली-नाद ।
आनँदघन लीला - रस चाखैँ बढ़ै प्रेम - उनमाद ॥

रामकली] (४५५) [चंपकताल

कीरति - कुल - उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो ।
मंगलवेलि सकल जग छाई सुकृत -- समूह - जई ।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढ़ी है ब्रज - ओक नई ।
ब्रजजीवन की प्रानसजीवनि मोद - बिनोदमई ।
जाकी चरनरेनु कमलाहू चौपनि सीस चढ़ाइ लई ।
आनँदघन घमँडनि को बरनै बहु बिधि तपति गई ॥

बिहागरो] (४५६) [इकताला

रावलि मैँ अति ओप बढ़ी ।
गोकुलचंद अभूत चंद्रिका सुकृतनि कीरति - ककुभ कढ़ी ।
श्री बृषभानु गोप भागनि की महिमा कैसैँ परति पढ़ी ।
चिर जीवौ लली लड़ैती राधा आनँदघन गुन-रूप-अढ़ी ॥

सारंग] (४५७) [इकताला

झँनावति पायनि चायनि पाय ।
नायनि को कर परस होत ही हियो उठ्यौ हुलसाय ।
चित्रा चतुर चोप सौँ ल्याई देखि रसमसो दाय ।
आनँदघन रस रमँड घमँड मैँ घूँघट खुल्यौ बनाय ॥

गंधार] (४५८) [चरचरी

तेरे मुखचंद को चकोर, सुंदर ब्रजचंद छैल नंद को किसोर ।
अति अनूप रूपरासि चाहत निसिभोर, अदभुत सुधावृष्टि

४५४—पोप—कोस (लंदन) । लीला०—झर लगै निरंतर (सतना, वृंदा०) ।
४५५—बहु—जुव (सतना) ।
[४५६] अढ़ी=युक्त ।

होति चितवत दृगकोर ।
सुनि सुजान राधे हिय कीजै न कठोर, आनँदघन प्रान-पपीहै
दीजिये न खोर ॥

कनरी ख्याल] (४५९) [मूलताल

हौं कहा करौं हे, गोकुल गाँव बसि कैसेँ भरौं हे ।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावै, वाकी धुनि सुनि मेरो ज्यौ बौरावै ।
तानन बानन बेधै प्रान, और दसा कहा करौं बखान ।
अपनो सो हौं करौं दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव ।
त्रासै ननदिया सासु रिसाय, काहू विधि कछुवै न बसाय ।
छाँह छियनहूँ को न बनाव, गैल गरथारिन चले चवाव ।
मो ही जो गति लागी मोहि, कै औरनि हूँ बूझति तोहि ।
जो कछु ही सो दई जताय, हाहा अब हित की सु बताय ।
आनँदघन या बिधि रह्यौ छाय, विरह-ताप डारत तनु ताय ॥

टोड़ी] (४६०) [चौताला

ग्याँन ध्यान धारना समाधि धरि धरि देखे पै न देखे ।
ईस गिरीसन हूँ जौ कहूँ लखे तौ चटपटिन टरत न परेखे,
अपनीयै इच्छा बिसेखे ।
मोसे अनकछू की गनती कहा अब एक कृपा-गुन सुनि अवरेखे ।
आनँदघन हौ ढरौ तौ हरौ दुख - पूर परै सब लेखे ॥

बिभास] (४६१) [चौताला

जनम जनम गुन गाइ आयौं अजहूँ गावत आगैहूँ गाइहौं ।
जो सुख होत सु हौं ही जानौं न सकत जनाइ हौं ।
प्रान-अधार सदा के संगी तुमहीं तैं तुमकौं पाइहौं ।
दीन पपीहनि के आनँदघन आस बढ़ाइहौं ॥

सारंग] (४६२) [चौताला

अजन दै री राधे न करि गहर हे हा हा ।
निझनक बार टरी जाति मनभावन ब्रजमोहन-मिलन-उमाहा ।

४६०–सुनि–उर (सतना) ।

सखी त्यौं मुलकि मुसकि दरपन गहि आनि चढ़्यौ चित नवरंगी नाहा।
उमँडि उठी आनँदघन घमँडनि रीझनि भीजि दुरि चली आहा ॥

सारंग] (४६३) [इकताला

ब्रज को बिरह सह्यौ न परै।
बनवारी की औसेरनि हिय हाइ गह्यौ न परै।
देखि देखि अनदेखैं हूँ अपरस-दुख लह्यौ न परै।
आनँदघन भरिपूरि चाह - रस - स्वाद कह्यौ न परै ॥

धनासिरी] (४६४) [मूलताल

चोवो दरस दिखावीँ तामैँ घोली घोली जावीँ।
सुण वो साँवलिया गोकुल-वालिया दी नानू ना सरसावीँ ॥

खंभाइच] (४६५) [मूल

छैलवा रँग-रँगिलवा रँग-रँगिलवा रसिक-रसिलवा।
ब्रजमोहन दिन दूलह छबिलवा जोबन - छकिलवा।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन रस - बरसिलवा।
अपनो तनमन सरवसु वारौँ अरी नीको लाड़-गहिलवा ॥

ऐँमन विहाग] (४६६) [मूलताल

बंसी कहा बैर परी है।
कानन धुनि मँडराति रातदिन कल नहिँ एक घरी है।
तानन बानन वेधै हियरा ऐसैँ अरति अरी है।
जौ गोकुल बसियै आनँदघन लागी विरह - झरी है ॥

टोड़ी ख्याल] (४६७) [चरचरी ताल

घुम्मर पाँवदीँ जिंद तुसाँ नाल वेखन रंगला चंगला जमाल।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारिया निपट गरीव पपीहाँ नू पाल ॥

विहागरो] (४६८) [इकताला

बलिहारी गोकुलचंद की।
भादौँ - अरध राति आठैं तिथि प्रगटनि ज्योति अमंद की।

[४६२] निझनक=नीरव, निर्जन। मुलकि=प्रसन्न होकर।

मिट्यौ तिमिर ब्रजलोक-ओक को दबी धरक दुख-दंद की ।
भागनिकाई को बरनै आनँदघन जसुदा-नंद की ॥

विभास] (४६९) [चंपकताल

दोऊ रूपरासि प्रेमरासि सब सुखरासि करिकै
बिलास नीकैं चले हैं भवन कौं ।
रीझि गरबाहीँ दियैं मुख देखि देखि जियैं मन मन हाथ
लियैं अति रति ओप वाढी रवनी रवन कौं ।
बृंदाबन-कुंज तम-पुंजनि ह्वै निकसत अंगनि प्रकास सोई
साधत गवन कौं ।
आनँदघन सधीर ठाढ़े ह्वै सुधारैं चीर रँगीलो-जमुना-
तीर जानिकै पियारी सोभा सुधा अँचवन कौं ॥

सारंग] (४७०)

जै जमुना मंगलकारिनी ।
जमानुजा तमतापटारिनी विविध फंदनिरवारिनी ।
मधुर किसोर केलि-रस-रैनी बृंदावन-भू-चारिनी ।
चाहत ही मन-पटहिँ चटक दै भाव रंग-विस्तारिनी ।
गोपी-गोप ग्वार-गैयाँगन सब कौं सब सुखधारिनी ।
नित श्रीअग-परस तैं सरसी दरसी नित्यविहारिनी ।
तीर गएँ मोहन मन आवत निहचय परिचय-पारिनी ।
देखी कहौं सुनी आगै हूँ जगजननी जगतारिनी ।
देखैं बनै कहत क्यौं आवै महिमा अमित अपारिनी ।
आनँदघन रसरासि-रसीली नीरसता-अघ-हारिनी ॥

सारंग] (४७१) [इकताला

जै जमुना जाँचौं तोहि री ।
तेरैं तीर गाय बलबीरहि विहरौं यह है मोहि री ।
बृंदाबन मैं लखौं निरंतर तो छबि रही जु सोहि री ।
तो सी तुहीँ महारसवाहिनि मैं गहि पाई टोहि री ।

परिचय रचै स्याम रंग बाढ़ै कृपादृस्टि सौं जोहि री।
आनँदघन झर लगै निरंतर अंतर निज गुन पोहि री॥

कान्हरो] (४७२) [इकताला

हिमरितु दंपति अति सुखदाई।
गिरिकंदरनि-रचावत मंदिर लखि निज संकेत ठौर ठहराई।
नव मखतूल तूल तैं कोमल दल-बल कल अनुकूल महाई।
रसिकराय रसनिधि राधा-हित रचि पचि सुंदर सेज बनाई।
पीत बसन बिछाइ हिय तापर भुज-भरि प्रानप्रिया पधराई।
सो सुख कछू कह्यौ क्यौं आवै अतुल अभंग प्रेम अधिकाई।
हिलनि मिलनि उर झिलनि पिलनि रुचि खिलनि अभूत
बिलास-निकाई।
आनँदघन्न संपै घुरि घमँडनि बिबिध केलि की झरी लगाई॥

टोड़ी] (४७३) [चंपक

कहा तू अंजन दै करिहै हे।
पिय को हिय तैं हरथौ सहज ही अब धौं कहा हरिहै हे।
तेरो गहरु लाल की आरति कौ लौं सही परिहै हे।
बात कहत सतराइ निहारति बहुरि कहा लरिहै हे।
आनँदघन सौदामिनि ह्वै मिलि चंद चल्यौ ढरि है हे॥

रामकली] (४७४) [चंपक

अहो हरि आए महा हरवर मैं, कहा बनि आवै टहल दरवर मैं।
साधुसिरोमनि घर मैं साधन धोखें धँसे परघर मैं।
सजल सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैं।
द्वैज चंद की पाँति प्रगट उर आनँदघन रस-झर मैं॥

बिलावल] (४७५) [मूल

रूखे रहत कहाइ सनेही रसिक छैल ब्रजमोहन स्याम।
वृंदावन के चंद छबीले बड़ो अंधेर छलत हौ बाम।

[४७२] संपै=शंपा, बिजली। [४७४] दरवर=उतावली।

कपटी कुटिल कालिमा-मूरति बरसत बिषहि सुधाधर नाम ।
बीच दियेँ ही मिलौ बिसासी ऐसेन के ऐसे ही काम ।
कहा करैँ क्यौँ भरैँ भावते तनकौ नहीँ मनै बिसराम ।
भँवर भाव डोलत रसलोभी उसरि कीजिये तुमहि प्रनाम ।
मिलौ महूरत साधि परब लौँ गहि न परौ छल-बल के धाम ।
प्रानदान-सुख दुखहिँ दिखावत बितवत बिसम परेखनि जाम ।
चाहति अनिस चकोरी अखियाँ बिरह-झरनि परीँ तन-छाम ।
आनँदघन घुरि दुरे रहत क्यौँ करि चातकीँ पिवावत घाम ॥

तथा] (४७६)

गरब-बारुनी-छके छबीले झूमत फिरत साँझ अरु भोर ।
अति गंभीर बेदना बेदी करनी बिबस काम के जोर ।
रूप - भूप बीरासन - मंडित कुवलय-केलि कलिंदी-ओर ।
बृंदाबन घन कुंज - पुंज तहँ साह भए बिहरौ चितचोर ।
बरन बरन तन लेप ललित गति अलक सिंगार के छोर ।
निपट निरंकुस घिरे न कितहूँ तोरि संक - साँकरैँ कठोर ।
भँवर भहरानि दान - बस मच्यौ ,महा ब्रजबीथिन सोर ।
डरपत बिकल बापुरीँ अबला बिदुकि रहति खरिक गिरि खोर ।
चूरत कठिन कपाट कानि के पैठत घर घर करत ढँढोर ।
धीरज आड़ टारि आनँदघन करत बिबिध सुख सरनि झकोर ॥

ऐमन ख्याल] (४७७) [मूलताल

कछु लखी न परै तिहारे जिय की कान्हा कपटी ।
अपनी गौँ दुरि आनि मिलत हौ तहीँ जाहु जहाँ सोखे
हौ झपटा-झपटी ।
काहे कौँ रसबाद करत हौ सो सत ही लगी दौरि लपटी ।
आनँदघन बिसास-बूँदनि अब आए हौ करन रपटा-रपटी ॥

ललित] (४७८) [चौताला

बसन सुधारि बदन पखारि सुधरि आए तौ मेरे ऐन ।
सब बिधि साधि साधु है निवटे पै कहाँ लौँ दुरत ये रैनि-जगौहैँ नैन ।

काहे कौं एतौ पटम रचत हौ मन रूखे मुँह चिकने बैन ।
आनँदघन भोर ही उनए उघरि उघरि दुखदैन ॥

कानरो] (४७९)

लै राखौ अपने पायनि तर ।
यह मन भटकि आयौ जग कृस्न कमललोचन करुनाकर ।
याकी दसा देखियै मोहन दानिसिरोमनि लै थापौ थर ।
लैहौ तौ दैहौ सबही कछु चिंतामनि अधमनि चिंताहर ।
मरम भरयौ मँडरात निरंतर निहचै रचै न एक घरी घर ।
हा हा है हो हरि फिरि हालै कीजै निज चरन-चक्र-चर ।
भूल्यौ फिरत भरोसो भारी तुम से नाथ न ऐसो खलबर ।
महा विजाती बिरल मोहमय थक्यौ चपल छाँडत नाहिन छर ।
प्रेमसिंधु के कूल बास दै लीला - मगन करौ निसिबासर ।
सोच-ताप-मोचन आनँदघन अपनो करि लगाइ दीजै झर ॥

(४८०)

गोकुल कैं कान्ह मन मोह्यौ ।
डगर चली हौं जाति सहज ही मो घाँ मुसकि जोह्यौ ।
अब तब तैं धीरज न धरत है अपनो सो बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजयौ मुरली कीताननि पोह्यौ ॥

सारंग ख्याल] (४८१) [मूलताल

ब्रज कीं खिलवारि नवेलीं ग्वारि रँगमगी फिरतिं
जगमगे स्याम के संग ।
गोरे तन पहिरि पतंगी सारीं झमकि झपकि गावैं गारी
भिजावैं आनँदघन पिय रसरंग ॥

विलावल] (४८२) [मूलताल

जमुना आगैं जमुना पाछैं जमुना देखौं सब ही ठौर ।
बनवारी कौं ढूँढि थकनि मैं जमुना ही लौं मेरी दौर ।

[४७८] पैन=घर । पटम=छल-छंद । [४८१] पतंगी०=रंग-बिरंगी महीन साड़ी ।

याकै तीर सदा खुलि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर ।
अब आनँदघन घमँड भरोसे या विन काहि ताकियै और ॥

धन्यासिरी]

(४८३)

हौं न जानौं हो हरि भली बुरी तुमहिं रुचै सो करियै । [चंपक
अपनो जानि जिवैहौ कबहूँ इन अभिलाषनि मरियै ।
अंतर की गति देखि दयानिधि अपनैई गुन ढरियै ।
आनँदघन हौ दीन पपीहै पालि पोपि लै भरियै ॥

तथा]

(४८४)

लीला को मरम न जान्यौ जाइ ।
कैसैं कै करियै उपासना समुझत मति बौराइ ।
एक कृपाई गुन उर आएँ रचक ठिक ठहराइ ।
वे आनँदघन को सुधि धावै सहजै दरसैं आइ ॥

कामोद]

(४८५)

मैं न जान्यौं री कछु ऐसो भेद गोकुल निपट अनीति । [मुन्नताल
कान्ह कहा काहू को लेत और किन करि लीनी प्रीति,
चवाइनि सौं नहीं सकियै जीति ।
या बिधि को बसवास दियौ बिधि रही भीति सौं मिलि पछीति ।
आनँदघन को बचन सुनत ही लहलहाति रसरीति ॥

कानरो]

(४८६)

यह सुख कैसैं कहिवे मैं आवै जाहि मन विचारे हूँ न पावैं । [चौताला
जौ पावै तौ आपौ गॅवावै इतनियौ कौन सुनावै ।
वृंदाबन धाम दंपति सुख - संपति निगमौ दूरि तैं दूरि बतावैं ।
तिनही की कृपा भएँ आनँदघन सरस मौन गुन गावै ॥

सारंग]

(४८७)

गुन गाइ गाइ ज्यौं ज्याइ लियौ । [चंपक
सुनहु विसासी ब्रजमोहन मैं यह धौं कहा कियौ ।
इतने पै दरसौ न देत हौ काहे को है तिहारो हियौ ।
आनँदघन तुम छाइ रहे हौं जरति भरति ज्यु कछु पियना है दियौ ॥

टोड़ी] (४८८) [चंपक ताल

कोऊ है या समुझावै बन रोकत टोकत है पराई बहू बेटीं।
ढोठ भयौ ढिग ढूक्योई आवत बातैं कहत कपट - लपेटीं।
घरी द्वैक मैं समुझि परैगी आजु भले कौं भोर खखेटीं।
आनँदघन जोबन उनयौ देई देवतान की कान्यौ मेटीं॥

सारंग] (४८९) [चंपक ताल

बनवारी आँखिन आगैंई रहौ बोलत क्यौं न बिसासी।
बन मैं बंसी बजावत डोलत घर मैं भए हौ मवासी।
काननि धुनि मँडराति रहति है तुम नव बेलिनि भँवर बिलासी।
आनँदघन उघरनि लै उनए राखत हौ कित प्यासी॥

सारंग] (४९०) [इकताला

बिरहा होरी खेलन आयौ।
कहा कहौं ब्रजमोहन जू जैसो इन सीस उठायौ।
रंग लियौ अबलानि अंग तैं धीर-अबीर उड़ायौ।
प्रान अरगजैं राखि रही हैं तुम हित-बास बसायौ।
नकवानी करि नाक नचावत चौंचंद महा मचायौ।
चोवा चैन न रहन देत है जतन चाइ चरचायौ।
भजी फिरति विचारि हथचलई यह डोलत सँग धायौ।
तुम्हारी ठौर रौर पारी इन कै तुम प्रेरि पठायौ।
कहियै कहा बिगोवनि याकी रस मैं बिरस बढ़ायौ।
सुघर स्याम आनँदघन पिय तित छाए इत यह छायौ॥

बिलावलि] (४९१) [इकताला

जमुना देवी दीनदयाले।
अधमतारिनी जगतधारिनी मो से बहुत पतित प्रतिपाले।
राख्यौ लै निज सरन कृपा करि दूरि कियौ जे जे दुख साले।
आसा-बेलि सींचि आनँदघन हरैं बढाइ लालसा लाले॥

[४८९] मवासी=दृढ़ किले का रक्षक, घर से न टलनेवाला।

सारंग] (४९२) [चंपक

कहाँ जाइ बिरमि रहे हौ कान्ह कंत आयौ है बहुरि वसंत ।
देखि देखि तेई हाल होत बेलिनि पै अलि मैमंत ।
झूलत फूलत रमत भमत रस राखत चाखत हैँ हिमवंत ।
आनँदघन हम यौँ मुरझति लहियै न तिहारो तत हा जिनि लीजै अंत ॥

तथा] (४९३)

देखौ देखौ हो बड़भागी राधामोहन अनुरागी ।
ब्रजबन को सुख लेत सदाई ऐसी कछू लग लागी ।
पूरन-प्यास-भरे रसमूरति गति-मति अति रति-पागी ।
आनँदघन सँजोग - झर भीजे बिरह - वैरागी ॥

नट] (४९४) [इकताला

हरि होरी खेलत रस राख्यौ ।
प्यारी पै हठ आँखि अँजाई सरस परस-रस यौँ चाख्यौ ।
धनि यह फाग कियौ जन ऐसैँ सफल हिये को अभिलाख्यौ ।
आनँदघन बिनोद-झर झुरमुट लखैँ बनै न परत भाख्यौ ॥

धनासिरी] (४९५) [मूल

थे कैयाँ होली खेलौ भोरा कान्ह जी ।
औराँ काँ धोखा सूँ म्हारी आँख्याँ चूको मेलौ ।
परा रहौ जी इसौ कूँड छै थाँसूँ होसी भेलौ ।
आठ पहर अमला रा माँता हेलौ देता डोलौ ।
आनँदघन झूम्याई आवो कोई गाली देलौ ॥

जैतसिरी] (४९६) [इकताला

अति रस बाढ्यौ री बाढ़्यौ पिय प्यारी कौँ होरी ठानत ।
भरत भजत झपटत लपटत सनेह सौँ तन मन सानत ।

४९६—बनति—बरनि (सतना) ।

[४९५] कैयाँ=कैसे । परा=दूर । इसौ०=ऐसा कौन है । होसी=होगा । भेलो=साथ । अमला०=नशे में चूर । हेलौ=पुकार ।

राधा - मोहन की रँग - राचनि कैसैं बनति बखानत ।
आनँदघन बिनोद घमँडनि सुख सखि नैनाई जानत ॥

गौरी] (४९७) [चरचरी

तैं कहा है टौंना कीनौ अरे अरे साँवरे ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि खौरि घूमरे नैना बिथुरीं अलक बदन रँगभीनौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजई तो पर सरबसु वारनै दीनौ ॥

ऐमनि ख्याल] (४९८) [मलताल

तिहारे दरस की आस, अँखियनि लागि रही हो ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय आनि अब सिरैयै हिय दौ लपट उसास ॥

मलार ख्याल] (४९९) [चलती चरचरी ताल

बरसैं स्रमजल-बूँदनि रसीलो साँवरो नयो मेह ।
आनँदघन की घमँडनि ब्रजमोहन सोहन उज्यारौ चौंपनि
सौं रमँड्यौ अपनी चातकी के गेह ॥

पूरबी] (५००) [चौताला

राधा राधा रटि राधा राधा रटि मेरी रसना रसीली भई ।
ज्यौं हीं ज्यौं पीवति या रस कौं त्यौं त्यौं प्यास नई ।
ब्रजजीवन की परम सजीवनि सो निज जीवनि जानि लई ।
आनँदघन उमंग - झर लाग्यौ ह्वै रही नाममई ॥

पूरिया] (५०१) [चंपक

रूखियै रूखियै रहति है राधे देखति हौं कौ लौं
कान्ह सौं न रचिहै ।
तेरी यह सतरौंहीं बानि तेरी दई मानि कब लचिहै ।
मुरली-धुनि संकेत बजि रही फूलनि सेज सँवारी सचि है ।
आनँदघन अभिलाषनि उनए दामिनि लौं कब नचिहै ॥

टोड़ी जौनपुरी ख्याल] (५०२) [मूलताल

सुंदर ब्रजमोहन प्यारे नीके लागौ जू ।
जितहीं तित बरसौ आनँदघन नित ही नवल रस पागौ जू ॥

रामकली ख्याल] (५०३) [मूलताल

रैनि-उनींदे नैन लालन लागत हैं अति नीके।
पीकँ-पगे अनुराग-रँगे वा नवल छवीली ती के।
इनकी सरस अधखुलनि आगैं परे हैं कोकनद फीके।
आनँदघन झूमेई आवत निपट लगौं हैं जी के॥

केदारो] (५०४) [चंपक

बसि रहे तरनितनैया-तीर, कान्ह राधिका भामा वृंदावन मैं।
सब निसि जागि रस पागि पागि उर लागि भुज भीर,
रंगनि भरी जोन्हक जगमग मैं निपट रँगमँगे उमँगनि अथोर।
आनँदघन बरसत सरसत परसत तरसत दरसत आपुस मैं
सौंवल गौर सरीर॥

ऐमनि ख्याल] (५०५) [मूलताल

बनवारी रे तैं तो बावरी करी।
बिसवासिनि बिप-भरी वँसुरिया तनिक बजाइ सब सुरति हरी।
मन की बिथा कौन सौं कहियै बीतत जैसैं घरी घरी।
आनँदघन सनेह-झर झूमनि घर बाहिर अब उघरि परी॥

गौरी ख्याल] (५०६) [मूलताल

मेरी आँखयनि लाग्योई रहै साँवरो उजियारो।
आनँदघन ब्रजमोहन रसीलो प्राननि को रखवारो॥

कालिंगरा] (५०७) [इकताला

गोकुल नौं कान्ह जी मूँनै भावै छै।
बनमाला-पहिरयाँ ग्वाला-सँग गउआँ-चारयाँ आवै छै।
काँमड गारो नद जी रो प्यारो मधुरी बैन बजावै छै।
आनँदघन ब्रज रूरो ब्रजमोहन रस-बरपा बरसावै छै॥

पूरिया] (५०८) [चंपकताल

गनि गनि डगनि भरति है डगमगी, रँगमगी भई पिय-संग।
जोबन-रूप सुहाग राग भरि नवल दुलहिया जगमगी।
लाड़-लडीली रस-बरसीली लसीली हँसीली सनेह-सगमगी।
आनँदघन पिय प्रान पैठि रही ढीली डगनि खगमगी॥

सारंग] (५०९)

परेखनि दरके जात हिये ।
ब्रजमोहन पिय भए अमोही कैसैं परत सिये ।
बिषम बिसासिनि बंसी-धुनि करि ब्याकुल काढ़ि लिये ।
बन मैं बोलिन खोलि कपट-पट निपटै खेल किये ।
सरद सुहाई रातिनि के सुख तब ता भाँति दिये ।
दुसह दिनेस-बिरह ताचे अब ये निलजे प्रान जिये ।
जमुना - तीर ताकि बूड़त ज्यौ जहँ जहँ सुरस पिये ।
आनँदघन उदेग - झर झूमैं परत न छाँह छिये ॥

तथा] (५१०)

ब्रज को बिरह न बरन्यौ जाइ ।
थिरचर भए दुखारे भारे पल पल कठिन बिहाइ ।
देखैं बनै न परत बिचारयौ चहूँ ओर उफनाइ ।
दुख - दौं लाइ द्वारका छाए आनँदमेह कहाइ ॥

सारग ख्याल] (५११) [मूलताल

चपल चतुर कान्हर प्यारे सूधैं चितवौ मेरी ओर ।
ब्रजमोहन आनँदघन तुमहिं कनौंड कौन की बरसत हौ रीझ झकोर ॥

जैत] (५१२) [मूलताल

ल्याइहौं मनाइ करि करि मनुहारि ।
अब तुम लेहु निहोरि रसिकवर समुझि सँभारि ।
जाके अंग संग सुख चहियै ताकी सहियै रारि गारि ।
आनँदघन तुम सुघरराय रस राखियै बिचारि ॥

रागिनी बिलावल] (५१३) [इकताला

ब्रजमोहन को वल्लभा राधा बनरानी ।
सोभानिधि सौभाग्य - सींव विधना-वरबानी ।
धन्य पिता वृषभान जू जगमनि बड़दानी ।

[५०८] खगमगी=धँसन ।

धनि कीरति कुलवती महिमा जगजानी।
भाँदौ सुकला अस्टमी तिथि परम स्वानी।
जनमी लली सुलच्छनो जिहिं कूख सिरानी।
श्रीदामा की पीठि पै लाड़नि सरसानी।
दृगनि ज्योति लखि होति है भोरियौ सयानीं।
बरस बधाई चाव सौं वरसानै मानी।
नँदरानी की हित-कथा क्यौं परति बखानी।
ब्रजमंडल मंगल महा सुषमा अधिकानी।
आनँदघन बरषा भई मनसा उलहानी॥

गौरी] (५१४)

श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलिकालीन मलीन दीन जन पावनकरन परम गंभीर।
भाव अभंग तरंग-बिभंगित महामधुर रसरूप सरीर।
बोहित-नाम चढ़ाइ बहुत जन प्रेममगन करि पठए तीर।
पूरन चंद नंदनंदन को उदय सदा उमगनि की भीर।
निज जन रतन-जाल जुत राजत धुनि हुंकार उसास समीर।
बिबिधि ताप तैं जरत जीव जे सीतल किये परस-पदनीर।
करुनादृस्टि वृस्टि सौं सींचे जय जय जय आनंदमुदीर॥

परज] (५१५) [इकताला

हो आजु रावलि रँग रह्यौ।
कीरति कन्या जनी सुलच्छनि सुनि गोकुल उमह्यौ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ।
सुर-समूह पुहुप बरसैं परम सचु लह्यौ।
बेदनि या रस को जस भेद सौं कह्यौ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ॥

[५१३] श्रीदामा=राधा के बड़े भाई। [५१४] बिभंगित=तरंगित। परस=स्पर्श। आनँद०=आनँद के बादल (चैतन्यदेव); आनंदघन (कवि)।

रागिनी मरहटी] (५१६) [झपताल

झूलत हिँडोरना स्याम-स्यामा प्रेम - रसमसे ।
रूप-जोबन-भरे रहसि रंगनि ढरे जगमगे बदन अतिहीँ लसे ।
बिथुरे सुथरे बार हियेँ फूलनि हार रँगमगे बसन परिमल-बसे ।
मधुर बृंदाबिपिनि सरस जमुना-तीर द्रुम-बेलि केलि-गाँसनि गसे ।
आनँदघन घमँडि राग बरसत रमँढि पावस बिलास प्यासनि रसे ॥

टोड़ी] (५१७) [मूलताल

सुमन हिँडोरनाँ हुलसि झुलावत रसिक छैल अपनी प्यारी कौँ ।
अतुल रूप की उझिल झेल मैँ परे नैन मन फूलत झूलत
लाड़नि मतवारी कौँ ।
जमुना-तीर सघन बृंदावन सेवत सुख-हित-हरियारी कौँ ।
आनँदघन रीझनि भर भिजवत बेली सुकुँवारी कौँ ॥

बिभास] (५१८) [चंपक ताल

कुलही दै उलही स्याम-रूप-गोभा बैठे कान्ह ब्रजपति की गोद ।
रुचिर डिठौना लौने मुख छबि देखि देखि मन मगन-मोद ।
वारि वारि मनिमाल देत बड़भागी नंद पूरन बिनोद ।
वरस-गाँठि कुलमंडन की बरसत सरसत आनंदपयोद ॥

भैरव] (५१९) [चंपक

झुलावति ब्रजरानी कनक - पलक पौढ़े ललन तनक ।
देखि देखि सुखसदन वदन अति फूल - भरी बिधिना
बनाई मनभाई बनक ।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागनि जस बरनत सुक सेस सनक ।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसुदा जननी नंदराय जनक ॥

गंधार] (५२०)

आजु के दिन की हौँ बलि जावँ ।
कुलमंडन की जनम - बधाई बाजति गोकुल गावँ ।

[५१८] कुलही=टोपी । गोभा=प्राकट्य, अभिव्यक्ति ।

महाभाग ब्रजरानी जू के वंदन कीजै पावँ।
जिन हित घमँडि रह्यौ आनँदघन जसुदानंदन नावँ॥

सारंग] (५२१) [इकताला

हौं कहा जानौं इन साँवरिया मुरली मैं कहा धौं वजायौ।
सुनि मेरो मन तरफरात तब तें न धरत कल मैं वहुतै वहरायौ।
सनमुख ह्वै ह्वै जात सलोनो मोहन-मूरति क्यौं हू न होत गहायौ।
ब्रजमोहन आनँदघन मोही पै अति छायौ विरह-ताप तनु तायौ॥

कनरी ख्याल] (५२२) [मूलताल

देखन की लगी ढौरी है।
साँवरी मूरति जव तें निरखी परी ठगौरी है।
इतने पै यह बैरिनि वँसुरिया अतिहीं खौरी है।
रीझनि लै भिजई आनँदघन मति भई बौरी है॥

भीमपलासी] (५२३) [चंपक

बलैया लैहूँ आजु के दिन की राधा प्रगट भई है।
मंगलमनि महिमामनि सोभा की मनि सुहागमनि विधिना दई है।
नीके रहौ लहौ सुख-संपति सुकृति - वेलि की सरस जई है।
कीरति-कूख धन्य आनँदघन जाकी कीरति वरनत निगम नई है॥

सारंग] (५२४)

जमुना - सरन मरन जौ होइ।
तौ जी परियै भली भाँति सौं यामैं फिर संसय नहिं कोइ।
नित-विहार हित-साझौ पैयै लाहौ वड़ौ भरम सव खोइ।
आनँदघन अभिलाष घमँड मन-तनहि तीर-रज धरौं समोइ॥

धनासिरी] (५२५) [चंपक

भूलि मेरे मन न और कछु आवै।
ब्रजवन की वीथिनि अरु कुंजनि फिरिवोई नित भावै।
ब्रजमोहन जू छैल छवीले गुन रसना गसि गावै।
आनँदघन हौ सुरस वरसिगै चातक टेर सुनावै॥

[५२२] खौरी = बुरी, कष्टदायिनी।

रागिनी भीमपलासी] (५२६) [मूलताल

बन बजी बँसुरिया कैसैं रहौं घर दैया ।
कलमलात जियरा मिलिबे कौं को है धोर-धरैया ।
न्यौज लगौ यह लाज निगोड़ी करिहै कहा चवैया ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब डरु करै बलैया ॥

भैरव] (५२७) [चौताला

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तैं निसि-बिलास-अरसाने ।
मंद मंद गति अति रति पागे जागे चौंपनि परम प्रेम सरसाने ।
अंगनि दुति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर मुख सुखमय दरसाने ।
गौर स्याम आनँदघन दामिनि देखत नैन सिराने
जमुना-तीर बरसाने ॥

पूरबी] (५२८) [चौताला

नादमहंत गिरिजाकंत दीननि के दयावंत ।
तुम्हारी कृपा तैं निसदिन गाऊँ श्रीहरि-गाथा जैसैं गाइ आए संत ।
बरदराज सब काज सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत ॥

नट] (५२९) [चंपक

पाथर हियौ उड़्यौ ही डोलै हरि के दुसह बियोग ।
अचरज महा कहा कहियै अब बन्यौ नवल संजोग ।
पोढ़ौ अति पिसि रह्यौ घिसनि मैं आगि-उदेग भर्‌यौ ।
जानै नहीं साँवरे सुंदर चेटक कहा कर्‌यौ ।
ज्यौं लै गए कौन धौं जारत यह कछु सुधि न परै ।
विविधि जातना भर्‌यौ निगोड़ो जीवै नाहिं मरै ।
निपटै जड़ पै एक चेतना - चिंता - चोट सहै ।
आनँदघन पिय हित सियरो परि औरै दहनि दहै ॥

५२६—न्यौज—आग (संग्रह) ।

[५२८] जंत= (जंतु) जीव, व्यक्ति ।

बिलावल] (५३०) [इकताला

मचो चुहल चाँचरि की नंद महर के द्वारैं ।
आईं उमहि ब्रजबधू चौंपनि चतुर खिलारैं ।
सुमिल सुगीतनि गावैं निपट रसीली भासनि ।
मोहन मनहि घुमावैं प्रेम - लपेटी गासनि ।
अद्भुत उकति अनौंठी प्यारी परम सुगारीं ।
जसुमति-ललहि सनमुखीं लाजनि ढकी उघारीं ।
रूप - गहगहीं गोरीं बैस डहडहे गातनि ।
गोकुल की हुरिहाईं बनीठनी सब बातनि ।
मिँहदी रचे करनि डफ विविध विचित्र विराजैं ।
महा मनहरन हाथनि परस सरस गति बाजैं ।
झूमर झमक रमक सौं भाँवरि भरन लगी हैं ।
खुलनि झुलनि अलकनि की मिलि मुख-ज्योति-जगी हैं ।
कान्है करषि हरष सौं चाहति नाच नचावन ।
चौकस चपल चिकनिया चपरथौ चहत बचावन ।
गुलचनि रुचिर कपोलनि उलचति धीरज हिय को ।
प्रगट परस होरी मैं जिय ज्यावत है पिय को ।
बंक बिहारी मोहन किये सरस ब्रज - बालनि ।
गौं सनि हाँसनि सौं सनि समझि सहत इन हालनि ।
बिच बिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी ।
मरम - परस की घातनि तकि वृषभानुदुलारी ।
नई लगनि के लाले फागुन भरि पुरए हैं ।
छाँह छियन हूँ दूभर उररि उररि सु रए हैं ।
लगत निपटहीं नीके मोहन रूप - उजागर ।
दरस परस रस परबस नायक नगधर नागर ।
बदन गुलाल - रँगमगे दिपत अबीर - अँध्यारैं ।
मदन - कुलाहल कौतुक गनत न बनत बिचारैं ।
ग्वार गरधारिनि ढूके सैननि स्यामहि बोलैं ।

बुधिबल बरनि न पावत घिरि नवबधू कलोलैं ।
इचनि खिँचनि कर पट की लपट झपट रँग-रपटनि ।
भरनि भुजनि फिर उलटनि दलनि दबोचनि दपटनि ।
छलनि छुटे मोहन की गौँहन लागंति बाला ।
नैन भौँह कर नचनि लचनि कटि डोलन माला ।
दाव लैन के चावनि चौगुन चौँप चढ़े हैँ ।
ग्वार ग्वारनिनि टोल आपनी पज बढ़े हैँ ।
फागुन फबी सु बिलसनि हुलसनि हौँस नई है ।
यह सुख सोभा संपति दंपति भाग भई है ।
घोष घमँडि आनँदघन अति रस-रमँड मची है ।
भीजि रीझि रसमसनि समै छबि दृगनि खची है ।
सगुन साथ त्यौहार सदा बिहरैँ हरि भामिनि ।
महामोद - बढ़वारि कौन व्यौरै दिन जामिनि ।
नित बसंत रसवंत कंत कामिनि सुख भोए ।
वसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए ।
भाग - भरी ब्रजबधू सनेही स्याम सभागौ ।
इनहीँ के अनुराग पागि रसना गुन रागौ ।
ऐसैँ देखत रहौँ रहस आनँदकंद के ।
महा रसवती राधा कौतुक कृस्नचंद के ॥

धनासिरी] (५३१) [इकताला

ब्रज माची सरस धमारि होरी रंग रह्यौ ।
घोष नागरीँ फगुवा माँगन आईँ जसुमति-धाम ।
प्रेमपगे रँगमगे जगमगे निरखे मोहन स्याम ।
गावति गारीँ दै दै तारीँ गति सौँ डफहि बजाय ।

४७४—दिपत—दिखत (सतना) ।

[४७४] भासनि=चोली से । अनौँठी=अनूठी । हुरिहाई=होली खेलनेवाली । चपर्यौं=फुरती की । गुलचनि=कपोल पर हाथ की मुट्ठी से किए आघात । उररि=उमंगित होकर ।

आँगन मैँ औसर की चाँचरि चौँपनि रही मचाय ।
फैलि फबी छबि छकीँ खिलारैँ चंदमुखी चहुँ ओर ।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्ह-किसोर चकोर ।
काजर दै मुख मीँडि गुलालहिँ झगरति फगुवा हेत ।
सैननि ही मैँ सुघर साँवरे हाहा करि हँसि देत ।
पून्यौ सुदिन समदि सब सुखनिधि वढ्यौ महा समुदाय ।
गोद भरति रोहिनी जसोदा मोद कह्यौ क्यौँ जाय ।
या घर यह सुख सदा विराजौ देति असीस वखानि ।
आनँदघन रस रहौ लहौ जस नित त्यौहारनि मानि ॥

बिहागरो] (५३२) [इकताला

देखि सुहाई सरद की जामिनि रंगभीनी ।
पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी ।
मोहन मदन गुपाल कौँ बृंदावन मोहै ।
जमुनातट कुसुमित महा अवनीमनि सोहै ।
ज्योति - जगमगे द्रुमलता अति सघन सुहाए ।
त्रिविधि पवन सुखमै वहै कहियै सु कहा ए ।
बिसद पुलिन रसरास को अभिलाष वढावै ।
नटनायक नँदलाल को मन पकरि नचावै ।
राग भागनिधि ब्रजबधू तिनकी मनि राधा ।
जाके हित मुरली धरी धुनि प्रेम - अगाधा ।
रूप अनूपम साँवरो गुनरासि रसीलो ।
नाद-स्वाद - स्वामी सदा अति छैल छबीलो ।
कहि न परति सुर-मधुरिमा जिन सुनी सु जानै ।
परम प्रेम - फँदवारि है प्यारिनि गहि आनै ।
चौँपनि चुहल मची महा गोपीँ चलि आवैँ ।
अगनित पूरन ससि मनौ धरनी पर धावैँ ।
रची मंडली भावती राजति चहुँ ओरनि ।

५३१] समदि=भेँटकर ।

मधुर हँसनि हुलसनि महा दृग सौं दृग जोरनि।
हिलनि मिलनि ब्रजचंद की अति उमँग-भरी है।
प्रीति-पगे रस-रँगमगे पन-परनि परी है।
दरस परस रसबढ़नि की गति कहै सु को है।
आनँद-उदधि-तरंग मैं मति की मति मोहै।
अदभुत गान-कलान की रचना सरसी है।
ललित रीति संगीत की सुषमा दरसी है।
मच्यौ महारस रास है बृंदाबन माहीं।
या सुख-सोभा की कछू उपमा कौं नाहीं।
चटक मटक गति-लटक सौं नाचैं पिय प्यारी।
आपुस मैं रीझनि रचे वारथौ कहि वारी।
कुंडल अलक कपोल की झिलमिलनि फबी है।
चकचौंधी लागति लखैं दुति दृस्टि दबी है।
बिबिधि बिनोद प्रमोद मैं सनि रहे रसीले।
मुकुट चंद्रिका दुहुनि के झुकि लसत छबीले।
मगन महारस-केलि मैं मोहन ब्रजबाला।
सुरबनिता रीझनि छकीं वारैं मनिमाला।
थिर चर सब रस मैं पगे सुधि रही न काहू।
राधा मोहन हिलि मिले हित-रीति-निबाहू।
राग-भोग-संजोग को अति पुंज बढ़्यौ है।
महा निसा जकि थकि रही ससि कढ़नि कढ़्यौ है।
आनँदघन बरसत सदा भीजे या रस मैं।
परम रसमसे रीझ सौं दोऊ परबस मैं॥

टोड़ी] (५३३) [चंपक

घेरि बन राखत हौ अबलानि दिना दस तैं मिस ठानि दान को।
कान्ह लाड़िले अनीति करौ जिनि डरौ न देवतानि हूँ
ढँग सीखौ सयान को।

गैल चलौ अमैंड़ई छाँडौ यह तौ है जू भयानो भान को।
आनँदघन घुरि घुरि उघरत हौ हठ न भलो निदान को॥

टोड़ी] (५३४) [चौताला

पिय को परस रस तैं ही पायौ।
सुनि राधे अनुरागमंजरी उरजनि बीच दुरायौ।
इनकी फूल फैल परी नखसिख डहडहौ मुख सुखसदन सुहायौ।
ब्रजमोहन आनँदघन री रीझनि झमँडि घमँडि रमँडि
रमँडि सरसायौ॥

संकराभरन] (५३५) [जतिताल

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखै।
मुरली-धुनि मोहनी करि पवन पंग राखै।
मुकुट-लटक गति की मटक अंग सुधंग राखै।
महा अद्भुत रूप धरे मोहि अनंग राखै।
राधा के हित नटवा निपुन अति उमंग राखै।
आनँदघन चातक-ब्रत एक संग राखै॥

राग केदारो] (५३६) [चौताला

ऐसो मन कहाँ तैं ढूँढि ल्याइयै जौ पै फिरि हरि ही मिलाइयै।
अरु तेई आँखैं जिनसौं निरंतर वह मुख दिखाइयै।
कहा बनाइयै कैसैं बहराइयै तपनि महाइयै।
आनँदघन के हेत रैनिदिन सोचनि छाइयै॥

राग स्याम कल्याण] (५३७) [इकताला

नटवर नंदलाल रासमंडली रची हो।
राधा-संग जमुना-पुलिन परम प्रीति मची।
महामोहन मुरलिका-धुनि तान-ग्राम ऊँची।
सरद-निसा गोपिनि मिलि सुख की रासि सची।

[५३३] अमैंड़ई=शरारत। भयानो=डरना। भान=प्रकाश। निदान०=अंत में। [५३५] पंग=पंगु, गतिहीन। सुधंग=बाँके, बढ़िया ढंग से।

अभिनय संगीत-रीति नचनि देखि नची।
रूप जोबन गुन-गरिमा रोम रोम खची।
यह सोभा देखैंई बनै बरनिबैं बची।
आनँदघन रस की रासि कैसैं जाति अची॥

राग केदारो] (५३८) [चौताला

सब निसि बिलसत रास-रसी है।
राधा के अंग-संग रंग राचे नाचे मोहन परम-प्रीति सरसी है।
कुसुमित बृंदाबन जमुनातट पूरन सरद-ससी है।
आनँदघन भामिनि दामिनि मिलि अद्भुत छबि बरसी है॥

ऐमनि] (५३९) [इकताला

नंद-नंदीसुर बास अरी बड़भागनि पैयै।
नित उठि मोहन-मुख निहारिबो पुजवत है जिय-आस।
हम ये दूरि बसति तरसति हैं झुरि झुरि भरति उसास।
इक दिन गाइनि लै इत निकसे बाढ़ी अँखियन प्यास।
तब तें आनँदघन औसेरनि प्रान-पपीहा उदास॥

आसावरी] (५४०) [इकताला

जमुनातीर बजावै बंसी स्यामसुँदर नवरंगी हो।
गागरि भरन न देत अचगरो तीखी-तान-तरंगी हो।
केसरि-खौरि घूमरे नैना चंदन-चरचित-अंगी हो।
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि मधुर हँसनि रुचि-संगी हो।
उर वनमाल विसाल विराजित मोहन-मदन त्रिभंगी हो।
रीझनि भीजि थकी निरखतहीं घनआनंद उमंगी हो॥

परज] (५४१) [मूलताल

हियरा सुर-साल करै मुरली ऐसे हाल करै मुरली।
प्रान ममोड़ लेति तानन सौं अटपटे ख्याल करै मुरली।
बसति लसति सौं घिरी घरनि मैं ये जंजाल करै मुरली।
आनँदघन रस बरसि बिसासिनि बिरह की ज्वाल करै मुरली॥

सारंग] (५४२) [चौताला

जहाँ जहाँ डोलत री बनवारी तहाँ तहाँ मन मेरो मँडरात ।
सुरति सहेली सँग नहिं छाँडति बन बन वीथनि वीथनि पग
पग पाँवड़े लौं विछि जात ।
यह सुख तौ मेरो जियराई जानत कहा भयौ तनु तचि मुरझात ।
आनँदघन को बिरह सँजोग हू तें इन बातनि सरसात ॥

सारंग] (५४३) [चौताला

कहा हौं बैठियै रहौं, हठीली बोलति नाहिं बुलाएँ ।
कौन कौन भाँतिनि समझाय अनोखी तोसौं कहौं ।
बनि आएँ ठनगन ठानति है सर्वोपर राधे तोहि लहौं ।
आरत ह्वै पपई आनँदघन तातैं पैज गहौं ॥

सोहनी] (५४४) [इकताला

सुन वे वेपरवाह निमाणीं दाहानल बुझदा ।
प्राण-पपीहाँ नू आनँदघन तुझ वाजू होर न सुझदा ॥

सोहनी] (५४५) [जामाताल

अवे साडे दिल दी मुराद पुजाईं ।
साँवले सज्जन साँई जिंद निमानी तपदी आनँदघन सोहन
मुख चुक विखलाँईं मिहिर नजर वरसाईं ॥

सोहनी] (५४६) [झूलताल

वो वो सानू ना तरसाँई, जिंद कीती कुरबान
तैंडे दम ऊपर साँवल साँईं ।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन हा वे मेहर नजर बरसाँईं
इत वल आँईं घोल घुमाँईं ॥

धनासिरी] (५४७) [इकताला

मैंडा दिल तैंनू लोडै तू क्यों मुखडा मोडै ।
इस वो निमानी नू विरह सिकैं दा तैंनू की परवाह
आनँदघन वडा तिना दा भाग जिना नाल तुसी वो मोहब्बत जोडैं ॥

[५४३] ठनगन = मान, रूठना । पपई = चातकी । [५४४] वाजू = वर्ज्य, अतिरिक्त । होर = और, अन्य । [५४५] चुक = किंचित् ।

सारंग] (५४८) [इकताला

सिंघासन प्रेम को गिरिराज ।
ब्रज तुव राज बिराजत नितहीं सँग लै सुहृद - समाज ।
याकी गुन-गरिमा याही मैं भरि सेवन सुखसाज ।
जै जै मंगलमनि आनँदघन थिर अनुचर सिरताज ॥

सारंग] (५४९) [चौताला

हरि-चरननि सौं चिन्हारि करि लै ।
मन मेरे तू मानि कह्यौ या सुख-संपति घरि भरि लै ।
वन-महीमंडन ब्रजरमनी - उर - मंडन तिनहीं के हित ढरि लै ।
आनँदघन अद्भुत अरबिंद पपीहा-मधुप-ब्रत धरि लै ॥

तथा] (५५०)

ऐसी बजाई है बनवारी बंसी बन, है सुनत धुनि काहू पै न रह्यौ मन ।
उमँग उद्वेग आँच लागे तेँ पुलकि पसीजि चले हैँ सब तन ।
रीझनि रमँडि घमँडि आनँदघन बरसि बहावत अबलनिपन ॥

आसावरी] (५५१) [मूलताल

ठगिया बसत है री याही गाँव ।
जमुन-तीर तेँ मनु न हाथ मेरे, अब न रहत घर पावँ ।
परी है ठगौरी लागी वहै ढौरी बौरी भई जागत बररावँ ।
साँवरेँ बरन आनँदघन भिजई जानौं न कहा धौं नावँ ॥

ललित] (५५२) [मूलताल

चले किनि जाहु लला तुम सूधेँ आपनी गैल ॥
काहे कौं उरझत काहू सौं भली भई भए छैल ।
दान दान यौं ही करि राख्यौ रोकत खोरि खरेई अरैल ।
आनँदघन रसस्वादनि उनए फिरत मनावत सैल ॥

टोड़ी बराड़ी] (५५३) [मूलताल

सुगति नचेरी लेहु बिसासी बालम जियरा अति अकुलाय ।
अब न बिरम करियै ढरियै हरियै दुख हाहा नतरु आइहै धाय ।

[५५२] सैल=मौन ।

कहा कहौं जौ तुमही न समझौ अपनी करि यौं दई भुलाय ।
आनँदघन रस बरसि सरसि तब अब लाई यह लाय ॥

बिहागरो] (५५४) [मूलताल

निपट बिरहिया लोग ब्रज को, स्याम-सनेह-सगमगे
सब ही रूप - रँगमगे नैन ।
मिलि मिलि बिछुरि बिछुरि फिर मिलि मिलि पावत चैन कुचैन ।
मौन धरे मचि रही चहूँ दिसि कान्है कान्ह पुकार ।
आनँदघन झर लाग्यौ सदाई घर बन बरस बढवार ॥

पूरबी] (५५५) [इकताला

उरझिबो करै री हम सौं नंद महर को अचगरौ ।
घाट घाट रोकत टोकत है सबही गुननि को अगरौ ।
गोकुल निपट अनीति चलाई चलन न पावत डगरौ ।
मुरली बजाइ बजाइ करत बस टरत सयानप सगरौ ।
आनँदघन यौं घमँडि मचावै गोरस मिस रस-झगरौ ॥

गंधार] (५५६) [इकताला

कालिंदी - कूल की मँडरानि ।
भावति है दिन दिन छिन छिन ही प्रेमपगी अकुलानि ।
राधा - मोहन - रूप माधुरी परसि दरसि थकि जानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि आनि परी यह बानि ॥

तथा] (५५७)

निहारयौ बृंदावन सुखखानि ।
द्रुम - बेलिनि सौं भई भलँई इन अँखियनि पहिचानि ।
जमुना - तीर भीर सहचरि की राधापिय - रहठानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि बाढ़ि परी ललचानि ॥

तथा] (५५८)

मदनगुपाल की बलि जावँ ।
हरषि सिरात हियौ सुनि सजनी हेली महा मनोहर नावँ ।

५५४–घर०–घर राखत रस (सतना) ।

[५५३] लाय = आग ।

स्याम रूप रँग पागि लियौ है सबही गोकुल गावँ।
ब्रजजन-जीवनधन आनँदघन रमँडि रहौ दृग ठावँ ॥

भैरव छंद] (५५९)

रिषि मुनि सत्तम सब बिधि उत्तम हरि-हित-हारद नमो नमो।
गुह्यक-तारक पर-उपकारक रस-आसारद नमो नमो।
भ्रमतम-नासक प्रेम-प्रकासक मुखससि सारद नमो नमो।
भवनिधि-पारद गान-बिसारद जय जय नारद नमो नमो ॥

सारंग] (५६०) [रूपताल

बरजि री या छबीले हठीले कौं कहा पौरि पिछवार ढूकत डोलै।
घर बैठे आनि उखनींद करत काँकरु चलावत निडर याहि
किन-सीख दीनी अहो लै।
घमँड्यौ रहत रातिद्यौस आनँदघन जोबन के मद आँख्यौ न खोलै ॥

रामकली श्राड़] (५६१) [चौताला

सबितानंदनी सुख देति।
कृपारस-पूरन सदाई उमँगि लहरैं लेति।
स्यामसुंदर-संग रंगनि अंगराग रमेति।
नीर-महिमा-माधुरी कौं बदति बानी नेति।
तीरभूमि निहारि हिय तैं जाति जड़ता चेति।
द्रवित आनँदघन निरंतर परति नाहिन छेति ॥

राग भैरव] (५६२) [इकताला

आवौ आवौ हो सनेही स्याम बहुतै लगाई बेर।
रूप-उजियारे टारौ बिरह महा-अंधेर।
सुंदर वदन सोभा देखन की प्रानप्यारे नैननि कैं निपट
ही लागियै रहै औसेर।
अवधि बितानी रैनि जागत बिहानी हा हा रसिक रँगीले
छैल उरझे नवेली मेर।
आनँदघन सुभाय अनत बिराजे छाय स्रवन परी न
हाय काहू दुखिया की टेर ॥

[५६१] रमेति=रमती है। छेति=विच्छेद। [५६२] मेर=प्रीति की तरंग।

रामकली] (५६३) [मूलताल

अधम-उधारन मैं तुम जाने।
दीनानाथ कृपानिधि स्वामी सदा दयारस-साने।
सोचहरन सुखकरन छमापति अति उदार उर आने।
पतित पपीहनि के आनँदघन जीवनधन पहिचाने॥

षटराग] (५६४) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागर छैल सौं छबीली कुँवरि
राधे राखो न कसरि।
लियौ दाव अति चौंप चाव सौं रँगीले ललन मुख आई
है गुलालहि अलग मसरि।
हाथ लगाइ हाथ कियौ मोहन रूप-कौंध चौंधि रह्यौ है थसरि।
आनँदघनहि भिजै रस रिझयौ दामिनी कहा विचारी
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि॥

आसावरी] (५६५) [चौताला

नैननि मन रोम रोम कान्है कान्है कान्ह रम्यौ है।
कोउ वेचति कोउ लेति गुपालहि गोरस लौं घर घर
फिरत कहाँ नीको नेह जम्यौ है।
गोकुल प्रेम की पैंठ सदाई जहाँ जगमोहन ऐसैं भ्रम्यौ है।
आनँदघन अचरज रस भीजि भीजि रीझि रीझि सुक सन-
कादिक सेस संकर गिरीस सीस रज-बकसीस नम्यौ है॥

भैरव] (५६६) [झपताल

सकल - सुखमा - सदन बनराज राजै।
राधिका मदनमोहन निवासित सदा अति मधुर केलिहित संपदा साजै।
तरनितनया - तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पै प्रगट
सब लोक - सिरताजै।
अद्भुत अनूप आनँदघन रसरूप महामंगलकरन पूरन कला जै॥

४६४–सरि–भरि (लंदन)।

[४६४] थसरि = शिथिल होकर।

बिलावल] (५६७) [चंपक ताल

आवति चली कुंज-गहबर तैं कुँवरि राधिका रूपमढ़ी।
मोद-बिनोद-भरी मृदु मूरति का बिरंचि या घाट घढ़ी।
बरनौं कहा गुराई मुख की अलक-सँवरई-संग बढ़ी।
बंक चितवनी सरल बान लौं उर इकसार दुसार कढ़ी।
सहज मधुर मुसिकानि सलौनी मौन मोहनी-मंत्र पढ़ी।
अधर पानि पै निरखि घुरयौ हिय उतरति क्यौं जु घुमेर चढ़ी।
सुनि री सखी घुटनि जियरा की तू ही एक उपाय-अढ़ी।
ज्याइ प्याइ रस आनँदघन कौं रसना चातक-चौंप-रढ़ी॥

लहवारी बिहाग] (५६८) [इकताला

राधे राधे राधे राधे श्री राधे राधे।
ब्रजजीवन के प्रान-जीवनधन येई बरन आराधे।
आनँदघन चातक-रट लागी मुरली-सुर मैं साधे॥

सावंत] (५६९) [इकताला

कान्ह-कथा कान्है सुनाइयै।
तनक इकौसैं ब्रजमोहन कौं भागनि बल जौ कहूँ पाइयै।
जो कछु दसा नैन मन जिय की सो कैसैं काहू जनाइयै।
जाकी लाई लाइ लगन की आनँदघन ताहीं सिराइयै॥

सारंग] (५७०) [इकताला

सुमिरन स्याम कौं मन लाग्यौ।
मन सुमिरन सौं लगै न क्यौं फिरि सरस-परस-रस-पाग्यौ।
सोवत जगत न उहटै कितहूँ हित ऐसो कछु जाग्यौ।
रीझनि झूमि झूमि आनँदघन गुर गरजनि अनुराग्यौ॥

[५६७] गहबर=भीतर, गहराई, गर्भ। का=क्या। घाट=शैली। घढ़ी=गढ़ी, घनाई। इकसार=एक ओर घाव। दुसार=आरपार घाव। घुमेर=नशा, चक्कर। अढ़ी=करनेवाली। रढ़ी=रटती है। [५६९] इकौसैं=एकांत में। बल=सहारे, द्वारा। लाइ=आग। [५७०] अरस० = आलिंगन के आनंद में लीन। उहटै = उचटे। गुर=गहरी, भारी।

सारंग सौंवत]　　(५७१)　　[चौताला

आनँदमंगलदाता दरसन सूरसुता को ।
जब जब देखियै नयो नयो लागत रूप अनूप जु ताको ।
राधा-हरि-सहचरि-समूह मिलि बिहरनि-कूल-कुतूहलता को ।
रसना छाय रहौ आनँदघन जस याकी प्रभुता को ॥

सारंग]　　(५७२)　　[झपताल

धरम अरु धीर मन प्रान अरु ग्यानहूँ हेरि हरि लेव हरि देव प्यारे ।
सो बहुरि कौन कौं देव कहि देव किनि कपटी कठोर गिरधर उज्यारे ।
कंदरा मंदिरनि बसत घातनि छैल गैल गाहत अवारे - सवारे ।
घमँडि आनँदघन उघरि गोहन लगत दान मिस ठानि हठ निडर भारे ॥

गौरी]　　(५७३)　　[मूलताल

राधामोहन राधाबल्लभ राधाजीवन राधाप्रान ।
राधा-बदन-सरोज-मधुव्रत सदा करत राधा-रसपान ।
राधा राधा ही रट लागो राधा बिन सुमिरत नहिं आन ।
नित हित-घमँडनि सौं आनँदघन मुरली मैं राधा-गुनगान ॥

आसावरी]　　(५७४)　　[इकताला

होरी होरी खेल मचायौ गोकुल-गैल - गरयारैं ।
व्रजगोरिनि भोरिनि घातनि लगि डोलत साँझ - सवारैं ।
चंचल चतुर चिकनिया मोहन गोहन परयौ है हमार ।
आवौ घेरि कनौडो करियै कौ लौं धूम सहारैं ।
भिजै रिझै आनँदघन को सब दिन की कसरि निकारैं ॥

हिंडोल]　　(५७५)　　[चौताला

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं बागौ बसंती ।
चोवा-चित्रनि फवी है छैल-छवि अरु उर राजति बरन
　　　　बरन फूलनि की बैजंती ।

५७४—चंचल—चौकस (सतना) ।

[५७४] धूम=ऊधम ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं जोबन - उलह निपट लहलहंती।
तेरैं हित आनँदघन घमँड्यौ ढुरि घुरि रस राखियै
सुनि राधे सुहागवंती॥

हिंडोल] (५७६) [कपोती ताल

आवौ री मिलि गावौ बजावौ बसंतपंचमी है आई।
राधा लै बृंदाबन चलियै देखन सोभा सुनियति मोहन मुरली सुरझाई।
कोकिला कुहकनि औरौ खग चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई।
आनँदघन की गरज सुहाई माची है मदन-बधाई॥

सारंग] (५७७) [चौताला

नवल बना री नवेली बनी राधा को।
ब्रजमोहन नीको नाँव रसीलो भागभरे दुलहा को।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन मंडित मंडप-सुमन सदा को।
आनँदघन हित घमँडि भाँवरैं भरत रहत धनि धनि सुहाग याको॥

सारंग] (५७८) [चंपकताल

टेर मुरली की मोहिं टेरिबोई करति है।
रितै रितै मन मैं तैं धीर बीर बिषम पीर लै भरति है।
कठिन जोग घर ही मैं भोगियत बिरह-आगि उर-बीच बरति है।
आनँदघनहि परस सीतलता परति है, परति है॥

हिंडोल] (५७९) [चौताला

वसंत फूल्यौ री बृंदावन मैं आइ।
नितहीं वसंत-मूरति ब्रजमोहन के देखन कैं चाइ।
ताहि सफल करि राधे माधवी है हिलि मिलि खिलिवे को दाइ।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाइ
अब तू दामिनि लौं धारि पाइ॥

हिंडोल] (५८०) [इकताला

बिहरत बृंदाबन रितु बसंत राधा रमनीमनि कान्ह कंत।
प्रफुलित जमुनातट बिबिध कुंज, धूँधरि पराग अलिपुंज-गुंज।

५७६–सुरझाई–सुर गाई (सतना)।

गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार ।
यह सुख सोभा बरनी न जाइ, तन मन आनँदघन रह्यौ छाइ ॥

हिंदोल] (५८१) [चौताला

रँगमगे अंग नित बसंत खेल ।
सजल गुराई लोने गात मानो केसरि रँगरेल ।
सहज सुगंध सौंधो कपूर हास चिकुर चिकनई चोवा फुलेल ।
अधर-अरुनता गुलाल रोचना आनँदघन पिय हित
सब सुख-साँज सकेल ॥

राग हिंदोला] (५८२) [मूलताल

राधे रमनीमनि रूपमंजरी तेरी हँसनि बहुत बसंत कौं हँसति ।
कहा कहौं हौं हूँ देखि रहौं जैसो नखसिख लौं जोवन-गोभ लसति ।
रँगीलो बदन सुखसदन बिराजत भ्रकुटी पासि मति गतिहि गसति ।
मधुर माधवी सरस बिकास बिलासभरी तू आनँदघन ब्रज-
मोहन पिय-हिय-जिय मैं बसति ॥

कलिंगरा] (५८३) [इकताला

स्याम प्यारे हमसौं होरी खेलन आए भोरैं कित के ।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब विधि लायक नित के ।
निपट रँगमगे सौंधे-सगमगे जावक-खौरि कनौड़े हित के ।
आनँदघन चित चौंपनि उनए उघरे भाग भुरहरैं इत के ॥

धनासिरी] (५८४) [मूलताल

दरद वंदा नू दरद घनेरा है मासूकाँ वेपरवाही ।
सुन वे साँवलिया कुडिया दे उपर की हुया फिरदा सिपाही ।
तैनू दरद सुने दरसे मैंडा यार निगाही ।
प्रानपपीहा नू जिलावीं आनँदघन मिहिर-नजर वाहवाही ॥

गंधार] (५८५) चौताला

तिन सब कछु साध्यौ हो जिन साधी साधुजननि-संगति ।
पतितपावन पुरुपोत्तम पदवी पावन की परम गति ।

[५८२] गोभ=प्रस्फुटन । पासि=फँसकर । [५८४] कुडिया=टोप ।

धोइ धोइ मन-बसन बासना रच्यौ है रागरुचि - रंगति ।
आनँदघन रस-परस - प्रसादहि पाइ पल्यौ पन-पंगति ॥

ऐमनि] (५८६) [मूलताल

झूलि झुलावैं, रसिकबिहारी अपनी प्यारी कौं ।
अंक भरैं पुटली पै बैठे मुख लखि जीव जिवावैं ।
छुटे बार मुकतानि हार मिलि उरझि उरझि सुरझावैं ।
सरस परस बीरी खवाइ आनँदघन रस बरसावैं ॥

रामकली] (५८७) [चौताला

व्रजपति-मंदिर मैं रंगबधाई प्रगटे हैं कुँवर कन्हाई ।
भाग - बलो जगमनि कुलमंडन मन - नैननि सुखदाई ।
स्यामसुंदर दिनहोनो लोनो जनमत मैया-कूँखि सिराई ।
आनँदघन अनेक रस बरसत जससरिता सरसाई ॥

केदारो] (५८८) [इकताला

बाजति रंगबधाई गोकुल नंद कैं ।
औरै ओप बढ़ी सुनि सजनी उद भएँ व्रजचंद कैं ।
नैन चकोर भए सुख - सीतल परस मयूख अमंद कैं ।
दुख-तम दूरि गयौ हिय-जिय तैं निरखत आनँदकंद कैं ।
वंदीजन बिरुदावलि बोलत मुदित बिप्र-धुनि - छंद कैं ।
पूरव पूरव - भाग आनँदघन जसुमति नंद सुछंद कैं ॥

बिहागरो] (५८९) [इकताला

गोकुलचंद्र - चंद्रिका प्रगटी सब व्रज लगत रवानौं ।
कोटि कोटि पूरन सारद ससि उदै भए हैं मानौं ।
उत व्रजपति के अति गहगह इत गहमहात बरसानौं ।
मोदमंडन बड़भाग - सिरोमनि नंदराइ वृषभानौं ।
दुहुनन की इकमनी रीति को कौतुक कहा बखानौं ।

[५८६] पुटली=पटुली, पाटा । [५८८] पूरव=पूर्ण होगा ।

राधा मोहन नाम रसीले जीवन को फल जानौं।
उनै उनै आनँदघन बरसत जस-सायर सरसानौं॥

ऐमनि] (५९०) [चौताला

गंगा गंगा गंगा गाय लै री मेरी बानी।
दुरित-दवागिनि दूरि करन जाको परम पावन पानी।
हरिपद-रति मति गति अति दाइनि कीरति बिसद पुरान-बखानी।
मोद-बितरनी जगतरनी मैं जानी भागीरथ आनी॥

रामकली] (५९१) [चौताला

सुदिन ह्वैहै जाहि भेटिहौं स्याम।
तन की तपति बिपति टरि जैहै पैहै मन बिसराम।
बहुत भाँति के सुखनि सींचिहै रसमूरति ब्रजजीवन नाम।
आनँदघन घुरि घमँडि रमँड सौं हरिहैं बिरहा-घाम॥

तथा] (५९२)

बंसी बाजि बाजि घर घालै, घरबसी सौं कोउ न बोलै चालै।
ब्रजमोहन को अधर सुधा लै देति सौति के सालै।
जाकी बनि आवै सोइ गावै रसबस करि छिन छाड़त लालै।
आनँदघन गरजै सो लेखैं परम प्रीति-पन पालै॥

हमीर] (५९३) [चौताला

कहाँ एती बार लाई हो बिसासी मोहन।
ठौर ठौर के पाहुने प्यारे तुमहिं काहू सौं मोह न।
अबला बपुरी भोरीं बिचारी चतुर छैल गीधे नई टोहन।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर करत फिरत रस-दोहन॥

हमीर] (५९४) [इकताला

मन मेरो फेरि लेतु है, गिरि गोधन सौं अति हेतु है।
सीतल सुंदर सुखद कंदरा हरि-राधा-संकेतु है।

५९२—पन—प्रति (लंदन)।

[५८९] इकमनी=एक मनवाली। सायर=सागर।

फूलन के फल दल जल कै गोबिँद गैयन सुख देतु है।
आनँदघन छबि छाइ रहौ तित नित ही मो चित चेतु है॥

पूरबी] (५९५) [इकताला

आवै आवै नंद महर को मोहि जानि याही गैल।
रसभीजी चितवनि सौँ चितहि लगाइ लेत है छैल।
इकटक लागि रहति उत अखियाँ मेरोऊ मन भयौ अरैल।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौँ अब कौन की दबैल॥

आसावरी] (५९६) [मूलताल

जौन देखै तौन देखौँ हौँ तौ देखैँ ईँ सुख पाऊँ।
गरव - गहीली गोरी ग्वारि जाकी पटतर कौं न पाऊँ।
सुनि सजनी हित चित की बातैँ हितू जानिकै तोहि जताऊँ।
आनँदघन पै चातक चौँपनि तेरे भरोसैँ छाऊँ॥

टोड़ी] (५९७) [मूलताल

मेरे भाग जागे री जागे री मैँ देख्यौ मोहन-दरस।
आँखिन को सुख कहत न आवै जैसैँ सब अंगनि तैँ
पहलेईँ पायौ परस सरस।
बहुत बरुनीँ-अँकवार भरे री करे सुबस अभिलाष बरस।
आनँदघन त्यौँ उनै उघरि इन्हैँ अब सब सौँ उपज्यौ है अरस॥

टोड़ी] (५९८) [चौताला

देखौ देखौ जमुना की गहराई जो कछु इनहीँ मैँ बनि आई।
राधामोहन-सिंगार-रस-पूरन उमँग-भरन नित देखियति लहराई।
उमँग-भरी अभिलाष-गहवरी मुरली-धुनि सुनि सुनि ठहराई।
आनँदघन छबि अब कहिबे कौँ सरसुति-मति थहराई॥

आसावरी] (५९९) [मूलताल

राम आए ये आए अब तू लै मिलि सिय सुनि रे मठ।
जिनको यहि भुव-मंड खंड खंडनि प्रचंड जस तिनसौँ रे करै कौन हठ।

[५९७] अरस=आलस्य।

साधु-मतो क्यौं मानै दुरमति जाको सबै सयान परयौ भठ ।
आनँदघन अदभुत प्रताप - झर पजरि भुज्यो रावन-कठ ॥

केदारो] (६००) [चौताला

फूली सरद - जुन्हाई तैसी मल्लिका वेलि ।
रजित सजित बसननि पहिरैं राधा मोहन जगमगे करत रँगमगी केलि ।
जमुना-तरंगनि अति दुति बाढ़ी चंदकिरनि झिलिमिली झेलि ।
आनँदघन दंपति रस वरसत हुलखि गरैं भुज मेलि ॥

ललित] (६०१) [मूलताल

जुवनाँ ऐसैं काम करै, अपनी अरनि अरै ।
कित को छैल छबीलो मोहन मेरी डीठि परै ।
मन मिलि गयौ मिलत अँखियनि ही आई घूमि घरै ।
अपनो सो बहुतै समझाऊँ नैक न धीर धरै ।
चलत चवाव चाव सुनि लागत क्यौं हित-टेक टरै ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरै ॥

भैरो] (६०२) [इकताला चलती

सदा दया दीनबधु विनती सुनि लीजै ।
पतितपावन करुनानिधि विरुद - लाज कीजै ।
बिधि-अबिधि - विचार-हीन अति मलीन मन कौ ।
जड़ता मैं जनम खोइ चेत्यो नहिं तनकौ ।
तुम से प्रभु तुम ही हो अपनी ओर देखौ ।
मेरी करतूति कहा लेखैई परेखौ ।
जगतारन पारन हौ मोहूँ पार करियै ।
नाथ को भरोसो भारी अब तौ कर पकरियै ।
असरन के सरनदायक धुर तैं सुनि आयौ ।
यहै बात सुरति राखि सब कछु विसरायौ ।

६०१-बहुतै०-बरजत बहुतेरो (सतना) । सुनि०-चित वाढत (वही) ।

[५९९] भठ=भ्रष्ट । कठ=काष्ठ ।

चिंतामनि जानिराय कहि कहा जनाऊँ।
बिन माँगे देहु मोहिँ मोहन गुन गाऊँ।
सोएँ हूँ जागत हौ जागैं ढिग बैठे।
मौन धरैं बोलत हौ जागैं ढिगै पैठे।
सकल ठौर सबै समय प्रानसंगी नित के।
आनँदघन जीवनधन दीन जननि हित के॥

राग हमीर] (६०३) [मूलताल

हो हरि हमसौं बतियाँ कब साँची बोलौगे।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गूँज खोलौगे।
अवधिनि बदि बदि आस बढावत अपनी गौं इत उत डोलौगे।
आनँदघन पिय वरसि परेखनि छतियाँ ही छोलौगे॥

सोहनी ख्याल] (६०४) [मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैं होरी।
वहुत दिननि लाजनि भीजी भागनि फागुन है आयौ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानि-कनौंड कौन की करिहौं
करिहौं रे अब तौ मन भायौ बिधना वान बनायौ॥

टोड़ी] (६०५) [चंपकताल

लालन-आवन त्यौं ही ननदी बुलावन निपट साँकरो साहौ।
को जानै कब बिधना बनैहै निधरक देखन - लाहौ।
ता छिन की पछितानि मलोलनि दुख तैं चोट बढ़यौ दुखदाहौ।
आनँदघन पिय परस दूभरो दरस चटपटी चाहौ॥

गंधार] (६०६) [मूलताल

तारे गनत गनत निसि बितई।
मनभावन-आवन की गैलहिं हौं जानति ज्यौं चितई।

६०४—वान—वनक (सतना), वनाव (वृंदा०)।

[६०४] वान=साज, अवसर। [६०५] साहौ=दरवाजे के पार्श्व भाग के दोनों पत्थर, यहाँ द्वार।

भलैँ सखी तू ताहि पत्याई जाको हित जित तितई ।
आनँदघन त्यौँ दीठि बिचारी भरि भरि आँखिन रितई ॥

ऐमनि] (६०७) [इकताला

व्रजमोहन जू निपट बिसारी प्रीति किधौँ काढत हौ बैर ।
उर तैँ निकसि जाहु कै आवौ कहा लगाइ रहे आँसेर ।
बानक नहीँ छाँह छ्वैबे कौ घर घर माँचि रह्यौ है घैर ।
सुनि सुनि हियो सिहात साँवरे चित चढि गयौ मोह कैँ मैर ॥

सारंग] (६०८) [इकताला

व्रजरानी पठई सँवारि बहुत विधि अपने लड़ैते लला कौँ छाक ।
भूखभरयौ चढ़ि रूख चौँप सौँ लागि रह्यौ मधुमंगल ताक ।
लै आई छकिहारी चाइनि वदन देखि टरी दृगनि थाक ।
आनँदघन व्रजजीवन जैँवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि-ढाक ॥

काफी] (६०९) [मूलताल

सब गोकुल-गैल-गरधारैँ होरी माँचि रही ।
व्रजमोहन मातो डोलै, अब बचिहै दुरि कहि को लै ।
घरघर तब ताक लगावै, फिरि ऐसो औसर पावैँ ।
साँवल छवि सहज ठगौरी, मन ढरकि लगावै ढोरी ।
छलछंद सुघातनि ठानै, हथचलई कौन बखानै ।
या बगर झमेल मचावै, अठपहरा ऊधम भावै ।
मोसौँ मन ही मन बीध्यौ, फागुन मिस गौँ गहि गीध्यौ ।
कैसैँ कै वासौँ बचियै, यह फागु मची सो मचियै ।
वहि अति ही आतुर पाऊँ, अपनो सो लै ठहराऊँ ।
मन मेरोऊ रिझवारै, चपरैँ पै को निरवारै ।
कौ लौँ गहि याकौँ रोकौँ, सुनि सजनी बूझति तोकौँ ।
मन नैन बस्यौ वह जैसैँ, हा हा कहि तू हौ तैसैँ ।
वह सबको हियो घुमावै, रीझनि सौँ भीजि भिजावै ।

[६०८] छाक=कलेवा । मधु०=एक सखा । छकिहारी=छाक ले जानेवाली । ढाक=पलाश ।

अंतर बाहिर खुलि खेलै, भोवै भरि नेह फुलेलै।
यासौं कहि क्यौं नहिं रचियै, लाजहि लै कौ लौं सचियै।
होरी को लाहौ लैहौं, फगुवा लै गुलचा दैहौं।
आनँदघन भले भिजैहौं, रीझनि भरि भेंटि खिजैहौं॥

टोड़ी] (६१०) [चौताल

जब जब निकसत मोहन द्वार, मेरैं लै आवत पहुँचाइ देत नैन।
वगर बुहारथौई करत डीठि-कर कहे न परत ये चौंप चाव चैन।
दूरथौ तैं समीप को सुख लेत फिरि क्यौं अलग ह्वै लगत मोहि दुखदैन।
इकटक चितवत बितवत रितवत उघरि घमँडि आनँदघन रसलैन॥

देवगिरी] (६११) [मूलताल

वनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरजन-डरनि कहा घर घिरिहौं।
व्रजमोहन सौं सनमुख ह्वै ह्वै भावभरी भटभेरनि भिरिहौं।
अब तौ ऐसियै जिय आई प्रीतम के पन तैं क्यौं किरिहौं।
आनँदघन पिय की औसेरनि कौ लौं इन अँसुवन झर झिरिहौं॥

राग बिभास] (६१२) [इकताला

खेलि कितहूँ आए हौ हरि होरी सी मनमानि ये नई।
निसि की जगनि गुलाल - भरे दृग खरकनि मोहिं भई।
सौंधो रच्यौ भई नकवानी तुम भिजए हौं सूखि गई।
नखछत खुले छवीली छतियाँ मो हिय हाय हई।
फगुवा ताहि मोहिं चकचौढ़ौ यह रसरीति ठई।
आनँदघन इत कित झूमत हौ सरकौ नैक दई॥

रामकली] (६१३) [चरचरी

कहा मेरे गौंहन लागे हौ देत नहीं छिन चैन।
तुम अति आतुर डोलत हौ इत मैन महा दुखदैन।
न्यौंज लगी यह लाज निगोड़ी देखन कौं तरसत हैं नैन।
आनँदघन अब उघरि नचौंगी और उपाव बनै न॥

[६११] किरिहौं=विमुख होऊँगी। [६१२] चकचौढ़ौ=चकचौंध। सरकौ=हटो, दूर होओ।

केदारो] (६१४) [चंपक

संग लगाएँई डोलै, मुरली के जो रति ।
कहा करैं वपुरीं व्रज-अवला गरव-गाँठि गहि खोलै ।
धुनि सुनि औरै होति थिर चर गति भोरि विचारिनि की मति कोलै ।
आनँदघन हूँ रीझनि भिजए क्यौं न वड़े वोल वोलै ॥

रामकली] (६१५) [चौताला आड़

अव लै राखियै व्रज माहिं ।
स्यामसुंदर सुंदर सुहृद सुनि वलि विलम करियै नाहिं ।
वेलि ता द्रुम वे सरोवर निरखि नैन सिराहिं ।
गोपी गोप खरिक गोधन देखि सव दुख जाहिं ।
दूध दधि माखन सुगोरस पोप प्रान अघाहिं ।
बहुत दिन के दूवरे ये कहाँ लौं विललाहिं ।
चैन ही की चुहल चहुँ घाँ रावरे गुन गाहिं ।
मोदघन बरसत सदाई इत अधिक अकुलहिं ॥

सारंग] (६१६) [इकताला

जव सुधि आवत जमुना - तीर ।
चलति सलति काती लौं छाती दुसह दुहेली पीर ।
राधा-विरह - वेदना - व्याकुल जितहिं कूकतो जाय ।
तेई तहाँ मिलाय ताहि तव करते हाय सहाय ।
गायनि जल देते सुख लेते मुरली मधुर वजाय ।
कहियै कहा अधम गति ऊधौ परे कहाँ सव आय ।
कव धौं फिरि ह्वैहै वैसो दिन चित चूरत है चाय ।
बिप सो लगत राजसुख इत को हित आनंदघन छाय ॥

पंचम] (६१७) [झपताल

गोपी गुपाल मिलि खेलत सरस फागु गोकुल
सुगाँव ग्वैंड़े गरधारें निकसि ।

[६१४] कोलै=काढ़ लेती है । [६१५] मोद०=आनंदघन ।

कछु कहि न परति अति उमँग मन दृगनि की चोंपनि
चुहल जु अनुपम रूप ब्रज रह्यौ लसि ।
एक मोहनहि अगनित तरुनि तकति प्रथमहि डीठि
अँकवारि मैं भरति कसि ।
छैल खिलवार दच्छिन सुलच्छन भर्यौ सबनि त्यौं
सनमुख होत हाँसनि हुलसि ।
बहुरि झुरमट मचनि रचनि चाँचरनि को चलनि
चौंकनि झमकि झिझकनि परसि ।
खेल के रंग नित रंग-बढ़वार अति कोटिक मनोज-रति-
ओज दुरि दबत खसि ।
कचनि की फैल डहडहे बदन रँगमगे बहुत निसि बीच
प्रगटत निकरि सरद-ससि ।
जोति की जगनि जगमगनि जानत नैन गौर साँवल
ओप संगम पर्यौ दरसि ।
धूँधरि गुलाल की निपट चढ़ि बढ़ि गई रसनि रँगरेल
फैली चहूँ दिसनि घसि ।
अंग परिमलनि मिलि बिबिध साँधे ढरकि पवन को
गवन उरझत जिहिं सुबास बसि ।
गारि गावैं कुल कला-कौतुकनि ढोल की ढनक डफ-
गरज स्रवननि सरसि ।
पिचकरनि छुटनि बहुरंग रस की लुटनि पुहुप-गेंदुक
डटनि चुटनि लै दाव हँसि ।
औसर अनूप को रूप कहत न बनै अद्भुत विनोद बानी
थकित गुननि गसि ।
रीझ भीजे रहत सदाय सुख लहत लाल ललना ललित
आनँदघन बरसि ॥

राग बिलावल] (६१८) [कपोतताल

दिनदेव दिवा-कर दिवाकर दीनदयाल ।
परमधाम पुन्योपेत पुनीत परिपूरन प्रताप तूरन चूरन-भ्रम-तम-जाल ।

बंदनीय बिभु बिग्यान - प्रकासक बिकासक सुहृद हृदय
विमल कमल - माल।
आनँदघन उर-उदयाचल मैं अब उपजैयै हरि अनुराग अमोल लाल ॥

भैरो] (६१९) [झपताल

हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण हा हा ।
दीजियै मोहि निज दरस को लाहा ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण कैसैं ।
मुकट बनमाल मुरली धरे जैसैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आछैं ।
राधिका सनमुखे छैल तन काछैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण प्यारे ।
सुघर सुंदर सरस रूप - उजियारे ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हरौ हिय - पीरै ।
धीर गति बिन लखें क्यौं धरौं धीरै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आवौ ।
मधुर मूरति दिखै आँखिन सिरावौ ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण क्यौं जू ।
आस लाग्यौ जियौं ताकि तुम त्यौं जू ।
हा कृष्ण हा कृष्ण व्याकुल महा हौं ।
जानमनि रावरे बरनौं कहा हौं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण कोमल हियो है ।
दीन पै ऐसा कठिन क्यौं कियो है ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सुनियै पुकारै ।
जीवन - अधार हौ लागौ गुहारै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण विरहा सतावै ।
दरस - रस बरसियै महा तन तावै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सकल सुखस्वामी ।

६१८—दिवाकर—दिव्य रूप (सतना) । विमल—कमला (वही) ।

नाम की लाज है कृपानिधि नामी।
हा कृष्ण हा कृष्ण आसा तिहारी।
गिरिधर सुहृद सुखद सुंदर बिहारी।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण गाऊँ।
आनँदघन प्रान - चातक जिवाऊँ॥

हमीर] (६२०) [चंपक

कहियै कहा हरि हिय की आरति जु कछू बढ़ी राधे ताकि तोहि।
रूपनवेली निहारि लेहि नैक जिन अँखियनि आई वनहि जोहि।
जब मिलिहै तब करिहै कहा धौं कबहूँ वह घरी मिलिहै मोहि।
आनँदघन अभिलाष सजल दृग हा हा कहि पठई टोहि॥

विभास] (६२१) [इकताला

परख्यौ करत मुहर लौं मिहरियनि खोटौ खरौ महर को कन्हैया।
ताहू मैं फिरि होरी मांची अब कैसैं बचियैगौ दैया।
चौचँद की चाचरँ मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघनहि कहूँ जौ भिजवै बजै फागु मैं वीधि बधैया॥

गंधार ख्याल] (६२२) [मूलताल

व्रजमोहन प्यारे आइयै आइयै।
अजू तुम अजू तुम भले वने हौ और दिननि तैं
उजियारे छवि-मतवारे।
जावक-तिलक छुटी अलक उनींदे नैना घूम घुमारे,
आनँदघन घूम घुमारे॥

टोड़ी] (६२३) [चंपक

कहा मन मिलाएँ होत अनमिल सौं जाको सहज
चचल परयौ है सुभाइ।
दिन दस गौं लगि लाहौ लेत वपुरी अवलानि भुराइ।

६२१–मुहर–महर (सतना)। वजै–वनै (लंदन)।

[६२१] बजै० = फाग में मिलकर बधाई बजने लगे। खूब बदनामी हो।

करत फिरत बिसास बधुवनि के ब्रजमोहन कहूँ मोह्यौ न हाइ ।
कहूँ उघरि कहूँ घमँड आनँदघन रचत नए नए दाइ ॥

धनासिरी] (६२४) [इकताला

क्यौं नकवानी करत हौ अनमिलें होरी खेलौं ।
बेसम्हार कित करत मोहि इत उत भावती भरि भुजनि सकेलौं ।
रजनी-रँग-भीजे तुम आए हरद रंग मो अंगनि रेलौं ।
सौंहैं न होत गुलाल-भरे दृग खरकनि मो पुतरिन गहि मेलौं ।
नखछत-खुलनि पीर मनियत है अचरज झकझोरनि रस झेलौं ।
आनँदघन पिय नए खिलारी झूमि झूमि छल-बलनि झमेलौं ॥

रामकली] (६२५) [चरचरी

सलोने सोहन प्यारे ब्रजमोहन उज्यारे ।
स्याम नवल नेही रसिक अँखियन तारे ।
रैनि-जगे भले लगे नैन घुमारे रँगमगे डगमगे पधारे, छवि-मतवारे ।
जावक-तिलक बिथुरीं अलक सरस सँवारे ।
आनँदघन उनै उनै भाग उघारे ॥

आसावरी] (६२६) [मूलताल

साडा रा हाल न बुझदा है गुज्झी गल्लाँ कैनू आखि सुनावाँ ।
ब्रजमोहन दी वेपरवाहियाँ महरम किसे भी न पावाँ ।
दरद दिवानियाँ खरी निमानियाँ कोवाँ दिल परचावाँ ।
आनँदघन वेमिहराँ दी हाँसी असी वो रो रो झड लावाँ ॥

कनरी] (६२७) [मूलताल

मुरली बन मैं बाजै है ।
धुनि सुनि रह्यौ न परत घर ननदी को करै काजै है ।
थाकी गति मति चलै ठौर तैं धीरज भाजै है ।
आनँदघन मोहन-मुख लागी क्यौं नहि गाजै है ॥

(६२८)

गोपीनायक गोपीवल्लभ गोपीजीवन गोपीप्रान ।
गोपीकिंकर गोपीमोहन गोपीमंडन गोपीमान ।

गोपी-सरबस गोपी-मंगल गोपी-मंडल-केलि-निधान ।
गोपीनागर रति-सुख-सागर गोपी आनँदघन रसदान ॥

टोड़ी] (६२९) [चौताल

आगम रितुराज के रतिराज - रंग तेरे अंगनि झलक्यौ ।
रोमराजी पर अति छबि राजी हियरा हुलासनि ललक्यौ ।
मुख की ऊठ औरई कछु अंतर को रस बाहिर छलक्यौ ।
आनँदघन जीवनधनि सुनि राधे सौतिन को मद दलक्यौ ॥

भैरव] (६३०) [यात्राताल

आए हौ जू आए हौ मेरे मन भाए हौ ।
स्याम उज्यारे अँखियनि तारे भागनि जागि जगाए हौ ।
या छबि पर न्यौछावरि छिन छिन प्राननि के धन पाए हौ ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे नखसिख रंगनि छाए हौ ॥

आसावरी] (६३१) [चौताल

चोंपनि घुरि बरसै महादानी नदराय ।
सरस बरस - गाँठ ब्रजमोहन की फूल्यौ अंग न समाय ।
सबकौं सब कछु भरि देत अघाय ।
मैया को उछाह कहा कहियै लला को सिँगारति लेति बलाय ।
हौंसनि हुलसि चौक चाँदनी रचि लै बैठारति बहु धन
वारति मंगल गीत गवाय ।
जोवौ कोरि बरीस असीसत द्विज वंदीजन बोलत विरुदाय ।
गोकुल परम कुलाहल की ध्वनि जित तित सुनियति
आनँदघन रह्यौ छाय ॥

ऐमनि] (६३२) [यात्राताल

साँवरे ब्रजमोहन मोही रह्यो न परत मोहन मूरति
देखे विन घरी पल हेली ।
कहा करौं कैसैं मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न
धरत लागियै रहति तवेली ।

[६२९] रतिराज=काम । रोम०=रोमावली । ऊठ=दीप्ति ।

सुधि बुधि वेनु बजाय हरी सब परी रहति घर परबस
कासौं कहौं यह दसा दुहेली ।
आनँदघन हँसि चितवति कौंधनि प्रानपपीहनि सीस
ठगोरी है मेली ॥

टोड़ी] (६३३) [इकताल

डोल की डुलनि मैं विराजै झुलनि हार-बारनि की मोतिन
सिंगार अपार ओप लसै गोरे साँवरे अंग ।
अतुल रूप-जोबन की तुलनि मैं झलकत नए नए रंग ।
सरस फाग खेलि खेलि मेलि सकल सुख रीझ भीजे रुचि-तरंग ।
जमुना-तीर कुसुमित बृंदावन नित नित ही आनँदघन
बरसत सखि-समाज लिये संग ॥

टोड़ी] (६३४) [चौताला

जा पै तुम अपने ढार ढरौ हौ कान्ह प्यारे
ताहि चाहौ सु करौ ।
रोकि रहत मन नैन गैल छैल छतियाँ आनि अरौ ।
सोवत जागन कछु न व्यौरि परै मोहन गुन लै सुभर भरौ ।
इतने पै आनँदघन पिय उनए उघरे नहि जानि परौ
पराए मरम हरौ ॥

केदारो] (६३५) [चौताला

बूँदैं थोरी थोरी थोरी बहुत नीकी लागैं ।
नवजोबन-मदमाते दंपति सरस परस-रस पागैं ।
गरबाहीँ दियैं झूलत फूलत मुक्ताभरन तिलौंनियाँ बागैं ।
आनँदघन अभिलाषनि घमँडे मधुर मधुर सुर रागैं ॥

सारंग] (६३६) [इकताला

जब तैं मन स्याम को धाम भयौ ।
लोकलाज-बस त्रास को सब ही सोच गयौ ।

[६३२] तबेली=तालाबेली, छटपटाहट । [६३५] तिलौंनियाँ=सुगंधित । बागैं=जामा ।

देखतहीँ व्रजमोहन - मूरति रंग - तरंग - रयौ ।
डीठि मिले घुरि मिल्यौ दूरि तेँ संगम - स्वाद लयौ ।
अब कछु कहि न परति गति याकी छिन छिन उमँग-छयौ ।
उनयौ रहत सरस आनँदघन नित ही चाव नयौ ॥

अलहिया बिलावल] (६३७) [इकताला

नित बिहार बृंदावन राधा-मोहन करत रहैँ ।
सहज रँगीले छैल छबीले हित - चित - लाह लहैँ ।
नित व्रज नित व्यवहार नित नए तन मन पननि बहैँ ।
नित ही हित झूमैँ आनँदघन जमुना - तीर गहैँ ॥

कनरी] (६३८) [मूल

साँवलिया मेरे मन को लागू नित इत आवै ।
चितवनि चौँप जनावै भावै बंसी - टेर सुनावै ।
रीझ-लाज-बरबस यह जियरा कल नहीँ पलकौ पावै ।
हित चित की झूमनि आनँदघन कौ लौँ कोउ दुरावै ॥

केदारो] (६३९) [मूल

फूली जोन्ह सुहाई मधुरितु की वनमाली बिहरत रास ।
मधुर मालती के सिँगार सजि पहिरि बिसद बस-बास ।
साँवल गोर अनूप रूप गुन मोहन गति भौँहन बिलास ।
आनँदघन मुरली-धुनि घमँडनि ताननि झर अनयास ॥

विभास] (६४०) [चौताला

अचानक मूँदी री अँखियाँ औटपाई अछन
अछन पाछे ह्वै आय ।
हौँ जमुना के तीर इकौसेँ न्हाय वसन पलटाय सुखावति
केस कहाँ तेँ वैरी तकत हो दाय ।
जौ कोऊ कहूँ देखि पावतो तौ कहा करती हाय ।
आनँदघन अनवादनि उनयौई देखियै इन बातनि ज्यौं अनखाय ॥

६३६—घन-घर (मतना) । गति०—हास मोहन (वहीं) ।
[६३८] लागू = प्रेमी । [६३९] बस = सुवासित ।

ऐमनि] (६४१) [आडाताल

मोहन सौं नैना लागे चितवत रहत चकित इत
उतहीं निसिदिन इकटक टेक गही है।
इनकी पीर न पावै कोऊ अंजन-रजन एक वही है।
आनँदघन हित सरसत बरसत लोकलाज कुलकानि बही है॥

रामकली] (६४२) [मूलताल

इतनी माँगौं हौं हरि हाहा ज्यौं मन फिरै रावरे पाइनि।
छिन बिछोह जिनि होहु मोह बाढो अति गाढो विनती करत हौं चाइनि।
सुहृद स्याम नटनायक मोहन गोहन लेहु लगाय सुभाइनि।
आनँदघन हौ सुरस सरस करौ तच्यौ तलफ के ताइनि॥

कानरा] (६४३) [चौताल

रविकुल-मंडन खलखंडन राम प्रबल बलधाम प्रगट भए।
हित-चितकनि महा-मनबंछित को फल बिधना आजु दए।
जननी-जनक-सुकृत कहा बरनौं सुखनि परे दुख दूरि गयो।
अवधि पुरी आनँदघन उनयो सुरसमूह दुंदुभी बजावत हरषत
बरषत पुहप नए॥

सुधाग] (६४४) [चंपक

कौन के ज्यो पै कटाछ पैनाए।
काजर बिन ही करत है घाइल फिरि लै सान चढाए।
सूधे सहज हीं सालत ये इते पर बक बनाए।
जानति हौं आनदघन पिय त्यौं तानि तानि बरसाए॥

तथा] (६४५)

यह मेह मोही पै बरसैहौ।
रसभीजी चितवनि चिनाइ चाहि चौंर-चटक मरसैहौ।
मन ऑखियनि गति कहा रहौ जब मोहन मुख दरसैहौ।
उबरि बुरौंगी आनँदघन मों कों लौं जिय तरसैहौ॥

६४३–चितकनि–चातकनि (मतना)।

देवगिरी] (६४६) [मूलताल

कैसैं मिलन बनै गोपी को ।
रातिद्यौस सोचन ही मरियै क्यौं हूँ दुख न दबत या ही को ।
स्याम-रूप रीझीं ये अँखियाँ और कछू लागत नहिं नीको ।
चातक-रट लागी सुनि सजनी आनँदघन जीवन है जी को ॥

टोड़ी] (६४७) [मूलताल

वेगि लै आव री लालबिहारी प्रानपिया कौं ।
कलमलात उनके देखन कौं राखि लै बिकल जिया कौं ।
हितू जानि कै तोसौं कहति हौं चेरी मानि आधीन तिया कौं ।
आनँदघनहि मिले सियरो करि बिरहा-बरत हिया कौं ॥

तथा] (६४८)

आवीं ओ तू आवीं जान मैंडरी गलियाँ ।
ब्रजमोहन तैं डे दरस पियासियाँ पैंडरा उडीकाँ खलियाँ ॥

कानरो बागेसुरी] (६४९) [चंपक

अहो प्यारे हम सौं प्रीति करि करि अति चाड़नि
काहे कौं अंतर-पट राख्यौ ।
कपटनि की यह रीति सदा की कहूँ न साँच रस चाख्यौ ।
भँवर-भाव जित तित डोलत हौ छिन छिन नयो
सवाद अभिलाख्यो ।
आनँदघन कहूँ घमँड कहूँ उघर यह दुख परत न भाख्यौ ॥

गौरी] (६५०) [चंपक

ललन न आए अबार भई ।
मो बिरहिनि की सुरति नवीनी कहूँ नई पहिचानि ठई ।
दिन चारक तैं निपट निठुर भए पहिली चिन्हारि बिसारि दई ।
अब ऐसी जिय आवति आनँदघन पिय सौं करिहौं उघरि खई ॥

[६४८] पैंडरा०=मार्ग में खड़ी प्रतीक्षा कर रही हूँ । [६४९] चाड़=उमंग । [६५०] खई=झगड़ा ।

हिंडोल] (६५१) [चरचरी

आजु मोहि तुम्हैं वन्यौ खेल सरस बसंत को ।
भागनि फागुन के आगम मनभायौ औसर आयौ मिलि
कामिनि कामिनि-कंत को ।
गहिरे रंगनि भीजि भिजैहौं लैहौं सुख गुन-रूपवंत को ।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारे वरसैगो रस परम तंत को ॥

बिभास] (६५२) [इकताला

राधा मोहन छैल छबीली बनक सों दोऊ मदमाते होरी के ।
फागुन ओट उघरि आए गुन-हित चोराचोरी के ।
सरस खिलार चौंप भरि खेलत रूप बैस जोरी के ।
आनँदघन वरसत रस-रंगनि झकझोरा-झोरी के ॥

रामकली] (६५३) [जानाताल

राधा-रंग-विलासी, कान्ह ।
गोकुलजीवन प्रान-छबीलो गिरि-गोवरधन-वासी ।
जमुना-तीर-विहारी मोहन कुंज-कुटीर-निवासी ।
आनँदघन व्रजमंडल-मंडन वट-संकेत-उपासी ॥

रामकली] (६५४) [चपकताल

कान्ह की बँसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग ।
व्रजमोहन याके रँग राचे नित ही नयो अनुराग ।
बस कै रस दै लै अधरासव मन मान्यौ फगुवा सुहाग ।
आनँदघन पिय भिजए रिझए धनि धनि याको भाग ॥

तथा] (६५५)

मुरली गुपाल की वन बाजै ।
आछीताननि सों रस भीजि रिझवति भिजवति लाजै ।
याकी धुनि सुनि सब सुधि बिसरै कौन करै गृहकाजै ।
आनँदघन पिय प्रेमपन-पगी याहि सबै कछु छाजै ।

[६५१] तंत=तत्त्व । [६५३] उपासी=उपासक ।

मोहन-अधर महा मादक रस पीवति क्यौं नहिं गाजै ।
याको भाग कहत नहिं आवै हरि-कर-कमलनि राजै ॥

राग बिहागरो] (६५६) [जात्राताल

घोष-नृपति नंदसदन बजति है बधाई ।
प्रगट्यौ कुलमंडन व्रजमोहन सुखदाई ।
गहगह सौं सुनियत धुनि लगति अति सुहाई ।
ढोल - ढनक झाँझ - झनक गोमुख सहनाई ।
नरनारी नाचति मिलि आनँद अधिकाई ।
बोलत हैं बंदीजन बिरुद की बड़ाई ।
हरद दही भीजि रहे फागु सी मचाई ।
दूध माखन गोरस की सरिता उमगाई ।
धर अंबर औरै कछु सोभा सरसाई ।
पवन परस प्राननि कौं बहुत बिधि सहाई ।
गहमह अति माचि रही भई सबनि भाई ।
घरघर व्रजमडल मैं मंगलनिधि आई ।
कहि न परति जसुमति के भाग की निकाई ।
कृस्नचंद उदै भयौ कूख सुख - सिराई ।
सफल भयौ व्रज सुबास बिधना आस पुजाई ।
अवसर की फूल फैल चहूँ ओर पाई ।
देखत सुर बनिता मिलि पुहप - झरी लाई ।
थिर चर कौं मोह बढ़यौ हित की अगराई ।
व्रजपति के मन की उमग अति उदारताई ।
धेनु धन अनेक दियौ कीरति जग गाई ।
जसुदा को ललित ललन चिर जियौ कन्हाई ।
आनँदघन व्रजजीवन बिलसौ ठकुराई ॥

बिलावल । (६५७) [मूलताल

नंद तिहारो लाल जियौ, हो ।
बड़ी बैस बड़भागनि बिधना ऐसो पूत दियौ ।

[६५६] गोमुख=नरसिंहा ।

ब्रजरानी की कूख सिरानी ब्रज सब सफल कियौ ।
भयौ हमारे मन को चीत्यौ हुलस्यौ सजन हियौ ।
बहुत भाँति याके सुख देखौ तुमसौं कौन बियौ ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन खेलौ खाहु पियौ ॥

सारंग] (६५८) [मूल

बधावनो नंद के भवन भयौ ।
ब्रजमोहन सो पूत बुढापैं बिधना याहि दयौ ।
जसुमति रानी कूख सिरानी नित हित - लाड नयौ ।
वह सुख-सोभा सरसौ बरसौ आनँदघन उनयौ ॥

जैतश्री] (६५९) [मूलताल

बृपभान - भवन मैं मंगल की निधि है, हो ।
कीरति-कूख-मँजूप प्रगट भई सुख-सोभा-सिधि-है हो ।
इनको भाग कहा कहि बानौं कछुक कह्यौ विधि है हो ।
आनँदघन रावलि हित घमँड्यौ सरसत रस-रिधि है हो ॥

ऐमनि] (६६०) [मूल

लाडली राधा की सरस बधाई गाऊँ ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठी भास मल्हाऊँ ।
भागभरी के भाव चाव सौं नित मोहिले मनाऊँ ।
आनँदघन रस बरस दरस हित याही आँगन छाऊँ
यह न्यौछावरि हौं ह्याँ पाऊँ ॥

बिभास] (६६१) [इकताला

कीरति भई जगत-उजियारी भागभरी राधा के जाएँ ।
भाग-उदै बृपभानु पिता को जग जान्यौ मंगलमनि आएँ ।
औरै ओप बढी ब्रजमंडल नरनारी रँगमगे बधाएँ ।

६५७—याके०—के सुख देख्यौ (सतना)। खाहु—खौं (वही । ६५९—मँजूप-
तूखि (सतना), मयूप (वृंदा०)। रिधि—निधि (वही)।

[६५७] बैस=वयस्, उम्र। बियौ=दूसरा। [६५९] रिधि=ऋद्धि,
समृद्धि। [६६०] भास=वाणी।

नंद जसोदा अति ही फूले सुत-सनेह अंतर सरसाएँ।
गोकुल रावलि की हित-संपति कैसेँ आवति बरनि बताएँ।
नित नित सुख सोहिले दुहुँ घर आनँदघन भीजे गुन गाएँ॥

सारंग] (६६२) [चंपक

घरघलू बँसुरिया कौँ कोऊ हटकै।
बैठी रहन न देति घरी घर गौँहन परी है निपट कै।
धुनि सुनि बिसरि जात सुधि सबई प्रान तान-गुन उतहीँ अटकै।
लाज रीझ आनँदघन घमँडनि तन परबस मन भटकै बन
बनवारी-त्यौँ लटकै॥

देसी] (६६३) [चौताला

आजु मेरैँ आए मया करि मोहन अतिहीँ रति-रस-पागे।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक झपकि झपकि निसि जागे।
वैठौ जू हौँ त्रिजन ढुराऊँ स्रमजल सुखऊँ स्याम सभागे।
आनँदघन अलकनि धुरवा छूटे मोहिँ निपट नीके लागे॥

राग जयत] (६६४) [चपक ताल

घूमरे नैन सहजहीँ रावरे इते पै सब निसि जागि आए हौ।
वार वार झपि जात जम्हात लगत नीके ताकी चौपनि धुकन न पाए हौ।
कैसँ कैसें छूटे छबीले रस निचोरि सराबोर पठाए हौ।
आनँदघन पिय बैठौ मया करि वरसि बरसि छाए हौ॥

राग केदारो] (६६५) [झपताल

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नवमी उज्यारी।
दसरथ-निकेत जस-मंगल-उपेत वपु अतुल-बल-बिक्रम-विनोदकारी।
मानुज सछंद निज जनवृंद सुखकंद रविकुल-प्रकासक प्रतापधारी।
करुनानिधान कीरति विमल गंभीर धीर वरवीर भूभारहारी।

६६५—उपेत०—उनए तप पुंज (वृंदा०)। सछंद—सुछंद (सतना)।

[६६२] घर०=घर बिगाड़नेवाली। [६६४] घूमरे=नशीले। धुकन=झुकना, अर्थात् आराम करने, सोने का अवसर नहीं मिला।

मंडित अखंड धुनि मंगल सकल पुरी औसर अभूत सुपमानिहारी ।
जयति कौसल्याकुमार आनंदघन अवधमंडन सनातन विहारी ॥

सारंग] (६६६) [मूलताल

मोहन मुरली मैं धुनि पूरै सुर की चोखनि सौं चित चूरै ।
सुनि ज्यौं ही जानै जैसैं यह परबस परयौ बिसूरै ।
मुख उजास भौंहनि बिलास गति मति मोहै मन मैन-मरूरै ।
आनँदघन घर बैठैं भिजवै क्यौं राखौं री लोकलाज
कुलकान्यौ गरव-गरूरै ॥

धनासिरी] (६६७) [मूल

होली खेलन दै री ननंदिया ।
कान्ह गरयारैं ऊधम पारयौ सह्यौ न परत मोपै री ।
जु कछु कहैगी सोई करौंगी फागुन मैं जस लै री ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझाऊँ आजु यहै पन है री ॥

सारंग] (६६८) [मूलताल

गोकुल वधाई माई बगर बगर, प्रेम-चुहल माचो डगर डगर ।
ब्रज को चंद नंद-घर प्रगट्यौ चहुँ दिसि होति ज्योति जगर जगर ।
सोभासदन बदन मोहन को देखि जी जियैं टगर टगर ।
जसुमति-भाग धन्य आनँदघन जस-बितान छायौ नगर नगर ॥

भैरव] (६६९) [मूलताल

चलौ री वँधाएँ नंद कैं अति आनंद ।
मंगल गावैं नैन सिरावैं भाग सफल करि लेखैं देखैं मोहन ब्रज को चंद ॥

कानरौ] (६७०) [इकताला

कहा कहौं जसुदा मन को मोद ।
मोहन-मुख निहारि जो बाढ्यौ लै बैठी भरि गोद ।
अँगुरी अधर परसि दुलरावति गावति बालविनोद ।
आनँदघन रस बरसि बहायौ जनम जनम को तोद ॥

६७०–दुलरावति–हलरावति (सतना) ।

[६६५] सछंद=सपरिकर । [६६८] टगर०=ध्यान देकर देखना ।
[६७०] तोद=दुख ।

गौड़] (६७१) [इकताला

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई बोलत मधुर
पिक चातक और माते मुरवा।
स्याम घन मैं चपला-चमकनि चहूँ ओर छूटे छबीले धुरवा।
चलि राधे बृंदाबन बिहरन औसर बन्यौ है मनोरथ-पुरवा।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि
बुलावत लै रीझनि भीजे सुरवा॥

ऐमनि] (६७२) [मूल

राधा-मोहन को सुख सोचौ ताहि गाय गाय जीजै।
ब्रज बृंदावन बसत रसत अपने चायनि भायनि नितबिहार मैं मन दीजै।
परम प्रेम को सिंधु अमित अति तिनहीं को हित बोहित कीजै।
आनँदघन रसरासि पाय कै क्यौं जग-छीलर छीजै॥

ऐमनि] (६७३) [मूल

रंग रह्यौ है निपट ही लाल सौं होरी खेली।
चौंपनि रची रहस रुचि-चाँचरि जोबन-रूप-नवेली।
बस करि लियौ भावतो फगुवा अंगनि अति रति-रंगनि भेली।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस की रासि सकेली॥

टोड़ी] (६७४) [इकताला

मेरे मन नैननि के भाए, राधामोहन छैल सुहाए।
होरी-खेल के बसन बनाए, अंग उमंग रंग सरसाए।
नीके लगत कहा ए, चौंपनि रचि रुचि-राग जमाए।
परम अनूप रूप दरसाए, मादक धुनि मति-प्रान छकाए।
जमुनातीर आनँदघन छाए, सरस बिलास पुंज बरसाए,
ऐसेई लखौं सदा ए॥

तथा] (६७५)

मोहि तुम हीं तुम दीसत हौ, स्याम उजियारे नैननि के तारे।
इनने पै जौं न दीसौ तो प्रान परेखनि पीसत हौ।

[६७१] पुरवा=पूर्ण करनेवाला। [६७२] छीलर=तलैया। छीजै=छूजै।

तुमहीं जु दीसि परी सोई देखौ पनहिं न खीसत हौ ।
आनँदघन पिय न्यौति पपीहनि प्यास परीसत हौ ॥

विभास] (६७६) [चौताला

भुज भरि भरि गाढ़ैं लगाई री सु तू छतियाँ प्यारैं ।
आनन पियराई धरक हियराई लडाई बहुत भँतियाँ प्यारैं ।
पीक कपोल सुहाग छाय जगी लगियै आवनि आखैं
मदमातियाँ प्यारैं ।
अंग अग ऊठ अनूठो भई आनँदघन घुरि घुरि ढुरि
ढुरि भिजई रिझई मन रतियाँ प्यारैं ॥

बिहागरो] (६७७) [इकताला

भरोसो रावरो हमैं ।
पिय ब्रजचंद कौन धौं टारैं तुम बिन ताप-तमैं ।
हौ हरि दुख हरिहो करि सुख ज्यौं दृग रूप रमैं ।
आनँद-अमी-बरस सुदरस दै सींच्यौ स्याम समैं ॥

कानरो] (६७८) [इकताला

आवन दै होरी धीरी रहि ।
कहा नचावति मोहन अवगरी लैहौं दाव भावतो गहि ।
बहुत रही बचि रचिहै तब जब कोऊ कछु सकत नहिं कहि ।
आनँदघन घुरि भलै भिजैहौं अब तौ रहत मसोसनि महि ॥

सुद्ध बिलावल] (६७९) [ताल तीन

नंदनंदन-चरन चुंबन करि भलैं मन मेरे ।
सदा वृंदावन-बिलासी तरनिजा-तट नेरे ।
राधिका संग रासमंडन ज्योति-मंडल घेरे ।
मोद परम पयोद चातक प्रानजीवन हेरे ॥

[६७५] खीसत=नष्ट करते हो । परीसत=परोसते हो । [६७६] लगाई=प्यार की हुई । ऊठ=छटा । [६७८] अवगरी=बुद्धिमती ।

पूरबी] (६८०) [चंपक

मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखे बिन न रहति ।
सब मिलि देति बहुत बिधि सिख सखी ये अमैंड तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भीजि रीझि रहीं औसेरनि जल बहति दहति ॥

(६८१) [आड़ चौताला

ब्रज को बिरह बरनै कौन ।
टरत बिचार बिचारि हिय तें गहति बानी मौन ।
स्याम बिछुरे कहाँ कैसैं ह्वै रह्यौ सब स्याम ।
बिछुरि मिलि मिलि बिछुरि जीवत मौन टेरत नाम ।
यह सँजोग बियोग व्यापनि बचन क्यौंऽब समाय ।
मन कहाँ या रस - परस को सुनत जड़ ह्वै जाय ।
ते लहैं ढूँढ़ैं तेई सोई सहैं यह घूम ।
हाय ब्रज - व्यौहार - गति अति मतिहि बितुनति धूम ।
लाल ब्रजमोहन छबीलो रैनिदिन दृग-संग ।
घमंडि घुरि घुरि उघरि बरसत चौंप-चेटक-रंग ।
रमन ब्रजबन गिरि जमुनतट मचि रह्यौ यह खेल ।
भावसर बढ़वार आनँदघन महा रसरेल ॥

धनासिरी] (६८२) [मूलताल

कछु न सुधि परति हिरानो हाय ।
ब्रजमोहन को बिरह सखीरी जा बिध व्यापत आय ।
मेरी कहा रौर ब्रज माची जहाँ जहाँ कान्ह - पुकार ।
आनँदघन झर लग्यौ सदाई देत न नैन उघार ॥

सारंग] (६८३) [इकताला

जमुनातीर की बतियाँ ।
ब्रजमोहन के संग रंग मैं सरद - समै रतियाँ ।

[६८१] घूम=नशा; चक्कर । बितुनति=रेशा रेशा पृथक कर देती है । धूम=नेर्जा में ।

सरकति नहीँ सरक हियरे तेँ हूक उठति छतियाँ।
आनँदघन पिय प्यासनि टपकति वरुनी वैंलतियाँ॥

बिहागरो] (६८४) [इकताला

रंगमहल मैं ललन बिहारी।
बैठे अति उमंग रति-बाढ़े ढिग लै प्रानपियारी।
सेज-बसनि छवि बसो हिये मैं लटकि रही उजियारी।
आनँदघन बृंदावन रस-झर जमुन-पुलिन सरसारी॥

टोड़ी] (६८५) [चौताला

उमँडि उमँडि घुमँडि घुमँडि धुरि घुरि दुरि दुरि खेलत
राधा-मोहन रस-फागु रवानी।
बिकसि बिकसि निकसि अपने अपने झुंडनि तेँ झूमत झुकत
झपटि लपटि बातनि बातनि कहत गहन वनक बनी मनमानी।
मचत रचत पचत बचत नचत लचत घिरत भिरत मोरत
झकझोरत करि ऐंचातानी।
आनँदघन भिजवत रिझवत भींजत रीझत रस लेत देत मन-
मैननि सुखदानी॥

देसी] (६८६) [इकताला

देखौ हो राधा को भाग फाग याही बनि आई है।
ब्रजमोहन ब्रजराज लाड़िलो भींजि रह्यौ याकैं अनुराग।
पूरयौ करत सदा मुरली मैं अरु मुखहूँ याही के राग।
यासौं रचि ब्रज सबै रचायौ चटक चढ़यौ पूरन पन-पाग।
याके अंग-रंग की राचनि नखसिख लौं सनि रह्यौ सुहाग।
कही न परति याहू के हिय की नित नित निपट नवेली लाग।
खेलन कौं पायौ मनभायौ सुंदर बृंदावन सो बाग।
हित-चाँचरि घमँडनि आनँदघन नित टत फबी इन्हैं यह फाग॥

धनासिरी] (६८७) [चौताला

रसना गुपाल के गुन उरझी।
बहुत भाँति छलछंद-बंद बकवाद-फंद तेँ सुरझी।

ब्रजमोहन-रस-चसकैं बीधी हिलग-जाल गसि गुरझी ।
आनँदघन रसपान - चातकी आन-कथा-रुचि मुरझी ॥

टोड़ी] (६८८) [मूलताल

ललित लतानि हिंडोरैं झूलत राधा-मोहन रीझनि भीजे ।
रूप अनूप गौर साँवल मिलि परसत तरसत सरसत बरसत
दरसत पुलक-पसीजे ।
जमुना-तीर कुंज मंजुल मैं अति रति-बाढ़े अधिक अधीजे ।
वृंदावन आनँदघन घमँडनि पूरन - प्रीति - पतीजे ॥

(६८९)

दृगनि मनोरथदायक रथ चढि निकसे मोहन स्याम ।
ब्रजजुवराज बिराजित अतिहीं पहिरैं मोतिन - दाम ।
सुरँग लपेटा लेत लपेटैं अलक - पेच परि सोहैं ।
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि चाहत ही मन मोहैं ।
केलि - कमल सूँघ्यौ मो घाँ तकि मुसके छैल बिहारी ।
रूपनिकाई निरखि बिकाई हौं हूँ चकित निहारी ।
सुबल सारथी अधिक पियारो बदन-चंद्रमा नीको ।
ताहि जतावत मरम हिये को निपट मंन मिलौ जीको ।
गोकुल चारु चौहटैं चौंपनि देखनि कौं सब झूमैं ।
मादक रूप छके नरनारी बिबस रीझ-वस घूमैं ।
कौतुक हेत भावतो नागर डोलै अपनैं चायनि ।
वगर गरयारें ग्वैंड़ैं या विधि रचत रँगीले दायनि ।
पुहप - झरा जितहीं तित लागै सबकौं सब बिधि भावै ।
जसुदाजीवन नंदलला दिन आनँदघन बरसावै ॥

सकराभरन] (६९०) [इकताला

देख्यौ देख्यौ राधा को वृंदावन देख्यौ ।
जीवन जनम करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ ।

[६८८] अधीजे=अधैर्य, अधीर । पतीजे=विश्वस्त । [६८९] दाम=माला । सुरँग=लाल । लपेटा=पगड़ी । परि=अधिक । घाँ=ओर । सुबल=एक सखा । जीको=जिसका । दिन=प्रतिदिन ।

जमुना के तट सजल स्यामघन सब दिन सहज सुहायौ ।
दंपति सुख - सपति निज मंदिर हित-मंडप नित छायौ ।
सब तैं ऊँचो लसत पुहमि पै दीसत दूरि दुरायौ ।
अमल अखंडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ ।
मोहन महा मदनमोहन को बानक बरनौं कैसें ।
दरस्यौ बरस्यौ करौ सदाई आनँदघन यह ऐसें ॥

तथा] (६९१)

सलोने साँवरे हाँ मोहो मुरली मधुर बजाय ।
जमुना-जल कौं जाति हो मेरी आँखिनि लाग्यौ आय ।
नैननि मैं ललचानि सौं हियो मो त्यौं उन मुसिकाय ।
ता छिन की गति क्यौं कहौं मेरो अजहूँ हियो घुमाय ।
देख्यौई भावे सखी बिन देखें ज्यौं अकुलाय ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं सूझो यहै बनाय ॥

सारंग] (६९२) [इकताला

जो कोऊ वृंदावन बसि जानै ।
सब कछु तज भजै हरि-राधा मन पूरन पन ठानै ।
छक्यो रहै भरि भाव निरंतर करि लीला-रस पानै ।
रसिक-संग रुचि-रंग रचै नित प्रीति-रीति उर आनै ।
चकित नैन चाहै द्रुम-बेली दंपति-हित पहिचानै ।
घूमत फिरै तीर जमुना कैं निधरक ह्वै गुन गानै ।
आस-पास रज ही मैं राखै स्रम न करै भ्रम भानै ।
आनँदघन रस भीजि रीझ सौं जनम-सफलता मानै ॥

बिहागरो] (६९३) [झूलताल

मेरो मन मोहन मान्यौ है ।
देख्यौ करौं साँवरी मूरति यह पन ठान्यौ है ।
मुरली तान-बान हिय बेध्यौ कमि करि तान्यौ है ।
रीझनि घमँडि रह्यौ आनँदघन मैं है जान्यौ है ॥

[६९१] घुमाय=चक्कर खा रहा है । बनाय=भली भाँति ।

गौरी चैती] (६९४) [मूलताल

को पावै मेरे मन की पीर ।
सही न परति कछु कही न परति है कैसैं भरौं कहा करौं बीर ।
साँवरैं बरन मनहरन छबीलो डीठि पर्‌यौ जमुना कैं तीर ।
जोबन-जगमगे रँगमगे अंगनि देखि भई हौं अधिक अधीर ।
कदम-तरैं बनमाल गरैं लखि उर बाढ़ी अभिलाषनि भीर ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रितयौ घट नैननि भरि नीर ॥

कालिंगरा] (६९५) [इकताला

आवै आवै हे देख्यौई भावै उजियारो स्याम सुहावै ।
गोकुल को कान्ह कहावै मनमोहन बैन बजावै ।
सुनि चेटक मनहि लगावै रसभीजी ताननि गावै ।
चितवनि मैं चोंप जनावै मेरोऊ ज्यौ ललचावै ।
कोउ कौ लौं हिलग दुरावै आनँदघन उघरि भिजावै ॥

आसावरी] (६९६) [चौताला

कान्ह गुवार नै गैयनि घेरि घेरि मन घेर्‌यौ ।
प्रीति-रीति परतीति जनाई गोरी कहि कहि टेर्‌यौ ।
हौं सुनि समझि रीझि भीजी उरझि मुरझि नहिं परत निबेर्‌यौ ।
आनँदघन तन चोपनि घमँड्यौ क्यौंहूँ फिरत न फेर्‌यौ ॥

सारंग] (६९७) [मूलताल

मोहिं न कल है सुनि पलकौ घर मैं मोहन बंसी बाजै ।
उमगि उमगि मन बन कौं धावत गनत नहीं कुल-लाजै ।
ऐसैं कैसैं भरौं कहा महा कठिन उदेग उपराजै ।
आनँदघन सौं उघरि घुरौंगी उसरि पैज की पाजै ॥

बिलावल] (६९८) [इकताला

छबीलो रसिकराय नवरंग ।
सुंदर वर मुरलीधर प्यारो व्रजमोहन सब अंग ।

[६९७] उसरि=तोड़कर । पैज=प्रतिज्ञा । पाजै=बाँध को ।

व्रज की सोभा मंगलमूरति ग्वालमंडली-संग ।
उनै उनै बरसत आनँदघन दिन अनुराग अभंग ॥

(६९९)

अरी पनघटवाँ आनि अरै ।
अटपटि-प्यास-भरो व्रजमोहन पलकनि ओक करै ।
रुचिर चाय ललचाय निहारै मेरोऊ धीर हरै ।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोँपनि लाय भरै ॥

(७००)

अरी पनघटवाँ जान न देइ ।
मुरली बजाय हरै घट-पट सुधि मन अपबस करि लेइ ।
जितहि जाउँ तित आढ़ौ ठाढ़ौ टरत न मारग सेइ ।
रोम रोम भिजवै आनँदघन हियरा मदन-खखेइ ॥

बिलावल] (७०१) [इकताला

अरी तेरे कान्ह की बलाय मोहिँ लागौ ।
आँखिन को तारौ सब गोकुल-प्यारौ जीवौ जागौ ।
याकै सुख सब ही कौं सुख है डालौ आँखिन आगौ ।
उनै उनै आनँदघन बरसौ बैरिनि के उर दागौ ॥

(७०२)

नित समाज व्रजराज कौ, नित गोधन की भीर ।
नित नित मंगल गाइयै, कान्ह कुँवर बलबीर ॥

सुघराई] (७०३) [चंपकताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई ।
सुघराई सुर सौँ मुरली मैँ अपनीये तान बजाई ।
मोहिँ जताई मैँ हौ पाई उनकी हित-अगराई ।
आनँदघन पिय घर बैठे हू रीझनि भीजि भिजाई ॥

[६९९] ओक=चुल्लू, अंजली । [७००] आढ़ौ=बीच में । खखेइ= पीड़ित, छुटीला करके ।

विभास] (७०४) [इकताला

अनोखे ये दिन होरी के।
कैसैं कै कोउ भरै करै कहा अति बरजोरी के।
उघरि करत उखनींद अचगरौ नंद महर को छैल।
लै करि संग इकमनै ग्वारनि रोकत वन घट गैल।
तनक न कानि करत काहू की तकत नवेली बाल।
फागुन के मिस मसरि गुलालै पकरि करत उरमाल।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कान्ह ऐठि गुलचाय।
आनँदघनहि भलैं करि भिजवैं रिझवैं नाच नचाय॥

सारंग] (७०५) [इकताला

फागुन राच्यौ है ब्रज बाखरि बाखरि माच्यौ है खेल खिलारन।
ग्वारमंडली लै ब्रजमोहन डोलत गैल-गरधारन।
निपट अटपटो औसर पाएँ तकत अटारिन द्वारन।
कहूँ झपट कहूँ लपट कहूँ कछु को बरजै मतवारन।
आजु सखी या ओर भोर तैं ऊधम देत अपारन।
दूभर परयौ पनघटाँ जैबो हरि कौं साँझ-सवारन।
हासी को सतिभाव करत है पैठत ठेलि किवारन।
थर थर कँपति रहति आनँदघन बरसत गोराधारन॥

कनरी] (७०६) [मूलताल

अरी गंगा हौं तेरो गुनगायक अब तू अपनोई गुन करि री।
मधुसूदन-पद-प्रीति बढ़ै नित ऐसो भाँतिनि ढरि री।
जगत-जीव-निस्तारिनि जननी दीन जानि हिय को दुख हरि री।
आनँदघन रस छाऊँ आऊँ तेरैं तीर कहत हौं पायनि परी री॥

विभास] (७०७) [चौताला

हरिपद-जनित जगत-पावन जल जानि गंगा सीस धरैं हर।
और कहा कहि महिमा वरनियै यह देखी सर्वोपर।

[७०५] गोराधारन = मूसलधारा।

मोहिं मिली महामंगलदायिनि मगन रहौं नित हौं याके वर ।
सरस दरस रसपान गान गुन लाग्यौ आनँदघन-झर ॥

भैरौ] (७०८) [चौताला

अगनित गुन रावरे गुपाल ।
तिहारी कृपा तैं एहो कृपानिधि गनि गनि करि राखौं उरमाल ।
मुरलीधर स्यामसुंदर वर राधामनि नैन विसाल ।
आनँदघन उदार व्रजजीवन सब ही भाँतिनि दयाल ॥

सारंग] (७०९) [इकताला

व्रजमोहन देख्यौ चेटकी ।
कहा कहौं कछु कहन न आवै बात अचानक भेट की ।
लई लुभाय सुभाय तुरत हीं, चितवनि चाँप-लपेट की ।
भूलत नाहिं भटू कैसैं हूँ भरनि सु पलकनि जेट की ।
अब कित क्यौं हूँ कल परति न वा विन करि गौ सैन मह्ेट की ।
आनँदघन प्यासनि व्याकुल ह्वै हितू कहति हौं पेट की ॥

बिलावलि] (७१०) [इकताला

तुम्हैं जु कछु आछी लगै सो करियै स्याम ।
मन चाहै तन-सँग ह्वै बन मैं बिसराम ।
अज उमाधव से जाचहीं रज अगम सुधाम ।
तहाँ कौन हौं बापुरो अति असुचि सकाम ।
सुहृद सुजान उदार हौ करुनानिधि नाम ।
व्रजनायक लायक सुनैं गाऊँ गुनग्राम ।
सोच-विमोचन हौ सदा लोचन-अभिराम ।
कृपा-दृष्टि तैं सब सधै यह केतिक काम ।
सुढर सुगम सुमिरत रहौं नित आठौ जाम ।
आनँदघन हौ घमँडि कै मेटौ दुख-ग्राम ॥

सारंग] (७११) [इकताला

मुरलियावारे साँवरे नैंक ठाढो रहि रे ।
मान लै चल्यौ हाथ करि मेरो को धौं कहि रे ।

[७०९] जेट=ढेर ।

गोकुल गाँव अनीति होति है गैल चलत सकियै न निबहि रे।
चेटक-गुननि भरयौ आनँदघन निरख्यौ परख्यौ अबहि रे॥

टोड़] (७१२) [मूलताल

जियहु जसोदा मैया जियौ पिता ब्रजराज।
या ब्रजमोहन कैं हित लाड़ लड़ावन चावन दिन दिन सुखनि समाज।
यह धन धाम बिराजौ जुग जुग या घर सौं सब ही को काज।
उनै उनै बरसौ आनँदघन ब्रजमंडन सिरताज॥

मलार] (७१३) [चौताला

सुरति - सुख - बेली सरसति रंगनि।
ललित लहलहो चपला - चौंपनि चाँपति नव-घन-अंगनि।
स्रमजल-कन पुहपावलि-प्रगटनि कूजित कोकिला-काकली-संगनि।
जमुना-तट बृंदाबन आनँदघन झर लाग्यौ है उमंगनि॥

ललित] (७१४) [मूलताल

घरघलू बँसुरिया बैर बढ़ो है।
ब्रजमोहन मुँह लाइ बिगारी अति ही गरब चढ़ी है।
देति डुलाइ ठौर तैं मति - गति चेटक - मंत्र पढ़ी है।
तान-बान बरसति आनँदघन हियराँ जाति कढ़ी है॥

बसंत] (७१५) [इकताला

खेलौंगी बसंत रँगीले प्रानपिय सौं।
न्यारे न करौंगी छिन आँको भरि हिय सौं।
ब्रजमोहन उजियारे नैननि के तारे कैसैं कै मिलन
देहौं काहू आन तिय सौं।
आनँदघन सुजान गुन-रूप के निधान राखौंगी समोइ
भोइ जियराहि जिय सौं॥

एमनि रागिनी] (७१६) [इकताला

मन न रहै मेरो ब्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेलें बिन।
झुरि झुरि झुरि झुरि कौ लौं रहौं री बिधिना दियौ है ऐसो दिन।

अपने रंगनि भलैं भिजऊँगी जैसैं हौं भिजई वर मैं इन।
आनँदघन सनेह की घमँडनि जानी है अब सबहिन॥

सारंग] (७१७) [चंपकताल

जानिहौं जौ आज अछूते बचौगे।
होरी-मिस करि नाक नचावत पै तुम नीकैं नचौगे।
चपल चखनि काजरु भरिहैं करिहैं तेई हाल लाल ज्यौं लचौगे।
आनँदघन रिझवैंगी भिजै छूटन को छंद क्यौं रचौगे॥

धन्यासिरी] (७१८) [झूलताल

राधा कैं हिंडोरैं हाहा तनक झुलाय कब की कहति
यौं हौं अब न डुलाय।
अंग-संग रंग की उमंग उर बढ़ी अति कहाँ लौं धीरज
धरौं मन अकुलाय।
रँगीले रिझवार सज़हु वधु-सिंगार सोभा-सुख हेरैं रहे सुरति भुलाय।
जतन ललन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की पाहुनी कहि
लैहौंगी बुलाय॥

तथा] (७१९)

को है जू विसाखा यह पाहुनी तिहारी।
साँवरे वरन मन हरति लजौंहीं बानि ऐसी धौं लगनि
कहूँ कबहूँ निहारी।
मेरे मन भावति है झूलै तौ झुलाऊँ याहि हौं तौ याकी
ऊठ को परख पनि हारी।
झूलि फूलि रस लेहु बरसौ आनँदमेहु गहवर वन
ये विहंगम विहारी॥

केदारो] (७२०) [चपक

जो तुम बनावौगे सोई बनिहै मेरो सोच कहा।
अब लौं तुम सब नीकी बनाई बनाइहौ नीकी महा।

७१८—तनक-तन की (लंदन)। अंग—अम (वही)। भुलाय—गुमान (वृंदा०)। जतन०—अतन-जतन (सतना)।

[७१८] जतन=यत्न, उपचार।

मंगलमूरति सब सुखदायक ब्रजनायक गुन-निकर अहा।
दीन पपीहा त्यौं ढरिबो आनँदघन टेक लहा॥

कालिंगरा] (७२१) [इकताला

वृंदाबन नीको लागै है।
सजल सघन स्यामसुंदर-प्रेम-बागै है।
जमुना कैं तट सोहन महा हियरौं खागै है।
आनँदघन मुरलिका-धुनि कोकिला रागै है॥

गंधार] (७२२) [मूलताल

सुण सुण वो गुमाॅनियाँ मोहन प्यारियाँ चलदा क्यौं नहीं राहीं।
रब्वे दी वल नजर न करदा न डरदा गरीबाँ दी आहीं॥

गंधार] (७२३) [चंपकताल

जमुना-जनक जगत-उजियारे अदिति-कुँवार दृगनि के तारे।
जलज-बंधु विज्ञान-प्रकासक बंदनीय कुलदेव हमारे।
सविता सूर सकल सुखदाता परिपूरन प्रताप जस भारे।
आनँदघन कौं यहै सुरस दीजै दरस देखि गावै नंददुलारे॥

विहागरो] (७२४) [इकताला

खेलत सरस फागु नवल रँगधाम राधिका गोरी मोहन स्याम।
प्रेम रूप अनुराग उमँग सौं दरस परस रसमसे परसपर
भरि ढरि रंग ललाम।
कहा कहौं रहौं चाहि चकित ह्वै अंग अंग अभिराम।
झुरमुट मचनि रचनि रुचि चाचरि नचनि लचनि सुख-
सचनि चाँप वारियै कोटि रति-काम।
जमुना-तीर मधुर वृंदाबन विलसत सदा कुंज-बिसराम।
फगुवा दैनि लैनि मनमानी आनँदघन घुरि घमँडि
उमँडि हित बरसत आठौ जाम॥

सावंत] (७२५) [मूलताल

होरी रे होरी रे कान्हा कहा करि पाई।
गोहन लग्यौ रहत दिन दिन अब निकसैगी रसिकाई।

[७२२] रब्वे०=ईश्वर की ओर।

आजु हमारैं हाथ चढ़्यौ तू चपरि गयौ करि करि लॅंगराई ।
छलबल छाय छाय झूम्यौ आनँदघन सबै उघरि आई ॥

भैरव] (७२६) [मूलताल

मंगल आरति जगमंगल की करियै मंगल रूप निहारि ।
मंगल व्रज मंगल वृंदावन मंगलदायक जमुना - वारि ।
मंगल गोपी गोप धेनु हित गिरि गोधन मंगल-विस्तारि ।
मंगल मुरली-धुनि आनँदघन मंगल गुन-लीला उर धारि ॥

बसंत] (७२७) [चरचरीताल

कुसुमित वनराज आज देखेँई वनि आवैं री ।
जमुनातट सघन स्याम कैसी छवि पावै री ।
पवन - बस पराग - पुंज कुंजनि पर छावै ।
मधुप - गुंज मंजु घोप आनँद उपजावै री ।
तरु वेली-वलित ललित उमँग उर बढावै ।
नूत - मुकल - कलित मुदित कोकिल गावै री ।
मुरली - रस जु रली धुनि सुनियै अति भावै ।
तेरे गुन गाय गाय भेद सौं बुलावै री ।
चलि बलि अब निकरि गहर समझि चौंप चावै ।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री ।
वृंदावन - रानी तू वेदौ विरुदावै ।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस बरसावै री ॥

बिभास] (७२८) [इकताला

मेरो चित चाहै री नित चाहै निधरक भेटौं सुंदर स्यामैं ।
रूप जोवन गुन कहा करौं जौ आवै न प्रीतम - कामैं ।
न्यौज लगौ गोकुल-धरम निगोड़ो मोहि कहा मीठो है यामैं ।
आनँदघन जीवनधन मेरैं जीवति लै लै नामैं ॥

बिभास] (७२९) [चरचरीताल

प्रानअधार हौ जू मेरैं सुंदर नंदकुमार ।
दरस दुखारे नैन विचारे तरसत बरसत हैँ दिनराति आइ देहु रुचार ।

दया लेहु जिन देहु अनाकनी तुम तौ परम उदार।
आनँदघन पिय सुनियै हा हा दीन-पुकार ॥

सारंग] (७३०) [मूलताल

आवति है मुरली की टेर।
गिरि घाँ तँ जमुना त्यौं सुनियति भई गैयनि जल दैबे की बेर।
चलौ सखी पनघट जैयै पैयै मोहन-दरस लागी कब की औसेर।
आनँदघन अभिलाष घमँड हिय बढ़ी रहति है साँझ-सबेर ॥

कल्यान] (७३१) [इकताला

सलोनो स्याम उज्यारौ ब्रजलोचन को तारौ।
ताक लगाय फिरत फागुन मैं जोबन को मतवारौ।
आँखिनि पैठै हियराँ बैठै क्यौं हूँ टरत न टारौ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ-सबारौ।
मसरि गुलाल कसरि-सब काढ़ै चेटक-भरयौ ठगारौ।
नकवानी करि लेत इते पै लागत है अति प्यारौ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै खौरि खगै अपढारौ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

रामकली] (७३२) [चरचरीताल

सलोने साँवरे गुपाल आँखिनि लागि रहे रूपनिधि
रसाल, केसरि की खौरि रचैं भागभरे भाल।
चितवनि चित चोरि लेति घूमरे नैन बिसाल।
कुंडल चटक भृकुटी मटक लटक-भरी चाल।
कौस्तुभमनि कंठ दिपत उर वर बनमाल।
सुदर सुढर दीरघ भुजा मोहन-ब्रजबाल।
आनँदघन जीवनधन रसिक नंदलाल ॥

[७३१] खौरि०=दुष्टता करके कष्ट भी देता है और आपसे आप अनुकूल भी हो जाता है।

राग गौर सारंग] (७३३) [मूलताल

जै जै जै श्री बामन बिसाल ।
कृपासील महासील नरोत्तम नितहीँ नित दीनदयाल ।
सत्यबद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल ।
सच्चिदानंदघन अनघ त्रिविक्रम-पद-नख-जल जग सुजस-जाल ॥

ऐमन] (७३४) [चंपरताल

मुरलिया केतिक छंद पढ़ी है ।
लगियै रहति मोहन-मुख यातें अतिहीँ गुमान बढी है ।
हम कहा जानैँ भोरीँ बिचारीँ गवेलिनि की मति मोहमढी है ।
आनँदघन पिय रीझ-भिजै इन हाथ किये इन चेटक-चौँप चढी है ॥

आसावरी] (७३५) [चौताला

मेरो काहू सौँ न अब कछु काम है ।
जिय को जीवन नैनन को तारो प्यारो उजियारो मोहन स्याम है ।
कोरि चवाव करौ किनि कोऊ मो कौँ तौ वाही को पन अस्ट जाम है ।
आनँदघन रसमूरति मैँ मेरे प्रान-पपीहनि बिसराम है ॥

मलार] (७३६) [इकताला

बदरा उनै आए बरसन लागे रस ही रस ।
ब्रजमोहन सँग हौँ बन भीजी रीझि परी उनकैँ बस ।
अंतर निपट भिजै घर पठई रुकत नहीँ करि हारी बहुत कस ।
उघरि घुरौँगी आनँदघन सौँ अब सब तजि सजि पटदस ॥

राग सारंग] (७३७) [चंपक

अजौँ मुरली की टेर वहै सुनियति है होइ नहिँ कानिनि ।
निकसति नाहिँ कहा धौँ करियै पैठि रही पापी प्राननि ।
मोहनमूरति आगैँ ठाढी मन की रीझ नहिँ बननि बखाननि ।
भौँह तानि हँसि हेरि आनँदघन बरसत रस-बूँदनि बाननि ॥

आसावरी] (७३८) [इकताला

अब मोहिँ राखि लीजियै अपनैँ चरन-कमल की छाँह ।
डगमगात हौँ सुनौ हो गिरिधर एक तिहारी बाँह ।

[७३६] पटदस=सोलहो शृंगार ।

रह्यौ न काम कछू काहू सौं पालत प्रान रावरी आँह ।
आनँदघन दुखताप मैंटियै कीजै कृपा - सिराँह ॥

धनासिरी] (७३९) [मूलताल

हमकौं तिहारी है हो सरन हरि ।
जगमंगलकारी जदुनंदन अंतर - ताप - हरन ।
अंतरजामी सब - सुखस्वामी बंछित - पूरनकरन ।
करुनानिधि उदार आनँदघन जीवन - पोषन-भरन ॥

टोड़ी] (७४०) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौं गहि करत कान्ह केतेऊँ काम ।
गिरि गोवरधन घटिया घेरत हेरत हौ नव वाम ।
हौं जानति जैसे हौ मोहन गोहन लागत सोहन स्याम ।
आनँदघन कहा झूमैं आवत घर जान देहु किनि फिरत बरावत घाम ॥

तथा] (७४१)

स्याम सलोने सौं आई है मनभाई रति मानि ।
अंगनि औरै ओप पसीजैं अँखियनि मैं सिथलानि ।
बगरे बार भीनैं सार मैं झलकति अधर नई अरुनई-सरसानि ।
आनँदघन पिय रीझ घमॅड सौं भरि भैंटी रस सानि ॥

सारंग] (७४२) [कपोती ताल

बरसानेवारी राधा नंदीसुर को मोहन ।
निपट रसीली छबीली जोरी देखि सिरात जोहन ।
इनको प्रेम सदा ब्रज व्यापक सबके मन-दृग इनहीं मोहन ।
आनँदघन रसभीजे बिलसौ सरस मनोहर दोहन ॥

धन्यासिरी] (७४३) [इकताला

मेरी कहा सकति जो गुन गाऊँ, गुन गाऊँ मन परचाऊँ ।
जिनको पार न पावत कोऊ तुम लौं हौं कैसें आऊँ ।
लीला ललित परम पुरुषोत्तम क्यों सुरूप उर ठहराऊँ ।

[७३८] आँह=भरोसे । सिराँह=शीतलता । [७४०] बरावत०=घाम बचाते हो, कष्ट देने में लगे हो । [७४१] सार=वस्त्र ।

भूले भ्रमत बड़े बिधिहू से कौन रंक का विधि धाऊँ।
सुनौ स्यामसुंदर ब्रजनायक यह रस लै रसनैं प्याऊँ।
आनँदघन उदार जगजीवन कृपा-भरोसँई छाऊ॥

तथा] (७५४)

आजु राधा वलि प्रगट भई।
जसुमति सुनत चली कीरति कैँ नखसिख मोदमई।
कनियाँ किये छबीले लालहि चित हित-चौंर नई।
सौंज बधाई की सब सजि के नीकी भाँति लई।
भाग-सुहाग-भरी की सोभा त्रिभुवन ओप दई।
सुत-सोहिलो मनावत मन मैं अतिहीं रंगरई।
नंद परम आनंदनि भीजे हिय मैं उमँग छई।
हुलसि हुलसि भेँटत वृषभानैं जीवौ सुकृत-जई।
गोकुल रावरि एकमेक ह्वै प्रेमघटा उनई।
कही न परति आनँदघन घमँडनि सब उर-ताप गई॥

(७५५)

बरसाने की तीज सुहाई। हरियारी सबहिनि मन भाई।
कीरति उबटि न्हवाई राधा। अपनी लाडलरी हित-साधा।
मेहँदी रची रुचिर कर-पाइनि। ललित लली कौं सजति बनाइनि।
पाटी पारि दियौ दृग अंजन। वारौं कोटि सरद के खंजन।
सुरँग ओढनी ढिगनि साँवरी। छवि-फवि पै बलिहार जाँव री।
भूषन बनक तनक क्यौं कहियै। देखत देखत देखत रहियै।
रूपमाधुरी बरसति रंगनि। फूली मात समात न अंगनि॥

सारंग] (७५६) [चौताला

मेरे अरु गुपाल के बीच मति कोऊ परौ हो।
मोहिं उन्हैं रसखेल मच्यौ है जो जाके जिय मैं सु धरौ हो।
बारह मास फाग सुख या ब्रज हौं उन वे मो रंग ढरौ हो।
जौ होरी-औसर विधना दयो तौ आनँदघन दुरि ममतनि उघरौ हो॥

[७५५] ढिग=किनारा।

ललित] (७४७) [चलती ताल

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय रिझाय लई ।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढ़ौ भोरहीं भेंट भई ।
देखतहीं मनमोहन मूरति सब बिधि बिसरि गई ।
आनँदघन पिय हँसि चितवनि मैं नखसिख लौं भिजई ॥

सारंग] (७४८) [इकताला

जेठ दुपहरी को सुख लेत ।
राधा मोहन सहज सनेही करि बन घन संकेत ।
लीला-मगन रहत रससागर उमँगत हिय भरि हेत ।
झूमि झूमि बरसत आनँदघन भरत मनोरथ - खेत ॥

सुघराई] (७४९) [चंपकताल

बदराऊँ नए नए नए ।
स्यामसुंदर मनभावन आवन के सगुन भए ।
मोहिं भरोसो है उनको बदि साँची अवधि गए ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैहैं चातक - प्रान तए ॥

मलार] (७५०) [इकताला

पचरँग पाट बिचित्र पवित्रा पहिरैं मोहनमदन गुपाल ।
उर बिसाल पै अति दुति बाढ़ी ब्रजगोरिन मन-लोचन-जाल ।
जूरा दियैं कियैं नटवर वपु केसरि-खौरि बिराजति भाल ।
छके नैन अनियारी भौंहैं हँसि हेरनि मैं करत निहाल ।
अबिरल कुटिल रुचिर अति मेचक छुटे छबीले अलक बिसाल ।
मनिकुंडल मिलि बिमल कपोलनि छलनि छलत मति की गति हाल ।
जमुना - तीर लसत नवरंगी धरैं बैन बर तरैं तमाल ।
कही न परति राग-रचना की थिर चर सुनत होत बेहाल ।
निज-उतसव-सुरूप ब्रजमोहन करत रहत रसरंगनि ख्याल ।
रीझ-भिजै रह्यौ सबहीं ब्रज आनँदघन गुन-रूप-रसाल ॥

[७५०] पाट=रेशम । पवित्रा=रेशमी दानों की माला । मेचक=काले । हाल=तुरत ।

बिभास] (७५१) [इकताला

एक पालनैं झुलावति जसुमति कीरतिकुँवरि आपनैं लालैं ।
कही न परति अति आनँद की गति वारि देति मनि-मोतिनि मालैं ।
ओड़ि ओडि आँचर बिधना पै माँगत कुसर प्रीति-पन पालैं ।
इनै इनै बरसौ आनँदघन गोकुल रावलि करत निहालैं ॥

पूरबी] (७५२) [इकताला

ए देखौ देखौ मुरली की विराजनि ।
ब्रजवधूनि की सुधि बुधि कौँ हरति याकी बाजनि ।
अपबस करि लेति है नित नित सजति सुख-समाजनि ।
आनँदघन रीझि भीजि करै कौन काजनि ॥

सारंग] (७५३) [मूलताल

कान्ह चरावत गया बन मैँ ।
जिनहि जिन ठौरनि ह्वै निकसत पैठत मेरे मन मैँ ।
लटू भयौ पायनि लगि डोलत अति व्याकुलता तन मैँ ।
ब्रजमोहन हँसि चितवनि भिजई काँधनि आनँदघन मैँ ॥

टोड़ी] (७५४) [इकताला

सलोने ब्रज बगराई है, अपने रस की ठगौरी ।
ब्रजमोहन सब ही विधि सौँ रसरीति चलाई है ।
काहू की कछु कही न परति अतिहीँ अँगराई है ।
आनँदघन मुरली - धुनि घमँडनि प्रेम - दुहाई है ॥

जैतसिरी] (७५५) [इकताला

मोहि दीजै जू ब्रजबास ।
सुनौ नंद वृषभानराय जू पुजवौ जिय की आस ।
नीकैँ रहौ राधिका-मोहन दिन दिन अधिक हुलास ।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ दुहुँ घर कैँ चहुँ पास ॥

७५४—विधि-मोतिनि (सतना) ।

[७५१] ओढ़ि = पसारकर ।

आसावरी] (७५६) [आड़ चौताला

नंद तिहारैँ दिन दिन ऐसोई रहौ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन के सुख ऐसियै भाँति लहौ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ नितहीँ हितहि चहौ।
गोकुल - जीवनधन आनँदघन उनै उनै उमहौ॥

(७५७)

मनमोहन चितचोरन प्यारे मन मोहौ चित चोरौ जू।
जो जो करौ सहैँ सोई सो तुम्हैँ रूप को जोरौ जू।
आइ उघरि दुरी उर की सब कहूँ जोरौ कहूँ तोरौ जू।
नई चौंप उनए आनँदघन जिय न दई डर थोरौ जू॥

पूरिया धन्यासिरी] (७५८) [चौताला

कौन जानै कितहिँ कितहिँ तुम करत फिरत कैसैँ बनि।
काहू सौँ वदत बोल कितहूँ करत मोल कहूँ लै मढ़त
झोल ठगत बिसासी सबनि।
अवस होति भारी व्रज-अबला चतुर छैल ढरौ अपनैं ई ढवनि।
आनँदघन व्रजमोहन रसरंगी तुम्हैँ सोहै नई नई फबनि॥

मालव] (७५९) [इकताला

सब - सुख - सोभा - मूल वृंदाबन धन मेरैँ।
राधा - मोहन गाऊँ न्हाऊँ जमुना साँझ - सवेरैँ।
प्रेममंडली दरसन पाऊँ धीरसमीर वेनुवट नेरैँ।
आनँदघन झर सदा लगाऊँ निताबिहार-हित हेरैँ॥

गौरी] (७६०) [इकताला

उठि चली पिय पैं को वैठारै।
मुरली की धुनि साँची साथिनि मो गति-मतिहि सम्हारै।
अँखियनि दरस - लालसा बाढी को कुलकानि निहारै।
दरस - चोंप - चटपटी हिये मैँ अतिहीँ ऊधम पारै।
बीध्यौ हिय हरि-हेत-फँदा मैँ को धौँ अब निरवारै।
प्रान - पपैहा पीवैँ जीवैँ आनँदघन रसधारै॥

टोड़ी] (७६१) [चौताला

ज्यौं ही ज्यौं ही चाहौ त्यौं ही त्यौं तनि तुमहीं बिस्तारौ ।
तुमहीं गावौ तुमहीं सुनि समझौ यामैं कहा है हमारौ ।
एक रूप मैं अनेक आभा दिपैं सुघरराय त्यौनार तिहारौ ।
आनँदघन झर लाय रहे ऐसैं क्यौं हूँ न भरम उघारौ भलैं
भलैं हौ जू बड़े रिझावारौ ॥

टोड़ी] (७६२) [चौताला

मुरलिया मैं त्यौनार भरे हैं ।
धुनि सुनि हिय बेहाल होत है इन ये हाल करे हैं ।
याकी घालीं घरनि मैं घूमति गुरजन-सोच टरे हैं ।
मुँह लगाय ब्रजनाथ बिगारीं ऐसे रीझि परे हैं ।
लगी रहति गौंहन दिनरजनी कित के वैर धरे हैं ॥
आप अमैंड भई गरजति है लाज के साज हरे हैं ।
कान्ह कुँवर ब्रजमोहन मोहे याही ढार ढरे हैं ।
कल न देति काहू थिर चर कौं सबके मरम छरे हैं ।
सुबस बसौ गोकुल पै इन अब ऊलट रचे खर हैं ।
सुखवति भिजवति रिझवति खिजवति धीरज धरम दरे हैं ।
आनँदघन रसबस करि राखे नाद-सवाद ररे हैं ।
याहि सबै कछु फबै सखी री पूरन पुन्य फरे हैं ॥

भैरव] (७६३) [चौताला

गुन गुपाल के गाय मन, भटकत फिरत वृथा कौं ।
इनहीं मैं बिसराम लहैगौ दूरि दूरि फिरि आय मन ।
सीतल भयौ न कितहूँ बौरे तचि तचि रह्यौ मुरझाय मन ।
आनँदघन रसपान करौं किनि ऐसैंई सचु पाय मन ॥

मालकोस] (७६४) [कपोतताल

ताल - सुर - भेद जानत एकै मोहन ब्रजनायक ।
नटनागर रूपउजागर गुनसागर सबही बिधि आगर
ऐसो कौन सुद्ध सुद्धगायक ।

[७६३] सचु=सुख ।

जाकी मुरली सुनि मोहे जड़ जंगम बेधे मरम महा-
ब्यापक सुरसायक ।
आनँदघन रस-ताननि छायौ बृंदाबन गोपीजन मन-नैन-
प्रान साँचे स्रवननि सुखदायक ॥

टोड़ी] (७६५) [चौताला

को पावै उनके मन की बात ।
काहे कौं करियै परेखो ए ब्रजमोहन कपटनि के नायक
इत आवत उत जात ।
कहूँ सैन कहूँ बैन कहूँ तोर कहूँ जोर गौं गहि डोलत साँझ-प्रभात।
आनँदघन रसबादनि उनए गुननि भरे सब गात ॥

धनासिरी] (७६६) [मूलताल

फागु-सुख बिलसत मोहन स्याम, हिल मिलि गोपबधू अभिराम।
गोकुल गाँव तीर जमुना कै सुंदर पुलिन पुनीत ।
उमँग भरे सजि सौंज खेल की गावत होरी गीत ।
रमनीमनि बृषभानुनंदिनी साजे सखिनि समाज ।
गोपकुँवर मंडल मैं राजत ब्रजमोहन सिरताज ।
बरनौं कहा रूप - गुनमहिमा महाभाग दुहुँ ओर ।
अतुल उमँग अनुराग रँगमगे अरस-परस तचि चोर ।
चाचरि मचनि चौंप-चोखनि सौं गावनि रसनिधि गारि ।
कंठ किलक मधुरिमा मनोहर...... .... ॥

इमनि] (७६७) [इकताला

राधा-मोहन सौं हित-होरी माची नीको दाव बन्यौ है ।
जोबन की लहलहनि दुहूँनि तन मन अनुराग-सन्यौ है ।
रूपनिकाई अनूप कहा कहौं बानक छैल ठन्यौ है ।
सरस खिलार भीजि रहे रीझनि गाढ़ौ रंग छन्यौ है ।
सब ब्रज इन ही के रंग राच्यौ सुखसागर उफन्यौ है ।
आनँदघन अभिलाषनि अखँडे सुजस-बितान तन्यौ है ॥

[७६६] अरस० = आलिंगन ।

ललित] (७६८) [जाग्राताल

उन्हैँ तुम्हैँ आछी फाग मची है।
निपट नवेली चौंप-चटक सौँ प्रीति की रीति रची है।
नैन गुलाल-भरे अरसौँहैँ यातेँ डीठि लची है।
सब ही अँग रँग बोरि पठाए काहू विधि न बची है।
झकझोरनि बँद टूटे छूटे उर नखरेख खची है।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौँ बुद्धि विचारि पची है।
मनमान्यौ फगुवा दै आए सो गति उघरि नची है।
आनँदघन इतहूँ हित छाए पन-परतीति जची है॥

रामकली] (७६९) [याग्राताल

अति रंगभीजी राति बसी है, प्रानप्यारे पैं।
लगति छबीली ढीली डोलनि भुज भरि नीकैँ कसी है।
अंगनि रंगतरंग उठति कछु औरैं ऊठ लसी है।
आनँदघन ढुरि घुरि चौंपनि सौँ भिजयौ स्याम रसी है॥

रामकली] (७७०) [मूलताल

राधे लाड़-गहेलरी प्रीतम प्रान-सहेलरी सरस सुहाग-सुहेलरी।
मोहनमदन गुपाल हिये की हिलग-हमेलरी।
अपने बृंदाबन की सोभा आचरज-बेलरी।
आनँदघन रसप्यासनि सींची नेह-नवेलरी॥

हिंडोल] (७७१) [इकताला

वारियै या छबि पैं बहुत बसंत तू मदनगुपाल लाल कैं री
आली उर-बनमाल भई है।
अंग अंग रतिरंग प्रगट भए भरी फूल हिय की नख-
सिख लौं तेरी रती बिधना तोही लै दई है।
मो नैननि को सुख हौँ ही समझति नीकी बसंतपंचमी नई है।
आनँदघन पिय रीझनि भीजि घमँड-रस राख्यौ आनि
रसरासि लई है॥

ऐमनि] (७७२) [इकताला

हो हो हो होरी बोलैं ।
राधा-मोहन जोबन-जगमगे अपने रंग कलोलैं ।
सुंदर वदन अनूप निकाई । फैलि रही व्रज रूप-जुन्हाई ।
कही न परति हित-मादिकताई । सब ही की मति मोह-छकाई ।
सहज रंग रचि रहे सदाई । फिरि मनभाई फागु मनाई ।
चौंपनि चाचरि चुहल मचाई । उघरि परी जौ बहुत दुराई ।
आनँदघन रसभरी लगाई । हिलग-लता झालरी सुहाई ॥

सारंग] (७७३) [इकताला

केसरि-खौरि कियेँ जोबन-मद पियेँ निडर छैल
डोलत है नंद को मोहन स्याम ।
हाथ मैं गुलाल लियेँ औरै कछु छल हियेँ काहू पै दाय से
दियेँ याही बीच मँडरात कौन धौं काम ।
जमुनै जान कौं कब की अरबरनि कौ लौं धँसेई रहियै धाम ।
आनँदघन झूम्यौई देखियै यह ऊधम गोकुल ही हो आठौ जाम ॥

सारंग] (७७४) [इकताला

धनि धनि राधा को भाग-सुहाग धनि याही फाग ।
व्रजमोहन पै इन लै मोह्यौ घर ही घर यह राग ।
याही को रँग राचनौ अति चोखो अनुराग ।
इनही आनँदघन रस भिजयौ दै पूरन पन-पाग ॥

रामकली] (७७५) [मूलताल

मिठबोलन ढोलन चंगेलरा महरदा लाड़-गहेलरा ।
साँवला मोहन गोकुलवालिया जिंद-चहेलरा ।
मुझ जेसी उसनूं बहुतेरी बंदी दा अकेलरा ।
प्राण-पपीहाँ दा आनँदघन खरा नवेलरा ॥

ऐमनि] (७७६) [चौताला

व्रजनाथ वनैयें मो व्रज बसिबो ।
जसुदानंदन वलि जैयें इतनो कहा अब कसिबो ।

७७४-हियें-धियें (सनना) ।

ब्रजवन-लीला मगन रहै मनमोहन-गुन-गाँसनि मैं गसिबो ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहनि कौं लौं तापनि तसिबो ॥

धनासिरी] (७७७) [इकताला

राधे अब कैं चाचरि बहुरथौ दै अरु तेरी हो चाचरि रंग ।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलन कौं पिय के संग ।
हौं रीझी तेरी ऊठ पै तेरे नह नाक सुहाग ।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरैं अनुराग ।
तेरी चाचरि राचनी अरु तेरो हो त्यौहार ।
तोतैं रंग रहै सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार ।
तेरी भाँवरि-भरनि मैं छकि घूमै ब्रजनायक छैल ।
वदन-चटक लट-लटक सौं रोकै मन-लोचन-गैल ।
ब्रजगोरीं गावैं सबैं तेरी चाचरि के गीत ।
भिजयौ रीझनि चोंप सौं अपनो आनँदघन मीत ॥

सारंग] (७७८) [इकताला

मुरली-धुनि सुनत डोलियै संग ।
मोहन-मूरति देखैं बाढ़ति उर अभिलाष-तरंग ।
घर बाहिर के कछू कहैं तौ धरौं नहीं तिल एक ।
कैसैं टरति भटू हियरा तैं पूरन पन की टेक ।
बस करि लई रसीली बाननि नहिं सुहाय कछु और ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रसिक छैल-सिरमौर ॥

सावंत] (७७९) [इकताला

राधा-मोहन की हित-बात होति रहति नित नैननि सैननि ।
मिलन-प्यास रस-आसनि लागे ताकत है होरी का घात ।
वीथिनि बगर जमुन-जल जित तित ताकैं रहत साँझ परभात ।

७७७—खेलन०—खेलैं ब्रजमोहन (सतना) तेरी०—हौं रीझन मैं तेरो [illegible] (वही), तेरी ऊठ पै तेर नेह नीक (वृंदा०)। सबै—रहैं ([illegible])। [illegible] (सतना) चटक-चद (वही)।

[७७६] तसिबो=त्रास देना ।

चोंपन चाव न समात हिये मैं उमगे परत गात लखि गात ।
भागनि फब्यौ फागु को औसर निडर खेल रंगनि सरसात ।
मसरि गुलाल कसरि सब काढ़त आरति-भरे बिबस ह्वै जात ।
ब्रजबन-सुख सहेट-फल चाखत परम मरम हिलिमिलनि हितात ।
मन मोचत सींचत आनँदघन सदा रहौ इनकैं कुसरात ॥

सारंग] (७८०) [इकताला

मतवार मोहन होरी को ।
जाहि सहजहीं रस को चसको घातनि गहि बरजोरी को ।
लटुवा भयौ फिरत दिन - रजनी लगुवा गोरी भोरी को ।
मीठो महा मिल्यौ मुँहमाग्यौ उघरि उघरि गुर चोरी को ।
भीजि रह्यौ रंगनि भर भिजवै ब्रजमोहन है ओरी को ।
या ब्रज यह औसर आनँदघन अति रस ढोराढोरी को ॥

अड़ानो] (७८१) [इकताला

कन्हैया रंगनि भीजौ मोहू रंगनि भिजावै ।
डीठि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै ।
नैननि सैननि होरी खेलै करत सबै कछु जो जिय भावै ।
रीझनि रमँढि घमँडि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै ॥

भैरव] (७८२) [जात्राताल

बहुतनि सौं बहुत भाँति रमै एक स्याम ।
चेटक की मूरति है ब्रजमोहन नाम ।
याहि देखि कछु न देखियै द्वौसै सब ठाम ।
आँखिनि भरि देखन की साधै अस्ट जाम ।
ब्रज अचरज रस भोयौ अद्भुत गुनधाम ।
आनँदघन जीवनधन जिय को बिसराम ॥

ऐमनि] (७८३) [चौताला

सुंदर सुख गाइयौ री तैं गाइयौ मोहन को धनि यह फागु-रवानी ।
जैसें मन चाहत हौ तैसैं दुहुवनि मन रति मानी ।

[७८०] लगुवा=लागू, प्रेमी ।

बरस द्यौस या आसा बितयौ अब विधना यह बानक बानी ।
आनँदघन घुरि ढुरि रस बरसौ चिर जियौ जोरी सहानी ॥

मरहठी रागिनी] (७८४) [याग्रानाल

मोहन लाल कौं मल्हाऊँ सरस बधाई गाऊँ ।
जसुमति के भागनि बरनि रसनै लाड लड़ाऊँ ।
सुंदर मुख भागनि फल आँखिनि लै दिखाऊँ ।
नित नित या घर को उदै भाँति भाँति मनाऊँ ।
लडिल के सुख-सुहेले बीधि बधाई गाऊँ ।
नितहीं मंगल नंद के मंदिर दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन भागभरी के आँगन ही छाऊँ ॥

कानरो] (७८५) [चौताला

को पावै हो ब्रजरस को भेद ।
जानत पै न बखानत मन ही मन अनुमानत वेद ।
श्रीगोपीपद-रज-प्रसाद-बल अगम सुगम और साधन सकल खेद ।
आनँदघन याहीं रस भीजी रीझि पीतबसन-छोर ढोरि
सुखवत सुख-स्रम-सेद ॥

रामकली] (७८६) [आड़ चौताला

राधा-रूप गौर उर फुरै ।
स्याम रूप अनूप राधा स्याम अतर दुरै ।
प्रगट परमानद मूरति नैन-पुतरिनि ढुरै ।
पलक-सपुट उघरि घुरि घुरि या दरस घन घुरै ।
प्रान चातकपन पलै रुचि टारि बिरहा-जुरै ।
केलि सकल सकेलि मनसा थकै सब कछु कुरै ॥

मरहठी रागिनी] (७८७)

राधा राधा गाऊँ राधा प्रान कौं रिझाऊँ ।
राधा के गुन-रूप बरनि रसनै रसाऊँ ।

[७८३] माड़यौ=गुलाल से रँग दिया । बानी=बनाई । सहानी=लाल रंग से रँगी । [७८५] सेद=स्वेद, पसीना । [७८६] कुरै=उड़ेल कर, देकर ।

राधा के ही सुख मैँ सुखी मोहन रस ध्याऊँ ।
अरस - परस रसदरस आनँदघन छाऊँ ॥

सारंग] (७८८) [इकताला

होरी झुरमट माच्यौ नंद महर कैँ द्वार ।
आईँ झूमि नव नव बधू झुंडनि चौँपनि भरीँ खिलार ।
रूप अनूप कहाँ लौँ बरनौ उपमा लहौँ नहीँ उनहार ।
चंदवृंद चपला चामीकर वारौँ चंपकहार ।
सुदरस्याम-सनेह-सगमगीँ सहज रँगमगीँ ओप अपार ।
ब्रजमोहन की महा मोहनी साजैँ सरस सिँगार ।
गावति गारीँ अति रसढारीँ सफल करति फागुन त्यौहार ।
कंठ-किलक मैँ दसन - चिलक लखि छकत छैल रिझवार ।
रीझनि भरि भिजवति रुचि - रंगनि चितवति पागति
पिय-हिय प्यार ।
चाचरि चुहल चाव दावनि सौँ करति कटाछनि मार ।
रूपविवस गिरिधरन लाल कौँ अपबस करति भरत अँकवार ।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की बाढ़ति धूम-धमार ।
नैन आँजि मुख मसरि गुलालहिँ वैँदी देति लला के लिलार ।
जीति लेति अबला बलवीरहि हँसि पहिरावति हार ।
बहुत भाँति के नाच नचावति हो हो करि बोलति ततकार ।
झहपट देति हठीली भाँतिनि सकुचत रसिक उदार ।
झगरति झटकति मुलकति पुलकति फगुवा माँगति करति झमार ।
अति अदभुत औसर को यह सुख बिलसत प्रान-अधार ।
अपने कान्ह कुँवर की सोभा दूरि भए देखत सब ग्वार ।
कछु न बसाति पचत बहुतेरो ठाढ़े करत पुकार ।
प्रबल प्रीति की रीति प्रगट लखि काहू रही न तनक सम्हार ।
सुर बिमान चढ़ि कौतुक भूले बिरसत बिबिध बिहार ।
या रस मगन रहत दिन-रजनी सजनी स्याम लहत सुखसार ।
सब ब्रज रँग भिज्यौ आनँदघन रसिया नंदकुमार ॥

रामकली] (७८९) [मूलताल

आए हौ लाल रँगमगे बागैं । या बानक निरखे नहिं आगैं ।
नैन गुलाल - भरे से लागैं । कै भए अरुन कहूँ निसि-जागैं ।
नीकैं लगत अधर मसि - दागैं । वहु रँग - रचे फागु अनुरागैं ।
नखछत लगैं गहे भरि भागैं । हाहा करि छूटे खुलि खागैं ।
भँवर - भीर लीला-जस रागैं । मोल नए परिमल - गुन तागैं ।
आनँदघन भूमैं पन पागैं । उघरि उघरि डोलैं डर त्यागैं ॥

सारंग] (७९०) [इकताला

मोहनमदन गुपाल बँसुरिया मैं री आली सारंग पूरै ।
लाज कानि कुल की बिसरावै चौंप-चटक चुहटनि चित चूरै ।
कहा करौं कैसैं करि राखौं उमँगि उमँगि मन बिकल बिसूरै ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं सहि न सकत अब मदन-मरूरै ॥

सोहनी] (७९१) [मूलताल

अवे बंसीवालिया कान्ह गुवालिया कदी तौ सानू
भी मुख विखलावं ।
मैंडरी जिंद तुसाडे नाल लगी मैं धोली व्रजमोहन मनवालिया ॥

रामकली] (७९२) [इकताना

रसिकनी राधा राधा है ।
जाके मिलिवे की मोहन कैं नित ही साधा है ।
व्रजमोहन मोह्यौ इन आछैं रही न बाधा है ।
परम प्रेम रस - निधि आनँदघन प्रेम - समाधा है ॥

हिंडोल] (७९३) [इकताला

नव वृंदावन नव मनिमंदिर नव कचन नव रतन-सिंहासन !
नवल कुँवर गोपीनाथ बिराजत सोभानिधि भरे नवल हुलासन ।
नव भूषन नव बसन नवल तन महकत भीने नवल सुबासन ।
नवल रूप नव नेह भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन ।
नव गुन रूप अगाधा राधा जगमगाति ढिग नवल प्रकासन ।

[७९१] धोली=सीधी-सादी ।

नव सहचरी सजैं नव नवसत हरषति छबि निरखति चहुँ पासन ।
नवल गान नव तान ताल नव नवल जेत्र नव नृत्य बिलासन ।
नवल रीझ नव रँगरस-भीजनि आनँदघन बरसत मृदु हासन ॥

सारंग] (७९४) [चौताला

अति सुगंध मलयज घनसार ।
मिलाइ कुसुम-जल सौं छिरकाइ उसीर सदन बैठे मदन-
मोहन संग लै राधा प्रानंनि प्यारी रति-रंगनि ।
जमुन-तीर बानीर-कुंज मंजुल बिधि पवन सुखपुंज
परम रोमांचित होत छबीले अंगनि ।
वृंदावन संपति दंपति बिलसत हुलसत ऐसैं अपनी उमंगनि ।
आनँदघन अभिलाप भरे खरे भीजे संगम-रस-सागर
की अतुल तरंगनि ॥

सारंग] (७९५) [इकताला

रँगीली जोरी की बलि जाँव, ललित रूप-गुन-रासि ।
कदम-मूल वन घर है जाको जमुना-कूल सुठाँव ।
गोरी साँवरो दृगनि भाँवरी निरखैं सुखनि सिहाँव ।
आनँदघन जीवन-धन-दायक राधा-मोहन नाँव ॥

सारंग] (७९६) [चौताल

या रस कौं हौं हीं वखानौं ऐसैं ।
वृंदावन जमुना-तट विहरत राधा-मोहन जैसैं ।
छिनहीं छिन या सरस सवादै लेत देत समझत तेई तैसैं ।
आनँदघन याकी घमँडनि कौं उघरि लखै कोऊ कैसैं ॥

विहागरो] (७९७) [चंपकताल

कहाँ पाऊँ हो हरि हाय तुम्हैं ।
मेरी निपट अनाथ दसै दैया कौन कहै समझाय तुम्हैं ।
मोकौं पलको कल न परति है तुम जानो ज्यौं विहाय तुम्हैं ।
प्रानपपीहा पुकार सुनावत आनँदघन अकुलाय तुम्हैं ॥

[७९३] समर=स्मर, काम । नवसत=सोलहो शृंगार ।

कानरो] (७९८) [चंपक

जिन तुम पाइ लिये जिय ही मैं ते कित औसर खोवत ।
तुम जे जगाए ते क्यौं सोवत ।
लीला लोभ लगौंहैं नेही अँखियाँ रूप समोवत ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे तारे अंतर गोवत ॥

परज अरगजा ख्याल] (७९९) [मूलताल

लगन की बात अटपटी है ।
जब तैं निरखे ब्रजमोहन चित चौंप-चटपटी है ।
आँखिनि के वालैं घर मैं दिनराति खटपटी है ।
लख्यौ चहति वह मोहन-बानक प्रेम-लटपटी है ।
सुंदर बर औसेरनि हियराँ निपट भटभटी है ।
आनँदघन पिय दरस-पियासनि डीठि रहचटी है ॥

(८००)

एक सरक दुहुँ ओर सलै ।
ब्रजमोहन सौं हिलग राधिकैं राधा-रस घनस्याम पलै ।
ब्रज-बीथिन ब्रज-बगर द्योसनिसि मन मैं मिलन-बिचार ।
अति रसभरे खरे प्यासे मिलि अचरज प्रेम-बिकार ।
इनकी दसा कहत नहिं आवै मति-गति अति जड़ होति ।
देखत सुनत थकित जड़ जंगम चकित निहारत जोति ।
अति रसकंद अमंद प्रेमनिधि राधा-मोहनलाल ।
आनँदघन ब्रजबन जमुनातट सुखसमाज सब काल ॥

राग] (८०१)

आय आय कै निकसि जात हौ मोहन मन की गह तैं ।
अति अटपटी चटपटी बातैं बनत नाहिं कछु कहतें ।
जोगी की गति गहैं वियोगी सुरति साँस-आधार ।
जब दरसौ तब की तुम जानौ निरमोही निरधार ।
दीसि परे सब भाँति दूभरे हग मन कौं समझाय ।

[७९९] रहचटी=मार्ग चाटनेवाली, मार्ग देखनेवाली । [८०१] गह=पकड़ ।

बिन सूझैं बिन बूझैं हो हरि आसनि जीव जिवैयै ।
अति उदार ब्रजचंद छबीले या निबाह त्यौं हेरौ ।
बहक्यौ बह्यौ रहत ज्यौ सोचनि उरझनि आय निबेरौ ।
ब्रजबन जित तित तुम्हैं निहारैं हाथ कहूँ किनि लागौ ।
बनबारी पुकार सुनि लीजै सोवत से कहा जागौ ।
मतौ रावरो छतौ छलनि सौं ढिग बसि रहो अलग से ।
नेही ह्वै करि निबटे ग्यानी परखि परे नव नग से ।
दया लेहु तौ देहु दरस जू अरस करौ जिन हाहा ।
जीवनधन तुम बिना जियैं अब कहौ कौन सौं लाहा ।
ज्यौं बिधि बिचारौ तुमहीं सब लायक सब जानौ ।
लीला-गुन सुनि बसैं बास हूँ इतनौ नातौ मानौ ।
प्रीतम तें परमातम ठहरे यह धुरि ही तैं ठानी ।
सोई गति लै मिलत आजु लौं प्राननि के सुखदानी ।
देखें जियैं तिन्हैं ये बातैं कहौ कौन बिधि पावैं ।
गाथा गनैं तिहारी कौ लौं थाह न क्यौं हूँ पावैं ।
आसा कैं आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ ।
ब्रज-बीथिन भटकाय भली बिधि अटक-भटक मिलि जैहौ ।
हरौ सूल सुखमूल साँवरे सुंदर जग-उजियारे ।
आनँदघन इक बरन जानि कै सरस करौ दृग तारे ।
अचरज ही सौं भरे भावते सुनि सुनि बढी उमाहैं ।
आस लगाएँ अलगनि गौंहैं आँखयैं देख्यौ चाहैं ॥

सारंग] (८०२) [इकताला

ब्रज के द्रुमनि निहारि रहौं ।
इनहिं देखि जो कछु देखति हौं सो धौं कहा कहौं ।
स्याम सुजान रसिक ब्रजमोहन बेस लहलहनि बाढ़े ।
मुरली-धरें दृगनि के उत्सव इन तर देखति ठाढ़े ।
मोर और कोकिला-कूकनि लेति करेजो कोरैं ।
यह बैरिनि बसंत मैं अधिकी आगम धरति मरोरैं ।

दरसन लगे स्याम चिकनौंहैं प्रान सजीवन सौंहैं।
ये बदरा यौं चढ़े मूड़ पै बरसि लगावत दौंहैं।
सघन तरुन पर नवघन झूमनि मनहि चुराएँ लेति।
बीच बीच चपला चमकनि को जानै कह सुधि देति।
घन-घमँडनि ब्रजबन छबि-राजनि वैननि भर्यौं हमारें।
आनँदघन औसर की सरकनि जीवन सहित सहारें॥

धनासिरी] (८०३) [चपकताल

यह सुख जनम जनम एहो मोहि देहु।
गुन गाऊँ ब्रजनाथ रावरे ब्रजखरिकनि खोरिनि मैं गेहु।
ब्रजलोचन ब्रजबासिनि मैं बसि सूझि परै या ब्रज को नेहु।
दीन पपीहा ढुरि बरसौ कृपादृस्टि आनंदमेहु॥

सारंग] (८०४) [इकताला

जमुना देखी देखी भावै।
देखत देखत राधा-मोहन रंग-तरंग दिखावै।
देखी कही यहो यों देखो देखें ही बनि आवै।
याहि देखि आनँदघन घमँडनि उघरि उघरि झरि लावै॥

राग सारग] (८०५ [चपकताल

नंदनदन सौं नैन लगे री।
अब नहिं रहत दहत देखें बिन बहत नीर निसिद्योस जगे री।
सुदर स्याम मनोहर मूरति ललित त्रिभंग हिये मैं खगे री।
आनँदघन-हित प्रानपपीहा मिलन-प्यास-बस बिरह दगे री॥

कानरौ] (८०६) [चौताला

हरिकथा-रस के सवादी संत।
मेरें जान पुरान वेद मत तेई महा महंत।
धनि सुकदेव परीछत राजा दोऊ भाग-अनुराग-वंत।
आनँदघन रसभीजो देखियत इनको महिमा अनंत॥

भैरव] (८०७) [मूलतान

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवनप्रान।
राधारसबस राधासरबस राधारगी रूपनिधान।

राधारंजन राधाअंजन राधाप्रीतम राधामान ।
आनँदघन राधा-हित-चातक मुरलीधर राधागुन-गान ॥

सारंग] (८०८) [इकताला

भागनि भरी जसोदा मैया मन को मोद कहाँ ।
गोद लियेँ लालहि दुलरावति यह सुख देखि रहौँ ।
याही के पायनि प्रसाद को लेस असेस लहौँ ।
गोकुलचंद नंदनंदन को निसिदिन उदौ चहौँ ।
नव सुकुमार वैस मनमोहन ब्रजजन - जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती देति पयोधर - पान ।
मुसकत पियत जियत अरु ज्यावत जननी-जिय-आधार ।
प्रबल मोह की उमँग - तरंगनि द्रवित दूध की धार ।
झाँपि लेति आँचर सोँ स्यामैँ निधरक सेकति न चाहि ।
अतुल अगम क्यौँ बरनि बताऊँ हित-गति अकथ कथाहि ।
नंदघरिनि की भागनिकाई सुत लखि कही न जाई ।
अतिलड़हूँ चिर जियौ सभागो ऐसी जननी पाई ।
नित मैया की मया मनाऊँ आऊँ देखन दौरि ।
कुलमंडन की नित न्यौछावरि पाऊँ गाऊँ पौरि ।
चहल-पहल गोपी-समाज की बालबिनोद - कलोल ।
सुख - सिहानि जसुमति हिय समझै सुनत तोतरे बोल ।
दिन त्यौहार महर के आँगन अचरज रूप निहारैँ ।
मुदित महत महतोनि सबनि के मन कौँ रहति सम्हारैँ ।
दामोदर सावित्री को सुख लाड़िलहूँ हटि जाचै ।
इन बातनि बड़भागिनि मैया कुँवर कौतिकन राचै ।
सुत-हित-चौँप-चाय सोँ भीजी आनँदघन झर लाग्यौ ।
जसुमति-कूख सदा सुख सीतल सब ब्रज हित अनुराग्यौ ॥

सारंग] (८०९) [झूलताल

हरि राधा को रस गावै, ऐसी रसना को पावै ।
कोटि कोटि कंदर्प - दर्प हू लहत न लेस गावैं ।

अकथ कथा अनुमान न आवै बानी कैसैं बरनि बतावैं ।
आनँदघन अभूत दामिनि मिलि अचरज ही बरसावैं ।
दंपति एक कृपा दरसावैं ॥

कानरो] (८१०) [इकताला

जिनके मन हरि-अनुराग रचे ।
अति रसमगन भए लीलाबस नैन स्वरूप खचे ।
ब्रजबन केलि सदा अवगाहत बोलत बचन जचे ।
जमुनातीर बास करि निहचैं भावतरंग मचे ।
महामधुर रसरासि रसिकजन अनमिल संग सचे ।
सजल नैन अभिलाषनि प्यासे बिरह-बिकार रचे ।
घूमत रहत एक जक लागी मादक मधुर अचे ।
पूरे अति सूरे भ्रम चूरे पन पकि नाहिं कचे ।
बृंदाबन आनँदघन घमँडे ढुरि घुरि उघरि नचे ।
अति उन्नत पद पाय निरंतर कहूँ न लोभ लचे ॥

कानरो] (८११) [चौताला

मेरैं कौन काम हौं हूँ काम कौन को ।
नँदनंदन सौं उरझी अब तौ नाहिंन और हौन को ।
ह्वै ही गई साँपसूँघी सी सिख-बिष लागि गति गही मौन को ।
प्रानपपीहनि चौंप-चटपटी आनँदघन अचौन को ॥

कानरो] (८१२) [मूलताल

मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं, नंदमहर के कान्ह अचगरैं ।
धरम धीर कैसैं धौं साधौं सुर की संग लगी हौं ।
मोहन-मूरति आँखिनि आड़ी याही तैं निसिद्यौस जगी हौं ।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ॥

परिशिष्ट

गोवर्धन-पूजन] (८१३) [झपताल

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद बृषभानु परिकर-सहित देखौ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहत यहि पूजि सब लेखौ।
कान्ह कुल-मंडन थप्यौ उथपि अमरपति प्रगट दरस्यौ देवगिरिबर सुबेखौ
आनँदघन नँदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत बिसेखौ॥

वेणु-नाद] (८१४) [जात्राताल

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे ; अँखियाँ भई हैँ दरस-पियासी।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे।
जब तैँ सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे।
अपने पपीहनि ज्याय लीजियै आनँदघन रस राखि सुखारे॥

रूप-माधुरी] (८१५) [आड़ो चौताला

नित आइबे की गैल।
रहत गाहत गहत वहियै सब समै ब्रज-छैल।
लखी वारक कोऊ निकसत बदन आभा फैल।
चाँपि चोप चकोर की, चख भए रूप-अरैल।
अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति-ऐल।
मुरलिका कल विकल धुनि की, जाति समझि हठैल।
जो कछू जिय रीझि भीजी दूरि करि हठ मैल।
उघरि मिलि आनंदघन सौं कौन की सु दबैल॥

दानलीला] (८१६) [रामकली, इकताल

गोरस जो चाहै तौ दीजियै जो रस चाहै सोऽब दियौ क्यौं जाय।
देखि बिरानी धरोहरि पैं मन बहकावै ऐसो ढीठ न काहू सकाय।
औरनि लौं मो हूँ सौं उरझत नित-नित कैसैं निबहियै हाय।
आनँदघन रसबादनि घमड़्यौ कोऊ काहू दिन देहिगौ समझाय॥

८१५—कोऊ—कहू (वृंदा०)। ८१६—काहू—कान्ह (सतना)। देहिगौ—देहुगौ (वृंदा०)।

[८१५] अरैल=अड़नेवाले। ऐल=अधिकता।

(८१७) [मूलतान

बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ भूट न भाखौंगो ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि माखौंगो ।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब दैहै जोइ जोई अभिलाखौंगो ॥

(८१८) [जाग्रताल

रहौ जू रहौ गहौ आपनी गैल भए रसिया दान के ।
ओटपाव के दाव चाव रचि घेरत हौ अबलानि आनि भरे जोबन गुमान के
बढ़ि बढ़ि बोलत ऐंड़े डोलत लोभी हौ रसपान के ।
आनँदघन रसबादनि उनए मिस ही मिस ढिग ढूके आवत गिधए आन के

विरह-सदेश] (८१९) [मूलतान

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसों कहा कहियै ।
तिहारी ओसेरनि कैसें सहियै मनहिं मसासनि गहियै रहियै ।
तुमहिं न सोच कछू काहू को जाहि लगी जानति है वहियै ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तब अब यौं दुसह परेखनि दहियै ॥

खडिता] (८२०)

छाडौ जू तुम छाड़ौ मेरी बाँहा ।
भोर भएँ रसबाद करन कित आए मोसों हाहा ।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहू सरसे चाँहा ।
तहीं जाउ जहाँ पायौ है नयो लाहा ॥

(८२१) [सारंग चौताल

गोरे बदन बिथुरे केस ।
रैन जागे मैन-पागे नैन अरुन सुदेस ।
मृदु कपोलनि पीक-लीकैं भाल स्रमकन-लेस ।
मुदित आनन-कांति पर बलि करौं नव राकेस ।
अंग-अंग प्रति भीर छवि की, बनी सहज सुबेस ।
निरखि दुति आनंदघन-दृग भयौ चैन बिसेस ॥

८१९–तारे–हारे (वृंदा०) । ८२०–छाडौ जू–छोडौ जू (वृंदा०) ।
८२१–नव–बहु (वही) ।

विरह-व्यथा] (८२२) [रूपताल

ढरकि ढिग आवौ लाल ढरारे मोहन स्याम उज्यारे ।
दूर भजँऊ भजति भाव तैं क्यौं हित बोलि बिसारे ।
मन उरझ्यो हो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै चातक - प्रान बिचारे ॥

उपालंभ] (८२३) [तालयात्रा

जमुना - तीर की बातैं ।
सालति हैं हियैं स्याम उज्यारे सरद की रातैं ।
को जानत हो ऐसैं करौगे ब्रजमोहन घातैं ।
आनँदघन रस - रीझनि भीजे कहियत है यातैं ।

नयन-बाण] (८२४) [चौताला

मृगसावकनैनी री तैं कृस्नसार नंदकुमार मोह्यौ ।
मोहन लयौ लगाय लगौंहीं मदन-पारधी की भेदनि
ललचौंहीं अँखियन जोह्यौ ।
वृंदावन जमुना के तीर हरियारो ठावँ तहाँ टोह्यौ ।
आनँदघन हित पारि छंद-फँद बिषम बान सौं मरम पोह्यौ ॥

यमुना-महिमा] (८२५)

सरस दरस जमुना को पाएँ परम प्रेम-परस पाइयै ।
भाव - लहर - बढ़वारि होति हिय राधामोहन गाइयै,
अपूरब रस मैं न्हाइयै ।
वृंदावन सोभा की सीमा थकि थकि याही कौं धाइयै ।
आय तीर सब पीर वहाइयै आनँदघन छाइये ॥

विरह-संदेश] (८२६) [तालजात्रा

लागी है रे निरमोहिया तोही सौं जिय की लाग ।
घर मैं बैठि कहाँ लौं साधौं या बिरहा - बैराग ।
अब तौ सब डर डारि सदा सँग बिहरौंगी बन-बाग ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन उचित न क्यौं हूँ त्याग ॥

पूर्वराग] (८२७) [इकताल

जमुना-तीर कान्ह डोलै हे । भेदभरी बाँसुरी पै मोहिं बोलै है ।
सासु - डरन साँस भरौं छतियाँ छोलै है ।
प्रान प्यासे आनँदघनहिं मिलवे को लै है ॥

निर्मोही प्रिय] (८२८) [तालजात्रा

कहा बनि आई रे जियरा ! तोहि करि निरमोही सों मोह ।
अब तौ आनि परथौ कितहूँ तैं बैरी बीच बिछोह ।
काहे कौं पछितात परेखनि तैं ही कियौ अपनो हित द्रोह ।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुंबक तू लोह ॥

मुरली-माधुरी] (८२९) [मूलताल

सुधियौ न रहै तन की तनकौ मनकौ मुरली की सुनत ही कान ।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान उत चाहत चलि जान ।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि ससकत न सकत उठि, मगन-गान ।
आनँदघन पिय को मिलन अभिलाखत सुर-विमान चढि कौन
सुकृत-अभिमान ॥

खंडिता] (८३०)

तिलक महावर को अति सोहै ।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हू तैं मोहै ।
मूड चढ़ाय लई अनुरागिनि अब ताकी पटतर कौं को है ।
ऐंड़ि भाग उनयौ आनँदघन उघरी परत अहो है ॥

दधिदान] (८३१) [रूपताल

ऐंड़ी ऐंड़ी सिर धरै दहैंडी ।
अब सब दिन को दान कान्ह को देत बनै है लखि पाई गिरि-छैंड़ी ।
रूखी परिखत रीति ग्वारि कित बहुत बार यौं गई अमैंडी ।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मचिहै दधि की उरेंड़ा-उरेंडी ॥

[८३०] बानिक=सजधज । पटतर=समता । ऐंड़ि=ऐंठकर अर्थात् गर्व की भाँति । उघरी०=रहस्य की बात उद्घाटित हो रही है । [८३१] ऐंड़ी=अभिमान से टेढ़ी । दहैंड़ी=(दधिभांड,) दही की मटकी । छैंटी=घाटी,उपत्यका । अमैंडी= मर्यादा को न माननेवाली । उरैंड़ा=(उलेढ़ना) अभिमान से यत्नपूर्वक गिरा देना ।

प्रेम की रहन] (८३२) [चौताल

नेही सो बिदेही और जग माँझ कौन है।
बिरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,
नाहीँ कछु कहै जाके सम बन भौन है।
जीवत अदृस्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौँ यह लौन है।
वृंदावन - प्रभु प्यारो बस्यौ रहै नैनन मैँ,
देखन कौँ बावरो सो भयौ फिरै मौन है॥

मन की बात] (८३३) [इकताला

मन की बात नहीँ जानै री, जब तेँ देखे मोहन सोहन स्याम।
कैसेँ रहौँ कहौँ अब कासौँ को अब मानै री।
उर अरि रही रसीली मूरति प्राननि छानै री।
चातक - रट लागी आनँदघन पानै पानै री॥

रूपमाधुरी] (८३४) [रूपताल

मोरचंद्रिका सीस धरेँ यह साँवरो चेटक है धौँ को।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पन लै निबहै धौँ को।
फिरि याकी मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौँ को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौँ को॥

बिरही कृष्ण] (८३५) [मूलताल

राधा राधा दीसै स्यामैँ घर राधा बन राधा।
चायन्नि भरि गायनि लै निकसत ढुरि मिलिवे की साधा।
ब्रज बसि कैसेँ बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा।
आनँदघन चातक लौँ जीवत रसबस प्रान समाधा॥

[८३२] बिदेही = देहाध्यासशून्य। जीवत० = अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएँ खाता है, पर उनका स्वाद नहीँ जानता। [८३३] अरि=अड़कर। छानै=बाँधता है। पानै=पानी। [८३४] चेटक=जादू। धौँ को=न जाने कौन। अनेरो=अनोखा। [८३५] साधा=उत्कंठा। समाधा=समाधान।

(८३६)

मंजन करि कंचन - चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरौ ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरौ ।
लाल-जटित वर भाल सुबैंदी कछुक रह्यौ फबि माँग सिंदूरौ ।
आनँदघन प्यारी - मुखछबि पै वारौं कोटि सरद - ससि पूरौ ॥

यमुना-महिमा] (८३७) [राग टोड़ी

कृस्न-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस
परस सरस करत हिय नैननि बैननि ।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि ।
बृंदावन बिनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि ।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमँडि घमँडि बसत
लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि ॥

मोहन-रूप] (८३८)

तेरो लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे ।
ब्रजमोहन रस - भीनी मूरति लगति प्यारी रे ।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे ।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकबिहारी रे ॥

उपालंभ] (८३९) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिंद लगी वे तैंडी नाल ।
वेखणी कारण तपदी वे कान्ह वेखि असाडे हाल ।
तुझ लग मैंडा कुझ वस नाहीं चलदा ज्यौं भी त्यौं भी करी वे बेहाल ।
आनँदघन हुण बदियाँ बिचारियैं यौं जानी वे तुसाडे ख्याल ॥

८३९-लग-गल (मतना) ।

[८३६] चूरौ=कलाई पर के कड़े। बेंदी=माथ पर पहना जानेवाला गहना। [८३७] ऐन=अयन, घर। [८३८] वारियै=निछावर होता हूँ। जियारी=जिलानेवाली। [८३९] निमाणी=मनमानी करनेवाला। वेखणी०=आपके दर्शन के लिए। तपदी=तपती हूँ। वेखि=देखो। असाडे=हमारे। मैंडा=मेरा। कुझ=कुछ। हुण=अब। बदियाँ=दासियाँ। तुसाडे=तेरे विचार।

गोपिका-प्रीति] (८४०) [इकताला

गोकुल की नारि नवल अनुराग-भरी रहैं स्यामसुँदर
देखन कौं दिनदिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवतिँ जियतिँ आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीँ।
इनको सुख येई पै समझतिँ रहि न सकतिँ उन देखे बिन हीँ।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं॥

पूर्वराग] (८४१)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखैं नहिं चैन सखी री निसदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

कनड़ी बिलावल] (८४२) [मूलताल

बंसी बजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति हो सो ही इकौसैं औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय परयौ है जैसैं भँवर जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघनताननि विष बाननि बरसैया॥

(८४३)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लै भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि परयौ ब्रजमोहन ठाढ़ौ गहैं तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनँदघन ये पनघट के हाल॥

वेणुवादन] (८४४) [राग कान्हरौ

कहा विष घोरयौ है वँसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसवादी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौ करि देख्यौ कसु री मैं।

८४३-गहैँ-उठौंग (संग्रह)।

[८४१] कुहुकि=चिल्लाकर। [८४२] इकौसैं=एकांत में। गहर=गहराई।
जाजरी=टूटी-फूटी।

एक गाँव वसि कैसैं भरियै कठिन कसक पँसुरी मैं।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लैहौं यह जसु री मैं॥

पूर्वराग] (८४५)

वनवासी कान्हा चित्त चढ्यौ री, तातैं मोहिं घर-अँगना न सुहाय।
सुधि बुधि सोधि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवे घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलैं वनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय॥

कानड़ा विलावल] (८४६) [मूलताल

रंगी साँवरिया तेरी वनक न वरनी न जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन घाली आय।
रहि न सकौं मिलि सकौं न घर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचति रहौं कछु न ठिक ठहरै अरु कछुवै न वसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जनि तरसाय॥

वेणुवादन] (८४७)

बैन बजावै वनमाली अरी हौं कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोहन परयौ सखी व्रजमोहन ताननि वेधत मरमैं।
कैसैं रहौं कहाँ लौं साधौं टारत धीरज - धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति विरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (८४८) [राग कान्हरो

कहि सुघर सनेही स्याम मिलगे कव री।
हेली, मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत ह्वै निकसे जब री।
कहा करौं कछु वनि नहिं आवै अति गुरजन की दव री।
उघरि परैगी वात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझौ लै मिलि काहू ढप री॥

८४६–जनि–जिय (सतना)।

[८४४] कसु=खींच-तान। भरियै=सहूँ। [८४६] घाली=आघात किया।
[८४७] मरमैं=मर्मस्थल। झुरसति=झुलसती हूँ, जरती हूँ। [८४८] ढप=
दाव। भरम=भेद, रहस्य। दव=ढंग, तरीका।

उपालंभ] (८४९) [राग कान्हरो

निमाणियाँ दी बस्ती, वो होवे चंगी रहै, तैंडी जान ।
ऐसी वे तुसाडे दरस-भिखारी, होवे सौदा दस्त-ब-दस्ती ।
तैंडे वे कारणँ फिरणे दिवाने हुसन-परस्त अलमस्ती ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे तलब दी मस्ती ॥

पूर्वराग] (८५०)

जेमन करिया कान देखि, सेई करिबो, प्रान-सखी बिसाखा
बिनती मनैं धरिबो ।
बाँसी-धुनि सुनि सुनि आछै बिकार, मदन-अनल जाला अंतर मझार ।
स्यामे रम रम कथा बूझिते ना पारी, आनँदघन ब्रजमोहन बिहारी ॥

राग कानड़ी बिलावल] (८५१) [मूलताल

हो जी साँवला थे तो भला बिलमाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी बाट डीकाँ थे ओठे झर
लाया, नहीं आया, परचाया ॥

पूर्वराग] (८५२)

एक ही वगर वसत बनमाली पै मेरी आली आँखि लौं आँखि न दीसत ।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक बधिकहू तें प्रान परेखनि पीसत ।
निकट आय मनभायो करत किन, दूर तें क्यों बिष - सरनि कसीसत ।
आनंदघन सब विधि वे सुखा रहौ निसिदिन जात असीसत ॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (८५३) [सारग, झपताल

गिरिराज-कंदरा-मंदिर अमद अति मंदार-तरुबृंद-आवृत बिराजै ।
सुख-सेज सौरभ सकल सौंज अनुकूल अनुचर-निकर बर प्रमोद सौं साजै ।

८४९—चगी—वंगी (सतना) । ८५०—सुनि०—सुनिबो या छविकारी (सतना) ।
झाला०—जातों अतर मा डारी (वही) । ८५१—विलमाया—विष वसाया (सतना) ।

[८४९] वस्ती = रखेली । दस्त० = हाथोहाथ । हुसन०=प्रेम साधक ।
अलमस्ती=मौजी । तलब० = नशे की । [८५०] जेमन० = जिस प्रकार कृष्ण
को देखूँ वहीं करूँगी । बूझिते०=समझ नहीं सकती । [८५१] थे=आप ।
ऊभी=खड़ी । बाट०=मार्ग जोहती हूँ । ओठे=वहाँ । परचाया=वहीं परच गए ।
[८५२] कसीसत = खींचते हैं ।

कृस्न वृषभानुजा-संग बिहरत जहाँ समै-रुचि साधि कैं करत हित-काजैं।
जयति गिरिनाथ ब्रजनाथ-हिय हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजैं॥

वृंदादेवी-स्तुति] (८५४) [सारंग, चौताल

वृंदादेवी वृंदाबन-सेवी राधा-मोहन की हितकारिनि।
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए बिहारी-बिहारिनि।
मोहिं मिली महामंगल-स्वामिनि निज बनबास-आस-पन-पारिनि।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनैं प्याऊ सब ही
विधि है अंतर की ताप निवारिनि॥

वेणुवादन] (८५५) [सारग, चौताला

निकसि निकसि मन तन तें बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा बनि आई।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत नाहिं रहाइ यौं बौराई।
घर मैं रहें कहा याकौं घर बन ठहरयौ सासु ननँद न्याय रहत रिसाई।
आनँदघन - हित अँसुवनि भीजी सोचनि सूखति मेरी माई॥

चेतावनी] (८५६) [पूरबी, झपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है संसार।
हरिचरनन चिंतवन करि निरंतर जिन ही लावै बार।
छिनहीं छिन जात बै बीति यौं चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार।
आनँदघन - चरित अमृत - रसधार करि पान है अमर निरधार॥

पूर्वराग] (८५७) [इकताल

गुजरिया गुपाल के रंग बीधी गोहन लागियै डोलै।
करति नहीं कुलकानि तनकहूँ जोबन-रूप-छकी सु गुमान भरियै न बोलै।
ज्यौं ज्यौं चलत चबाव चहूँ दिसि त्यौं ही त्यौं रस-सिंधु कलोलै।
आनँदघन मुखचंद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारैं अति अनुराग अतोलै॥

८५६-लावै०-लगावै पार (वृंदा०)। ८५७—रंग-गुन-(वृंदा०)। सु-अतिहि। अति-उर (वही)। अतोलै-हितोलै (सतना)।

[८५३] मदार=कल्पवृक्ष। आवृत=घिरा। सौंज=सामग्री। निकर=समूह। समै०=समयानुकूल। [८५६] सार=तत्त्व। जिन ही०=देर मत कर। बै=वयस्। [८५७] गुजरिया=(गुर्जरी) गोपी। बीधी= बिद्ध) रँगी। कलोलै=लहराती है अर्थात् स्नान करती है। तोलै=अर्थात साधती है।

नयनोक्ति] (८५८) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखैं बिन न रहति।
सब मिलि देत बहुत बिधि सिख सखी ये अमैड़ तनकौ न गहति।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति।
आनँदघन रस भीजी रीझी औसेरनि जल बहति दहति ॥

विरह-व्यथा] (८५९) [राग सारंग, तालजात्रा

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन बल ना।
घर-अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना॥

पूर्वराग] (८६०) [मालव, मूलताल

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैं।
लाल गरथारैं वोल सुनायौ प्रान परे अरबर मैं।
निपट अटपटी पीर सखी री को पावै या मर मैं।
आनँदघन व्रज रस-झर लायौ हौं ही बिरहा-झर मैं ॥

पूर्वराग] (८६१) [गौरी-ईमन, रूपकताल

आई री बहुरि दुखदाई साँझ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तैं बनत बनवारी सौं अब
ताहू मैं परी है लाँझ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सौं भाँवरि भरत-गलीनि माँझ।
छाँह-छिवन दूभर आनँदघन इतर देहरी करत झाँझ ॥

वेणुवादन] (८६२) [राग गौरी, इकताल

मुरली मैं कौन ठगौरी है।
स्रौननि सुनी तनक भनकौ जिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है।

८५९—छिन—पल (वृंदा०)। ८६१—इतर० = लूतर डहीली (वृंदा०)।

[८५८] अमैड़=मर्यादा को न माननेवाली। न चहति=नहीं देखती। औसेर=प्रतीक्षाजन्य पीड़ा। [८६०] गरथारैं=गली में। अरबर=मुश्किल। बिरहा=बिरहाग्नि। [८६१] लाँझ=(लंघन) बाधा। छिवन=छूना। दूभर=कठिन। इतर=थोर, प्रिय। देहरी=देहली के पास, निकट ही। झाँझ=शोर।

उठि उठि चलत न रहत भवन दृग लागी देखन की ढौरी है।
आनँदघन पिय की प्यारी यह हम ही सौं अति खौरी है॥

चेतावनी] (८६३) [राग गौरी, इकताला

मन ! बन तैं बाहिर जिन जाय।
राधा-हिलन-मिलन-सुख स्यामहि पुरवत यहै बनाय।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तैं निपट सहाय।
तरु-तरु लता-लता मैं दरसत भरयौ सुदंपति-भाय।
याही मैं भाँवरी भरयौ करि विनवत हाहा खाय।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि रस लै प्यास बढाय॥

बन-बिहार] (८६४) [गौरी, इकताल

गोकुल वॉ के ग्वार, डगर बताइ रे हौं भूली।
बिछुरि परी सहचरिन संग तें डोलत वन किलकाइ रे।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दीनी गैल जताइ रे॥

रूपमाधुरी] (८६५) [तालजात्रा

अरे अरे साँवरे तैं, कहा टोना कीनौं।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौं।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक वदन रँग-भीनौं।
रीझनि लै भिजई आनँदघन तो पर सरवसु वारनै दीनौं॥

प्रेम-मिलन] (८६६) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया।
खरी पियासी आँखड़ियानूँ जीय-जियावन दरस दिया।

८६४—किलकाइ—वित जाइ (वृंदा०)।

[८६२] ढौरी=धुन। खौरी=बुराई। [८६३] बन=वृंदावन। पुरवत=पूरा करता है। बनाय=भली भाँति। निसि तैं=रात होते ही। सहाय=सहायक। हाहा खाय=दीनता दिखाकर। [८६४] वॉ के=ओर के, वाले। किलकाइ=चिल्लाकर। [८६५] गौरी०=गौड़ी रागिनी बजाने से। घूमरे=नशीले।

उमरदराज गरीबाँ दी बस्ती कीती महर सवाब लिया ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरबानी मुख वेखि जिया ॥

उपालंभ] (८६७)

घनस्याम पियारे ये बातैँ ।
मन औरैं मुख और बतावत छाँड़त नाहिँ कपट की घातैँ ।
काहू पै दिनहीँ झूमत हौ काहू पै त्यौँ बितवौ रातैँ ।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैँ का तैँ ।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हौ तातैँ ।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम ही मँडरातैँ ॥

श्रीराधा-चरण] (८६८)

मृदु तरवनि मैँ लसति ललाई ।
झमकि जहाँ पग धरति लाड़िली मनहु अरुनता आनि बिछाई ।
महा रुचिर वर गोरी गुलफनि मुक्तावलि फबि रही सुहाई ।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई ।
जगमगि रह्यौ सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई ।
नवल अंग की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई ।
विविध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई ।
तब की कहा कहौँ आनँदघन जब पिय-सँग निर्तति सुखदाई ॥

(८६९) [मूलताल

तिहारी बतिया उघरि परो,
हाँ हो स्याम उज्यारे काहे कौँ सौँहैँ खात ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागी अनत झरो ।

८६८—झल०—जगमगात (वृंदा०) । पै—पुनि । अंग—नखन (वहीं) । नवल—रुचिर (संग्रह) ।

[८६६] ख़री=अति प्यासी आँखों को । उमर० = लंबी उमरवाले । गरीबाँ=गरीबों की बस्ती पर । कीती=की । महर=कृपा । सवाब=पुण्य । कुरबानी = निछावर हूं । [८६७] का तैँ=किससे । [८६८] गुलफ=एड़ी के ऊपर की गाँठ । न्यास=पैर रखने की क्रिया । लेत० = बलिहारी लेते हैं । निर्तति=नाचती है ।

(८७०) [सोहनी ताल

जिंद निमाणी ! तपदी, सौंहैंणा मुख वेखलामी जानी ।
ब्रजमोहन बे-परवाह गुमानी वो वो वो तैंनूँ तैंनूँ तैंनूँ जपदी ॥

नयनोक्ति] (८७१) [पूर्वी, धनाश्री

देखन को फल हो मोहन देखैं ।
नातर खुली मुँदी ये कैसी आँखैं कौन धौं लेखैं ।
कहा तिलौंछैं पौंछैं अँगौंछैं रचि काजर की रेखैं ।
आनँदघन ब्रजनाथ दरस बिन भोजी बरति परेखैं ॥

गो-दोहन] (८७२) [हमीर, रूपताल

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार ।
हाथ दोहनी देत लेत धीरज न रहत फिरि हाथ ।
नई हिलग की चोप-चटक-बस चितवनिही मैं भरत बाथ ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ ॥

मातृस्नेह] (८७३) [हमीर कल्याण, झूकताल

जसोमति आरती उतारै उमगि आपनो ज्यौ वारै ।
चित चढ़ि रही ललन की बन तैं गोधन लै घर-आवनि,
अति आरति सौं वदन निहारै ।
लै बलाय, आँचर मुख पोंछति प्रेम-पुचकरनि बरसति प्यारै ।
दूधनि भरी सपूती या विधि आनँदघन-हित कान्ह पर्पाहै पारै ॥

ब्रजदूलह] (८७४)

झुरमुट लाग्यौई रहै नित नँदरानी के आँगन ।
ब्रज की नवल बधू रँगभीनी, मोहन स्याम चितै बस
कीनी, आवत मिस लै लै कछु माँगन ।

८७२-लेत-लौंड़आ-(संग्रह) । ८७३-आपनो०-आपनपौ (वृं०) ।

[८७०] जिंद=जिंदगी । सौंहैंणा=प्रिय । वेखलामी=दिखलाती । तैनूँ=तुझको । तिलौंछना=तेल से चिकनाना । अँगौंछना=गीले कपड़े से पोंछना । [८७२] बाथ=अँकवार । खिरक=गाय बाँधने का स्थान, गोठ ।

कौ लौं दुरति सरक सनेह की हियरा बिध्यौ बिषम सर-साँगन।
दिन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, बँध्यौ
परम पन काँगन ॥

(८७५) [मूलताल

नैना तरसत हैं, पिय - मूरति देखन कौं।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उघरे बरसत हैं।
लोक-लाज त्यौं तनक न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन-हित प्रान - पपीहा पल पल तरसत हैं ॥

प्रेम-पीड़ा] (८७६) [इकताल

कठिन हिलग की पीर दैया कासौं कहियै।
बिन देखैं मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैं दहियै।
नित जित तित छूछे चवाव सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहिय।
आनँदघन पिय सौं जु भैंट तनकौ कहुँ होइ तौ कहा चहियै ॥

(८७७) [मूलताल

भटू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौं अरु वाकी
सी वाही सौं कपट अटपटी बतियानि ठानै ॥

(८७८) [भूपाली

तिहारे देखे बिना मैं कैसैं भरौं दिन-रतियाँ।
वैसैं मिलौं क्यौंऽब अनमिलैं तुम्हैं जो किये बिरह छत छतियाँ।
काहे कौं मन मोहि लियौ तब कहि कहि कै हित - बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी वैलतियाँ ॥

८७४–बिषम–बिगस (सतना)। परम०–परसपर (वही)। ८७६–नित०–जितहि तितहि (वृंदा०)। ८७७–भटू–बधू। इतौ–मिता (वही)। ८७८–इतहू०–इत बरनी (वृंदा०)।

[८७४] भुरमट = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [८७८] वैलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')।

लचिता] (८७९) [ईमन, मूलताल

अनखि अनखि ज्यौँ ज्यौँ बोलै री लड़ीली त्यौँ त्यौँ
मोहिँ लगति अति नीकी ।
मो सी मनमेलू सौँ रूखी परति अचगरी निपट पुढाई ही की ।
हौँ तेरे नैननि बैननि ह्वै समझति सब जु कसक है जी की ।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई रिझई तू सुधि
करि लै सीबी की ॥

युगल-जोड़ी] (८८०) [ईमन, इकताल

कान्ह है गोकुल को, राधा बरसानेवारी ।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस विरंचि-सँवारी ।
धुर की लगनि लगी अति गाढो बाढी चोप-चटक जो प्यारी ।
नवल नेह रस-झर आनँदघन लाग्योइ रहत सदा री ॥

पूर्वराग] (८८१) [ईमन, इकताला

लालची नैन हमारे देखेँ बिन न रहैँ ।
अपनो सो बरजति बहुतेरो ये तनकौ न गहैँ ।
मन हरि-हाथ दियौ लै इनहीँ अटपटि चोप चहैँ ।
आनँदघन रस चाखि बस भए सबके बोल सहैँ ॥

पूर्वराग] (८८२) [ईमन, जाग्राताल

अणी मिठबोलणा यार निमाणी दा ।
इत बल आँवदा कूक सुवणाँवदा महरम-हाल दिवाणी दा ।
मुरली बजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ-त्रिकाणी दा ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ बंदी कुरवाणी दा ॥

८७९–पुढाई–खुटाई (सतना) । ८८०–बरसाने–रावल (वृंदा०) ।

[८७९] लड़ीली=लाड़िली, आनवानवाली । मनमेलू=मन मिलानेवाला, हितू । अचगरी=छेड़छाड़ । सीबी=शीत्कार, सी सी । [८८०] धुर की=चरम सीमा की । [८८१] बोल=बात, व्यंग्य । [८८२] अणी=अरी । यार=प्यार । महरम-हाल०=मुझ दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है । प्यारिया=प्यारा ।

(८८३) [ईमन, मूलताल

तू की जाणदा वे हाल निमाणिया ब्रजमोहन आनँदघन बेपरवाह ।
ताती वात न लागै तैनूँ प्यारे बुरो वे गरीबाँ दी आह वाह वाह ॥

(८८४) [ईमन, चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं बनवारी ।
स्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौं वारी ।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति दसौ दिसा अँधियारी ।
आनँदघन रसपान करन हित चित चातक - ब्रतधारी ॥

पनघट-लीला] (८८५) [ईमन, रूपताल

ए गागरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै ।
दीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तैं नहिं चैन बितै ।
बीर कहा कहौं पीर मरम की चितवनि मैं कछु गयौ चितै ।
अब आनँदघन पिय सौं मिलौं, ज्यौं सुख पावै ज्यौं इतै ॥

पूर्वराग] (८८६) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखैं रह्यौ न जाय ।
सुंदर वदन - सुधा - पान चसकैं चख रहे लुभाय ।
कहियै कहा महा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय ।
प्यासे प्रान रहत चातक लौं आनँदघनहिं मिलाय ॥

पूर्वराग] (८८७) [तालजात्रा

तुमी मनु मोर मनुवा है, लागि रहिलो ललना ।
रूप-उजियारे निहारे विना सु परै निस - द्यौस कल ना ॥

अभिलाप] (८८८) [कान्हरो, चौताल

मोकौं सरन रहौ राधे ये चरन तेरे लहौ मन-नैन इनहीं मैं बसेरे ।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय - मन चोपनि एकटक हेरे ।

८८६—रहत—रचत—(वृंदा०) ।

[८८३] की० = क्या जानता है । ताती० = गरम हवा । गरीबाँ० = गरीबों की आह बुरी होती है । [८८५] आई० = धैर्य जो आई । नहिं० = चैन नहीं है । ज्यौं = जो, जीय ।

परसन कौँ तरसत रहत नागर भागनि बल अभिसरत सु नेरे ।
आनँदघन श्रीबृंदाबन - अवनी - मंडन जीवन - धन हैँ मेरे ॥

पूर्वराग] (८८९) [कान्हरो, मूलताल

स्याम सलोने सौँ दृग अटके रोके रहत न घूँघट-पट के ।
रूप - रसासव छके न मानत वहुत भाँति हौँ हटके ।
मोहूँ अपबस किये नचावत गोहन मोहन नागर नट के ।
आनँदघन इनकौँ सिख ऐसैँ जैसैँ तुष लै फटके ॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (८९०) [सकराभरन, मूलताल

बृषभान - कुँवरि के चरन सरन - अभिलाषा - भरन ।
सीतल-सुखद रसिक-मनरंजन कंज न ऐसे लसत वरन ।
श्रीबृंदाबन-अवनी-मंडन रास-बिलास-न्यास-गति-वितरन ।
आनँदघन कौँ रसद बिसदबर सदा विराजौ अभयकरन ॥

स्वादी लोचन] (८९१) [नायकी, चौताल

लोचन स्वादी हैँ छबि - रस के ।
देखि देखि पिय - मुख सुख पावत त्यागी पलक - परस के ।
ताहो मैँ मुसकनि - आसव छकि नाहिँ रहे मो वस के ।
क्यौँ कुलकानि करैँ आनँदघन जिनहिँ परे ये चसके ॥

अभिलाष] (८९२) [मूलताल

देखन न दैहौँ काहू कौँ हौँ आपने लाल पियारे को हौँ ।
पलकनि संपुट करि राखौँगी रूप - उज्यारे को हौँ ।
निधरक देखि न सकति दीठि डरि रहि रहि निकमति हारे को हौँ ।
आनँदघन रसमूरति ब्रजमोहन गुन - भारे को हौँ ॥

८९०–वरन–सरन (सतना) ।

[८८९] रसासव = आनद का आसव (शराब) । हटके = मना किया । अपबस = अपने वश मैँ । तुष = धान की भूसी । [८९०] सरन० = शरणागत की । न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) मोक्ष देनेवाला है । [८९१] त्यागी० = पलकौँ का स्पर्श त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं । चसके = टेव, अभ्यास । [८९२] हारे० = विवश होकर ।

गिरि-धारण] (८९३)

आजु गिरि धारयौ हो ब्रजराज के लला।
कहि न जात छल-बल की निकाई छबीली छिंगुनी-छोर छाजै ज्यौं छला।
कछू न काहू को गयौ ब्रज नीकैं राखि लियौ भई है सकल बिधि भलो भला।
अतिही चकित भयौ आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला॥

प्रेम-वन] (८९४) [इकताल

उघरि उघरि मो हियँ बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा।
ब्रजमोहन नवरंग छबीले तिहारी बातनि घातनि कौन छेहरा॥

जन्म-बधाई] (८९५)

आजु वधावन, सुंदर बन घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे छेरवा।
उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस राखिलौ नेह - मेहरवा॥

स्मरण] (८९६) [केदारो, चौताल

तुम कों जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं, तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि बिरह - खोंप सीवत हैं।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-बस प्यासन ही पीवत हैं॥

प्रभावुकता] (८९७) [केदार, मूलताल

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि बोलनि गावनि ठगौरी।
सब हीं भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी।
छिन-पल कल न परति बिन देखैं लगिय रहति निस-दिन यह ढौरी।
चख-चातकन की तपति तबहिं तौ मिटै आनँदघन पिय दरसैं
बरसैं कहुँ जौ री॥

[८९३] छला = छल्ला, अँगूठी। कला = विद्या। [८९४] नेहरा० = स्नेह का बादल; आनंदघन। छेहरा = अंत। [८९५] बधावन = बधाई, जन्म-बधाई। अइलौ = आए। छेरवा = बच्चा। रखिलौ = रखा। नेह० = प्रेम का बादल; आनंदघन। [८९६] सुरति = सुध। टोहि = खोजकर। खोंप = फटा अंश, चीर। पलक० = निर्निमेष, रहते हैं।

वेणुवादन] (८९८) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगाएँई डोलै ।
कहा करै बपुरी व्रज - अबला, गरब - गाँठि गहि खोलै ।
धुनि सुनि और होति थिर चर गति, भोरी विचारिनि की मति कोलै ।
आनँदघन हूँ भिजए रिझए क्यौं न बोल बड़ बोलै ॥

(८९९) [मूलताल

मुख मुरली मैं केदारो कैसैं गावै ।
जैसी जैसी जीव आवै तैसी तैसी तानि भौंह दरसावै
दृग-बिलास दखैं भावै ।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहँवै रिझावै ।
आनँदघन देखत ही भीजी तू जानत है चित के चावै ॥

रासलीला] (९००)

रीझनि बिबस भए रसरंगी मोहन राधा के गावत
हो रस - रास मैं ।
सुरसबाद मन मोय गयौ मति-गति विथकी नैननि संग
आछे मुख-उजास मैं भौंहनि बिलास मैं ।
ऐसे रिझवार की मोहिं बलैया लागो या समैं ।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमँडि घमँडि हुलसौ
बिलसौ बृंदावन जमुना-पुलिन प्रकास मैं ॥

(९०१) [केदारो च्यान, तालजात्रा

प्रवास-विरह]

मारौ गरजि गरजि घन ! मारौ जिया डरावौ
प्रीतम प्यारे बिना मैं कैसैं भरौं हौं ।
तैसियै निसि अँधियारी कारी तैसियै सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं ॥

९००—बाद—वदन मोय गई (सतना) । की—वारि (वहीं) । ९०१—जिया—हो (सतना) ।

[८९८] कोलै = विह्वल हो जाती है । [८९९] केदारो = एक राग । [९००] उजास = उजाला । पुलिन = तट ।

मानमोचन] (९०२) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहाँ, ढीले ढीले॥

याचना] (९०३) [आड़ चौताला

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम - समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग की कछु कहि न आवत बात।
बिबस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात॥

रूपदर्शन] (९०४) [बिहागरो, आड़ इकताला

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िलो की छबि मोहै चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दृगनि चहै॥

संघट्टन] (९०५) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रवीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुंज-गलियै जू।
आरति समझि गहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यो मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू॥

९०२-आगि०—स्यामा करि लै अपने मन भाए (वृंदा०)। ९०३-बिबस—बसे (वृंदा०)। ९०४-मोय०—भोय भोय (वृंदा०)। ९०५—निहारत—नापत (वृंदा०)।

[९०३] अभंग=अखंड। [९०४] मोय=भींगकर। गहर=गहराई। मिति=थाह। [९०५] नाखत=डालते हैं। आरति=उत्कंठा। गहर=देर। अलियै=सखी हो। रलियै=क्रीड़ा ही।

जिज्ञासा]

(९०६)

हौँ तुम सौँ एक बात बूझति हौँ, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरैँ हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(९०७) [तालजाश्र

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौँ बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौँ आसा-खेत॥

युगल छबि]

(९०८)

मेरी आँखिन सुख दैबो करौ रगभरी जोरी।
स्यामसुदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।
यहै सुरूप यहै जोबन धन यही रसीली बातैँ।
यह बृंदाबन यह जमुना ये दिन येई रातैँ।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौँ रिझाऊँ।
आनँदघन घमड़ि सदा रस-सपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसैँई दरसौ॥

प्रियागम]

(९०९)

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया, रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
ब्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया॥

९०८-जोवन०- गोवरधन (सतना)।

[९०६] अंतरपट = वस्त्र, परदा। नेह० = प्रेम बाँधते हो, करते हो। [९०७] ढरारे = ढलनेवाले। अंत० = प्राण क्यों लेते हो, मारते क्यों हो। सींचौ = सींचा हुआ। [९०८] कौतिक = कौतुक, खेल। दरसौ = दिखाई दे। [९०९] अहोणी = हे सखी। ढोलन = दूल्हा। रब = ईश्वर। कीता = किया। साडे० = हमारा मनचाहा।

पनघट-लीला] (९१०) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर ब्रजमोहन रस को प्यासो डोलै ।
आनँदघन मोहियै भूल्यौ कहा कहौं चेटक चितवनि के सैनन ही बोलै ॥

(९११) [परज, तालजात्रा

साँवला सोहणा मिठबोलन ।
महरम दिलजानो भँडरा गुज्झ गलाँ दी घुंडियाँ खोलन ।
जीव जिवाँदा गावँदा भावँदा आवँदा नी लटकेंदड़ा ढोलन ।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन रत्त-दिहाडे, छडिया कोलन ॥

पूर्वराग] (९१२) [इकताला

निगोड़ो नेहरा बढ़ै ।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढ़ै ।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढ़ै ।
हसि चितवनि कौंधनि आनँदघन मति-गति मोह मढ़ै ॥

(९१३) [तालजात्रा

देख्यौ नेही नंदकिसोर ।
हौं हूं लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगौ जब देख्यौ याही ओर ।
कैसें अपबस राखौं अपनपो है बरबट चित चोर ।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लै कर प्रान अँकोर ॥

राधा रानी] (९१४) [मूलताल

वृंदावन - रानी राधा है ।
रास-रसिक ब्रजमोहन पिय की पुरवनि साधा है ।

९११—गलाँ—गुलाँ (सतना)।

[९१०] चेटक = जादू । [९११] सोहणा = (शोभन) सुंदर । मरहम = मर्मी । भँडरा = भ्रमर । गुज्झ = गुह्य । गलाँ० = बात । नी = नु (निश्चयार्थक)। लटकेंदड़ा = लटक के साथ । ढोलन = प्रिय, पति । प्रान० = प्राणरूपी चातकों दा । रत्तदिहाड़े = रातदिन । छडिया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला । [९१२] रढ़ै = रटती है । [९१३] लई० = हृदय चिकना गया; प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया । बरबट = बरबस । अँकोर = भेंट ।

याकी छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है ।
आनँदघन चातक-व्रत सेवत प्रेम अगाधा है ॥

वेणुवादन] (९१५) [इकताल

बाँसली हे वीर ! घणाँ दिन पाड़ै छै ।
भला घराँ रा माणसा नूँ कानाँ लागि बिगाड़ै छै ।
काँई कराँ, क्याँ वस नहिं चालै, घर बैठ्याँ नूँ ताड़ै छै ।
केड़े पडी रहै आनँदघन छानी वात उघाड़ै छै ॥

विरह-निवेदन] (९१६) [मूलतान

विरहा ऐसी कै सताई जू तिहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाडै छति कों ।
स्यामसुँदर व्रजमोहन आनँदघन पिय तुमहिं
दया कबहुँ उपजै गति कों ॥

वेणुवादन] (९१७) [खंभायची, तालजात्रा

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनी मन मोहि लीयो छै ।
तीखो तीखी तानाँ बानाँ प्राणाँ माहीं गैलो कीयो छै ।
थे तो म्हारा रूडा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छै ।
अब म्हानै जग खारो लागै आनँदघन रस नीको पीयो छै ॥

पूर्वराग] (९१८) [मूलतान

लगन लगी है स्याम पियारे ।
अब कैसैं यह दुरी रहति है व्रजमोहन उजियारे ।

[९१४] साधा=इच्छा । समाधा = समाधान (सब बातों का निराकरण) । [९१५] बाँसली = बाँसुरी । वीर = सखी । घणाँ० = बहुत ही हैरान कर रही है । भला० = भले घरों के लोगों को । कानाँ = कानों में । काँई० = क्या करूँ । घर० = बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है । केड़े० = पीछे पड़ी रहती है । [illegible] = (छन्न) ढकी बात खोल देती है । [९१६] ऐसी कै = इतना अधिक । छति = छत (से मार्ग देखती है) । गति० = मेरी ओर आने के लिए । [९१७] [illegible] = आपकी । गैलो = गली, रास्ता । थे = आप । म्हारा = मेरे । रूडा = सुन्दर । राजिंदा = (राजेंद्र) अति प्रिय । म्हे = मैं । थानै = आपको । आपो = [illegible] । खारो = कड़वा ।

इत हौं बकति तिहारेई गुन तुम मँडरात चोप-मतवारे।
आनँदघन इत मुरलि तिहारी ये सब भेद उघारे ॥

बलदेवजू की स्तुति] (९१९) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार विक्रम - बिपुल
अतुल-बलधाम अच्युत कृपानिधि।
जयति गौर सुंदर बरन नील-अंबर-धरन
एक - कुंडल - करन आभा बिबिधि।
जयति ब्रह्म - अग्रज ब्रज - बिलास मंगलसदन
कामपालक सदा मत्त-रसरंग-रिधि।
करुना-सुदृस्टि आनँदघन वृस्टि करि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि ॥

सारंग] (९२०) [चौताला

जय जय जय बलभद्र वीर धीर गंभीर अबिलंब प्रलंबहारी।
निज ब्रजकेलि - रस - माते मुसली कुसली
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी।
याही तें नीलांबर धारत परम प्रीति रीति रुचि बिस्तारी।
घन आनँदघन बरसत स्यामै सरसत हित गति न्यारी ॥

(९२१) [भैरव, तालजात्रा

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौं, बलदेव को एक आसरो राखौं।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौं, बलदेव कृपा तैं ब्रजरंग राचौं।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौं, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौं।
बलदेव सो एक बलदेव देखौं, बलदेव-कृपा को पुंज उर लेखौं।
बलदेव सब काज मेरे सुधारे, आनँदघन बरसि दुःख-ताप टारे ॥

९१९—नव—हरन (वृंदा०)।

[९१९] एक०=बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है। करन=कर, कान; ब्रह्म=श्रीकृष्ण। रिधि=ऋद्धि, समृद्धि। [९२०] प्रलंब=एक दानव। मुसली=मुसल धारण करनेवाले। [९२१] राचौं=लीन होओ, रचो। अनुज=श्रीकृष्ण।

(९२२) [ललित, मूलताल

सद-बिघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन
बल हलधर राजैं।
गोपाल-मोह-गहवरित-हृदय ब्रजबन लीला साजैं निज सुख-काजैं।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं।
आनँदघन नीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं॥

श्रीरामजन्म-बधाई] (९२३) [रामकली, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु।
निरवधि करुना-अवधि-अवधि मंडन प्रगटे महाबाहु।
कौसिल्या की कोखि सिरानी लह्यौ अपूरब पुन्यनि लाहु।
फूले सत सुर-हित अनुकूले असहिन के उर दाहु।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ़्यौ जग मैं सुजस-प्रवाहु।
निज दासनि को सुख कहा कहियै दिन दिन अधिक उमाहु॥

(९२४) [टोड़ी, एकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन।
अवधपुरी मधि महामोह छबि नरनारी फूले आनंदन।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन॥

(९२५) [केदारो, इकताल

आजु मंदिलरा दसरथराय के बाजै रंग-बधाई है।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मनभाई है।
अवधपुरी आनँद-झर लाग्यौ उघरी भाग-निकाई है।
चहूँ ओर मंगल-धुनि सुनियत राम दुहाई है॥

[९२२] बिघूर्नित = चंचल। बरन = रंग। मोह = प्रेम। गहवरित = भरित। निसान = बाजा। [९२३] निरवधि = सीमारहित। अवधि-मंडन = अयोध्या की शोभा करनेवाले। कोखि = कोख ठंडी हुई (पुत्रोत्पत्ति से)। सुर-हित = देवों का हित (भलाई)। असही = न सहनेवाले, शत्रु। निज = खास। [९२४] दसस्यदन = दशरथ। [९२५] मंदिलरा = मर्दल, मृदंग।

(९२६) [कान्हरो बागेश्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
बाजति रंग-बधाई फूले फिरत नर तियौ ।
सिव बिधि सुक सनकादि सुर-समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ ।
आनँदघन झर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ ॥

(९२७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ ।
रविकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अदभुत कला-बिलास ठयौ ।
दुख-तम दूरि गयौ दवि कितहूँ बाढ़यौ मन मैं मोद नयौ ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरंग छयौ ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ ।
दसरथ-भाग कहा कहि बरनौं सकल देखियत सुकृतन यौ ।
अमीदृस्टि रसवृस्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन उनयौ ॥

(९२८) [टोड़ी, मूलताल

मंदिलरा री बाजै अति ही गहगहे प्रगट भए
या अवध नगर मैं रामचंद्र बर आजै ।
गावत मंगल मिलि बनिता - गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै ।
करत बेद-धुनि बिप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा बिराजै ।
मनवांछित फल भए परमानंद बोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै ॥

९२७–सुर–नर (वृंदा०)। ९२८–उमँग०–मंगल रंग (वही)।

[९२६] तियौ = स्त्रियाँ भी। दातार = दानी। [९२७] ककुभ = दिशा। सुधा = सुधा से। [९२८] मंदिलरा = मर्दल, मृदंग। आजै = आज ही। तोरन = फाटक। राजै = स्वयं राजा ही।

(९२९) [मलार, इकताल

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरी चटक-चोप सों।
पिय अपबस करि भले बसायो कुंज-सदन हो सूनो।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वै नागर बर बनक दुहूनो।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो॥

प्रेमघन] (९३०) [रूपताल

तिहारो नेह चौबाई को सो नेह कान्ह झूमि झूमि ब्रज बरसैं।
निकसन काहु न देत घरिक हू कों लौं घिरे घरहि रहियैं
अति नकवानी करि सरसैं।
अरु अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावैं सो सूखि सूखि तरसैं।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी दै नए नए रंगनि दरसैं॥

(९३१) [मुलताल

एहो कामरि की खोही, रँग राख्यौ चूनरि को।
बन मैं बन्यो दावँ काहू मिस को न भावती जोही।
जमुना-तीर बर-तरँ ठाढ़े भोजत रीझत मति-गति मोही।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस बरसा मोही॥

(९३२)

सघन वृंदावन सुहायो राधामोहन - मन - भायो
सहज ही ये पावस आय बिराज्यो।
केकी कोकिलान की किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि नाच्यो।

९३१–मति०–गति रति (वृंदा०)।

[९२९] दै०=सौतों के मुख में चूना लगाकर, सौतों को दुःख पहुँचाकर।
[९३०] चौबाई=चारों दिशाओं से वायु का चलना। नकवानी=परेशानी।
[९३१] खोही=घोघी, कंबल को दो परत में लपेटकर ऐसे सर [illegible] जिससे
शरीर ढका जा सके। बर=वट।

तरनि-तनया की तरंगनि बढ़नि देखि बाढ़त
बिनोद मोद तन-ताप भाज्यौ।
यहि विधि वैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुगति समागम साज्यौ॥

घनश्याम] (९३३) [इकताल

आवत है हो हरि मातो मेह।
वन ह्वै निवहि जाउँ जौ घर लौं, तौ निबहै नित नित को नेह।
हठ की वात भली न भावते तुमहिं बढ़्यौ मनमथ को तेह॥

वृंदावन-महत्ता] (९३४) [चौताल

सब रितु वृंदावन सुखदाई।
दंपति की हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई।
आनँदघन की घमड़ निरंतर मुरली-गरज सुहाई॥

गोपी-प्रेम] (९३५) [इकताल

कामरियावारे की घात न क्यौं हूँ जानि परै।
राति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै।
ऐसो छली वली अति चौकस, नेकु न कानि परै।
आनँदघन रस-बस करि राखै जौ उहि पानि परै॥

(९३६) [मूलताल

कैसें रहौंगी अब मैं ऐसैं स्याम उज्यारे बिना।
ब्रजमोहन आनँदघन कितहूँ छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत है मोकौं रैन-दिना॥

९३२–सुगति–सुरति (वही)। ९३३–वृं०–कै निवहि (सतना)। ९३६–ऐसैं–ऐसैं (वृं०)।

[९३३] मेह = [illegible], वेग। [९३५] न कानि परै = मर्यादा का विचार नहीं करता। पानि = हाथ।

गोपी-प्रेम] (९३७)

हरवा मोर टुटीलौ अबही ननदिया वाही दीनो उतर कहा देहौं।
आनँदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनवाद करौ तिहारी
सौं जान देहु जू जो बनिहै तौ बहुरयौ एहौं ॥

हिँडोरा के पद] (९३८) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिँडोरे दुहुन की, ए दुहुन की।
चोप सौं लचकि मचकत खरे रंग-भरे कचनि तें बरसनि प्रसून की।
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की।
यह छबि निहारि न सँभारि आनंदघन सुधि बुधि टरी सुर-बधून की ॥

(९३९)

लाड़ - गहेली को तीज मनावन की रीति मैया
भाग भरी सब भाँतिन।
उबटि न्हवाय सिँगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय बहुत
कछु वारति फूली अंग माति न।
रतन - हिँडोरैं हुलसि झुलावति सँग सोहति साथिनि
दाई की बनी ठनी अप-अपनी भाँतिन।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन मैं मंगल-मनि की काँतिन ॥

लालजू की बधाई] (९४०) [भैरव, इकताला

या अति लाड़ के चावन दै घर नित ही बधावनो।
स्यामसुँदर होनो दिन लोनो मंगल-मोद-बढावनो है नैन-सिरावनो।
जसुमति-बारो कुल - उजियारो सब विधि हिय - जिय भावनो।
ब्रजजन - जीवनधन आनँदघन रस - बरसावनो ॥

(९४१ [तालजाना

आजु हमारैं काजु है हो जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो।
आनँदघन ब्रजलोचन-तारो चिर जियो नंदराय-दुलारो प्रान
को प्यारो ब्रज - रखवारो।

९४०—होनो-दिन (सतना)। नैन०—रस बरसावनो (वृंद०)।

[९३७] अनबाद = फालतू बखेड़ा। [९३८] कच = केश। दून = संगीत
भेद, साधारण से दूना।

मंगल गावौ मोद बढ़ावौ भागनि के फल नैन निहारो।
दिन दिन यह दिन रहौ या घर असीस उचारो ॥

(९४२) [चरचरीताल

वधाई नंद के भई हो मोद - बिनोदमई।
स्यामसुंदर - आगमहि गोकुल - ओप नई।
फैलि परी हित की फलि, अंतर - सूल गई।
भागनि बल यह सुभ घरी विधि बनाय दई।
आनँदघन मंगल - धुनि ठौर ठौर रई।
थिर - चर रस - रंग भोजे कीरति उनई ॥

(९४३) [रामकली, तालजात्रा

लला को सोहिलो गाऊँ, फूली अंग न माऊँ।
नाँदौ वाढ़ौ चिर जीवौ दिन - दिन उदौ मनाऊँ।
नित मोहन - मुखचंद निहारौं नैननि हियौ सिराऊँ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि - दौरि आछेई
आऊँ रंगनि बरसाऊँ ॥

(९४४) [आसावरी, चौताल

स्यामसुंदर को जनम-द्यौस आजु आनंद नंद-सदन मैं निपट।
गावत मंगल गीत गुनीजन प्रेममगन बर बाजे बजावत नाचत
मुदित मैन से बहु नट।
कुँवर कन्हाई दृगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत राजत
श्रीव्रजराज के निकट।
अनगन मनि मुख - छवि पै वारौं वलि, रंगनि भरे अंगनि की
मयूखनि झलकनि छलकति अति झीने पट।

९४२—धुनि—धूनि (वृ० दा०)। ९४४—गननि—भूषन (वही)। सबकी—पुरवनि (ग्रं०)।

[९४२] फलि = फली। रई = रमी। [९४३] सोहिलो = सोहर। नाँदौ = आनंदित होए। [९४४] व्रजराज = नंद। झीने = पतले, महीन। मयूख० = किरणों का समूह।

बनि ठनि बैठे गोप ओप सौं रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को संघट ।
कोटि-कुबेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई पल-
पल सबकी रसना रट ।
द्वार-द्वार नूतन किसलय की जलज-लरनिजुत वंदन-माला अरु
नग खचित दीपत मंगल-घट ।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहपनि बरखत रतननि वारत
उमहि उमहि अंबर तैं अमर-ठट ॥

(९४५) [पूरबी, तालजात्रा

तैंडा रंग, लाडला कान्ह जसोदे । होवे जीवणा जागणा ।
इसदी बलैया मैंनूँ लगौ अँखड़ियाँ दा लागणा ।
उमरदराज करौ रब सैयाँ तुझ जेही केही वडभागणा ।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(९४६) [अडानो, चौताल

आजु मंदल की कहकै ए सजनी सुनि ।
बरस - गाँठि ब्रजमोहन की यातैं मन खोलैं बोलैं धुनि ।
ललहि सिंगारि चौक बैठारति मैया को सुख कौन सकै गुनि ।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि ॥

(९४७) [ईमन, मूलताल

मंदिलरा बाजै रंग सौं ब्रजपति - मदिर मैं आनंद ।
जसुमति - रानी - कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद ।

९४५–लाडला–चोंगला (वृंदा०) ।

[९४५] रंग = धन्य है । जसोदे = हे यशोदा । इसदी० = इसकी बला मुझे लगे । अँखड़ियाँ० = आँखों में बस जानेवाला । रब = ईश्वर । सैयाँ = स्वामी । जेही० = जिस किसके लिए । प्यारिया = प्यारा । सभ = सब । सानूँ = हमको । रस० = रस में डुबानेवाला । [९४६] मंदल = मृदंग । कहकै = ध्वनि । ललहि = लाल (पुत्र) को ।

वंदीजन जस - बिरद बखानत बिप्र बेद - बिधि छंद ।
आनँदघन सबको मनबांछित हरखत बरखत नंद ॥

(९४८) [गौरी, तालमूल

आवौ री मिलि गावौ सुहेलरा, आजु हमारे मंगल माई ।
उदौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी की कूखि सिरानी सुख
निरखत आनंद-बधाई ।
दुखतम टरयौ करयौ सब बिधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई ।
अद्भुत अमी - कला आनँदघन सुजस - जोन्ह रसबृस्टि सुहाई ॥

कुठरानी जू की बधाई] (९४९) [रामकली, तालजात्रा

सोहिलो वृषभान - भवन पै, प्रगटी है मंगल - मनि राधा ।
कीरति - कुल - उजियारी प्यारी पूरन करी सकल बिधि साधा ।
ब्रजदेवी सुर-नर - मुनि - सेवी परम - प्रेम - गुन - रूप - अगाधा ।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ़यौ, टरी सब बाधा ॥

(९५०) [हमीर, चौताल

प्रगटो है मंगल - मनि वृषभान - कुँवरि राधा नामिनी ।
ब्रजजीवन की प्रान - सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी ।
रस-विहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि की स्वामिनी ।
आनँदघन - रस - रासि रसीली बृंदावन - धामिनी ॥

(९५१) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा - नावँ की ।
याहि लड़ाऊँ नाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गावँ की ।

[९४७] मंदिलरा = मृदंग या ढोल । विप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं । [९४८] सुहेलरा = मंगल-गीत । अमी-कला = चंद्रमा । [९४९] कीरति = कीर्ति, राधा की माता । साधा = उत्कंठा । [९५१] लड़ाऊँ = प्यार

बृषभान पिता की जीय - जियारी श्रीदामा की पीठि प्रगट
भई सोभा-निधि ब्रज-ठावँ की ।
बंदौं याहि भीजि आनँदघन हौंसनि होउँ निहाल छिनहिं
छिन रज लै पावँ की ॥

(९५२) [चौताल

साध पूजी मेरे मन की जू कीरति कन्या जाई ।
जसुमति के ब्रजजीवन प्रगटे देखि भयौ सुख यह सुखमानिधि आई ।
इन ह्वै घर की एक लुगाइत जो चित - चौंती सु विधि बनाई ।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ नित ही सोहिले मनाऊँ
न्यौछावरि भरि पाई ॥

(९५३) [ईमन, तालजात्रा

बधावो हौं ही गाऊँ री कीरति-कुँवरि कौं मल्हाऊँ ।
मंगल की मनि सोभा की निधि निरखत नैन सिराऊँ सुखनि सिहाऊँ ।
याही के सुहेले मनाऊँ हौंसनि दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन रंगनि बरसाऊँ याकी बलैया लै लै ज्यौं जियाऊँ
बहु विधि लाड लडाऊँ सबै कछु पाऊँ ॥

(९५४) [जैतश्री, मूलताल

राधा की जनम बधाई हुलसि हुलसि हौंसनि गाऊँ ।
देखि देखि मुखचंद सिहाऊँ मीठी भास मल्हाऊँ ।
कीरति - कुल - उजियारी को बहु भाँतिन लाड़ लडाऊँ ।
जसोदा-जीवन ब्रजमोहन-हित जोरी-अभिलाप मनाऊँ ॥

(९५५) [बिहागरो, इकताल

यह कौन बिधाता की रचना है कीरति-कूखि आनि प्रगटी ।
याहि निरखि जो सुख बाढ़त सो जीयहिं जानै चित चढ़ि
बहुरि नाहिन हटी ।

९५२–यह०–भानु-धियाई (सतना) ।

करूँ । जियारी = जिलानेवाली । श्रीदामा = राधा के बड़े भाई । की पीठि० = श्रीदामा के बाद जन्मी । [९५२] जाई = जनी प्रसव की । सोहिले = मंगल, बधावा । [९५३] मल्हाऊँ = दुलार से खेलाऊँ । [९५४] भास = भाषा, वचन ।

जसुमति - ललन देखि मन आवत जोरी - जुगति अनूप ठटी ।
आनँदघन चिर जियौ हमारी जीवन की निधि जनम-जनम
की तपति कटी ॥

(९५६)

बजै वृषभानु कैँ वधाई कीरति कन्या जाई ।
भाग-भरी राधिका सुलच्छिनि व्रज मंगल-मनि आई ।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी बिधना बनक बनाई ।
सुत को हित विचार मन ही मन फूली अँग न समाई ।
मंगल मोद वधाई की धुनि गोकुल रावल छाई ।
प्रेम-विवस डोलत नर - नागरि हित गति की अधिकाई ।
यह जोरी चिर जियौ छवीली मन नैननि सुखदाई ।
उनै उनै वरसौ आनँदघन सरसौ हरष - हरयाई ॥

श्रीकृष्ण-जन्म] (९५७) [टोड़ी, चौताल

आजु वधावनो नंद-भवन मैँ भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो ।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख - उपजावनो ।
दुज मागध वंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो ।
व्रजपति की उदारता सौँ कैसैँ करि सकत सरसावनो ।
रस - जस मंगल - सिंधु सबै व्रज - रंग तरंग - उमंग बढ़ावनो ।
आनदघन व्रजचंद अखंड अमल अपूरव दरसावनो ॥

(९५८) [बिहागरो, इकताल

व्रज मंगल आजु है हो ।
व्रजरानी सुंदर सुत जायो पूरव - भाग - उदै हो ।
मनभायो सब ही के आयो धन्य सुदेस समै हो ।
आजु हमारो झगरो है जसुमति मैया सौं लै हो ।
कहियै कहा महासुख सरस्यौ चिरजीव्यौ रसमै हो ।
आनँदघन व्रजजन - जीवनधन वरसौ उनै उनै हो ॥

[९५५] तपनि = ताप । [९५६] रावल = राधा का ननिहाल जहाँ वे जन्मी थीं । नागरि = नारी । हरयाई = हरियाली ।

साँझी] (९५९) [हमीर, इकताल

पुजावति साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय।
अरचि चरचि चंदन बंदन सौं फूलमाल पहिराय,
बिविध मधु मेवा भोग रचाय।
बोली बहिनोली घर-घर तैं भरि भरि ओली देत सिहाय।
कंचन-थार उतारि आरत्यौ हाँसनि लागति पाय,
लली को भाग-सुहाग मनाय।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय।
आनँदघन ब्रजजीवन जोरी रसिकन सदा सहाय॥

(९६०) [ईमन, तालजात्रा

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सौं गति लैं।
मुँह की फबनि भौंह-दबनि सबनि के चित चूरे
मुरली मैं रँगरली जति लैं।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरगनि कीजति लैं।
आनँदघन रस रास रचायौ पाग दई सबकी मति लैं॥

(९६१) [केदारो, मूलतान

रास मैं राधा सब रस राख्यौ।
बृंदावन स्वामिनि अभिरामिनि मन जस राख्यौ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ॥

९५९—बहिनोली-बहि दोली (वृंदा०)।

[९५९] साँझी=शरद् ऋतु मैं फूल-पत्तों, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी। पुजावति=राधा से पुजावती है। चरचि=युक्त करके। बदन=सिंदूर। बोली=बुलवाई, निमंत्रित की। बहिनोली=सजातीय स्त्रियाँ। ओली=कोंछ। सिहाय=प्रशंसा करके। [९६०] जति=यति, ठहराव। पाग०=भली भाँति मिला दी। [९६१] जस=जैसा। कस=कैसा।

(९६२) [केदारो, इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके ।
सोही लै गति चोख चटक सौं अनुपम रूप दिखाय
सिखावति त्यौं ही त्यौं जिय भावै पी के ।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पै बनि आवै हो ये
पटतर हैं आप सही के ।
आनँदघन वृंदावन जमुना - तीर घमड़ि रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी के ॥

(९६३)

सरद-रितु जामिनि फूली है ।
जगमगी जोन्ह छवीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि
रची जमुन-कूल अति ही अनुकूली है ।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रसमूली है ।
आनँदघन अद्भुत बिलास-झर वृंदावन मैं देखत भूली है ॥

(९६४) [संकराभरन, तालजात्रा

अगनित वनिता वनि वनि नाचत वनमाली-सँग
बन्यौ है रास वर बानिक जमुना-पुलिन मैं ।
साँवरो सोहन रसिक मोहन चपल चुहल चतुर जोहन
सबनि सौं हिलि मिलि बिलसत अति आनँद मन मैं ।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि रचना रंजित सकल
जुवति मिलि घोष व्यापक कै पुरयौ त्रिभुवन मैं ।
आनँदघन रस - संपति अचरज - मूरति दंपति नित
विहार दीसत पागे हित-घन मैं ॥

(९६५) [केदारो, चौताल

सकल-कला-प्रवीन वृषभानुनंदिनी रस - रास नचै ।
उघटत मोहन नटनागर वर तरल ततकारनि चोपनि चुहल मचै ।

[९६२] सोही=शोभित । चोख=तीव्र । पटतर=समानता । सही=ठीक ।
घमड़=गूँजना । [९६४] चुहल=विनोदी ।

ललिता ललित मृदंग मैँ रंग राखति विविध भेद सौँ सुगंध मचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच को साँच रचै॥

(९६६) [केदारो, चौताल

साधि कै सुर मुरलिका मैँ केदारो ठान्यौ मोहन रसरंगी।
जैसैँ जैसैँ जिय भावै तैसैँ राधे रिझावै तान त्यौनार तरंगी।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि,गासनि की व्यौरनि मैं रंगी।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैँ रहत अभंगी॥

(९६७)

तेरे री मुख की जोति आगैँ कोटिक सरद-चद मद लागै।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि दमकि नंदकिसोर
चकोर-नैना नव चैन-पियूषनि सौँ पागै।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैँ मुसकि लाडिबो
गालनि मैँ गाड़ परत आछी छबि जागै।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि तोहि सौँ अनुरागै
सु तेरई गुन निसि दिन रागै॥

(९६८) हिंडोल, इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौँ।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौँ।
हित-चाँचरि नित मची रहति है नइ नइ उमँग दुहूँ ओरी सौँ।
आनँदघन रस रीझै भीजे हिलगनि झकझोरी सौँ॥

(९६९)

जोबन मौर्‌यौ वसंत फूल्यौ सरस गुराई सोभा निकसी।
अंग अग नवरंग जगमगे मुख सुखसदन चंद्रिका विकसी।

९६६-सुर-रस (वृंदा०)। ९६९-चिक-विक (सतना)।

[९६५] तरल = चंचल। ततकारनि=नाच के बोल। नाच०=नृत्य की सत्यता सिद्ध हो जाती है। आँकौ०=अंक, गोद। [९६६] त्यौनार=ढंग। गास=गाँठ। व्यौरनि = खोलना। [९६७] गाड़=गड्ढा।

रसिया मधुप लटू भयौ डोलै बन बोलै सो लै सुनि पिक सी ।
बलि वलि चलि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही चिक सी ॥

(९७०) [वसंत

वनि वनि आई ब्रज-बनिता बर बसंत बृंदाबन
बनमाली के हित हिलि मिलि ।
कोटि काम अभिराम स्याम-छबि-हेत हुलसि लसे हैं बदन
सुख-सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि ।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनंग-रंग झिलि ।
वहु विधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बंदन
भरत परसपर जोबन के जोरनि पिलि ॥

(९७१) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा को साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतर ।
प्रफुलित ललित हित - बलित सदा विराजत लाग्यौ
रहत आनंद-मकरंद-झर ।
भौंरी अँखिया पीवति जीवति नित रस सींचे जमुना-
तट हो वृंदावन सुदेस थर ।
विलसत लसत घुमड़ि आनँदघन ऐसे वड़भागी जु
वन ही मैं करि पायौ घर ॥

(९७२) [मूलताल

देखौ राधा को सुहाग, याके सरवोपर अनुराग ।
कान्ह कंत बसंत-मूरति नित याके बस बड़भाग
विहारन कौं वृंदावन-बाग ।
याको रूप-निकाई बिधना याहि बनाई याके गुन
मुरली मैं गावत पूरत त्रिविध रागिनी राग ।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगे परम पन-पाग ॥

(९७३) [वसंत, इकताल

नव बसंत फूल्यौ है, जब तैं हरि राधा फूले अति मन मैं
उघरि उघरि होरी खेलन कौं हित चित चौंपनि ।
छाके प्रेम नेम सब थाके ताके वे दिन भरि अभिलापनि
चितवनि ही मैं भई जु बहुत विधि हिय जिय सौंपनि ।
चाव गहगहे उमगि डहडहे वैस लहलहे जोवन कौंपनि ।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँदघन रस पियत
जियत मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-खोंपनि ॥

(९७४) [हिंडोल, चौताल

बसंत नटुवा बनि आयौ री नव वरन वरन पुहप-वसन
पहिरि रिझावन कौं व्रजमोहन स्याम ।
नटनागर गुन - आगर को मुख देखि विवस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोरिक काम ।
व्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ वृंदावन मैं
नित को बिसराम ।
आनँदघन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि वैन वजावत
लै लै नाम चलि वलि विहरन कौं सब धाम ॥

(९७५) [वसत, इकताल

होरी खेलैं रस-भीजे रीझे नंदलाल वृषभानु-कुँवरि
भरि रंग रग-भाय अनुराग-चाय ।
आछी मीठी भासनि सौं हितदारी गारी गाय गाय
मुख-सुपमा कछु बरनि न जाय ।
दुहुँ दिसि सहचरि भरित रंग सौं उमहति समुहति धाय धाय ।
मच्यौ खेल वृंदावन जमुना-तट आनंद-अंवुद रह्यौ छाय
यह छबि हेरत गति-गति हिराय ॥

९७३—नव-वन (सतना) । ७६६—दारी—दारी (वही) ।

[९७३] कौपनि=कोंपनि । खोंपनि=खोंच, वस्त्र का फटा अंश ।

[९७५] भासनि=भाषण, बातचीत । समुहति = सामने आती है ।

(९७६) घनाश्री, तालजात्रा

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सौं।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जीवन को फल लीजियै यह कीजियै पनै।
जीजियै रस पीजियै बरसाय आनँदघनै॥

(९७७) [घनाश्री, इकताल

ऐसो छैल नंद को घाती, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट को ओट पवन नहिं लागत नवजोबन की थाती।
कछुक अनूठो मिस बनाय ढिग आय करत कनबाती।
मुख सौं मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
औटपाय के दाय भरयौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौज लगौ री होरी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनवादन आनँदघन तब ही बिप खाती॥

(९७८)

अचगरे तुमहीं देखे सब डर डारेई डोलौ।
खेल किधौं सतभाव लाड़िले कंचुकि के कस खोलौ।
जौ कोऊ लखि पावै तौ उतर देहु कहा कहि बोलौ।
आनँदघन रसबादनि झूमे तुम सौं भलो अबोलौ॥

(९७९) [इकताल

होरी खेलियै, आँखिन सौं आँखि मिलाय।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक कै रस झेलियै।

९७७–कनबातीं–बतबाती। ९७८–कस–रस (सतना)।

[९७७] कनबाती=मुँह कान मैं लगाकर बात कहना। औटपाय=नटखटपन। दगाती=दगाबाज। न्यौज०=ईश्वरा को अर्पित हो जाय (गाली) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी०=जहाँ जबर्दस्ती का ही वश चलता हो। नातर=नहीं तो। अनबादन=फालतू बातों से। [९७८] अचगरे=नटखट, शरारती। कस=बंद

अंजन आँजि मीडि रोरी मुख हँसि गरबाँही झेलियै।
गहर करन को दावँ न राधे तू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(९८०)

भले बनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करी हौं निहाल।
अंग अनूठी सुगंध के डोरे गुही अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अरगजा ढोरि करैगी आनँदघन ख्याल॥

(९८१) [इकताल

आजु निपट ढिठौंहैं है टरे हौ साँवरे कसरि काढि के मन की।
भौंह नचाय कहा एँडत हौ निडर अमैंड भए व्रजमोहन
घात बनि गई बन की।
ब्रज-राजा की कानि न मानत गोधन-ओट टोह पर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचैहौं
तौ हौं राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(९८२) [टोड़ी, तालत्रिताल

होरी खेल रंगनि रँगीलो छैल छबीलो नागर गोरी-संग।
दरजनि तकि तकि छाँड़त छवि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत धावत मूठि - गुलाल
चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ बरसौले झूमि झपटि लपटि
जात भीने अनंग-उमंग॥

९८१-टरे-रहे (सतना)।

[९७९] मरक=हौसला। झेलियै=क्रीड़ा कीजिए। मेलियै=डालिए। धुर की=अत्यंत, बहुत। [९८०] डोरे=सहारे। ढोरि=लेकर। ख्याल=गीत। [९८१] अमैंड=मनमानी करनेवाला। गोधन०=गाय चराने के बहाने। धन=द्रव्य; धन्या (स्त्री)। तन=ओर, पक्ष।

(९८३)

पकरि बस कीने री नँदलाल, झुरमुट करि
चहुँघा तँ बहुत ब्रजबाल।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं मसरि गुलाल।
देखत बनै स्याम की सोभा, सहनसील कै भए निहाल।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैं ऐसे हाल।
चपरि चलन कौं बहुत अरबरत छूटत क्यौंऽब परि प्रेम के जाल।
सूधे किये बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल॥

(९८४)

होरी के खिलवार, देखे।
मोहीं सौं रसवाद चलावौ नए छैल रिझवार।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैं पिछवार।
आनँदघन उनएई दीसत गिनत न साँझ सवार॥

(९८५)

आजु मेरे आए मया करि होरी खेलन स्याम रसीले।
सब रँग भीजि रहे पहिले ही स्याम रसीले।
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैं रस-बरसीले॥

(९८६) [केदारो, मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-संग।
सुंदर बदन गुलाल लगैये चोवा चंदन वंदन स्याम सलोने अंग।
गैये बजैये चाँचरि मचैये तचैयै री वाहि गति अति ही सुढंग।
आनंदघन बरसैये बढ़ैये सरसैये सुख उपजैयै अद्भुत रंग॥

(९८७) [अड़ानो, रूपकताल

निपट लाड़िली एरी तेरी मुसक्यान प्रानपिय-
जिय सौं खेलि खगी है।
अधर पान धरि धाय रंग बरसाय जाय दुरि भिजवति
गुरुजनि दाय, कौन होरी दाय के चाय पगी है।

[९८३] झुरमुट=झुंड। मसरि=मलकर। [९८४] उघारी=खुली, बेपरद।

फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आवन, गैल अरैल
भयौ टारत नहिं नेकु टगी है॥

(९८८) [ईमन, तालजात्रा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम बरवट वहियाँ मरोरौ।
आवत मूड़ चढ़े अति ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि कनौड़
जनावत जोवन जोरौ।
बातनि घातनि की चतुराई चलैगी न ह्याँ ऐसैं औरन भोरौ।
बहबहे कहुँ रहे, धोखे काहु के आनँदघन भूले से
फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरौ॥

(९८९) [इकताला

नंदलला वृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सों।
सुंदर बदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनी तान
धावत गुलाल लै लै दायन सौं।
दुहुँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि आवत
खेलन कौं जोवन-भरी तमक तायन सौं।
आनँदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृष्टि बचाइ
जाइ ढिग रगनि भरी बिविध भायन सौं॥

(९९०)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडित-गुलाल।
मनहिं लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।
बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित चित छलति हाल।
नीलमनी मिलि बनी ढ्रैलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी खरी ओट दीने तमाल।
चोटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन चितवत रसाल॥

९९०—मनहिँ—मोहि (सतना)।

[९८७] टगी=टकटकी। [९८८] बरवट=बरबस, जबर्दस्ती। कानि०= मर्यादा का ध्यान, लिहाज। बहबहे=बहेतू। टकटोरौ=टकटकी लगाकर देखते हो। [९९०] बैंदी=बिंदी। हाल=तुरंत। बीर=हे सखी।

(९९१)

लै गुलाल मुख माड़्यौ पी कौ, देखौ हो साहस या ती कौ ॥
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहि गए कुँवर कन्हाई।
याको धीर कहत नहिँ आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चखनि चौंध भरि, आई अलग छराए लौं छरि।
मोडति करनि मौन हरि ठाढ़े, रूप-बिमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, बहुत दिनन तैं जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सूखि सिझायौ ॥

(९९२) [बिभास, इकताल

गोकुल मैँ होरी यह कैसी, अहो दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं झकोरत झपटत करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक हौं अपनेई पीहर औरो रहती जौ पै जानती होति ह्याँ ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी ॥

(९९३) [पूरबी, तालजात्रा

गोरी गोरी दिनन की थोरी, बोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलै होरी।
गावै गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै करै चित चोरी।
हँसि जोहै सोहै उमेठियै पैठियै जाति हिये बरजोरी।
आनँदघन मुरकि डारै भोरी सो भोरी मैं रोरी और जानै को री ॥

(९९४) [बिहागरो, मूलताल

तुम ऐसें कैसें खेलौ होरी।
मानस हैं कि ये नाहिं कोउ भाएँ जाऊँ क्यौं न, अब भई न थोरी।
औरौ बसति लुगाई ब्रज मैं मोहिं लगी कछु चोरी।
नए छैल निवटे आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी ॥

९९१-हो०-होसाहोसी (सतना)। करनि०-करति मनोहर (वृंदा०)।
९९४-ऐसें-तुम (सतना)।

[९९१] गुलचा=गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। छराए०=मायादृश्य या जादू की भाँति। सिझायौ=रससिक्त हुआ। [९९४] निवटे=निपट, नितांत।

(९९५) [इकताल

कैसैं डफ ढार ही ढार बजावै, नवेली नागरि गारी गावैं।
मुख-बिकास भौंहनि-बिलास जोबन-उजास
तानति मिठास मोहन के मनहिं घुमावैं।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की ओप बढावैं।
रसमूरति आनँदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावैं॥

(९९६)

रसिक छैल नंद को नैनन मैं होरी खेलैं।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलैं पलकनि ओकैं झेलैं।
और कहा गति कहौं सखी री सब विधि करत भावती केलैं।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझै भिजै रस रेलै॥

(९९७) [सारंग, झूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखे।
बिना जान-पहचान रावरे होत फिरत उरहार।
नए छैल गहि गैलं रहत नित करत न नेकु विचार।
आनँदघन कैसैं कै परसै फल अति ऊँचो डार॥

(९९८) [विभास, चौताल

निपट अरसानी सरसानी मैं जानो मानी है सुखदानी
साँवरे सौं सब निसि रंगरली।
मची है चोप-चाँचरि भाँति भाँतिन मिलि दावनि चावनि
भावनि भाँति भली।
भई है दलनि दलमलनि छल-बलनि सुबस कियौ गिरिधरन बली।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि राधे रँगीलो मेरी तू प्रान अली॥

९९७–उर०–गरहार (सतना)। गैल-बाँहि (वही)। ९९८–भाँति०–मनभावनि (वृंदा०)।

[९९५] ढार०=ढग से, ठीक ताल पर ताल देकर। [९९६] ओक=अंजली। केलै=केलि।

(९९९) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तैं तुम भए हो निपट धौताल हौ।
दबे पावँ पाछे तैं आवत पकरि करत बनमाल हौ।
काढ़त मनौं बैर कितहू को उर दलमलत गुलाल हौ।
नकवानी करि लेत मानसै निपटै रसिक रसाल हौ।
दैया दौरि दौरि खौरत मोही सौं यौं गिधए किहि बाल हौ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ॥

(१०००) [मूलताल

रस राख्यौ राधा होरी खेलि।
रंगनि भरयौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि।
ब्रजमोहन की महामोहनी रची बिधाता सब गुननि सकेलि।
आनँदघन पिय भिजै रिझायौ उमगि अनुरागनि ठेलि॥

(१००१) [मारू

लाल खिलार हौ भए होरी के तौ खेल खेलियै।
निपट लगि परे जानि परैगी छैल छबीले रावरे ढंग नए।
नकवानी हौ करत अचगरे याही बगर मैं रहत छए।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत सिझवत रिझवत कैसैं हौ अए॥

(१००२) [परज, तालजात्रा

ऐसैं खेलियै, जिन जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कहावत आवत घातन मैं तुम बातन ही मैं लहे।
उन भाँतिनि किये बहबहे के घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे॥

९९९–गिधए०–गिरिधर किहि चाल (वही)। १००१–ठेलि–झेलि (वही)। रिझवत–रिभवत (वृंदा०)।

[९९९] धौताल=शरारती। मानसै=मन को। गिधये=परचे। [१००१] बगर=घर। अए=अये, आश्चर्यबोधक अव्यय। [१००२] बहबहे=नटखटपने, शरारतें। हौंस=लालसा। पुजायोई=पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे=देखे।

(१००३) [भूलताल

हो छबीले मोहन सौं खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि झकोरी हो।
गावत रसीली गारी हिलि मिलि ब्रजनारी
रूप-गुन-फूलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उझिल-झेल
जोबन की रेल-ठेल चोपनि सौं बोरी हो।
मोद-घन झर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की उरैड़ कुलकानि-मैड़ तोरी हो॥

(१००४) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझौनो उन्नही है जोवन-कोप।
मुरली टेर सुनाय जगावै याही वगर मड़राय।
हौंहुँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार॥

(१००५) [सोरठ, मूलताल

मनमोहन छैल खिलार।
होरी - रँग-भरयौ चितै चितै रँगि लेत
रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अंग छबि-संग उमगि दृग मग रोकत सिंगार।
प्राननि गरैं हरैं गहि डारत हँसनि ठगौरी-हार।
मैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन वा गुन गसि लाज भई उपहार॥

(१००६) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ वधुनि सौं करत फिरत है बरियाई।

[१००३] मोद-घन=आनंद का बादल; आनंदघन। [१००५] गरैं=घोरै मे।

आवौ सखी घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय नचाय चुहुटियन छाँड़ि देहिँ करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुली दै निरखैं छबि दृग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतौ ठानि दृढ़ करौ न तनक सिथिलताई॥

(१००७) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौं गोरी गोरी गोपबधूटी।
रसिक छैल रिझवारहिं रिझवति रस मैं रूप-गुन-भरी बै-संधि छूटी।
कहा कहौं जोबन की जागनि तनदुति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैं करि राखी सब बीरबधूटी॥

(१००८) [गूजरी, आड़ो चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हो पठई लैन सैननि ही हाहा खात।
उठि चलि वलि राधे रँग राखि लै बरख्यौ सु फागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै, जीजै,
कीजै सफल गुन गात॥

(१००९) [रामकली, तालजात्रा

इन विरहा फाग मचाय दई, आए नए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अंगनि तैं हौं भिजै भिजै यौं सुखई।
याकी हथचलई कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसैं औसर कैसैं करत गई॥

(१०१०) [मूलताब

होरी को खेल हम ही त्यौं ठान्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढंग जान्यौ।
औरौ बसति बहुत ब्रजसुंदरि याही बगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गोहन लागे नयो नेह कितहू तैं आन्यौ।
सैन किधौं सतिभाव लाड़िले काहे कौं प्रान करत हौ छान्यौ।

[१००६] गुलचि=गुलचे लगाकर। बनाय=स्वाँग बनाकर। चुहुटियन= [illegible]। [१००७] बै-संधि= वयःसंधि, पूर्ण युवती। [१००९] करत० = आनाकानी करते हो.।

आनँदघन अठपहरा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ ।
रंग राखि खेलियै जौँऽब रसिकई सौँ चित सान्यौ ॥

(१०११) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहि सुहाए ।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए ।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए ।
ज्यौं जानै त्यौं पकरि नचाए, सरवस फगुवा दै मुकराए ।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए ॥

(१०१२) [तालजात्रा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे कहा दुराव करत हौ मोसौँ
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग ।
सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किये गहि स्याम त्रिभंग ।
कौन खेल अबखेलियै तुम सौँ छैल छबीले गुननि भरे सब अंग ॥

(१०१३) [नायकी तालजात्रा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि ।
कौन खेल यह भिजै भजि जैबो आँखिन मैँ गुलालहि डारि ।
अति ही ढीठ भयौ कहा डोलै नेकु घौं काहू की ओर निहारि ।
आनँदघन अब कौन बचैगो बबा की सौंह दैहौं गारि ।

(१०१४) [सूहो, इकताल

आवौ गावौ रंग बढ़ावौ मोहन स्याम उजारे सौँ खेल रचावौ ।
निपट नवेली जोबन-गहेली चाँचरि मचावौ
गहि गुलचायन चाय चलावौ ।

१०११—जानै—नाचै (सतना) । दै०—लै मुरकाए (वही) । १०१५—बिलग—चिलग (सतना) ।

[१०११] मुकराए=यह स्वीकार कराया कि अब ऐसा काम न करूँगा । [१०१४] गुलचायन=गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना । पैज=प्रतिज्ञा ।

भागनि वन्यौ फागु कौ औसर गोकुल के खेलवार कहावौ ।
आजु तिहारो पैज यही जू आनँदघन पिय कौ
भली भाँतिनि सौं भिजै रिझावौ ॥

(१०१५)

हो हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि ।
हिय की हिलग बिलग बिन उघरी फागुन औसर रहे बिचारि ।
खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि ।
चहुघाँ ब्रज आनँदघन घमड़्यौ रस भीजे गोकुल-नरनारि ॥

(१०१६) [सोहनी

चलि री वलि राधे गोरी साँवरे सौं खेलै होरी ।
तोहि बुलावन काज भावते सैननि हौं बहु भाँति निहोरी ।
आईं निकसि सकल ब्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी ।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन ढुरति कहाँ लौं हित की चोरी ।
तोसौं हार जीत जिय मानत औरनि सौं जीतेऊ सो री ।
ये आनँदघन तू छवि-दामिनि, है अति सरस-बरसीली जोरी ॥

(१०१७) [सुघराई, मूलताल

नंदलला रे होरी बीति गए बसिबो है एक ही बास ।
अधिको ओटपात्र करि वैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास ।
ओछी बातनि कहा बड़ाई गहत क्यौं न बोलन मिठास ।
टोडिस नयौ भयौ डोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि खगि जिनसौं पूजी जिय-आस ॥

(१०१८) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बीर क्यौं भरियै ।
एक पचास भरे पहिले ही बहुरयौ फागुन मास ।
आई उघरि सबनि के मन की निपट अटपटी गास ।
सपने स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय ।

[१०१५] हिलग = प्यार । [१०१७] टोडिस = शरारती ।

तासों मोहिँ लगाय लजावत निलजी गारी गाय।
छाँह बचाय चलौं मारग मैं धरौं न ऊवट पाय।
तऊ न रहै अपलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय।
साँची कहौं तऊ झूठहि मानै सौंह पत्याय न कोय।
अब तिनही जस दैहौं आनँदघन होनी होय सु होय॥

(१०१९) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पियरवा तुम सन खेलौं होरी रे।
तिहारे काज सुजान सुंदर बर लाज कानि सब तोरी रे।
घरि पल इत उत जान न दैहौं गहि बाँधौं हित डोरी रे।
आनँदघन बरसैहौ निसिदिन एहो जोवन जोरी रे॥
[सतना की प्रति से]

राग केदारो] (१०२०) [चौताल

देखौ देखौ हो बृंदाबन बिराजै नीको।
सघन स्याम जमुना के तीर हिय हरियारो प्यारो जी को।
हरि राधा को नित हितकारी याही तें याके सिर टीको।
आनँदघन अभिलाषनि बरसत सुख सब विधि हीं को॥

(१०२१) [टोड़ी

हो नकवानी कीनी इन रँगभीनें मोहन।
घाट बाट बन बीथनि माहियाँ लग्योई रहत मेरे गोहन।
मेरे ही आय पाय दृग छीवत ग्रीव ढुराय नचावत भौंहन।
आनदघन उनएई दाखत नेह-बारि वार सोहन॥

राग टोड़ी] (१०२२) [मूलतान

सु तुव हित-वेली री अलवेली पिय-हिय-आलवाल मधि जमी।
मन लगाय पल पल तिहि सींचति परम प्रेमरस अमी।
फूले चारु मकरंद लाड अनुराग पराग सुगंध रमी।
आनँदघन पिय सों मिलन-फल की अब राखति है क्यों नमी॥

[१०१८] ऊवट = अमार्ग।

राग बिलावल] (१०२३) [इकताल

अपने गुन आपहि आप ढरी ।
जमुना तेरी कृपा कहा कहौं जो मन-नैन भरी ।
राधारवन - रसामृत - धारा रसना ह्वै सँचरी ।
लाग्यौ रहत मोद - कादंबनि नव नव रंग - झरी ॥

राग सुघराई] (१०२४) [चौताल

हिलि मिलि खेलैं गोपकुमारी सावन तीज तिनमैं श्रीराधा मुकुटमनि ।
अंग संग अंजन मंजन महदी रँगीले बसन भूषन बनि ।
रँगीले हिँडोले चढ़ि चाइन सौं गावत मंजुल गीत सुकंठनि ।
अंग संग सुख लेत रसिक आनँदघन स्याम सखी बनि ॥

राग केदारो] (१०२५)

नंद के नंद ब्रजचंद श्रीगोबिंद सावन मनभावन मैं
झूलै झूलना तैसी है हरिआरी ।
अति कारी चहुँ ओर घटा तैसिय पिय-प्यारी-उर फूल फूलना ।
सहचरी झुलावैं खरी आनँद उर प्रेम भरी नील-पीत चंचल दुकूलना ।
मधुर मधुर धुनि गावैं काम को गर्व नसावैं सुंदर मुख
सोभा पावैं भरे तमूलना ।
तैसेई चहुँ ओर कूजै मोर घन घोर सुनि निसि-भोर जानियै
न सुख अतूल तूलना ।
तैसेइ श्रीवृंदावन तैसे दोऊ आनँदघन तैसेई हरि
राधा सुखद जमुना-कूलना ॥

राग आसावरी, जैतश्री] (१०२६)

नंदसदन जनम्यौ मोहन सुत आनँद ब्रज फूल्यौ हो ।
मंगलमनि कुलकलस जगमग्यौ जनम-जनम-दुख भूल्यौ हो ।
जसुमति-कूखि कलपतरुवर अति अद्भुत-फल झूल्यौ हो ।
पुन्यपुंज को सार साँवरो यह ब्रज अति अनुकूल्यौ हो ।

[१०२३] मोद०=आनंदघन ; आनंदमेघ । [१०२५] तमूलना=तांबूल ।

क्यौं कहि सकै भाग की महिमा नाहिन कोउ समतूल्यौ हो।
आनँदघन चिरजीवौ महरि को जीवन-प्रान जरूल्यौ हो॥

राग मलार] (१०२७) [चौताल

गज चाल चलत जोबन-मदमाती पचरँग चूदँरी पहिरें ग्वालि।
गौर मुरनि भुज ढुरनि भाय सौं उर सरकत मोतियन की मालि।
लंक चलनि सो नचनि नैन की गोरी पीठि पर वेनी हालि।
मुसकि चितै आनँदघन पिय कौं करि जु गई छिन मैं वेहालि॥

राग कनावड़ी, बिलावल] (१०२८) [मूलताल

स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं नैना मेरे लागे री।
बिन देखैं नहिँ चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी इनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन हित प्रानपपोहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

राग रामकली] (१०२९) [मूलताल

आज तेरी दहेड़ी चाखौंगो चाखौंगो रस राखौंगो।
बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि अभिलाखौंगो॥

[वृंदावन की प्रति से]

खंडिता] (१०३०)

लाल तुम कहाँ तैं आए जागे।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे।
आनँदघन पिय उहईं जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे॥

पूर्वराग] (१०३१)

स्याम सुजान के बिन देखैं अटपटाय कहुँ ना लागै मन।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैंनन्नि लीने हैं री पन।
कहा करौं मन परवस परि गयौ इनहिं न दुख छिन छिन छीजत तन।
आनँदघन पिय सौं कहा कहियै उनकी हाँसी और को मरन॥

[१०२६] जरूल्यौ = (जटिल) लटूरीवाले, नभुआरे केशवाले।
[१०३०] बोलत० = बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलते।

होली] (१०३२) [कान्हरो

मोसौं होरी खेलन आयौ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ।
डगर डगर मैं, बगर बगर मैं सबहिन के मन भायौ।
आनँदघन प्रभु कर दृग मोड़त हँसि हँसि कंठ लगायौ॥

(१०३३) [सारंग

सो बाँके डफ बाजे हैं री, नदनंदन रसिया के।
अब की होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैं मद छाके छाके।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी, अब न बनै यह ढाँके ढाँके॥

(१०३४)

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ।
मन मैं तुम्हारे कौन बात है सोई क्यौं न कहौ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ।
आनँदघन तापै नहिं मानत लरिका ह्वै निबहौ॥

(१०३५)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री।
अंजन आँजि माँडि मुख मरवट फिरि मुख हेरौ री।
गारी गाय गवाय लाल कौं करि ल्यौ चेरौ री।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री॥

['रसखान और घनानंद' से]

पूर्वराग] (१०३६) [भैरव तिताला

सोवत नगर मैं बोल्यौं को है बगर मैं।
इक डर है मांहि सासु ननद को अलियाँ गलियाँ डगर मैं।
प्रात-समै उठे नदनँदनजू विरहा भीजत झर मैं।
आनँदघन ब्रज उठहि सवेरे सासु ननद के डर मैं॥

[१०३३] नाका = मुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है। [१०३५] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना।

(१०३७) [टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे तिहारी भँवर की सी रीत।
जित सुगंध पावत तित धावत हौ तुम गरज परे के मीत।
आनँदघन व्रजमोहन प्यारे ठौर ठौरके रस चाखत हौ कैसेँ करूँ प्रतीत॥

शिव-विनय] (१०३८)

करौ सिव ! महर की नजर निसिदिन घरी घरी पल-छिनन।
कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के विधाता, तुम हीं
देवौ दूध पूत लच्छमी आनँदघन॥

पूर्वराग] (१०३९) [बिहाग, चौताल

ए नैना तोहि बरजौं तू नहिं मानत मेरी सीख।
बरजि रही, बरजी नहिं मानत घर घर माँगत रूप-भीख।
चित चाहत है प्यारे के सरूप को अब कैसँ मिलनो होय देख।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीँ करम-रेख॥

(१०४०) [तिताला

प्रीति करी सो मैँ जानी रे मोहन।
दै बिस्वास गयौ तजि मथुरा रति कुब्जा सौँ मानी रे।
कपट-भरौ कारो तन तेरो कपट-भरी सब बानी रे।
आनँदघन हित चित री बाताँ जानत राधा रानी रे॥

(१०४१) [झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो लागी मैंडे त्रो।
जब तैँ कृपा करी नँदनंदन मिट गई कर्म की खोट वो।
लख चौरासी भटकत भटकत स्यामसरन आई ओट वो।
आनँदघन घनस्याम मोहैं मिल गए मन मैँ रही न कहुँ टोट वो॥

(१०४२) [जगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया वे, स्याम तेरे।
भौँहैं कमान बान कटाछन वेधा गरीबाँ दा हिया वे।
रहदे मस्त महा मतवारे खंजन मध जो पिया वे।
आनँदघन व्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया वे॥

[१०३८] महर=कृपा। [१०४१] मैंडे=मेरे, मुझे। खोट=खोटापन। ओट=शरण। टोट=कमी। [१०४२] खँजन०=खँजनों ने शराब पी है। असाडा=हमारा।

चेतावनी] (१०४३) [कालिंगरो

बिलम न करियै हरि के भजन को ।
करत पलक मैं और और तैं नाहिं भरोसो तन को ।
आय बन्यौ है अवसर नीको करि लै मनोरथ मन को ।
बार बार सुमिरै गुन - पूरन सुनि जस आनँदघन को ॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१०४४)

वृंदावन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय ।
कृस्न - ललित - लीला - करन, धारि रह्यौ जड़ताय ॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१०४५) [पूरबी ख्याल, इकताला

नैनन देखिवे की बानि ।
बरजि रही बरज्यौ नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर को पहचानि ॥

(१०४६) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया ।
या मारग ह्वैकै हौं निकसी, मेरो छीनि लियौ दहिया दैया ।
सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया ।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया ।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया ।
आनँदघन कैसैं कै भीजैं, ओढ़ि रहे कारी कामरिया ॥

['ब्रजनिधि-ग्रथावली' से]

(१०४७) [खंभाती

होरी खेलौंगी स्याम-सँग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ ।
वो भिजवैं मेरी सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग ।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुवाग ।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग ।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सौं मेरो रहियौ है भाग-सुहाग ॥

[१०४४] जड़ताय=जड़त्व । [१०४६] पीहर=मायका । पाँवरिया=जूतियाँ । [१०४७] वो०=वह भिजाएगा । पाग=पगड़ी । सुघर=चतुर ।

(१०४८) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोवन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(१०४९) [सोरठ

लागी रट राधा नाम।
नवल निकुँज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन धन बरसानो गाम॥

(१०५०) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।
चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसिदिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(१०५१) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहीं साँझ भोर, झींगुर-झिगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(१०५२) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्योछावर करवावौं।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौं।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यो सुजस सुहावौं॥

बालम=पति। [१०४९] ढुटौना=पुत्र। खोरि=गली। [१०५०] चरचत०=
बदनामी करते हैं। बटाऊ=पथिक।

(१०५३) [मालव

ए री हौं तौ चहूँगी री।

अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी।

सासु ननद की कानि न मानूँ देवर-गारि सहूँगी।

आनँदघन ब्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी॥

['घन-आनंद' से]

विरहिणी] (१०५४) [कान्हरा

तेरे नाल लगी हो जिंद निमानी।

कित वल कूँकाँ कोई नहिं सुनदा साडी दरद-कहानी।

जो सुन वेखाँ तोसी जीवाँ मान न कर वे गुमानी।

आनँदघन हूँ तू तरसावी वारी वारी ओ दिलजानी॥

टेर] (१०५५) [ललित

तुमकौं टेरत हौं कहाँ न।

श्रीवृंदावन-ओर जात है रूप-रासि की खाँन।

टेरन के लगि हेरन लागी हेरन लागि हेराँन।

आनँदघन रसमत्त पपैया ज्यौं जल विन मुरझाँन॥

लगन] (१०५६)

लागि रह्यौ मन राधावर सौं, और कहूँ कछु और उपर सौं।

दिन रतियाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुघर सौं।

आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगौंगी मैं गिरधर सौं॥

(१०५७) [मालव

आइयै आईयै लालन, अंग संग रंग के तरंग

उपजै री जव सब निसा जगाई।

सब ही कौं मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस-बस

आनँदघन सौतिन गाजनी गाई॥

—['ब्रजभारती' से]

[१०५३] चहूँगी=देखूँगी। [१०५४] नाल=लिए, वास्ते। जिंद=जिंदगी। निमानी=अमानी। वल=ओर। साडी=हमारी। वेखाँ=देखूँ। [१०५६] पपैया=पपीहा। [१०६०] उपर०=ऊपर से। [१०६१] गाजनी=गर्जन, हर्ष।

प्रकीर्णक

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल - चख - तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियैं मोती - माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम - पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥ १॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥ २॥

कवित्त

छबि को सदन, मोद - मंडित बदन - चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेष करैं, मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ॥ ३॥

[१] भाय=भाव। लड़कि=लटक या ललक के साथ। निधि=खजाना। [२] जलजावलि०=दो लर की मोतियों की माला। [३] ढुराय=मटकाते हुए। लड़काय=ललककर।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है ॥ ४ ॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसैं करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसैं कै जिवाऊँ जीव,
वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोप काहि कौं लगाइयै ॥ ५ ॥

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसैं कल पायहै ॥ ६ ॥

[४] लड़कीली = लचकवाली। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि = बढ़ती। कैं = कई। ऐपै = इतने पर भी, किंतु। [६] सूल-सेल = वेदना की हूक। कलपायहै = तरसाएगा। कल = चैन।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्यो,
कालिह मेरे द्वार ह्वै के गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तेँ न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैँ मेरो कछु मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी वित गयौ॥ ७॥

जाके उर बसी, रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसेँ करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसेँ सो गरल-सनो सोखनि सौँ पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौँ कैसेँ कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरेँ सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौँ आगि है॥ ८॥

हिलग अनोखी क्यौँ हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैँ धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौँ ज्यौँ बहरैयै सुधि जी मैँ ठहरैयै,
त्यौँ त्यौँ उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै॥ ९॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैँ प्रान, झरैँ अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैँ कसकै सखि ज्यौँ पँसुरीनि मैँ गाँसी।

[७] ऐन=घर। लूट०=लूट सी करके। [८] रसमसी=रसीली। चषक=प्याला। धूम०=धूएँ का धुंध। [९] हिलग=लगन। मरूर=पीड़ा।

चौचँद - चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१०॥
अलि ! जौ विधिना ब्रजबास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीं रूखियै दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौं लौं सहौं घुटि कैसें रहौं भयौ भाकसी देखैं बिना घर तौ ॥११॥

कवित्त

छबि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आय गौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी.
मृदु मुसक्यानि देखैं मो मन बिकाय गौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन ढुराय गौ।
तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसाय गौ ॥ १२ ॥
छबि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
वारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे, रूप-
रेलहिं सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं इत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥ १३ ॥
सुंदर सरल लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोबन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।

[१०] फाँसी=फाँस। चौचँद०=बदनामी की चर्चा। [११] भाकसी=(भस्त्रा=भाथी) भट्टी। [१२] ढुराय गौ=मटका गया। घूमि०=मतवाली हो गई हूँ। रेल=प्रवाह, अधिकता। चाहनि०=देखने से लालसा की वृद्धि होती है।

लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद उमग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छबि छलक्यौ करति है॥ १४॥

बैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग एँड़त चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उझलत है।
छके छुवैं कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैननि दलत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है॥ १५॥

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलो सु
हग-मग उरस्यो परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
ऐसो कछू गावत मधुर बंसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै, बसि कीजै कहा, महा सोच,
चारयो ओर चलत चबाव लघु-गुर मैं॥ १६॥

तेरे हित हेलो! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज झूमि झूमि सरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सों पट
पीत कौं उमगि लै लै हियें परसत है।

[१४] सुठौन = सुंदर। [१५] ऊठ = ढीठि। उझलत० = उड़ेलता है। मैन० = कामों को पराजित करता है। छला = केशों के छल्ले। [१६] उरस्यौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै = साथ लगना। रौरि = शोर।

चाह के समीर की झकोरनि अँधीर ह्वै ह्वै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है ॥ १७ ॥
आई आन गाँव तैं नवेली पास पायसैं सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यौ ता कहूँ,
दीठि के मिलत बढ़ि पर्‌यौ चित चाव री।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसैं ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौं मानत बिभावरी ॥ १८ ॥
गोरी बाल थोरी वैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायें पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौं।
मीड़िबे के लेखैं कर मीडिबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं ॥ १९ ॥
भावती सहेट अंक भरि भेंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आर कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर!
बानियौं सिरानी, क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगैं कहा बीती, भई तब हीं सुरति-रीती,
जैसैं सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।

[१७] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। [१८] पास = निकट, पड़ोस। पायसें = जेवनार में। आवरी = व्यग्र। बिभावरी = रात्रि। [१९] चहनि = देखना।

सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं हुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कौं॥ २० ॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं विधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हियँ होत नमि साँक है।
चलि चित चोरै मुरि मनहिं मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है॥ २१ ॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिंदूरा की सी फैल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि वंक छैल है।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की द्युति आगैं
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।
दुहूँ हाथ अंसनि तैं पोरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है॥ २२ ॥

मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छवि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के बरन झीने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
संजन करत तहाँ मन बनितान के,
निहारि मोती-मालहि विचारि धारा गंग की।

[२०] सहेट=संकेतस्थल। सिरानी=बंद हो गई। छुरति०=सुधहीन।
[२१] लटपटी=टेढ़ी-मेढ़ी। सूध=सीधी। बाँक=वक्रता। साँक=मरोड़।
लाँक=कमर। [२२] सिंदूरा=उषा की रक्तिमा। मैन=कामदेव; मोम।

आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै मीठी
धुनि उपजावै राग - रागिनी - तरंग को ॥ २३ ॥

सवैया

नैन किये नरजी दिनरैन रती-बल कंचन-रूपहि तोलैं।
बारह बानि बनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलैं।
श्रीबन-रानी के छत्र की छाँह करैं सुख-बारिधि माहिं कलोलैं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गरूर भरी नहिं बोलैं ॥ २४ ॥

['घनआनंद-कबित्त' से]

कबित्त

लाख अभिलाषन की चिंता गुनकथनन,
सुधि करि दान की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु बेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यौ तौ अति अकुलात,
सैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिलजान सौं जु मानी वा सुजान सौं,
निसानी दै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥ २५ ॥

सवैया

आपु ह्वी तैं तन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहि गाउँ मैं ॥२६॥

[२३] नीमा=नीचे पहनने की कुरती। मजन=स्नान। [२४] नरजी=तौल करनेवाला। रती=रति (प्रेम); रत्ती। बारह० = बारह बानी सोना, कुंदन; बारह आभूषण। षोड़स=सोलह श्रृंगार। श्रीबन० = राधा। चाड़=लालसा, यहाँ अपेक्षा या परवाह। [२५] लाप=उलाप, बातचीत। निसानी= पहचानकर का चिह्न। [२६] भाउ=भाव, वृत्ति।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई है दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥२७॥

['शृंगार संग्रह' से]

तब तौ दुरि दूरहि तैं मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहैं धँसे ॥२८॥

['सुजान-शतक' से]

कवित्त

बिरह बिसूरे पीर - पूरे मन सवन के,
रति - द्यौस भयौ जिन्हैं पलकौ कलन को।
औधि - आस ओसनि सहारैं हाय कैसैं करि,
जिनको दुसह दीसैं पारिबो पलन को।
या बिधि बियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दलन को।
आनँदपयोद के पपीहनि पै छायौ अब,
दीरघ दुसह घाम स्याम के चलन को ॥२९॥

['मधयधु-विनोद' से]

मरम भिदै न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसैं सुरनि घेघोइयो।
राग ही तैं राग के सरूप सौं चिन्हारि होति,
नैनहीन काननि असूझ टकटोइयो।
अकथ कथा है क्यौंऽवगाहियै अथाह तान,
न्यौरिबो वृथा है वादि औसरहि खोइयो।

[२७] रस=आनंद। [२८] हे=थे। [२९] कलन=[illegible]। पारिबो=बिताना।

प्रेम-आगि जागैँ लागैँ झर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ३० ॥

गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाएँ कहा रस कछू औरई ।
समझि समझि बातैँ छोलिबो न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौँ नेह-बौरई ।
कान्ह ब्रजमोहन सौँ जौ पन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति दौरई ।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरे मिले को सुख,
तिनहीँ मैँ व्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ३१ ॥

करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की ।
रूप-चतुराई सुभ सील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वैहै कहियै धौँ को समान की ।
अति ही उदारता की सीवाँ, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की ।
काहू सौँ न कछू कहौँ अपनी ही सोचि रहौँ,
मोहिं आस तैयै क्यौँ लड़ैती बृषभान की ॥ ३२ ॥

अगम अगाध अद्भुत औरै और अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौँ हू आवरे ।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
वदत वदत वेदौ भेद भए बावरे ।
आनँद के अंबुद रसाल महा रोचक हैँ,
सब ही के हिये मैँ बढ़ाय देत चाव रे ।

[३०] मरम=मर्मस्थल । मरम=तत्व । घँघोह्बो = मैला करना, बिगाड़ना । राग=अनुराग । राग=गीत का राग । नैन=मानस-नेत्र । क्यौंऽवगाहियै=कैसे थहाया जाय । ज्यौरिबो=विवेचन करना । [३१] ससक=सिसक । बौरई=पागलपन । रौरई=कोलाहल । [३३] न होत०=शिव आदि (मति के थकित

सुनत गुनत अभिलाखत उरभि वानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥ ३३ ॥

सुनि सुनि रावरे गुननि वावरे हैं कान,
लोचन उतावरे ह्वै लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
वारनैं तिहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई व्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
छाए घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
दरसौ न दैया देखे उघरि अनैसे हौ ॥ ३४ ॥

जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल ही
माच्यौई रहत बन वेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भैंट,
नैन-सैन-दैन-चैन चाहतो परस है।
बानक सुठौन सहजैं ही देखैं बनि आवै,
आनँद को अंबुद मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी ह्वै जौ लगै तौ सौंह आँखिन की,
आँखिन को फल व्रजभूमि को दरस है ॥ ३५ ॥

बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
वीचिनि मरीचैं जागि लागति जगमगी।
भावना भरनि हिय, गहर भँवर परै,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगी।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंबुद कौं
बन घन ह्वै है रीझि डोलति डगमगी।

होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवर=मलिन, यहाँ विमुख। सक्र=इंद्र। सहसमुख=शेष नाग। [३४] लोचैं=विचारते हैं। [३५] सुठौन=सुंदर। [३६] विभाकर० =सूर्य की पुत्री, यमुना। वीचिनि=

प्रेम की पसीजनि प्रबाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिंगार - सार सौँ सगमगो ॥ ३६ ॥

स्याम-अंग-संगिनी बिसाल-रस-रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौँ रही भोय है।
जमुना जननि मोदकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर पर्‌यौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
बिनती करत हाहा हठि हारि रोय है।
आनँद के घन सौँ पपीँहापन पालै क्यौँ हूँ,
बासना मलीन मेरे अंतर को धोयहै ॥ ३७ ॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के जब तेँ हरिबोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इते पर हाथ कौँ पाय पसारै।
लैहै कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सबारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैँ बिष-बानन मारै ॥ ३८ ॥

कबित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रलिका।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियो,
कैसैँ रह्यो परै खिली लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु ब्रजगोरी घनआनँद की,
इते मान तान-बान करी है बिकलिका।
कथनि कही न परै प्रेम-मतवारिन की,
काहू की न सुनी ऐसैँ सुनी है मुरलिका ॥ ३९ ॥

कान पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोबन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।

…हरों में। सगमगो=मज्जित। [३८] हाथ०=हाथ में और कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (बढ़ी है)। [३९] रलिका=क्रीड़ा।

गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख-
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर बीर जमुना के तीर तीर,
टोना भरयौ डोलत ढुटौना नंदराय को ॥ ४० ॥

रसिया रँगीलो ब्रजमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग हो को,
ताननि घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनँद को घन चोप चातक है भूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तौ हारि परी पै घटै न कहूँ याको तेह ॥ ४१ ॥

सवैया

जब तें डफ-बाज सुनी सजनी तब तें मति कौं कछु बौरई सी।
मन के पन की गति जोऽब लखौं रितु और भई रति औरई सी।
मचिहै जब फाग कहा करिहौं अब ही करी कान्हर खौरई सी।
घनआनँद धावत गारिनि गावत आवत पारत रौरई सी ॥ ४२ ॥

रोक्यौ रहै अब क्यौं करिकै मिलि खेलनि हौंस को ओज बढ्यौ है।
राख्यौ दुराव दुराइ हियैं अनुराग सु बाहिर आनि कढ्यौ है।
साँवरे छैल गरथारनि गारिनि गाय कै दोहरा एक पढ्यौ है।
चोपनि चौगुनियै पुट लागिहै आजु तौ सौगुनो रंग चढ्यौ है ॥ ४३ ॥

कवित्त

रूपे हैं गुपाल ग्वाल-मंडली लगाँहीं संग,
सजे खेल साजनि सौं उपमा न सरसी।
इतै राधा नागरि विनोद-विजै मूरति,
सहेलिन के जूथ फूली रूप-रंग-भरनी।

[४०] मैन=मदन, काम। छाय=छेद ढुटौना=पुत्र। [४१] अछेह=अपार। तेह=तीखापन। [४२] खौरई=नटखटी। रौरई=शोरगुल, कोलाहल। [४३] पुट लगना=रंग चढ़ना।

धूँधरि धमारि कीच माची कहो परै कैसैं,
कोटि काम-कटक कै धसकै धौंसर सी।
आनँद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं,
होति है परसपर पैजनी-पसर सी ॥ ४४ ॥

कान्हर खिलार मोद मूरति उदार रूप,
जोबन को मतवार होरी-खेल खग्यौ है।
अवसर सरस वखानँ आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताकी उमँगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार-भरी भावती के
रोम रोम राग-भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामनीन पुंज फैलि परे,
आनँद के घन पै विनोद-झर लाग्यो है ॥ ४५ ॥

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग-राग सरसाति है।
भाग-भरे भावते सौं औसर फब्यौ है आनि,
आनँद के घन की घमंड दरसाति है।
औचक निसंक अंक चाँपि खेल-धूँधरि मैं,
सखिन त्यौं सैननि ही चैननि सिहात है।
केसू रंग बोरि गोरे करि स्यामसुंदर कौं,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि बूड़ि जाति है ॥ ४६ ॥

सवैया

घनआनंद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फाकियै खौरनि सौं।
करि प्रीति पतंग कौ रंग दिनाँ दस दौसि परै सब ठौरनि सौं।
यह औसर फाग कौ नीकौ फब्यौ गिरिधारी हिलै कहूँ टौरनि सौं।
मन चाहत है मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौं ॥४७॥

[४४] उपमा०=उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसी=छोटा तालाब। धसकै=धँस रहा है। धौंसर=धूल का आवरण। [४५] खग्यौ०=लगा है [४६] केसू=किंशुक, पलाश।

बात कही उन रातिन की अब ही तें कहौ दिन कैसें वितैयै।
घातकी ह्वै घनआनँद ओर चकोरी भएँ व्रजचंद चितैयै।
बाढि परी अभिलाष-नदी अति, कौन बनाव की नाव बनैयै।
चीर लिये सु हिये हरि हेली दिये न दिये घर लै कहा जैयै ॥ ४८ ॥

पिय को मन है चलिबे कौं उठ्यौ जिय वैठी यहै न सह्यौ परिहै।
चित तौ चपट्यौ तिन जात लियैं यह बावरो कैसें गह्यौ परिहै।
घनआनँद पावस आय लगी बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परिहै।
करिहौ सु कहा कहि री सजनी बदरान लखैं न रह्यौ परिहै ॥ ४९ ॥
भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कंज भयानक भासे।
जेइ रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के प्यासे।
हिये सियरात मिले घनआनँद लौटत ओटत हाय अवासे।
बसैं लगि काहि सखी बिरहा व्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे ॥५०॥
धनि वै बन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरैं सु धरौ।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनके फल लै रसपान करौ।
घनआनँद सींचत डोलौ सबै बड़भाग की रासि रसीली भरौ।
हम सूखतिं ये पन-प्यास-भरी व्रजजीवन जीव की जानि ढरौ ॥५१॥
पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है।
तुम दीसि परौ न इते पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नीके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिनरात असीसति है ॥५२॥
व्रजमोहन रूप छके मन नैन महा मतवार प्रमानियँ तें।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियँ तें।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियँ ते सुखदानियँ तें।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियँ तें ॥५३॥

[४७] खौरनि=हलकेपन की दुष्टता। टौर=घात, दाँव। [५०] अवासे=आवास, घर। बिरहा०=उन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले मन को बिरह के हाथ सौंपते गए। [५२] कसीसति०=खींचती है। मनसा=इच्छा।

काहे कौं सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसैं कहौंगी।
जोवन वैर परयौ है कुटीचर काम पै बाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियैं लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥५४॥

आनि मिलौ ढुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद परयौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय बढ़ावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥५५॥

ब्रजमोहन गोहन छाड़त नाहिं चढ़े चित वैरहि लेत रहैं।
दिन-रैन समीप वियोग धौं कैसो, कहा जौ दिखाइ न देत रहैं।
झर लाय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैं।
भरि हेत रहैं करि चेत रहैं, तजि खेत रहैं रसमेत रहैं ॥५६॥

पाय परैं गति रावरी कैसैं मिलैं असिलौ रहि मोहत मो ही।
जीवन हौ जग के घनआनँद या विधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-माँझ बटोही।
मोहन जू वसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तैं ऐसैं अमोही ॥५७॥

अनचाहेऊ चाहैं खिजेऊ हँसैं, जगि बोले बिना उख-नींद खगैं।
बिन काज ही हार से फिरैं, जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लई मुरली-सुर मैं रसबाद जगैं।
कहि क्यौं मरियै करियैऽब कहा नियरेई रहैं अति दूर भगैं ॥५८॥
अति तीखे परेखनि सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा जिवावन आए कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरै जु वियोग को आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक निहारौ औमेर - दरेरनि हाय हियो फटि जायहै जू ॥५९॥

[५४] कुटीचर=कपटी। [५५] छोह=ममत्व। [५६] हेत=प्रेम। रसमेत=रसमय। [५९] ताचि=पककर। तनौ=शरीर भी। लटि०=क्षीण हो जाएगा। औमेर=मर्माघातजन्य वेदना।

फागुन मैं उनयौ घनआनँद हेरि हरी है बियोग की ताँसनि।
छैल खिलार महा ब्रजमोहन, खेलत भावनि चोपनि साँसनि।
गोरिनि घात के घेर परयौ रस चाव बचाव टरयौ कछु गाँसनि।
दाव बन्यौ सु गहाव भएँ हियरा भरि आँखि अँजैबे की हाँसनि ॥६०॥
खेलत फाग फिरै जित ही तित बातनि घातनि बंकबिहारी।
छैल महाछल सौं बल सौं कल सौं गल सौं लपटौ बनवारी।
आनँद के घन गौं उनए सरसौ बरसौ तरसावत भारी।
रंग तिहारे निहारे अनेक अनूपम एक हौ लाल खिलारी ॥६१॥

कवित्त

किधौ है कहा री तैं बिहारी कौं निहारी जब,
तीखी अँखियानि हियो बँध्यौ न कमरि कै।
पिचका लियैं ई रहे रह्यौ रंग तोहि देखें,
रूप की धसक लागैं थके हैं थसरि कै।
तोहि बनि आई सु तौ तोहि बनि आवै राधे,
बिधना बनाई तुहीं सकै कोऽब सरि कै।
कौंधि घनआनँद कौं भिजयौ हसनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै ॥६२॥

सवैया

सखि जौ लौं गुमान हो जोबन रूप को कान्ह सौं तो लगि मान सज्यौ।
घुरि घेरि कै कानि बढ़ोरि कै लाजहि नीरस नेम लै प्रेम तज्यौ।
घनआनँद बाँसुरिया सुर छाकि हिये तें सबै डर भीजि भज्यौ।
अब डारतो मारि सयान हठी जौ पै लेती बौरानि जिवाय न ज्यौ ॥६३॥
सब ओर तें ऐंचि कै कान्ह किसोर मैं राखि भलैं थिर आसकरैं।
ब्रजनाथ-प्रियानि कृपानि समोय सदा मन कौं अनयास करैं।
घनआनँद छाय रहे निसिद्यौस मनोरथ रास-बिलास करैं।
ब्रज-बीथिनि भोर निसीथिनि सो उनमाद-सवाद मौं बास करैं ॥६४॥

[६०] गाँसनि = घात से। [६२] थसरि = शिथिल होकर। सरि = बराबरी। मसरि = मसलकर, मलकर। [६३] बढ़ोरि = बढ़ाकर। सयान = चतुरता। ज्यौ = जी। [६४] थिर० = आशा को स्थिर करते। अनयास = श्रमरहित, स्वस्थ। निसीथिनि = रात्रि।

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुतंतर हौ अंतर पिराय कै।
भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह थप्यौ है थिराय कै।
मीठी मीठी बातैं कहि दैया विष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
वरसौ विसासी घनआनँद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥६५॥

गति लेत प्यारी न्यारी न्यारीयै लहक जामैं,
लोन अंग रंगनि लगै निकाइयै झरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी ररी।
मुरली वजाय कै नचावै रिझवार प्यारो,
सुरति लगौंहीं डटि भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललिता ललित आँगुरीरि ढोरै,
छायौ घनआनँद चटक चोख है परी ॥६६॥

कोए विप-भोए सुधा सींचत निहारनि मैं,
विषम अन्यारे प्यारे लागै पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं चकचौंधी होति,
उज्जल ढरारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकी हैं घन-
आनँद उमाहि दाबै धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन टरैं न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊलट उठान हैं ॥६७॥

मोहन अनूप बने रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी उरझ की छबीले येई साखियै।

[६५] गसीले=गाँस से भरे, दुःखी। अंतर=चित्त। [६६] ररी=रटती है, रटन करती है। ढोरक=ढोलक। ढोरै=बजाती है। चोख=तीव्र। [६७] बाँक=

पीवति अघाय प्यास बाढ़ियै रहति महा,
अहा अचरज कहौ कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
जसुधा-कुँवार गुन गहि अभिलाखियै।
चोप चातकी है भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस दै रसीले रस राखियै ॥६८॥

लगैगी तुम्हैँ हूँ, कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
मेरी सी दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौँ ऐसो दिन होयगो कबै धौँ दैया,
बिषम बिछोह द्यौसरातिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनँद जू,
मोहि फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातेँ तुम सुखी रहौ हौँ ही दहौँ, कहौ कब
लपटनि तार्ता छाती लपटि सिरायहौ ॥६९॥

सवैया

लहाछेह कहा धौँ मचाय रहे ब्रजमोहन हौ उख-नीँद भरे हौ।
मिलि होति न भेँट, दुरे उघरौ, ठहरैँ ठहरानि के लाले परे हौ।
बिछुरैँ मिलि जात मिलैँ बिछुरैँ यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ ॥७०॥

छप्पय

अच्छर मन कौँ छरै बहुरि अच्छर ही भावै।
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरैँ बतावै।
अच्छर को यह भेद कौन जानैँ बिन मानैँ।
अच्छर हू मैँ मौन मिलै सारदा सुठानैँ॥
अच्छर मौन सवाद-रत आनँदघन बरसत रहै।
तत्वबोध बौरानि मैँ अच्छरगति अच्छर लहै ॥७१॥

हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [६९] दुहेली=दुःखद।
[७०] लहाछेह=शीघ्रता। [७१] अच्छर=(अक्षर) वर्ण। अच्छर=
ब्रह्म। छरै=छलता है।

गस जिनि गहौ कहौ सो ऐ पर उचित आहि अपराध छमाईं ।
अतुल प्रेम की कला करोरिक तुम बिधि अबिधि दाबि दरसाईं ।
या विधि तन मन धन दै रंकहिं रिनी कियौ अपनी अगराईं
बुरो मानिबो उर न आनिबो अब तुम ही सब भाँति भलाईं ॥८७॥

त्रिभंगी

सब सुखनिधि मुख सुषमानिधि रसनिधि जसनिधि हितनिधि लहिकिनतूँ
भ्रम-स्रम-भंजन सुचि रुचि रंजन मुनिमनरंजन पन गहि किन तूँ ।
आनँदघन अमित अपार सारस्रुति सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत - द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८८॥
जग-छीलर सुलप सलिल सुख-संपति तिहिं तजि तनक उमहि किन तूँ ।
प्रसरित भ्रमजाल बिसाल तहाँ यह सुख सुनि वेगि निबहि लहि किन तूँ।
आनँदघन सदा सरस सीतल सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ ।
श्रीकृस्ननाम अमृत-द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८९॥
मोहन - मुरली अंमृत - धुनि सुनि मोहति रस - बस ह्वै ।
अद्भुत अनुराग रचना जव जब प्रताप जड़ चलत जु च्वै ।
जमुना-जल अनिल सगन ससि विथकित सबै चकित सरूप-गुन छ्वै ।
आनँदघन गरजि गरजि वरसत व्रजतिय-हिय-तृषा-भावना भ्वै ॥९०॥
श्रीकृस्नकथा मंगलमनि हैयातें सिवब्रह्मानारदसारद मुनिसुकादि राखीभनिहै
कीरति-कुल-कलस अलस तजि सेस सुनाम असेस सिथिल गनि है ।
रसना हित रसद विसद कामद निहकामनि कामधेनु धनि है ।
गुन - रूप - रासि मोहन मुरलीधर स्रवन कथन मन सरसनि है ।
व्रज आनँदघन गोपीजन - जीवन प्रेम घमँड सुख-रमँडनि है ॥९१॥
निरवधि सुखदायक रस मधि नायक ललित सुभायक नवनागर ।
राधामन- रंजन प्रीतम- अंजन मानस - मंजन गुन - सागर ।
अच्युत आनँदघन व्रज जीवनधन बन विहरत क्रीडा - आगर ।
मोहन-मुरली-रत रमनी - संजुत रुचि अद्भुत रजनी - जागर ॥९२॥

———

परमहंस-वंशावली

दोहा

श्रीगुरुपदबर - कोकनद - नव-मकरंदहि चाखि ।
मन-मधुकर आनंदघन चातक-रुचि अभिलाषि ॥ १ ॥
सुभकरनी हरनी-दुरित गुरु - सरनी सुखसार ।
भवतरनी बरनी बिसद-निज - निदेस अनुसार ॥ २ ॥
श्रीगुरुबदन - सयंक तें वहै चंद्रिका चाहि ।
चित-चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि ॥ ३ ॥
श्रीनिकेत नित परमगुरु श्रीनारायनदेव ।
हंस - रूप सनकादि सौं उपदेस्यौ निज भेव ॥ ४ ॥
बिषय-जीव जल-छीर लौं न्यौरि दियौ रसदानि ।
कृपा-कलपतरु है सदा निज जनहित पहचानि ॥ ५ ॥
भव-पारद नारद भए तिन उपदेस - प्रसाद ।
बीना धरि हरिकीरतन - मगन प्रेम - उनमाद ॥ ६ ॥
कलिकालीन मलीन जन तिन उधार कौं चाव ।
करुनानिधि इहिं विधि कियौ प्रभुगुन-गान-प्रभाव ॥ ७ ॥
नारद हारद-रूप धरि भरि आवेस अपार ।
संप्रदाय - थापन प्रगट निंबादित्य उदार ॥ ८ ॥
व्यापक बिपुल प्रताप जग हर्यौ मोह-नीहार ।
अमल कमल विकसे सुहृद तरुन करुन अवतार ॥ ९ ॥
रवि राख्यौ भाख्यौ जगत कहूँ कौनहूँ दाव ।
प्रभु की प्रभा प्रभाव को करि साखा-ससि-न्याय ॥ १० ॥

[२] तरनी = नाव । [३] भाषा = ब्रजभाषा । अमरभनित = संस्कृत, अमरवाणी । [४] भेव = भेद । [६] भव० = भवसागर से पार करनेवाले । [८] हारद = हार्द, मानस । [१०] रवि० = भक्त माल में कथा है कि कोई यति (जैन) इनसे शास्त्रार्थ कर रहा था. सूर्यास्त हो रहा था इससे इन्होंने उससे भोजन करने को कहा (जैन सूर्यास्त हो जाने पर भोजन नहीं करते) । जब तक वह भोजन नहीं कर चुका तब तक इन्होंने सूर्य को नीम के पेड़ पर रोक

श्रीनिवास तिनतेँ भए आचारज बिख्यात।
श्रीजुत महिमाजुत महा जग कीरति अवदात ॥ ११ ॥
बिस्वाचारज बिस्वहित तिनकेँ कृपानिकेत।
तिनतेँ पुरुषोत्तम प्रगट आचारज जस-केत ॥ १२ ॥
भई बिलासाचारजै तिनतेँ कृपा अमोघ।
हरिबिलास-बिलसित सदा हरे जगत-अघ-ओघ ॥ १३ ॥
कहौ सरूपाचारजै तिनकेँ कृपा-स्वरूप।
बहुरि माधवाचारजै तिनकी कृपा अनूप ॥ १४ ॥
आचारज बलभद्र कौँ तिनतेँ मिल्यौ प्रसाद।
तिन करि पद्माचारजै पूरन प्रेमसवाद ॥ १५ ॥
स्यामाचारज स्यामरत तिनकी कृपा प्रकासि।
गोपालाचारज भजौ पुनि उन अंतेबासि ॥ १६ ॥
तिन सुदृस्टि-रसबृस्टि तेँ कृपाचारजै तोषि।
हरिगुन गसि जड़ जियनि कौँ दई बंध तेँ मोष ॥ १७ ॥
श्रीदेवाचारज भए तिनके सिस्य प्रबीन।
कृस्न-चरन-रति-दान दै करे कृतारथ दीन ॥ १८ ॥
तिनतेँ सुंदर भट्ट को भौ सब सुंदर काज।
पद्मनाभ भट्टहि भजौ तिनकी कृपा-जिहाज ॥ १९ ॥
पुनि उपेंद्र भट्टहि कहौ तिन उपदेसागार।
रामचंद्र भट्टहि मिल्यौ तिनतेँ ब्रजरस-सार ॥ २० ॥
तिनतेँ बावन भट्ट को बढ़यौ प्रताप प्रचंड।
कृस्न भट्ट श्रीजुत भए तिन उपदेस अखंड ॥ २१ ॥
श्रीपद्माकर भट्ट कौँ तिन सुदेस उपदेस।
स्रवन भट्ट तिनतेँ लह्यौ नाम-प्रसाद असेष ॥ २२ ॥

रगा। इसीसे 'निँबादित्य' कहलाए। साखा० = शाखा-चँद्र न्याय। चंद्रमा को दिखाने के लिए कोई पेड़ दिखाकर कहा जाता है कि चंद्रमा उस शाखा पर है। [११] अवदात = स्वच्छ, निर्मल। [१२] केत = केतु, पताका [१३] अघ० = पापों का समूह। [१६] अंतेवासी = शिष्य। [२२] सुदेस = सुंदर।

भूरिभाग - भाजन भए भूरि भट्ट तिन सौंप ।
तिनतेँ माधव भट्ट लै दई अनेकनि भीप ॥ २३ ॥
स्याम भट्ट तिनतेँ लह्यौ स्याम-नाम अभिराम ।
पुनि गुपाल भट्टहि मिली तिन करि हरिगुन-दाम ॥ २४ ॥
भए भट्ट बलभद्र पुनि बलनिधि तिन उपदेस ।
गोपीनाथ सुभट्ट कौं तिनतेँ नामादेस ॥ २५ ॥
तिन करि केसव भट्ट कौं मिल्यौ सु केसव नाम ।
गंगल भट्ट भलैँ भए तिनतेँ मंगल - धाम ॥ २६ ॥
ख्याति कासमीरी विपुल श्रीकेसव सुभ नाम ।
बिद्यानिधि बानी बिसद तिन प्रसाद अभिराम ॥ २७ ॥
काजी कौँ माजी कियौ माडी मथुरा मैंड ।
हरिजन - राजी संग लै साजी गुरुता - ऐंड ॥ २८ ॥
तिन प्रसाद श्रीभट लही निरवधि रस की रासि ।
सो संपति परति न कही दंपति भलैँ उपासि ॥ २९ ॥
जुगुलचंद सुखकंद को बनविनोद रसभूरि ।
भाख्यौ हित राख्यौ सु नित चित-बेला बलि पूरि ॥ ३० ॥
तिन हारद के हृद भए हरिव्यास बड़देव ।
अति गँभीर आसय सरस सबनि करी जिहिं सेव ॥ ३१ ॥
महिमा बिदित कहाँ कहा देवन नगर मझार ।
देवी कौँ उपदेस दै मेट्यौ पसुसंहार ॥ ३२ ॥
हिंसा-हतन करथौ भलैँ लयौ सुधरम जिवार ।
करुनानिधि कलिकाल मैँ या विधि कियो न आन ॥ ३३ ॥
तिन सिस्यनि संख्या नहीँ महा महोदधि-रूप ।
अमित प्रताप पुनीत जस सबै धर्मधुर-भूप ॥ ३४ ॥

[२३] भीप=भिक्षा । [२४] दाम=माला । [२८] काजी=न्याय-कर्ता । माजी०=मार्जन किया, दंड दिया । माडी=कीलित की, स्थापित की । मैंड़=मर्यादा । राजी=पंक्ति समूह । ऐंड=दबदबा । [२९] दंपति=राधा-कृष्ण । उपासि=उपासना करके । [३१] हारद=हार्द, कृपालु । हद=हृदय ।

तिनके पाट बिराजि कै परमानिधि श्रीमान।
पदवी कौं पदवी दई मुनिबर कृपानिधान॥ ३५॥
अगम पदारथ सुगम किय भाषा हित-बिस्तार।
....॥ ३६॥

हरिगुन-चरितनि सुरसरित महाधीर मति मौन।
तहाँ नमित नरपति कहैं कहौ बड़ाई कौन॥ ३७॥
जीवदया हरिधर्म-हित रच्यौ सत्र सुखदानि।
श्रीपुहकर दिसि बिदित नित साधुसंत सनमानि॥ ३८॥
तिनके पाट लसे बसे मुनिवर श्रीहरिबंस।
अति बिबेक बिज्ञान-घन जसनिधि परम प्रसंस॥ ३९॥
श्रीनारायनदेव कौं तिनको कृपा-प्रसाद।
अति उदार बिद्याबिपुल पूरन प्रेम-सवाद॥४०॥
सदा कृस्न-गुन-कथन-रत मत-मँडन-जय-रूप।
विमुखनि खंडन बचनबर-रचना-तुँड अनूप॥ ४१॥
दीन-सरनदायक करुन हरन अखिल-दुख-दोष।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जग करन-जीव-परितोष॥ ४२॥
विद्यानिधि वहुविधि निपुन कृपा-अवधि रसकंद।
वचनरचन हरिचरितमय ससि तैं अमल अमंद॥ ४३॥
जग-बोहित मो हित प्रगट हरिबिनोद निजधाम।
अवनीमनि श्रीयुत सदा वृंदावन अभिराम॥ ४४॥
त्रिसे बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हैं बीस।
सदा बसौ नीकैं लसौ कृपा-ईस मो सीस॥ ४५॥
परमहंस-बंसावली रची सची इहि भाय।
कंठ धारिहैं गुरुमुखी सुखदाई समुदाय॥ ४६॥
कासीबासी सेष गन निगमागमन-प्रवीन।
निंबादित्य-अनुगम सबै परम पुनीत कुलीन॥ ४७॥
तिनको बंस प्रसंस जग जगमग ज्यौं द्विजराज।
गनमंडित पंडित बिबुध सोभित सदा समाज॥ ४८॥

तिन करि यह निहचय करी परंपरा की रीति।
स्रुति औ सुमृति पुरान की कथा पुरातम नीति ॥ ४९ ॥

आचारज हरिबपु सदा स्रुति भागवत प्रमान।
.... ॥ ५० ॥

जब जब धर्मगिलानि को हित अवनी संचार।
तब तब निज वपु धरि करैं जगत-जीव-निस्तार ॥ ५१ ॥

कृस्नावेस-स्वरूप है आचारज जग माँहि।
अप्राकृत जानौ तिन्हैं यामैं ससै नाहिं ॥ ५२ ॥

उभै लोक साधन यहै अभैदान की मीवे।
हरिगुन - माल रसाल कौं धरन करौ सुग्रावैं ॥ ५३ ॥

प्रतीकानुक्रमणी

कवित्त

['कवित्त' से तात्पर्य मनहरण, सवैया और छप्पय से है। अंक छंदों के हैं। अंकों के पीछे के अक्षर ग्रंथों के प्रतीक हैं। जिनमें ये अक्षर नहीं वे 'सुजानहित' के हैं। कृ०=कृपाकंद। वृं०=वृंदावनमुद्रा। प्रे०=प्रेमपद्धति। दा०=दानघटा। प्र०=प्रकीर्णक।]

पद

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६।२२	भूलि	भूले
७।२४	ताऊ	तऊ
७।२३	गुण	गुन=गुण
८।९	अंग अंग	अँग अंग
१५।९	आँखि न	आँखिन
१५।२५	सी	भी
२१।२३	प्रतिष्टा	प्रतिष्ठा
२४।२७	भेला	मेला
३२।२२	अदा०	भदा०
३६।२८	अलापन	सलापन
५६।२५	चौरस	चौसर
७०।२६	सिलने	मितने
९०।२६	मुखमय	सुखमय
९५।२१	दई	निरदई
९६।२५	कर	सींचकर
११९।२६	घनआनँद	घनआनंद
,,	आनँद	आनंद
१२७।२८	बैठे तौ	अपनी ओर
१२८।२८	गम	हम
१४४।२५	उडयौ	उडुपौ०-उदयौ।
,,	-नव	नस-नव।
२०१।२५	पत्नी	जननी
२०७।२२	घरै	घर
२१३।२३	हेत	तेह
२२३।२६	शखाओँ	शाखाओँ
२३२।१७	जटुल	जटिल
,,	लत्तण	लटूरी
२४८।१८	धोष	घोष
२७४।२७	पीरकर	परिकर
,,	बिकट	निकट
२८८।२२	कबित्त	वृदा०
३५५।२७	खोल	मुरली
३८४।२४	पास	पास या बिना
३९०।२७	त्रास	त्रास या आवेग
३९८।२७	नृत्य	वाद्य
४१६।२७	अँक्खयाँ	अँक्खीं
५८१।३०	खँजनों	खंजनों
६०८।२५	'निँबादित्य'	'निंबादित्य,
,,	चँद्र	चंद्र
६०९।२६	मँडित	मंडित

सूचना-मात्राओं के टूटने से होनेवाली अशुद्धियों का उल्लेख नहीं है।